आधार पाठ्यक्रम, प्रथम वर्ष

तृतीय प्रश्नपत्र

बी.ए./बी.एस.सी./बी.कॉम

उद्यमिता विकास

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr (Prof) Ajay Agrawal
   Professor
   Govt Hamidiya College Bhopal

2. Dr (Prof) Sharda Gangwar
   Professor
   IEHE Bhopal

3. Dr (Prof) Priti Mishra
   Professor
   IEHE Bhopal

Advisory Committee

1. Dr Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

2. Dr H.S.Tripathi
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

3. Dr L.P.Jharia
   Director Student Support
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

4. Dr (Prof) Sharda Gangwar
   Professor
   IEHE Bhopal

5. Dr (Prof) Priti Mishra
   Professor
   IEHE Bhopal

COURSE WRITERS

Dr. Suman Lata, Lecturer, Department of Economics, Ginni Devi Modi Girls (PG) College, Modinager, Ghaziabad
Dr. Rupesh Tyagi, Assistant Professor (Contractual), Department of Economics, CCS University, Meerut
Units (1, 2.2-2.3, 3.2-3.3, 3.5, 4.2-4.3)
Dr. Kirti Agarwal, Smt Vimla Devi Education Society, Delhi
Unit (2.4-2.6)
Dr. Meenu Agrawal, Smt. Vimla Devi Education Society, Delhi
Units (2.0-2.1, 2.7-2.11, 3.0-3.1, 3.4, 3.6-3.10, 4.0-4.1, 4.6-4.10, 5.0-5.2, 5.5-5.9)
Dr. Abdul Rahman, Assistant Professor in Business, Govt. Degree College, Sambhal, Moradabad (UP)
(Unit: 4.4-4.5)
Dr. Rupesh Tyagi, Assistant Professor (Contractual), Department of Economics, CCS University, Meerut
Unit (5.3-5.4)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

उद्यमिता विकास

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 उद्यमिता विकास : अवधारणाएं एवं महत्व, उद्यमी के कार्य, लक्ष्य निर्धारण, समस्याएं चुनौतियां एवं समाधान।	**इकाई 1** : उद्यमिता विकास : अवधारणाएं एवं महत्व **(पृष्ठ 3–48)**
इकाई–2 परियोजना प्रस्ताव – आवश्यकता एवं उद्देश्य– संगठन का स्वरूप, उत्पादन प्रबंधन, वित्तीय प्रबंधन, विपणन एवं उपभोक्ता प्रबंधन।	**इकाई 2** : परियोजना प्रस्ताव **(पृष्ठ 49–186)**
इकाई–3 उद्यमिता हेतु नियामक संस्थाओं की भूमिका, विकासात्मक संस्थाओं की भूमिका, स्वरोजगार मूलक योजनाएं, विभिन्न अनुदान योजनाएं।	**इकाई 3** : उद्यमिता हेतु नियामक संस्थाओं की भूमिका **(पृष्ठ 187–230)**
इकाई–4 परियोजना हेतु वित्तीय प्रबंधन– पूंजी अनुमान एवं व्यवस्था, लागत एवं मूल्य निर्धारण, लेखा–जोखा रखना	**इकाई 4** : परियोजना हेतु वित्तीय प्रबंधन **(पृष्ठ 231–280)**
इकाई–5 पूंजी संबंधी समस्याएं, पंजीकरण संबंधी समस्याएं, प्रशासकीय समस्याएं एवं उपरोक्त समस्याओं का समाधान	**इकाई 5** : उद्यमिता संबंधी समस्याएं एवं उनके समाधान **(पृष्ठ 281–305)**

विषय–सूची

परिचय **1**

इकाई 1 उद्यमिता विकास : अवधारणाएं एवं महत्व **3–48**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 उद्यमी की अवधारणा, महत्ता एवं कार्य
  1.2.1 उद्यमी : अर्थ, परिभाषाएं एवं वैशिष्ट्य
  1.2.2 उद्यमी के प्रकार
  1.2.3 उद्यमी का महत्व
  1.2.4 उद्यमी के कार्य
  1.2.5 उद्यमी एवं प्रबंधक में अंतर
1.3 उद्यमिता के अवधारणात्मक सिद्धांत
1.4 लक्ष्य निर्धारण
1.5 समस्याएं, चुनौतियां एवं समाधान
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 परियोजना प्रस्ताव **49–186**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 परियोजना प्रस्ताव की आवश्यकता एवं उद्देश्य
  2.2.1 उद्यम स्थापना का विचार : प्रवर्तन
  2.2.2 परियोजना की पहचान एवं नियोजन
  2.2.3 परियोजना मूल्यांकन/आकलन
2.3 संगठन का स्वरूप
2.4 उत्पादन प्रबंधन
2.5 वित्तीय प्रबंधन
2.6 विपणन और उपभोक्ता प्रबंधन
  2.6.1 विपणन
  2.6.2 उपभोक्ता
2.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.8 सारांश
2.9 मुख्य शब्दावली
2.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.11 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 उद्यमिता हेतु नियामक संस्थाओं की भूमिका **187–230**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य

3.2 नियामक संस्थाओं की भूमिका
3.2.1 केन्द्रीय स्तर के संगठन
3.2.2 राज्य स्तर के संगठन
3.2.3 अनुसंधान परीक्षण एवं मानक संगठन
3.3 विकासात्मक संस्थाओं की भूमिका
3.4 स्वरोजगार मूलक योजनाएं
3.5 विभिन्न अनुदान योजनाएं
3.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 परियोजना हेतु वित्तीय प्रबंधन **231–280**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 परियोजना के लिए वित्तीय प्रबंधन
4.2.1 दीर्घकालीन या स्थायी पूंजी
4.2.2 कार्यशील पूंजी या अल्पकालीन पूंजी
4.3 पूंजी अनुमान एवं व्यवस्था
4.3.1 उद्यम पूंजी का अर्थ एवं विशेषताएं
4.3.2 उद्यम पूंजी के स्रोत
4.3.3 उद्यम पूंजी के लिए मार्गदर्शिकाएं
4.4 लागत एवं मूल्य निर्धारण
4.5 लेखा–जोखा रखना
4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 उद्यमिता संबंधी समस्याएं एवं उनके समाधान **281–305**

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 पूंजी विषयक समस्याएं एवं समाधान
5.3 पंजीकरण संबंधी समस्याएं एवं समाधान
5.3.1 लघु उद्योग इकाइयों की पंजीकरण प्रक्रिया
5.3.2 पंजीकरण में आने वाली समस्याएं
5.3.3 समाधान
5.4 प्रशासकीय समस्याएं एवं समाधान
5.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.6 सारांश
5.7 मुख्य शब्दावली
5.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.9 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'उद्यमिता विकास' विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित आधार पाठ्यक्रम के प्रथम वर्ष के अनुरूप तैयार की गयी है।

उद्यमिता औद्योगिक, आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति का आधारभूत स्तंभ है। आधुनिक युग में उद्यमिता के बिना किसी भी देश का विकास संभव नहीं है। उद्यमिता द्वारा ही राष्ट्र की निर्धनता, बेरोजगारी, निम्न उत्पादकता एवं आर्थिक असमानता आदि का निवारण संभव है। वास्तव में उद्यमिता अर्थव्यवस्था के विकास में विशिष्ट भूमिका निभाती है। उद्यमिता का विकास कई घटकों पर निर्भर करता है। समाज में उद्यमशील वर्ग की पूर्ति विभिन्न घटकों द्वारा प्रभावित होती है। इसके संबंध में समय–समय पर विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न विचारधाराओं का प्रतिपादन किया है।

सामान्य तौर पर एक नवीन उपक्रम शुरू करने वाला व्यक्ति उद्यमी कहलाता है। वह उत्पादन के आवश्यक साधनों को जुटाता है तथा व्यवसाय की क्रियाओं का प्रबंधन एवं नियंत्रण भी करता है। वह व्यवसाय के विभिन्न जोखिमों को झेलता है और व्यवसाय में आने वाली चुनौतियों का सामना करता है।

भारत सरकार ने देश में नवाचार एवं उद्यमिता की संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए कई प्रयास किये हैं और नीतिगत उपायों की स्थापना की है। रोजगार सृजन भारत के सामने आज सबसे बड़ी चुनौती है। विभिन्न महत्वपूर्ण एवं अद्वितीय जनसांख्यिकीय अनुकूलताओं की उपस्थिति के कारण भारत में उद्यमियों विकास और देश तथा दुनिया के हित में रोजगार सृजन करने की क्षमता भरपूर है।

प्रस्तुत पुस्तक में स्वाध्याय प्रणाली का प्रयोग किया गया है, जिसमें प्रत्येक इकाई का आरंभ इकाई की विषय–वस्तु के परिचय से किया गया है और तदोपरांत इकाई के उद्देश्य इंगित किये गये हैं। बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' के तहत प्रश्न दिये गये हैं जिससे अध्येता स्वयं यह जांच सके कि उसने जो पढ़ा उससे कितना सीखा। इकाई के अंत में क्रमशः पाठ का सारांश, मुख्य शब्दावली, अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर एवं अभ्यास हेतु प्रश्न दिये गये हैं।

इस पुस्तक में भारत में उद्यमिता का विकास संदर्भित अहम विषयों का सांगोपांग वर्णन किया गया है। अध्ययन की सुविधा के लिए पाठ्यक्रम को पांच इकाइयों में समायोजित किया गया है। इनका विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई उद्यमिता विकास की अवधारणाओं एवं महत्व पर आधारित है। इसमें उद्यमी की विशेषता, प्रकार तथा आर्थिक विकास में उसकी भूमिका को भी रेखांकित किया गया है।

दूसरी इकाई में परियोजना प्रस्ताव की आवश्यकता एवं उद्देश्य, संगठन के स्वरूप, उत्पादन प्रबंधन, विपणन और उपभोक्ता प्रबंधन आदि का विश्लेषण किया गया है।

तीसरी इकाई उद्यमिता हेतु नियामक संस्थाओं की भूमिका से हमारा परिचय कराती है। स्वरोजगार मूलक योजनाओं एवं विभिन्न अनुदान योजनाओं का उल्लेख भी इस इकाई में किया गया है।

चौथी इकाई परियोजना हेतु वित्तीय प्रबंधन से संदर्भित विविध तथ्यों से हमारा साक्षात्कार कराती है। पूंजी अनुदान एवं व्यवस्था, लागत एवं मूल्य निर्धारण, लेखा–जोखा आदि को भी इस इकाई में विश्लेषित किया गया है।

टिप्पणी

पांचवीं इकाई उद्यमिता संबंधी समस्याओं एवं उनके समाधान पर आधारित है। इसमें पूंजी विषयक, पंजीकरण संबंधी एवं प्रशासकीय समस्याओं एवं उनके समाधान का रेखांकन किया गया है।

हमें आशा है कि यह पुस्तक विद्यार्थियों को विषय से संदर्भित पर्याप्त जानकारी उपलब्ध कराकर उनके मार्ग–दर्शन में सहायक सिद्ध होगी।

इकाई 1 उद्यमिता विकास : अवधारणाएं एवं महत्व

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 उद्यमी की अवधारणा, महत्ता एवं कार्य
  1.2.1 उद्यमी : अर्थ, परिभाषाएं एवं वैशिष्ट्य
  1.2.2 उद्यमी के प्रकार
  1.2.3 उद्यमी का महत्व
  1.2.4 उद्यमी के कार्य
  1.2.5 उद्यमी एवं प्रबंधक में अंतर
1.3 उद्यमिता के अवधारणात्मक सिद्धांत
1.4 लक्ष्य निर्धारण
1.5 समस्याएं, चुनौतियां एवं समाधान
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

उद्यमी अथवा 'एन्टरप्रेन्योर' शब्द का उद्भव फ्रेन्च भाषा के एण्ट्रीपेण्ड्री से हुआ है जिसका अर्थ है वह एकाकी व्यक्ति जो किसी नवीन उपक्रम की स्थापना की जोखिम उठाता है। उद्यमी शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फ्रांसीसी अर्थशास्त्री रिचर्ड केण्टीलोन ने अपने लेखन में किया था। उद्यमी वह व्यक्ति होता है जो व्यवसाय में लाभप्रद अवसरों की खोज करता है और उत्पादन के साधनों को एकत्र करके उत्पादन कार्यों में लगाता है, वह नवाचार को जन्म देता है और जोखिम वहन करता है। उत्पादकता में वृद्धि करके आर्थिक विकास को गति प्रदान करता है। उद्यमी की कार्य–पद्धति वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित होती है। सामान्य तौर पर उद्यमी आर्थिक लाभ के उद्देश्य से कार्य करता है। उद्यमी का कार्य विस्तृत एवं चुनौतीपूर्ण होता है।

इस इकाई में उद्यमी की अवधारणा, महत्व एवं उसके कार्यों से अवगत कराते हुए उद्यमिता विकास के लक्ष्यों, समस्याओं एवं उनके समाधान के बारे में विस्तार से बताया गया है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- उद्यमी की अवधारणा, महत्व एवं उसके कार्यों से अवगत हो पाएंगे;
- उद्यमिता के अवधारणात्मक सिद्धांतों का परिचय प्राप्त करेंगे;
- उद्यमिता विकास के लक्ष्य एवं उसके निर्धारण के संबंध में जानकारी प्राप्त करेंगे;
- उद्यमिता की समस्याओं, चुनौतियों एवं उनके समाधानों से परिचित हो पाएंगे।

टिप्पणी

1.2 उद्यमी की अवधारणा, महत्ता एवं कार्य

उद्यमी शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फ्रांस में प्रमुख सैन्य अभियानों के लिये 16वीं शताब्दी में किया गया था। 17वीं शताब्दी में नागरिक अभियान्त्रिक के क्षेत्र में जैसे पुल, बंदरगाह, सड़क, किले आदि का निर्माण करवाने वाले ठेकेदारों के लिये उद्यमी शब्द का प्रयोग किया जाता था। परन्तु 18वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही उद्यमी शब्द का प्रयोग आर्थिक क्रियाओं के सम्बन्ध में किया जाने लगा। पेरेर ब्रदर्स ने सन् 1857 में फ्रांस में एक उद्यमी बैंक की स्थापना की और तब से ही व्यवसाय में इस शब्द का प्रयोग व्यवस्थित रूप से शुरू हो गया। वास्तव में साहस की भावना ही व्यक्ति को उद्यमी बनाती है। साहस की भावना से प्रेरित होकर ही व्यक्ति खानाबदोश जीवन त्याग कर एक पशुपालक बना, फिर किसान बना और फिर व्यापारी व उद्योगपति बना है। इसी कारण उद्योगपति को साहसी भी कहा जाता है। क्योंकि बिना साहस के जोखिम लेना संभव नहीं है और उद्योगपति को तो आर्थिक लाभ के लिये जोखिम लेना ही पड़ता है।

1.2.1 उद्यमी : अर्थ, परिभाषाएं एवं वैशिष्ट्य

उद्यमी का अलग–अलग देशों में भिन्न–भिन्न अर्थ निकालते हैं। जर्मनी में उस व्यक्ति को उद्यमी माना जाता है, जिसके पास सत्ता तथा सम्पत्ति होती है। अर्थात् जो व्यक्ति स्वामित्व एवं संचालन दोनों के लिये उत्तरदायी है, वही उद्यमी कहलाता है। अमेरिका में अपना स्वयं का व्यवसाय, शुरू करने वाले को उद्यमी के नाम से संबोधित करते हैं।

सामान्य तौर पर एक नवीन उपक्रम शुरू करने वाला व्यक्ति उद्यमी कहलाता है। उत्पादन के आवश्यक साधनों को जुटाता है तथा व्यवसाय की क्रियाओं का प्रबंध एवं नियंत्रण करता है। वह व्यवसाय के विभिन्न जोखिमों (Risk) को झेलता है और व्यवसाय में आने वाली चुनौतियों का सामना करता है। उद्यमी का मुख्य कार्य जोखिमों को वहन करना है, किन्तु आधुनिक युग में इसे उद्यमी का एक मात्र लक्षण नहीं माना जा सकता है। प्रबंध की नई–नई तकनीकों के कारण एवं बीमा कम्पनियों के विकास के कारण व्यवसाय में निहित जोखिमों तथा अनिश्चितताओं में कमी आयी है। समय के साथ–साथ उद्यमी के कार्यों का स्वरूप वृहद हो गया।

इस प्रकार 19वीं शताब्दी के अंत तक उद्यमी का अर्थ जोखिम उठाने वाला (Risk Bearer), प्रर्वतक (Promoter) उपक्रम की स्थापना करने वाला (Undertaker), संगठनकर्ता एवं समन्वयकर्ता (Organiser and Coordinator), स्वामी और प्रबंधक (Owner and Organiser) आदि से लगाया जाता था। लेकिन आधुनिक युग में उद्यमी कई अन्य कार्य करता है, जैसे नेतृत्व एवं प्रवर्तन उसके महत्वपूर्ण कार्य हैं। आजकल जोखिम उठाने के साथ–साथ व्यवसाय में नई–नई वस्तुओं, यंत्रों तथा विधियों को स्थान देने वाले व्यक्ति को उद्यमी के रूप में देखा जाता है। 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में उद्यमी का अर्थ एक नव प्रवर्तनकर्ता के रूप में देखा जाने लगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि आर्थिक विकास के साथ–साथ विकास की विभिन्न अवस्थाओं में उद्यमी का अर्थ समय के साथ परिवर्तित होता रहा है।

उद्यमी की परिभाषा

उद्यमी को अनेक विद्वानों ने परिभाषित किया है, जो भिन्न–भिन्न दृष्टिकोणों को प्रकट करती हैं। वास्तव में उद्यमी की परिभाषा आर्थिक विकास के स्वरूप के अनुरूप बदलती

रही है। विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं के अनुसार उद्यमी की परिभाषा को निम्न तीन भागों में विभाजित किया गया है–

1. परम्परागत अर्थव्यवस्था के अंतर्गत
2. विकासशील अर्थव्यवस्था के अंतर्गत
3. विकसित अर्थव्यवस्था के अंतर्गत।

टिप्पणी

परम्परागत अर्थव्यवस्था के अंतर्गत

परम्परागत अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उद्यमी का कार्य अत्यंत सीमित रहा है और प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने उद्यमी को जोखिम वहनकर्त्ता के रूप में परिभाषित किया है–

एफ.बी. हाने (F.V. Hane) के अनुसार–"उत्पत्ति में निहित जोखिम उठाने वाला उत्पादन का साधन ही उद्यमी होता है।"

फ्रेंक नाइट (Frank Knight) के अनुसार–"उद्यमी के विशिष्ट समूह अथवा व्यक्ति हैं जो जोखिम सहते हैं तथा अनिश्चितता की व्यवस्था करते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं में उद्यमी को व्यवसाय की अनिश्चितताओं एवं जोखिमों का सामना करने वाले व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है। उद्यमी ऐसे जोखिमों को वहन करने की क्षमता रखते हैं, जिनका पूर्वमूल्यांकन एवं मापन सम्भव नहीं होता है। इसी कारण उद्यमी की पहचान आज भी जोखिम वहनकर्ता के रूप में होती है। वह आज बाजार प्रवृत्तियों, प्रतिस्पर्धा, तकनीकी रुचियों एवं नवप्रवर्तन सरकारी नीतियों से उत्पन्न होने वाले जोखिमों को वहन करता है। उद्यमी जोखिम को वहन करने का साहस करता है, बिना जोखिम के उद्यमी आर्थिक विकास की ओर अग्रसर नहीं हो सकता है।

विकासशील अर्थव्यवस्था के अंतर्गत

विकासशील अर्थव्यवस्था में उद्यमी को एक संगठनकर्ता, समन्वयकर्ता तथा प्रवर्तक के रूप में देखा गया है। इस दृष्टिकोण के अनुसार उद्यमी उस व्यक्ति को माना जाता है, जो किसी नये उपक्रम की स्थापना करता है। उत्पादन के साधनों को एकत्र करता है, उनमें समन्वय स्थापित करता है और प्रबंधकीय निर्णय लेता है। इस आधार पर उद्यमी को अनेक विद्वानों ने निम्न तरह से परिभाषित किया है–

1. **आर.टी. ऐली** (R.T. Ely) **के अनुसार** : ''उद्यमी वह व्यक्ति है जो उत्पादक घटकों को संगठित एवं निर्देशित करता है।''
2. **अल्फ्रेड मार्शल** (Alfred Marshall) **के अनुसार** : ''उद्यमी वह व्यक्ति है जो जोखिम उठाने का साहस करता है, किसी कार्य के लिये आवश्यक पूंजी व श्रम की व्यवस्था करता है, जो इसकी सामान्य योजना बनाता है, जो इसकी छोटी से छोटी बातों का निरीक्षण करता है।''
3. **ऑक्सफोर्ड आंग्ल शब्दकोश** (Oxford English Dictionary) **के अनुसार** : ''उद्यमी वह व्यक्ति अथवा अनुबंधकर्ता है, जो किसी उपक्रम की स्थापना करता है तथा पूंजी एवं श्रम के बीच मध्यस्थ का कार्य करता है।''

उपर्युक्त परिभाषा में उद्यमी उस व्यक्ति अथवा समूह को बताया गया है, जो उपक्रम की स्थापना करता है और आवश्यक साधनों पूंजी, श्रम, कच्चा माल, यंत्र

टिप्पणी

तकनीक आदि को जुटाता है और व्यवसाय के संचालन के जोखिमों को उठाता हुआ उसका प्रबंध, समन्वय एवं नियंत्रण करता है।

विकसित अर्थव्यवस्था के अंतर्गत

विकसित अर्थव्यवस्था में व्यावसायिक जटिलताएं बढ़ने लगीं और व्यवसाय का स्वरूप सेवा–प्रधान होने लगा है। ऐसी अर्थव्यवस्था में उद्यमी व्यवसाय में अनेक नवीन सुधार करके सम्पूर्ण समाज एवं अर्थव्यवस्था में नवीन प्रणालियों व नये बाजारों की खोज करता है। वह नई तकनीक एवं नये यंत्रों का प्रयोग करके व्यावसायिक अवसरों का लाभ उठाता है। विकसित अर्थव्यवस्था में अनेक विद्वानों ने उद्यमी को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है–

1. **जोसेफ ए. शुम्पीटर** (Joseph. A. Schumpeter) **के अनुसार**– ''उद्यमी वह व्यक्ति है जो किसी अवसर की पूर्व कल्पना करता है तथा किसी नई वस्तु, नई उत्पादन विधि, कच्चे माल, नये बाजार अथवा उत्पादन के साधनों के नये संयोग को अपनाते हुए अवसर का लाभ उठाता है।''
2. **पीटर एफ. ड्रकर** (Peter F. Drucker) **के अनुसार**– "उद्यमी वह व्यक्ति है जो सदैव परिवर्तन की खोज करता है, उस पर प्रक्रिया करता है तथा अवसर के रूप में लाभ उठाता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहना प्रासंगिक है कि वर्तमान में उद्यमी की भूमिका बहुत बदल गई है। उद्यमी समाज का एक अंग है, वह समाज के विभिन्न वर्गों की आकांक्षाओं एवं प्रतिक्रियाओं के अनुरूप व्यवसाय को संचालित करता है। निरंतर नये–नये परिवर्तनों, चुनौतियों एवं सुधारों का पूर्ण समावेश कर समन्वय स्थापित करता है।

उद्यमी की प्रकृति अथवा विशेषताएं

उद्यमी की प्रकृति अथवा विशेषताओं को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत उल्लेखित किया गया है–

1. **जोखिम वहनकर्ता** : व्यवसाय की भावी अनिश्चिताओं का सामना करने व जोखिम उठाने की भावना उद्यमिता में निहित होती है। व्यवसाय में अनेक जोखिमों का ठीक–ठीक पूर्वानुमान लगाना अत्यंत कठिन होता है। उद्यमी अपनी विवेकपूर्ण योजनाओं एवं ठोस निर्णयों से जोखिमों का सामना करते हुए वर्तमान संसाधनों को भावी आवश्यकताओं की पूर्ति में विनियोजित करता है, और ऐसा वह साहस व जोखिम उठाने की क्षमता के आधार पर ही करता है। उद्यमी हमेशा सामान्य जोखिम (Moderate Risk) लेना ही पसंद करते हैं, अत्यधिक जोखिम नहीं। उनका प्रत्येक निर्णय पूर्ण रूप से वैज्ञानिक कसौटी पर आधारित होता है।
2. **नव प्रवर्तनकर्ता** : साहस एक नवप्रवर्तनकारी कार्य है। जिसके द्वारा सृजनशील विचारों को क्रियान्वित किया जा सकता है। उद्यमी अपने व्यवसाय में सदैव नये यंत्रों, नवीन परिवर्तनों, नये सुधारों, नई तकनीक व नई प्रबंध व्यवस्था को स्थान देता है। वह नये वस्तु, नई उत्पादन विधि, नये यंत्र, नये अच्छे कच्चे माल तथा नये बाजारों की खोज करता है। वह नई–नई वस्तुओं एवं सेवाओं से उपभोक्ता की संतुष्टि तथा फर्म के लाभ में वृद्धि करता है।

टिप्पणी

3. **साहसी प्रबंधक** : लघु व्यवसायों में प्रबंध व संचालन का कार्य स्वयं उद्यमी द्वारा किया जाता है। किन्तु बड़े–बड़े उपक्रमों में उद्यमी एवं प्रबंधक अलग–अलग होते हैं। कम्पनी में उद्यमी प्रवर्तक का कार्य करता है। किसी भी उपक्रम में प्रबंध ही समस्त साहसिक निर्णयों व योजनाओं के क्रियान्वयन का माध्यम होता है। अतः प्रवर्तक उद्यमी प्रबंध के द्वारा ही व्यवसाय में नये–नये परिवर्तन व सुधार लाता है। इस प्रकार उद्यमी संचालक मण्डल का सदस्य बनकर उच्च प्रबंधक का कार्य करता है। उद्यमी को समय–समय पर व्यवसाय के हित में कई निर्णय लेने होते हैं इसलिये उनमें प्रबंधकीय कुशलता का होना बहुत जरूरी है।

4. **पेशेवर वर्ग** : वर्तमान समय में विकसित देशों में साहस भी एक पेशा का रूप ले रहा है। आधुनिक युग में उद्यमी को एक पेशेवर वर्ग में गिना जाता है। प्राचीन मतानुसार उद्यमी पैदा होते हैं बनाये नहीं जाते हैं, किन्तु अब यह धारणा धीरे–धीरे समाप्त होती जा रही है। आजकल प्रबंधकीय योग्यताओं के साथ–साथ साहसी योग्यताओं को भी शिक्षण–प्रशिक्षण द्वारा विकसित किया जा रहा है। विकासशील देशों में साहसिक अभिरुचियों एवं प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करने के लिये सरकार द्वारा कौशल निर्माण "कौशल भारत–कुशल भारत", "स्टार्टअप" तथा ''मेक इन इण्डिया'' जैसी योजनाएं चलायी जा रही हैं तथा सरकार द्वारा साहस विकास संस्थाओं तथा केन्द्रों की स्थापना भी की जा रही है, जिससे अधिक से अधिक लोगों को कुशल उद्यमी बनाया जा सके, जो साहस के साथ निर्णय लेने में सक्षम हो।

5. **संसाधनों का सृजनकर्ता** : साधन तो सिर्फ कच्चे माल व सामग्री के समान होते हैं। उद्यमी उपक्रम की स्थापना करके पूंजी, श्रम, भूमि, कच्चे माल व यंत्र आदि की एक जगह व्यवस्था करता है। कई दशाओं में उद्यमी स्वयं साधनयुक्त होता है किन्तु बड़े व्यवसायों की स्थापना के लिये उद्यमी सरकार व विभिन्न संस्थाओं के सहयोग से साधनों की व्यवस्था करता है। अविकसित राष्ट्रों में साधनों का एकत्रीकरण एक कठिन कार्य होता है, जिसे केवल उद्यमी/साहसी ही पूरा कर सकता है। उद्यमी इन साधनों को संसाधनों में बदल देता है। संसाधन के साथ कोई आर्थिक मूल्य जुड़ा होता है। इस प्रकार उद्यमी उपयोगी, आर्थिक मूल्यों तथा धन सृजन की क्षमता को विकसित करता है।

6. **नये उपक्रम की स्थापना** : विकासशील देशों में सीमित उत्पादन के कारण उत्पादन तथा वितरण का कार्य अति विशिष्ट होता है। उद्यमी आर्थिक क्रिया अथवा उपक्रम की पहल करता है एवं उसे स्थापित करता है। विकसित देशों में भी उद्यमी नये–नये उपक्रमों को स्थापित करके औद्योगिक क्रियाओं का विस्तार करता है।

7. **व्यक्ति अथवा व्यक्तियों का समूह** : व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह के रूप में उद्यमी होता है। लघु उपक्रमों में उद्यमी की भूमिका का निर्वहन अकेला व्यक्ति ही करता है, परन्तु आधुनिक युग में व्यवसाय की स्थापना बड़ी–बड़ी कम्पनियों के रूप में की जाने लगी है। इन कम्पनियों की स्थापना कुछ नियमों के अनुरूप की जाती है, जिनके प्रबंध व संचालन के लिये संयुक्त उद्यमियों की आवश्यकता होती है।

8. **कार्य ही संतुष्टि** : उद्यमियों के लिये उनका कार्य ही अपने आप में लक्ष्य एवं संतुष्टि का एक बड़ा स्रोत होता है। यद्यपि उद्यमी सामाजिक प्रतिष्ठा एवं आत्म

संतुष्टि के साथ–साथ मौद्रिक फल भी प्राप्त करना चाहते हैं, किन्तु मौद्रिक लाभ उनके लिये गौण (Secondary) होते हैं। किसी भी उद्यमी के लिये मुद्रा उसके अपने कार्य के विकास का मापक है।

टिप्पणी

9. **उच्च उपलब्धियों में विश्वास** : उद्यमी हमेशा उच्च उपलब्धियों में विश्वास रखते हैं। उच्च उपलब्धियां उद्यमी के ज्ञान पर आधारित होती हैं। उद्यमी अपने ज्ञान, अनुभव एवं परिश्रम के बल पर उच्च उपलब्धियां प्राप्त करता है। लम्बे अनुभव एवं आचरण के बाद एक व्यक्ति में साहसी के गुण पैदा होते हैं।

10. **अवसरों का विदोहन** : उद्यमी सदैव ही व्यावसायिक अवसरों की खोज में संलग्न होता है। वह इनको मितव्ययी ढंग से प्रयोग करके अधिक से अधिक लाभ अर्जित करने का प्रयास करता है। उद्यमी प्रत्येक अवसर को एक चुनौती के रूप में लेता है। परन्तु उद्यमी अवसरों का लाभ उठाने के लिये अपनी नैतिकता का कभी त्याग नहीं करता है।

11. **नेतृत्वकर्ता** : मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्रों में साहस की जरूरत होती है। प्रत्येक व्यक्ति साहसिक व्यवहार एवं उद्यमशीलता द्वारा सफलता प्राप्त कर सकता है। शिक्षा, अनुसंधान, प्रबंध, उत्पादन आदि सभी क्षेत्रों में जोखिम उठाने, नवप्रवर्तन करने तथा नेतृत्व की आवश्यकता होती है और उद्यमी व्यावसायिक जगत का अगुआ होता है। वह व्यवसाय एवं उद्योग को नेतृत्व प्रदान करता है तथा समाज को एक नई दिशा प्रदान करता है। वह समाज में औद्योगिक सम्भावनाओं का पता लगा कर उद्योग, व्यवसाय तथा अर्थव्यवस्था को विकास के मार्ग पर अग्रसर करता है।

12. **विश्वास आश्रित संबंध** : वर्तमान युग निगम संस्कृति (Corporate Culture) का युग है, जिसके अंतर्गत बड़ी–बड़ी कम्पनियों व निगमों की स्थापना की जाती है। उद्यमी ही वह व्यक्ति है जो प्रवर्तक के रूप में इनकी स्थापना करता है। इन उपक्रमों का संचालन ट्रस्टीशिप के सिद्धांत के आधार पर किया जाता है। इस प्रकार उद्यमी न केवल उपक्रम अपितु सम्पूर्ण समाज के साथ विश्वासाश्रित सम्बन्ध बनाता करता है।

13. **अनुसंधान पर बल** : उद्यमी सदैव ही प्रयोग एवं परिवर्तन पर विश्वास करता है, इसी कारण आधुनिक उद्यमी वैज्ञानिक शोध एवं अनुसंधान पर बल देता है। उद्यमी की कार्यप्रणाली वैज्ञानिक एवं तर्कयुक्त होती है। आधुनिक उद्यमी की कार्यशैली तथ्यों, आंकड़ों एवं सूचनाओं पर आधारित होती है।

14. **उद्यमी का प्रतिफल–लाभ है** : उद्यमी को अपनी सेवाओं के प्रतिफल के रूप में लाभ मिलता है और लाभ सदैव अनिश्चित होता है। सामान्यतः उद्यमी लाभ की आशा से ही कार्य करता है, किन्तु आधुनिक युग में अनेक उद्यमी अमौद्रिक प्रेरणाओं–सामाजिक प्रतिष्ठा, नव प्रवर्तन की भावना, आत्मसन्तुष्टि, भिन्न व्यक्तित्व की लालसा तथा प्रसिद्धि आदि से प्रेरित होकर कार्य करते हैं, जिससे कि उनकी एक अलग पहचान बन सके।

15. **एक संस्था** : उद्यमी स्वयं एक संस्था है क्योंकि एक उद्यमी के कारण समाज में विभिन्न संस्थाओं का जन्म होता है। वर्तमान समय में विकासशील राष्ट्रों में

टिप्पणी

कई संस्थाएं उद्यमी के रूप में कार्य कर रही हैं। सरकार स्वयं एक उद्यमी बन कर राष्ट्र के औद्योगिक विकास में विशिष्ट भूमिका निभा रही है।

16. **आशावादी दृष्टिकोण** : उद्यमी व्यक्ति का दृष्टिकोण आशावादी होता है। वह व्यावसायिक चुनौती से हार नहीं मानता और न ही हानि की दशा में निराश होता है। जो हार मान जाता है वह साहसी/उद्यमी हो ही नहीं सकता है। जो इन चुनौतियों का सामना कर लेता है वही उद्यमी/साहसी होता है।
17. **गतिशीलता** : अस्तित्व बनाए रखने के लिये गतिशीलता अत्यन्त जरूरी है। उद्यमी में परिवर्तनशीलता का गुण होता है। उद्यमी व्यावसायिक परिवर्तनों के माध्यम से सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को गतिशील बना देता है। उद्यमी नई वस्तु के निर्माण हेतु पुरानी वस्तुओं को विनष्ट करता है। वह उत्पादन के साधनों को नये–नये सृजन कार्यों में लगा कर विकास की गति को बढ़ाता है। अच्छे गतिशील उद्यमियों के अभाव में से साधन भी केवल साधक ही बने रहते हैं, वे उपयोगिता का सृजन नहीं कर पाते हैं।
18. **पूंजीपति एवं विनियोजक से भिन्न** : उद्यमी पूंजीपति एवं विनियोजक से अलग होता है। यद्यपि उद्यमी व्यवसाय में पूंजी की व्यवस्था करता है, लेकिन वह पूंजीपति नहीं होता है। इसी प्रकार उद्यमी विनियोक्ता (Investor) भी नहीं होता है, क्योंकि विनियोक्ता का उद्देश्य आय अर्जित करना होता है लेकिन उद्यमी लाभ/आय के अलावा अन्य भी कई चीजों की अपेक्षा रखता है।
19. **एक जीवनशैली** : किसी कार्य या पेशे को अपनाने से अधिक विशिष्ट उद्यमी होना है। उद्यमिता का कार्य व्यवसाय या पेशा नहीं है, यह जीवन को व्यवस्थित रूप से जीने की एक कला है। प्रत्येक व्यक्ति के लिये जीवन में लक्ष्य–प्राप्ति के लिये रचनात्मक एवं कल्पनाशील होना आवश्यक है। उसमें योजना बनाने, ठोस निर्णय लेने तथा उन्हें क्रियान्वित करने की योग्यता होनी चाहिए।

1.2.2 उद्यमी के प्रकार

सम्पूर्ण विश्व विविधताओं से भरा है, ऐसे में उद्यमी भी इससे अछूता नहीं है। प्रत्येक राष्ट्र की आर्थिक एवं सामाजिक दशाएं तथा विकास का स्तर भिन्न–भिन्न होता है। इसी कारण उद्यमियों में भी भिन्नता पायी जाती है। उद्यमियों को विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है–

I. विकास की गति के आधार पर

उद्यमियों को विकास की गति के आधार पर निम्न रूपों में विभाजित किया गया है–

1. **मूल प्रवर्तक** : उद्यमी विकास का मूल प्रवर्तक होता है। वह विकास की प्रक्रियाओं को प्रभावी ढंग से गतिमान बनाता है। सदैव अपने व्यवसाय को विकसित करने पर बल देता है। वह नई–नई वस्तुओं, यंत्रों व उत्पादन प्रक्रियाओं को अपना कर विकास की गति तीव्र कर देता है।
2. **लघु नवप्रवर्तक** : ये उद्यमी समाज में उत्पादन के संसाधनों का श्रेष्ठ उपयोग खोजते हैं। फिर उन्हें उत्पादक एवं लाभप्रद कार्यों में विनियोजित करते हैं।

टिप्पणी

3. **अनुषंगी** : अनुषंगी उद्यमी सहायक उद्योगों एवं व्यवसायों को चलाते हैं। इनकी भूमिका प्रतिकर्ता एवं मध्यस्थ की होती है।

4. **प्रबंधक** : ऐसे उद्यमी प्रबंध कला में निपुण होते हैं, जिसकी बदौलत वे उपक्रम को सुचारू ढंग से चलाते हैं। वे उपक्रम के विकास एवं विस्तार की न केवल योजनाएं बनाते हैं न ही विकास की गति में उनका कोई योगदान होता है। वे उपक्रम के बाह्य वातावरण का प्रभावी ढंग से प्रबंध करते हैं।

5. **स्थानीय व्यापारी** : इस श्रेणी में ऐसे उद्यमी आते हैं, जिनका कार्यक्षेत्र स्थानीय होता है। वह अपनी आर्थिक क्रिया का क्षेत्र एक विशेष सीमा तक सीमित रखता है।

6. **प्रारंभिक** : इस श्रेणी में आने वाले उद्यमी नवप्रवर्तन की फैलाव प्रक्रिया में भाग लेकर विकास को तेजी प्रदान करते हैं। ये अर्थव्यवस्था में प्रवेश करके विकास की प्रक्रिया में सहभागी बनते हैं।

II. सामाजिक लाभ की दृष्टि से

उद्यमी सिर्फ मुनाफा कमाने के उद्देश्य से कार्य नहीं करते हैं, बल्कि समाज को लाभ पहुंचे इस उद्देश्य से भी कार्य करते हैं। अतः सामाजिक लाभ की दृष्टि से उद्यमी को निम्नांकित वर्गों में बांट सकते हैं–

1. **आदर्श उद्यमी** : अपने व्यवसाय को सामाजिक हित एवं लाभ के लिये संचालित करने वाले उद्यमी आदर्श उद्यमी की श्रेणी में आते हैं। ये अपनी व्यावसायिक एवं औद्योगिक क्रियाओं द्वारा सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति करते हैं। आदर्श उद्यमी समाज में रोजगार, आय, आर्थिक उपयोगिताओं, नये मूल्यों तथा उच्च जीवन स्तर का सृजन करने के लिये प्रयासरत होता है। आदर्श उद्यमी की प्रमुख प्रेरणा लाभ नहीं वरन् सामाजिक संतुष्टि होती है।

2. **शोषक उद्यमी** : शोषक उद्यमी केवल अपने फायदे हेतु उपक्रम चलाता है। इसका उद्देश्य अधिक से अधिक लाभ कमाना होता है। यह स्व–केन्द्रित होता है तथा समाज के हितों व जरूरतों की इसे परवाह नहीं होती है। ऐसे साहसी अपने व्यवसाय का संचालन उस स्थान पर करते हैं, जहां की अर्थव्यवस्था विकसित नहीं है अर्थात् अविकसित है।

III. विभिन्न क्रियाओं के आधार पर

उद्यमियों को उनकी क्रियाओं के आधार पर भी वर्गीकृत किया जाता है। अर्थशास्त्री कार्ल वेस्पर ने विभिन्न क्रियाओं के आधार पर उद्यमियों को निम्न श्रेणी में बांटा है–

1. **सकल–स्व–नियुक्त उद्यमी** : ये उद्यमी स्वतंत्र होते हैं और स्वयं नियुक्त होकर कार्य करते हैं, जैसे चिकित्सक, नलसाज (Plumber), रंगमंच के कलाकार आदि।

2. **पूंजी संचायक** : ये उद्यमी पूंजी संचित करने में विशेष दक्षता रखते हैं। बैंक व बीमा कम्पनी जिनमें बहुत अधिक मात्रा में धन संचयन की आवश्यकता होती है, उनमें अपना योगदान प्रदान करते हैं।

टिप्पणी

3. **सट्टा लगाने वाले साहसी** : ऐसे उद्यमी स्वयं कोई व्यवसाय या निर्माण कार्य नहीं करके अनेक तरह के स्वामित्व प्रपत्रों में व्यवसाय करते हैं, जिससे उन्हें अत्यधिक आर्थिक लाभ होता है।
4. **अधिग्रहण साहसी** : विभिन्न लघु फर्मों का अधिग्रहण करके उनका संचालन करने वाले उद्यमी अधिग्रहण साहसी / उद्यमी हैं। कई बार ये इन फर्मों को अपने व्यवसाय में पूर्ण रूप से संविलय कर लेते हैं।
5. **कार्यशक्ति निर्माता** : स्वतंत्र रूप से यंत्रशालाओं, कम्प्यूटर, एयरलाइंस, अभियांत्रिकी सेवा फर्मों का निर्माण एवं संचालन करने वाले उद्यमियों को कार्य शक्ति निर्माता की श्रेणी में रखते हैं।
6. **मितव्यय स्तर उद्यमी** : ये उद्यमी उपभोक्ताओं की क्रयशक्ति में बचत करवाते हैं। इसके अंतर्गत छूट भण्डार (Discount Store), डाक व्यवसाय व्यापारी आदि शामिल होते हैं।
7. **उत्पादक नवप्रवर्तक** : उत्पादक नवप्रवर्तक ऐसे उद्यमी को कहते हैं, जो उत्पादों के निरंतर नवीन डिजाइन बना कर तथा उनका निर्माण करके बाजार में लाते हैं। नवीन उत्पादों के निर्माण के कारण उनकी प्रतिस्पर्धा स्थिति काफी मजबूत होती है।
8. **अप्रयुक्त संसाधन विदोहक** : ये उद्यमी प्राकृतिक साधनों का विदोहन करके उन्हें उत्पादक कार्यों में प्रयुक्त करते हैं। इसके अंतर्गत Real Estate Developers तथा Mining Prospectors आदि को शामिल किया जाता है।
9. **प्रारूप प्रवर्धक** : इस श्रेणी में उन उद्यमियों को सम्मिलित किया जाता है, जो अनेक सूत्रों का विदोहन करके वस्तुओं के प्रारूप में वृद्धि करते हैं। अन्य कम्पनियां इन सूत्रों का प्रयोग करने के लिये इन्हें विशेषाधिकार प्रदान करती हैं।

IV. नवप्रवर्तन योग्यता के आधार पर

नवप्रवर्तन योग्यता के आधार पर उद्यमियों को निम्न चार वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. **नवप्रवर्तक उद्यमी** : अपने व्यवसाय में कोई नवीन बदलाव करने वाले उद्यमी नवप्रवर्तक उद्यमी की श्रेणी में आते हैं। उदाहरण के लिये नई उत्पादन विधि, नये यंत्र एवं उपकरण, नई वस्तु का उत्पादन, नये बाजार की खोज, नया कच्चा माल, नई प्रबंध व्यवस्था आदि को अपनाना। नवप्रवर्तक उद्यमियों में सृजनात्मकता का गुण पाया जाता है। शुम्पीटर के अनुसार– "नवप्रवर्तक उद्यमी व्यवसाय में नवीन संयोजनों का सर्वप्रथम प्रयोग करते हैं।"
2. **नकलची उद्यमी** : नकलची उद्यमी की श्रेणी में ऐसे उद्यमियों को शामिल किया जाता है, जो स्वयं कोई नवप्रवर्तक कार्य नहीं करते, बल्कि जो नवप्रवर्तक उद्यमियों द्वारा खोजे गये सफल नवकरणों (Innovations) को अपने उद्योग के हित में प्रयोग करते हैं। नकलची उद्यमियों को अनुकरणीय उद्यमी भी कहा जाता है क्योंकि ये सफल उद्यमियों की वस्तुओं एवं क्रियाओं का सतर्कतापूर्वक अध्ययन करते हैं और फिर उनका अनुकरण करके लाभ उठाते हैं।

टिप्पणी

3. **सावधान उद्यमी** : ऐसे उद्यमी जोखिम लेने से अत्यधिक डरते हैं। व्यवसाय में सदैव सन्देह एवं अनिश्चितता की स्थिति में रहने के कारण ये तब तक सफल उद्यमियों की नकल नहीं करते जब तक उन्हें यह विश्वास नहीं हो जाता है कि इसके प्रयोग के बिना उसकी फर्म/व्यवसाय को हानि हो सकती है। अनिश्चितता के कारण ऐसे उद्यमी अन्तिम क्षणों में निर्णय लेते हैं।

4. **आलसी उद्यमी** : आलसी उद्यमी की श्रेणी में उन उद्यमियों को शामिल किया जाता है, जो किसी तरह का जोखिम लेना अथवा चुनौतीपूर्ण कार्य करना नहीं पसंद करते हैं। ये नवकरणों (Innovations) के प्रति उदासीन रहते हैं और आरामदायक जीवन जीना चाहते हैं। ऐसे उद्यमी परम्परागत अर्थव्यवस्था में कार्य करते हैं। इनका व्यवसाय दीर्घजीवी नहीं होता है।

V. उद्योग के स्वरूप के आधार पर

उद्योग के स्वरूप के आधार पर उद्यमियों को निम्न वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है–

1. **निजी सीमित उद्योग उद्यमी** : मुख्य रूप से व्यक्तिगत लाभ अर्जित करने की भावना से कार्य करने वाले उद्यमी को निजी सीमित उद्योग उद्यमी की श्रेणी में रखते हैं। ऐसा उद्यमी निजी स्वामित्व में कार्य करता है तथा स्वयं जोखिम उठाता है।

2. **सार्वजनिक/सरकारी उद्योग उद्यमी** : जब सरकार जनकल्याण की भावना से सार्वजनिक क्षेत्र में व्यावसायिक उपक्रम प्रारम्भ करती है, तो उसे सार्वजनिक/सरकारी उपक्रम कहते हैं। सरकार उद्यमी के रूप में कार्य करती है और जोखिम भी उठाती है।

3. **सहकारी उद्योग उद्यमी** : इसके अंतर्गत कई उद्यमी मिल कर सहकारिता के आधार पर उपक्रम/व्यवसाय प्रारम्भ करते हैं। वे जोखिम भी उठाते हैं और समय–समय पर नवकरण (Innovations) भी करते हैं।

4. **साझेदारी उद्योग उद्यमी** : साझेदारी नियमों के अंतर्गत उपक्रम को प्रारंभ करने वाले उद्यमी इस श्रेणी में आते हैं। जब दो या दो से अधिक उद्यमी मिल कर कारोबार प्रारंभ करते हैं, तो उन्हें साझेदार उद्यमी कहा जाता है। वे साझेदारी की शर्तों के अनुसार जोखिम वहन करते हैं।

VI. विकास या परिवर्तन के प्रति दृष्टिकोण के आधार पर

विकास अथवा परिवर्तन के प्रति दृष्टिकोण के आधार पर उद्यमियों को निम्न वर्गों में वर्गीकृत किया गया है–

1. **क्रान्तिकारी उद्यमी** : इस वर्ग में उन उद्यमी को शामिल किया जाता है, जो उद्यमी व्यवसाय में नई–नई विधियों का प्रयोग करते हैं, जोखिमपूर्ण योजनाएं बनाते हैं तथा साहसिक निर्णय लेते हैं और तीव्र गति से उपक्रम का विस्तार करते हैं।

2. **परम्परागत उद्यमी** : ये उद्यमी उत्पादन की परम्परागत शैली को अपनाते हैं और अनुसंधान कार्यों पर बहुत कम व्यय करते हैं। ये किसी नये संयंत्र अथवा नई वस्तु के निर्माण के प्रति उत्सुक नहीं होते हैं।

टिप्पणी

VII. उद्यमियों का आधुनिक वर्गीकरण

उद्यमियों को आधुनिक समय के आधार पर निम्न वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. **शिक्षा के आधार पर :** इस आधार पर उद्यमियों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है–
   (i) तकनीकी उद्यमी
   (ii) गैर–तकनीकी उद्यमी।
2. **तकनीकी ज्ञान के आधार पर :** इस आधार पर उद्यमियों को निम्नांकित वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है–
   (i) शिल्पकार
   (ii) औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों के प्रमाणपत्र धारी उद्यमी
   (iii) इंजीनियरिंग डिप्लोमाधारी उद्यमी
   (iv) इंजीनियरिंग में डिग्रीधारी अथवा उच्च तकनीकी शिक्षाधारी उद्यमी।
3. **क्षेत्र के आधार पर :** इस आधार पर उद्यमियों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है–
   (i) ग्रामीण उद्यमी
   (ii) शहरी उद्यमी।
4. **आरक्षित वर्ग के आधार पर :** इस आधार पर उद्यमी को निम्नांकित वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है–
   (i) भूतपूर्व सैनिक उद्यमी
   (ii) राजनैतिक पीड़ित उद्यमी
   (iii) विकलांग उद्यमी
   (iv) अनुसूचित अथवा पिछड़ी जाति के उद्यमी।

1.2.3 उद्यमी का महत्व

वर्तमान दौर में अर्थव्यवस्था बहुत तेजी से बदलती है। इस स्थिति में आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से उद्यमी की भूमिका अत्यन्त विशिष्ट हो जाती है। देश में प्राकृतिक एवं मानवीय साधनों की प्रचुरता ही उस देश की समृद्धि के लिये पर्याप्त नहीं है। ये उद्यमी ही अप्रयुक्त साधनों को एकत्र करके तथा उनका अधिकतम प्रयोग करके आर्थिक विकास के मार्ग को प्रशस्त करते हैं। उद्यमी नई–नई वस्तुओं का निर्माण करते हैं। ये रोजगार, विनियोग तथा आय में वृद्धि करने में सहयोग प्रदान करते हैं, उपयोग एवं संतुष्टि के स्तर को ऊंचा करके संपूर्ण राष्ट्र को प्रगति के पथ पर अग्रसर करते हैं। उद्यमी की क्रियाओं से देश का आर्थिक विकास होता है। उद्यमी प्रत्येक अर्थव्यवस्था का अगला कार्यकर्ता होता है, क्योंकि अर्थव्यवस्था की गाड़ी उद्यमी के बिना आगे नहीं बढ़ सकती है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री ने उद्यमी की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि उद्यमी उद्योग का कप्तान होता है क्योंकि वह जोखिम एवं अनिश्चितता का वाहक ही नहीं होता, बल्कि वह एक प्रबंधक, भविष्य द्रष्टा, नवीन उत्पादन विधियों का आविष्कारक तथा देश का निर्माता होता है। उद्यमी अपने लाभ को अधिकतम करने के लिये वह एक ओर तो उद्योग की आन्तरिक व्यवस्था पर पूरी तरह नजर रखता है, तो

टिप्पणी

दूसरी ओर अपने प्रतिद्वन्द्वियों की गतिविधियों पर भी पूरा ध्यान देता है। उद्यमी की भूमिका पर अग्रलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत प्रकाश डाला गया है।

1. **आधुनिक उत्पादन व्यवस्था का अंग** : उत्पादन भावी मांग पर आधारित होता है। उपभोक्ता की रुचि, फैशन एवं बाजार की स्थिति सर्वदा एक समान नहीं रहती है। इसमें निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। आज उत्पादन की विधियां एवं तकनीक भी अत्यंत जटिल हो गई है। इन सभी कारणों से आधुनिक व्यवसाय में बहुत अधिक अनिश्चितता उत्पन्न हो गई है। ऐसी स्थिति में उद्यमी की भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती जा रही है। आधुनिक व्यवसाय का आधार परिवर्तन एवं नवप्रवर्तन है जो कि उद्यमी व्यक्ति के द्वारा सम्भव है।
2. **नवप्रवर्तन को प्रोत्साहन** : साहसी को नवप्रवर्तक भी कहा जाता है। उद्यमी शोध एवं अनुसंधान पर अत्यधिक बल देकर समाज में नवप्रवर्तन को प्रोत्साहित करता है। उद्यमी, उद्योग में नई–नई वस्तुओं के उत्पादन, नवीन विधियों, नये यंत्र, नये कच्चे माल, नई तकनीक आदि के प्रयोगों को प्रोत्साहित करता है। इसके लिये वह अनेक तरह के ज्ञात एवं अज्ञात जोखिम उठाता है।
3. **उत्प्रेरक तत्व** : उद्यमी साधनों के सर्वोत्तम उपयोग को सम्भव बनाता है, जिससे समाज में धन सम्पदा बढ़ती है। आय में वृद्धि होती है, गरीबी का उन्मूलन होता है, आत्मनिर्भर समाज का निर्माण होता है। इस प्रकार उद्यमी प्रगति का उत्प्रेरक तत्व है। इस विषय में रेला हॉर विज ने लिखा है कि ''उद्यमी घटनाओं को घटित करता है, कार्यवाही चाहता है तथा वह एक प्रगतिशील व्यक्ति होता है। उसके बिना न कोई घटना है, न कोई क्रिया है और न हीं कोई प्रगति है।''
4. **उद्योग का कप्तान** : उद्यमी किसी भी उद्योग का प्रमुख स्तम्भ होता है। वह केवल जोखिमों का वहन ही नहीं करता, अपितु उद्योग का प्रबंधक, भविष्यद्रष्टा एवं आर्थिक नियोजक भी होता है। उद्योग की इस दायित्वपूर्ण भूमिका के कारण उद्यमी को उद्योग का कप्तान कहा जाता है। उद्यमी सम्पूर्ण उद्योग का नेतृत्व प्रदान करता है।
5. **आर्थिक विकास का कर्णधार** : आधुनिक युग में आर्थिक विकास का प्रणेता उद्यमी को मानते हैं। सभी तरह की अर्थव्यवस्थाओं में उद्यमी की भूमिका मुख्य कार्यकर्ता के रूप में होती है। वह आर्थिक प्रगति का संतुलन चक्र है। उद्यमियों की क्रियाओं द्वारा ही देश के आर्थिक विकास का चक्र गतिमान होता है। शुम्पीटर ने उद्यमी की भूमिका को आर्थिक विकास के सिद्धांत में केन्द्रीय माना है।
6. **नवीन व्यावसायिक इकाइयों की स्थापना** : उद्यमी के कारण ही समाज में नये–नये व्यवसायों की स्थापना होती है। उद्यमी उत्पत्ति के साधनों को उत्पादक कार्यों की ओर प्रस्तुत करता है। उद्यमी के नेतृत्व के बिना उत्पत्ति के सभी साधन निष्क्रिय बने रहते हैं।
7. **सामाजिक परिवर्तनों का संवाहक** : उद्यमियों के प्रयास के फलस्वरूप सामाजिक ढांचे में कई रचनात्मक परिवर्तन आते हैं। समाज उद्योगप्रधान बन जाता है। समाज कई रूढ़ियों व घिसी–पिटी परम्पराओं से मुक्त होने लगता है उद्यमी जटिल सामाजिक प्रक्रिया का एक अंग है, जो सामाजिक ढांचे में कई परिवर्तनों को जन्म देता है।

टिप्पणी

8. **समाज के उत्पादक साधनों का संगठनकर्ता :** उद्यमी समाज के उत्पादक साधनों का संगठनकर्ता होता है। उद्यमी समाज के उत्पादन साधनों श्रम पूंजी सामग्री, भूमि तकनीकी आदि को संग्रहित कर उत्पादन को मुमकिन बनाता है। उद्यमी समाज के अप्रयुक्त साधनों को उत्पादन कार्य में प्रयुक्त कर विनष्ट होने से बचाता है। श्रम शक्ति को गतिशील बनाता है। वैज्ञानिक आविष्कारों का व्यावसायिक उपयोग करने में उद्यमी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।
9. **गतिशील प्रतिनिधि :** शुम्पीटर के अनुसार उद्यमी गतिशील प्रतिनिधि है। आर्थिक क्रान्ति के समय में उद्यमी विकासशील देश में विकास का वातावरण बनाता है। वह व्यावसायिक परिवर्तनों द्वारा संपूर्ण अर्थव्यवस्था को गतिशील कर देता है। साधनों को गतिमान करके विकास की गति को बढ़ा देता है। वास्तव में साहसी क्रान्ति का अग्रदूत होता है।
10. **जीवन–स्तर में सुधार :** जीवन–यापन के लिये जरूरी वस्तुओं की उपलब्धता उद्यमी उपक्रम की स्थापना करके सुनिश्चित करता है और बाजार में नये एवं उत्तम किस्म के उत्पादों की पूर्ति करता है एवं व्यक्तियों के जीवन स्तर में सुधार करता है।
11. **पूंजी निर्माण :** उद्यमी देश में अव्यवस्थित रूप से लगी पूंजी को एकत्रित करके उसे जन–निक्षेप एवं प्रतिभूतियों के रूप में व्यवसाय में विनियोजित करता है। निवेश से देश के संसाधनों का कुशलतम उपयोग होता है एवं निर्माण की गति में वृद्धि होती है। आर्थिक विकास को बल मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि उद्यमी पूंजी संचयकर्ता नहीं होकर पूंजी निमाणकर्ता होता है।

उद्यमिता वर्ग का उद्‌भव

उद्यमिता वर्ग का उद्‌भव कुछ महत्वपूर्ण घटकों जैसे– पेशेवर पृष्ठभूमि, शिक्षा एवं तकनीकी ज्ञान, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक व मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों आदि पर आश्रित होता है। उद्यमी वर्ग के उद्‌भव के विशिष्ट घटक निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत उल्लेखित हैं–

1. **पेशेवर पृष्ठभूमि :** उद्यमी वर्ग के उद्‌भव होने में पेशेवर पृष्ठभूमि की महत्वपूर्ण भूमिका है। उद्यमिता किसी विशेष पेशे तक सीमित नहीं होती, अपितु इसके लिये प्रवृत्ति, जोश, साहस, कौशल, प्रौद्योगिकी, ज्ञान, दूरदृष्टि आदि गुणों की आवश्यकता होती है।
2. **शिक्षा एवं तकनीकी ज्ञान :** वैज्ञानिक क्रांति के इस दौर में व्यावसायिक एवं औद्योगिक क्षेत्र दिनों–दिन जटिल होता जा रहा है। इसका प्रमुख कारण है–गलाकाट प्रतिस्पर्धा, जटिल सरकारी नियमन एवं कानून, सरकारी नीतियां एवं प्रेरणाएं, बदला हुआ आर्थिक–व्यावसायिक वातावरण, बैंकों व वित्तीय संस्थाओं की बढ़ती हुई भूमिका आदि घटकों ने उद्यमी वर्ग में शिक्षा एवं तकनीकी ज्ञान को प्रोत्साहित किया है। आज स्कूलों, कॉलेजों, तकनीकी संस्थानों एवं प्रशिक्षण संस्थानों से निकल कर बड़ी संख्या में नवयुवक व्यावसायिक एवं औद्योगिक क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हैं।

टिप्पणी

3. **पारिवारिक पृष्ठभूमि** : उद्यमी वर्ग के उद्‌भव में पारिवारिक पृष्ठभूमि की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अपने परिवार के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने, स्वतंत्र कार्य करने, अत्यधिक धन कमाने, परिवार के सदस्यों को कार्य पर लगाने, प्रतिष्ठा अर्जित करने जैसी प्रवृत्तियों ने उद्यमी वर्ग के उद्‌भव को अनेक प्रकार से प्रोत्साहित किया है। इन्होंने समूह का रूप धारण कर लिया है, जैसे टाटा ग्रुप, बिड़ला ग्रुप, सिंघानिया, बजाज आदि।

4. **जातीय आधार** : भारत में अधिकतर उद्यमी वर्ग का उद्‌भव जाति के आधार पर ही हुआ है। कुछ धर्म व जातियां उद्यमी निपुणता को प्रोत्साहित करती हैं। जैसे पारसी, पंजाबी, जैन, गुजराती, सिंधी, वैश्य आदि जातियों का भारत के अधिकांश उद्योगों पर एकाधिकार है।

5. **व्यक्तिगत घटक** : व्यक्तिगत घटकों से आशय व्यक्ति विशेष से है। व्यक्ति विशेष कोई नवीन उपक्रम स्थापित करने का साहस करता है, उसके लिये आवश्यक संसाधन जुटाता है, प्रबंध करता है, विकास की योजना बनाता है। उन्हें यथासम्भव क्रियान्वित करता है, उत्पन्न चुनौतियों का सामना करता है, अपने कौशल का उपयोग करता है, जोखिम उठाता है तथा अन्ततः उसे एक लाभकारी उपक्रम में परिणत कर देता है।

6. **स्वामित्व का प्रारूप** : सर्वेक्षण के अनुसार आधी से अधिक साझेदारी इकाइयां निजी कंपनियों के प्रारूपों में स्थापित की गई हैं। साझेदारी इकाइयों की संख्या अधिक होने का प्रमुख कारण उद्यमियों का कम्पनी की स्थापना में उत्पन्न होने वाली वैद्यानिक औपचारिकताओं की पूर्ति के बंधन से बचना है।

7. **स्थानांतरण चरित्र** : एक सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि भारत में पांच में से चार उद्यमी स्थानीय न होकर अन्य राज्यों में से अथवा राज्य के अंदर विभिन्न स्थानों से आये हैं। यदि बड़े–बड़े नगरों का सर्वेक्षण किया जाये तो मालूम होगा कि अधिकांश उद्यमी स्थानीय न होकर अन्य स्थानों से आये हैं। राजस्थान के मारबाड़ी इसका ज्वलंत उदाहरण हैं।

8. **धार्मिक पृष्ठभूमि** : धार्मिक पृष्ठभूमि ने भी उद्यमी वर्ग के उद्‌भव को प्रोत्साहित किया है। वेबर के अनुसार प्रोटेस्टेण्ट नीतिशास्त्र ने ईसाइयों में उद्यमी भावना को विकसित किया है।

9. **उद्योगों के प्रकार** : हालिया सर्वेक्षण के अनुसार दो तिहाई उद्यमियों ने इंजीनियरिंग के क्षेत्र में उद्योग स्थापित किये हैं। 10 प्रतिशत से अधिक ने गैर–धातुकृत उत्पादों की इकाइयां स्थापित की हैं तथा 7.5 प्रतिशत उद्यमियों ने प्लास्टिक इकाइयों की स्थापना की है। शेष उद्यमियों ने खाद्य उत्पादों से सम्बन्धित औद्योगिक इकाइयों की स्थापना की है। अतः इससे स्पष्ट होता है कि उद्योगों के प्रकार भी उद्यमी वर्ग के उद्‌भव में विशिष्ट भूमिका निभाते हैं।

1.2.4 उद्यमी के कार्य

उद्यमी के कार्य का स्वरूप बहुत विस्तृत है। वह सिर्फ वस्तुओं के उत्पादन एवं वितरण तक ही सीमित नहीं होता है। उद्यमी को उपक्रम की स्थापना से लेकर वस्तुओं के

टिप्पणी

विक्रय तक अनेक कार्य करने होते हैं। वह समाज में व्यावसायिक क्रियाओं की पहल करता है, आर्थिक गतिशीलताओं को जन्म देता है और सामाजिक रूपान्तरण की अनेक क्रियाओं को सम्पादित करता है। इस तरह उद्यमी अनेक ऐसे कार्यों को सम्पादित करता है, जिससे राष्ट्र एवं समाज का विकास हो सके। उद्यमी का कार्य व्यापक एवं चुनौतीपूर्ण होता है। उद्यमी के कई कार्य मानवीय एवं भौतिक संसाधनों के विकास, सामाजिक स्थिति, आर्थिक विकास के स्तर, राष्ट्रीय प्राथमिकताओं आदि पर निर्भर होते हैं। इस प्रकार उद्यमी के कार्य समय, स्थान एवं परिस्थितियों के अनुसार भिन्न–भिन्न हो सकते हैं। उद्यमी के समस्त कार्यों को व्यवस्थित रूप से निम्न तीन वर्गों में विभाजित करना संभव है–

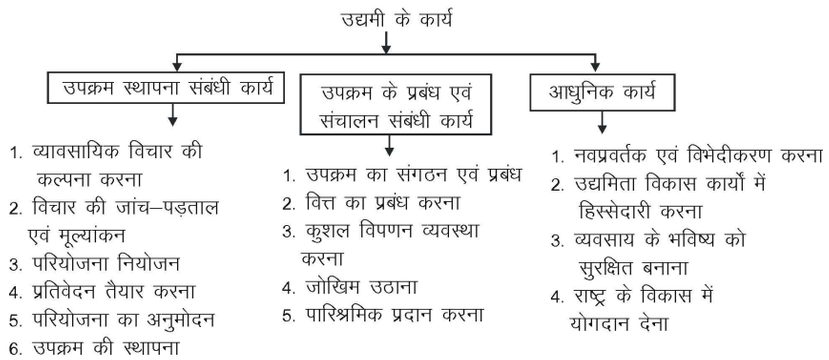

I. उपक्रम की स्थापना सम्बन्धी कार्य

उद्यमी सर्वप्रथम उपक्रम की स्थापना करता है। उपक्रम की स्थापना/प्रवर्तन करते समय उद्यमी को अनेक कार्य करने होते हैं। प्रवर्तन सम्बन्धी प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

1. **व्यावसायिक विचार की कल्पना करना** : सभी व्यावसायिक उपक्रम का उड़ान बिन्दु एक विचार होता है। उद्यमी उस विचार को स्वरूप प्रदान करता है अर्थात् उद्यमी अपनी कल्पनाशक्ति तथा विचारशीलता द्वारा किसी सृजनात्मक विचार की खोज कर उपक्रम की स्थापना करता है। वह अपने मौलिक एवं व्यावहारिक विचारों से किसी उपक्रम अथवा उद्योग की स्थापना करने की कल्पना करता है। उद्यमी आर्थिक एवं व्यावसायिक क्षेत्रों में किसी लाभ प्रदान करने वाले विचार की खोज करता है। ये व्यावसायिक विचार निम्नवत हैं–
   (i) नये प्राकृतिक स्रोत की खोज और उसके व्यावसायिक उपयोग का विचार।
   (ii) वर्तमान वस्तुओं में तकनीकी सुधार करके वस्तु को अधिक उपयोगी बनाने का विचार।
   (iii) किसी वस्तु की प्रतिपूरक वस्तुओं को तैयार करने का विचार।
   (iv) वैज्ञानिक परीक्षणों का व्यावसायिक उपयोग करने का विचार।
   (v) किसी भौतिक पदार्थ का कोई नया उपयोग खोजने का विचार।
   (vi) उपभोक्ता की नई–नई जरूरतों को पूरा करने का विचार।

   उपरोक्त व्यावसायिक विचार उद्यमी के भीतर अपने कार्यनुभव व चिन्तन से आता है।

टिप्पणी

2. **विचार की जांच–पड़ताल एवं मूल्यांकन** : उद्यमी अपने व्यावसायिक विचार की कल्पना करने के बाद उस प्रस्तावित विचार की व्यावहारिकता का मूल्यांकन करता है। विचार की जांच–पड़ताल और मूल्यांकन करके वह यह सुनिश्चित करता है कि इस विचार को कार्य रूप में परिणत किया जा सकता है। इस प्रकार जांच–पड़ताल व मूल्यांकन करके धन के दुरुपयोग की सम्भावना को खत्म करना संभव है। उद्यमी को विचार की व्यावहारिकता की जांच करने के लिये निम्नांकित तथ्यों पर विचार करना होता है–

   (i) **साधनों की उपलब्धता** : उद्यमी भौतिक, मानवीय एवं वित्तीय साधन जैसे श्रम यंत्र, पूंजी, कच्चा माल तकनीक बाजार आदि की उपलब्धता पर विचार करता है।

   (ii) **योग्यता एवं कौशल** : उद्यमी संगठन योग्यता, तकनीकी योग्यता एवं प्रबंधकीय सेवाओं पर विचार करता है।

   (iii) **सरकारी नीति** : उद्यमी सरकार की औद्योगिक नीति, लाइसेंन्सिंग नीति, वित्तीय नीति, व्यापारिक नीति आदि पर विचार करता है।

   (iv) **उत्पादन एवं वितरण की समस्या** : मस्तिष्क में व्यावसायिक विचार आने के पश्चात उद्यमी जांच–पड़ताल के दौरान उपक्रम के स्थान का चयन, आकार, संयंत्र, अभिन्यास, शक्तिपूर्ति, परिवहन, गोदाम आदि पर विचार करता है।

   (v) **लाभप्रदता** : लागत, मांग तथा प्रतियोगिता का स्तर आदि पर विचार करता है।

   उपरोक्त घटकों पर विचार करके उद्यमी अपने प्रस्ताव/विचार की लाभप्रदता एवं व्यावहारिकता की जांच करता है।

3. **परियोजना नियोजन** : प्रभावी नियोजन के बिना कोई भी व्यवसाय या उपक्रम सफल नहीं हो सकता है। अर्थात् व्यवसाय की सफलता के लिये प्रभावी नियोजन आवश्यक होता है। एच. एन. पाठक के अनुसार परियोजना इकाई की स्थापना से पहले किया गया व्यवस्थित अभ्यास अवसरों का ज्ञान एवं इकाई की स्थापना के बीच एक कड़ी का कार्य करता है। इस अवस्था में उद्यमी को अपनी परियोजना को संस्था का रूप देने के लिये अनेक महत्वपूर्ण निर्णय लेने होते हैं। निर्णय लेने से पूर्व उद्यमी को प्रारम्भिक शोध करने होते हैं, आवश्यक सूचनाओं एवं तथ्यों को एकत्रित करना होता है। उद्यमी सूचनाओं का विश्लेषण करके विभिन्न विकल्प विकसित करता है तथा उन विभिन्न विकल्पों का तुलनात्मक मूल्यांकन करके सर्वोत्तम विकल्प का चयन करता है।

   परियोजना नियोजन करते समय उद्यमी कुछ महत्वपूर्ण निर्णय लेता है जो निम्नवत् हैं–

   (i) **वित्तीय नियोजन** : पूंजी की मात्रा, पूंजी के स्रोत, पूंजी की संरचना आदि।

   (ii) **सयंत्र एवं उत्पादन नियोजन** : सयंत्र स्थल, सयंत्र अभिन्यास, यंत्रीकरण व सेवाएं, प्लान्ट व भवन, उत्पादन प्रणाली तकनीक, एवं उत्पादन पैमाना आदि।

टिप्पणी

(iii) **उत्पादन नियोजन** : वस्तु की किस्म, आकार, डिजाइन, विशेष तत्व, रंग, पैकिंग, ब्राण्ड लेबल आदि।

(iv) **लागत नियोजन** : मजदूरी, कच्चे माल की पूर्ति, प्रत्यक्ष व्यय, कारखाना व्यय, कार्यालय व्यय, बिक्री विज्ञापन आदि प्रारम्भिक अनुमान।

(v) **संगठनात्मक नियोजन** : संगठन का स्वरूप, संस्था का आकार, व्यावसायिक सहयोग, लक्ष्य आदि।

(vi) **विपणन नियोजन** : मूल्य, बाजार मध्यस्थ, विज्ञापन, विक्रय संवर्द्धन आदि।

4. **प्रतिवेदन तैयार करना** : परियोजना प्रतिवेदन नियोजन के आधार पर समंकों, तथ्यों व सूचनाओं के रूप में तैयार किया गया एक विस्तृत विश्लेषणात्मक विवरण होता है। यह परियोजना नियोजन के आधार पर उपक्रम के सम्बन्ध में लिये गये विभिन्न निर्णयों का एक विश्लेषणात्मक एवं तथ्यात्मक प्रलेख होता है। इस प्रतिवेदन से उपक्रम की व्यावहारिकता की जांच की जाती है। इसमें संस्था में निर्मित की जाने वाली वस्तु, कच्चे माल, उत्पादन तकनीक, मशीन सयंत्र, श्रम, पूंजी संयंत्र के ढांचे आदि के संबंध में पूर्ण जानकारी उपलब्ध रहती है। उद्यमी द्वारा इस प्रतिवदेन को तैयार करने का उद्देश्य भावी उपक्रम की लागत, एवं लाभदायकता को स्पष्ट करना होता है। परियोजना प्रतिवेदन विस्तृत एवं प्रभावी होना चाहिए।

5. **परियोजना का अनुमोदन करना** : उद्यमी उपक्रम को पंजीकृत करवाने के लिये, आवश्यक अनुमति, स्वीकृति तथा लाइसेन्स प्राप्त करने के लिये, बैंक एवं वित्तीय संस्थाओं से वित्त की पूर्ति करने हेतु, विभिन्न सुविधाएं प्राप्त करने के लिये सम्बन्धित संस्थाओं एवं विभागों में प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है और विभिन्न संस्थाओं से अपनी परियोजना का अनुमोदन प्राप्त करके उपक्रम को वैधानिक रूप से संगठित करता है। परियोजना का अनुमोदन बिना किसी अवरोध के अतिशीघ्र हो जाये, इसके लिये परियोजना प्रतिवेदन का प्रभावी होना अनिवार्य शर्त है। प्रभावी परियोजना प्रतिवेदन के आधार पर साहसी उपक्रम की वैधानिक कार्यवाही पूरी करने के साथ–साथ आवश्यक सेवाओं तथा सुविधाओं का भी लाभ उठा पाता है। अनुमोदित करवाने की इस प्रक्रिया को परियोजना का विक्रय भी कहा जाता है।

6. **उपक्रम स्थापित करना** : पूर्व निर्धारित परियोजना के अनुसार उद्यमी उपक्रम स्थापित करने के लिये विभिन्न कार्यवाहियां करता है। उपक्रम की स्थापना कच्चे माल, श्रम एवं शक्ति के साधनों की उपलब्धता, बाजारों की निकटता आदि को ध्यान में रख कर की जाती है। उद्यमी निर्धारित स्थान पर संयंत्र स्थापित कर उसमें जरूरी साधनों एवं सुविधाओं की व्यवस्था करता है।

वर्तमान युग में संयंत्रों की स्थापना सामान्य तौर पर औद्योगिक क्षेत्रों/औद्योगिक बस्तियों (Industrial Estate) में की जाती है। इन औद्योगिक बस्तियों में उद्योग की सभी आधारभूत सुविधाएं उपलब्ध होती हैं जिससे उद्यमी के लिये उपक्रम स्थापित करना सुविधाजनक होता है।

टिप्पणी

II. उपक्रम के प्रबंध एवं संचालन सम्बन्धी कार्य

उपक्रम के प्रबंध एवं संचालन का उत्तरदायित्व उद्यमी पर होता है। वह उपक्रम की उपयुक्त संरचना करता है। विभिन्न प्रबंधकीय निर्णय लेता है। विभिन्न क्रियाओं का पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण करता है, आवश्यक निर्देश देता है। यद्यपि, आधुनिक युग में व्यवसाय के प्रबंध एवं संचालन का कार्य पेशेवर प्रबंधकों एवं विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है, किन्तु फिर भी इन समस्त कार्यों के लिये उद्यमी ही उत्तरदायी होता है, तथा आवश्यक निर्देशन प्रदान करता है। बड़े–बड़े उपक्रमों में तो 'उद्यमी प्रबंधक' की भूमिका महत्वपूर्ण होती जा रही है। एक उद्यमी के प्रबंधकीय एवं संचालकीय कार्य निम्नलिखित हैं–

1. **उपक्रम का संगठन एवं प्रबंध करना :** उपक्रम की उपयुक्त संगठन संरचना का निर्माण हो सके, इसके लिये उद्यमी उपक्रम के विभिन्न कार्यों को निर्धारित करता है। विभिन्न विभागों के कर्मचारियों को उनके कार्यों का वितरण करता है और उन्हें आवश्यक अधिकार एवं दायित्व सौंपता है। उद्यमी कर्मचारियों के पारस्परिक सम्बन्धों को निश्चित करता है। उद्यमी उपक्रम के प्रबंध के लिये विभिन्न नीतियों एवं लक्ष्यों का निर्धारण करके उनके अनुरूप उपक्रम की योजनाओं का निर्माण करता है तथा इनके प्रभावी क्रियान्वयन की व्यवस्था करता है।

   उद्यमी को समय–समय पर अनेक निर्णय लेने होते हैं, उसे कर्मचारियों को आवश्यक निर्देश देने होते हैं और उसे उनकी कार्य के प्रति रुचि, मनोबल तथा संगठन के प्रति निष्ठा भी बनानी होती है। उद्यमी को ही उपक्रम के बाहर तथा अन्दर के वातावरण में उचित सामंजस्य बनाना होता है, अतः उद्यमी में प्रबंध कौशल का गुण होना अत्यन्त जरूरी है।

2. **वित्त का प्रबंध करना :** उद्यमी अपनी योजना के अनुरूप अलग–अलग स्रोतों से जरूरी वित्त का प्रबंध करता है। उद्यमी उपक्रम की अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन पूंजीगत आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए स्थायी एवं कार्यशील पूंजी की व्यवस्था करता है। वह विभिन्न स्रोतों का तुलनात्मक अध्ययन करके उपयुक्त निर्णय लेता है। उद्यमी को समय–समय पर आवश्यकता एवं अनिवार्यता के अनुसार अपनी वित्तीय योजना में परिवर्तन करते रहना चाहिए। उद्यमी कोषों के निर्माण तथा आय के पुनर्विनियोजन के सम्बन्ध में भी निर्णय लेता है।

3. **कुशल विपणन व्यवस्था करना :** अंतर्राष्ट्रीय बाजारों के विस्तार एवं तीव्र प्रतियोगिता वाले बाजारों में साहसी अपनी वस्तु के प्रभावी विपणन के लिये बाजार अनुसंधान करता है। वह विक्रय पूर्वानुमान लगाता है तथा विक्रय संवर्द्धन के लिये विज्ञापन आदि की व्यवस्था करता है। वह कुशल माध्यमों तथा विक्रय कर्ताओं की नियुक्ति करता है और उनके लिये उचित अभिप्रेरकों तथा प्रशिक्षण की व्यवस्था करता है।

4. **जोखिम उठाना :** व्यवसाय को विकास के मार्ग पर अग्रसर करने के लिये जोखिम लेने की जरूरत होती है। उद्यमी जोखिमों के साथ जीता है वह उपक्रम के संचालन एवं विकास में अनेक जोखिमों को वहन करता है। व्यवसाय में कदम–कदम पर अनेक ज्ञात व अज्ञात जोखिम बनी रहती हैं। उद्यमी अपने

अनुभव एवं योग्यता के आधार पर व्यावहारिक जोखिमों का उचित प्रबंध करता है। उद्यमी ज्ञात जोखिमों का बीमा करवा कर उनसे मुक्त हो सकता है, किन्तु व्यवसाय में अनेक ऐसे भी जोखिम होते हैं जो अज्ञात होते हैं। जिनका पूर्वानुमान लगाना तथा मूल्यांकन करना सम्भव नहीं होता, जैसे–वस्तु की मांग, प्रतियोगिता मूल्य, फैशन, सरकारी नीति, प्रौद्योगिकी, सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन आदि के फलस्वरूप उत्पन्न जोखिमों का तथा व्यापार चक्रों, अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक घटनाओं से उत्पन्न जोखिम, नवप्रवर्तन के कारण उत्पन्न जोखिमों का पूर्वानुमान लगाना संभव नहीं होता, परिणामस्वरूप उद्यमी को इन अज्ञात जोखिमों का अकस्मात् सामना करना पड़ता है।

5. **पारिश्रमिक प्रदान करना** : उद्यमी उत्पादन के प्रत्येक साधन को उसकी सेवाओं के बदले उचित पारिश्रमिक प्रदान करता है। अर्थात् उद्यमी व्यवसाय/उपक्रम की आय को उत्पत्ति के विभिन्न साधनों के बीच वितरित करता है। यह वितरण कार्य बाजार एवं उद्योग की दशाओं को तथा साधनों की सीमान्त उत्पादकता को ध्यान में रख कर किया जाता है।

III. आधुनिक कार्य

नवप्रवर्तन एवं आर्थिक विकास को उद्यमी का सर्वाधिक विशिष्ट कार्य समझा जाता है। उद्यमी समाज में नये मूल्यों, उच्च जीवन स्तर, नवीन संतुष्टियों तथा नवीन उपयोगिताओं के लिये लगातार खोज करता रहता है। वह अपनी प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति में सुधार करने, समाज को अधिकतम संतुष्टि प्रदान करने के लिये नवप्रवर्तनों का विकास करता है। वह अनुसंधान तथा सृजनात्मक चिंतन के द्वारा अपनी वस्तु तथा उत्पादन प्रणाली में नये–नये सुधार करता है। वह सामाजिक हित में कुछ विशिष्ट कार्यों को पूर्ण करता है, जो निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत विश्लेषित हैं–

1. **नवप्रवर्तन एवं विभेदीकरण** : शुम्पीटर जैसे अर्थशास्त्रियों ने नवप्रवर्तन को उद्यमी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य माना है। उद्यमी नये–नये उत्पादों का विकास करके उत्पाद विभेदीकरण की नीति को अपनाता है जिससे उपक्रम का विस्तार तो होता ही है साथ ही समाज में नई–नई वस्तुएं उपभोग के लिये उपलब्ध हो जाती हैं।

2. **उद्यमिता विकास कार्यों में हिस्सेदारी करना** : उद्यमी देश में उद्यमिता विकास हेतु सरकारी विभागों, बैंकों, व्यावसायिक एवं तकनीकी संगठनों, वित्तीय संस्थाओं तथा प्रबंध संस्थानों द्वारा समय–समय पर आयोजित विकास कार्यक्रमों, विचार गोष्ठियों, प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लेता है। इनके माध्यम से उद्यमी को व्यावसायिक परिवर्तनों तथा नवीन विचारधाराओं की जानकारी उसके पास होती है। अनेक समस्याओं पर विचार–विमर्श करने से उद्यमी का ज्ञानवर्द्धन होता है।

3. **व्यवसाय के भविष्य को सुरक्षित बनाना** : उद्यमी अपने उपक्रम का सफलतापूर्वक संचालन करते हुए इसके उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करता है उद्यमी को प्रत्येक योजना का निर्माण दीर्घकालीन स्थिति को ध्यान में रख कर

टिप्पणी

करना चाहिए, क्योंकि उसका वास्तविक कार्य उपक्रम के वर्तमान एवं भविष्य दोनों को सुरक्षित करना होता है।

4. **राष्ट्र के विकास में योगदान** : उद्यमी समाज भौतिक तथा मानवीय साधनों का अधिकतम विदोहन करके, रोजगार एवं आय का सृजन करके, नवीन सन्तुष्टियों का सृजन करके तथा अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करके राष्ट्र के विकास में अपना योगदान देता है।

1.2.5 उद्यमी एवं प्रबंधक में अंतर

उद्यमी एवं प्रबंधक में कुछ प्रमुख अंतर होते हैं, जिन्हें निम्न तरह से उल्लेखित करना संभव है–

क्रम सं.	अन्तर का आधार	उद्यमी	प्रबन्धक
1.	लक्ष्य	उद्यमी का मुख्य लक्ष्य व्यापार को अकेले, संघ या कंपनी के रूप में प्रारंभ करना होता है। उद्यमी स्वयं अपने लक्ष्य का निर्धारण करके उसे पाने का यथासंभव प्रयास करता है।	प्रबंधक का लक्ष्य उद्यमी द्वारा स्थापित उपक्रम में अपनी सेवाएं प्रदान करना होता है।
2.	योग्यता	एक उद्यमी के पास उपक्रम स्थापित करने के लिये किसी विशेष डिग्री का होना जरूरी नहीं है। उद्यमी के लिये सृजनात्मक सोच, जोखिम उठाने की क्षमता, कड़ी मेहनत तथा दूरदर्शिता आदि होना आवश्यक है।	प्रबंधक का कार्य करने के लिये प्रबंधक के पास प्रबंधन से संबंधित डिग्री होना आवश्यक है। नौकरी पाने के लिये में अपनी प्रबंधन क्षमता से नियोक्ता को अवगत कराना होता है।
3.	जोखिम उठाने वाला	उद्यमी उपक्रम की स्थापना करता है। इस प्रकार वह उपक्रम का मालिक होता है। स्वाभाविक तौर पर संगठन/उपक्रम में होने वाले जोखिम को वहन करने का दायित्व उद्यमी का होता है।	प्रबंधक संगठन/उपक्रम में होने वाले जोखिम का वहन नहीं करता है। उसे कार्य के बदले पारिश्रमिक के रूप में एक निश्चित वेतन का भुगतान किया जाता है।
4.	पदवी	एक उद्यमी अपने उपक्रम का मालिक होता है। वह स्वयं व्यवसाय में पूंजी लगाता है। स्वयं लाभ प्राप्त करता है। इस प्रकार वह व्यापार का मालिक होता है।	प्रबंधक सिर्फ एक कर्मचारी होता है और वह कार्य के लिये वेतन प्राप्त करता है।
5.	नवकरण	उद्यमी नवीन पद्धतियों की खोज कर व्यवसाय में क्रियान्वित करता हो वह उत्पादन में वृद्धि तथा उपक्रम के विस्तार के लिये नयी–नयी खोज करता है। उन्हें अधिक उत्पादन एवं लाभ के लिये लागू करता है।	प्रबंधक एक अफसर अथवा एक कार्यकर्ता होता है। जिसे व्यवसाय की उन्नति एवं विस्तार के लिये नियुक्त किया जाता है। इसका कार्य उद्यमी द्वारा बनायी गयी योजनाओं का क्रियान्वयन करना होता है।

6.	पारितोषिक	व्यवसाय में होने वाला लाभ ही उद्यमी का पारितोषिक होता है। उद्यमी का पारितोषिक बदलता रहता है अर्थात् अनिश्चित होता है। जब उपक्रम को ज्यादा लाभ होता है तो उद्यमी का पारितोषिक भी ज्यादा होता है और लाभ कम होने पर यह कम हो जाता है।	प्रबंधक को उसके द्वारा प्रदान की गयी सेवाओं के लिए प्रतिमाह एक निश्चित वेतन मिलता है। प्रबंधक का पारितोषिक निश्चित तथा नियमित होता है।
7.	निर्णय लेना	उपक्रम/व्यापार के विस्तार, नवीन तकनीकी के प्रयोग, सभी नीतियों तथा कूटनीतियों के निर्णय, पूंजी बजट से संबंधित कार्यों, मूल्य नीति उत्पाद में सुधार आदि सभी निर्णय प्रायः उद्यमी द्वारा लिये जाते हैं।	प्रबंधकीय कार्यकारी निर्णय उपक्रम के प्रबंधक द्वारा लिये जाते हैं। इनका उपक्रम पर प्रभाव अल्पकालीन अथवा मध्यकालीन होता है।
8.	गलत निर्णयों का संशोधन	उद्यमी द्वारा लिये गये गलत निर्णयों का संशोधन नहीं किया जा सकता है। इसका परिणाम इकाई को हानि होना अथवा इकाई का बंद होना भी हो सकता है।	प्रबंधक द्वारा लिये गये निर्णयों को उद्यमी बदल सकता है अथवा संशोधित कर सकता है।
9.	प्रवीणता	उद्यमी में आशा की जाने वाली प्रवीणता है जैसे– सृजनात्मकता, नवीकरण, उच्च प्रतिफल की प्राप्ति की इच्छा आदि।	प्रबंध लोगों से व्यवहार की योग्यता तथा भावनाओं संबंधी योग्यताओं पर निर्भर हुआ करता है।
10.	उपक्रम की स्थापना/संचालन	उद्यमी उपक्रम की स्थापना करता है।	प्रबंधक उपक्रम का संचालन करता है।
11.	अभिप्रेरण	उद्यमी उच्च उपलब्धि की अपेक्षा से अभिप्रेरित होता है।	प्रबंधक अपनी भौतिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं से अभिप्रेरित होता है।
12.	समय से संबद्धता	उद्यमी का संबंध वर्तमान एवं भविष्य दोनों से होता है।	प्रबंधक का संबंध केवल वर्तमान से होता है क्योंकि भविष्य में वे कहां काम करेंगे यह निश्चित नहीं है।

उद्यमी वर्ग की पहचान एवं भूमिका समय के साथ परिवर्तित होती रही है। उद्यमी की भूमिका आर्थिक विकास, संगठन के प्रारूपों तथा औद्योगिक प्रणाली के साथ–साथ परिवर्तित होती रहती है। एकाकी व्यवसाय से लेकर संयुक्त पूंजी वाली कम्पनियों व बहुराष्ट्रीय निगमों के विकास ने उद्यमी की विचारधारा को प्रभावित किया है। आधुनिक युग में वैसे तो उद्यमी शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग किया जाता है, किन्तु इस शब्द का स्पष्ट अर्थ ज्ञात नहीं है।

यद्यपि कुछ प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने उद्यमी का मानव तत्व के रूप में विवेचन नहीं किया, अपितु उन्होंने स्वयं फर्म को ही उद्यमी का रूप माना है। किन्तु कुछ दूसरे विचारकों ने उद्यमी को एक व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया है। आज भी विद्वानों में यह विवाद का विषय है कि उद्यमी एक व्यक्ति है अथवा व्यक्तियों का समूह। वर्तमान समय में वृहत कम्पनियों में जहां प्रबंध एवं स्वामित्व के घटक समान नहीं रह पाते हैं, वहां वास्तविक उद्यमी की पहचान धुंधली होती जा रही है।

वर्तमान युग में सभी देशों में औद्योगिक विकास में अनेक व्यक्तियों, संस्थाओं व फर्मों का योगदान होता है। उद्योग एवं व्यवसाय/उपक्रम के क्षेत्र में विकास की प्रक्रिया इतनी जटिल एवं व्यापक हो गई है, कि एक व्यक्ति के लिये उद्यमी के सभी

टिप्पणी

कार्य कर पाना संभव नहीं रहा है। बदलते परिवेश में सरकार भी राष्ट्र की आर्थिक प्रगति में उद्यमी की भूमिका में अपना योगदान दे रही है। अनेक वर्ग–पेशेवर संस्थाएं, प्रवर्तक ठेकेदार, नियोजक वर्ग, सरकार, अंशधारी, संचालक, प्रबंधक आदि सभी मिल कर उद्यमी की भूमिका निभाते हैं। छोटे उपक्रमों में उद्यमी के सभी कार्य एक व्यक्ति द्वारा किये जाते हैं। वह व्यवसाय में पूंजी लगाता है, व्यवसाय का स्वामी होता है, साधनों को एकत्रित करता है, जोखिम उठाता है, प्रबंध करता है और उपक्रम के संबंध में निर्णय लेता है। संयुक्त पूंजी वाली कम्पनियों व आधुनिक निगमों में उद्यमी के कार्य किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं अपितु समूह के व्यक्तियों द्वारा सम्पन्न होते हैं।

आधुनिक व्यवसाय में उद्यमी को एक व्यक्ति के रूप में नहीं, अपितु एक कार्य (Function) एवं एक कौशल के रूप में परिभाषित किया जाना चाहिए। इसी से उद्यमी की पहचान सम्भव है। उद्यमी अनेक रूपों में भूमिका निभाता है। उद्यमी एक प्रवर्तक एवं नीति निर्धारक के रूप में निश्चित रूप से व्यवसाय का नायक होता है। जब वह किसी औद्योगिक संस्था पर नियंत्रण करता है तो उसका कद कारखाना प्रबंधक से बढ़ जाता है।

उद्यमी पूंजी की पूर्ति पर नियंत्रण करता है। इस प्रकार वह एक विनियोजक अथवा अंशधारी के रूप में केवल एक व्यापारी होता है। इसका मूल लक्ष्य वित्त प्रबंध के अतिरिक्त क्रय–विक्रय होता है। जो मुद्रा में व्यवसाय करता है वह इनमें से कोई एक अथवा सारे कार्य कर सकता है। किन्तु उसे एक उत्पादक विकासकर्ता भी होना चाहिए। यद्यपि उद्यमी अकेला तथा व्यक्तियों के समूह दोनों रूपों में हो सकता है।

आधुनिक युग में समाज का स्वरूप संस्थागत है, अर्थात् हम संगठनात्मक समाज में रहते हैं। ऐसे समाज में उद्यमी का स्वरूप भी संगठनात्मक हो चुका है और उद्यमी की विचारधारा अनेकवादी हो चुकी है। इसी कारण आज व्यवसाय में उद्यमी प्रबंधक, उद्यमी सरकार, उद्यमी फर्म, उद्यमी अर्थव्यवस्था की बात की जाती है। आधुनिक उद्यमी मालिक ही नहीं वरन् उपक्रम का उच्चाधिकारी, पेशेवर प्रबंधक या संगठनात्मक व्यक्ति है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. किस शताब्दी के प्रारंभ में 'उद्यमी' शब्द का प्रयोग आर्थिक क्रियाओं के संदर्भ में किया जाने लगा?

   (क) 16वीं शताब्दी (ख) 17वीं शताब्दी

   (ग) 21वीं शताब्दी (घ) 18वीं शताब्दी

2. "नवप्रवर्तक उद्यमी व्यवसाय में नवीन संयोजनों का सर्वप्रथम प्रयोग करते हैं"– यह किसका कथन है?

   (क) शुम्पीटर (ख) पीटर एफ. ड्रकर

   (ग) अल्फ्रेड मार्शल (घ) आर.टी. एली

टिप्पणी

1.3 उद्यमिता के अवधारणात्मक सिद्धांत

उद्यमिता औद्योगिक, आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति का आधारभूत स्तंभ है। उद्यमिता द्वारा ही राष्ट्र की निर्धनता, बेरोजगारी, निम्न उत्पादकता एवं आर्थिक असमानता आदि का निवारण संभव है। वास्तव में उद्यमिता आर्थिक प्रगति का अग्रदूत है। यह कार्यविधि एवं भावना का समन्वय है।

वर्तमान औद्योगिक युग में औद्योगीकरण की मदद से ही कोई भी राष्ट्र विकास के पथ पर अग्रसर हो सकता है। तीव्र जनसंख्या वृद्धि से बेरोजगारी बढ़ी है, जिसका समाधान सम्पूर्ण औद्योगीकरण द्वारा ही संभव है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये देश के हर हिस्से में छोटे बड़े उद्योगों का जाल बिछाने की नीति अपनायी जा रही है। पहाड़ी भागों में, ग्रामीण क्षेत्रों में जहां अभी तक औद्योगिक विकास नहीं हो सका है, वहां छोटे–बड़े उद्योग धंधों की स्थापना पर विशेष बल दिया जा रहा है, ताकि नवयुवकों में साहसिकता तथा उद्यमिता की भावना जाग्रत हो। उनके जोखिम वहन करने की क्षमता का विकास हो, नौकरी के लिये इधर–उधर भटकने की जगह स्वरोजगार को अपनायें और अन्य लोगों को भी रोजगार दें, ताकि बेरोजगारी दूर हो, उत्पादन व आय में वृद्धि हो तथा देश का संतुलित आर्थिक विकास हो सके। नये बाजारों की खोज करनी चाहिए। नये कच्चे माल की खोज करनी चाहिए जिससे तीव्र आर्थिक विकास को बल मिल सके। उद्यमिता अनेक घटकों पर निर्भर करती है, उनमें से कुछ सिद्धांतों व विचारधाराओं की चर्चा इस इकाई में की जा रही है।

उद्यमिता का नवप्रवर्तन सिद्धांत

उद्यमिता की नवप्रवर्तन विचारधारा के अध्ययन से पूर्व उद्यमिता के अर्थ, परिभाषा एवं लक्षण को जानना जरूरी है।

उद्यमिता का अर्थ एवं परिभाषा

उद्यमिता एक कौशल, दृष्टिकोण, चिन्तन, तकनीक एवं कार्यपद्धति है। उद्यमिता के अर्थ को अग्रांकित रूप में उल्लेखित कर सकते हैं–

सामान्य अर्थ में–उद्यमिता से आशय कुछ विशिष्टता प्राप्त करने, जोखिम वहन करने एवं अनिश्चितताओं का सामना करने की योग्यता, साहस अथवा प्रवृत्ति से है।

परंपरागत अर्थ में–उद्यमिता से आशय व्यवसाय से जुड़ी हुई विभिन्न प्रकार की जोखिमों को उठाने एवं अनिश्चितताओं का सामना करने की योग्यता एवं प्रवृत्ति से है।

आधुनिक अर्थ में–उद्यमिता से आशय नवीन उपक्रम की स्थापना करने, नियंत्रण एवं निर्देशन करने की योग्यता, उपक्रम में नये–नये सुधार एवं परिवर्तन करने की साहसिक क्षमता से है।

उद्यमिता की परिभाषा

उद्यमिता को विभिन्न विद्वानों ने अलग–अलग तरह से परिभाषित किया है। उद्यमिता की परिभाषा को निम्न 3 भागों में वर्गीकृत किया गया है–

1. प्रतिष्ठित विचारधारा की परिभाषा

टिप्पणी

2. नव–प्रतिष्ठित विचारधारा की परिभाषा

3. आधुनिक विचारधारा की परिभाषा।

1. प्रतिष्ठित विचारधारा की परिभाषा

प्रतिष्ठित विचारकों के अनुसार उद्यमिता व्यवसाय एवं उद्योग के प्रवर्तन, संगठन तथा जोखिम वहन करने की क्षमता से संबंधित है।

प्रो. पीटर किलबाई के अनुसार– "उद्यमिता व्यापक क्रियाओं का सम्मिश्रण है। इसमें विभिन्न क्रियाओं के साथ–साथ बाजार अवसरों का ज्ञान प्राप्त करना, उत्पादन के साधनों का संयोजन एवं प्रबंध करना तथा उत्पादन तकनीक एवं वस्तुओं को अपनाना शामिल है।"

2. नव–प्रतिष्ठित विचारधारा की परिभाषा

नव–प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने इस वर्ग में उद्यमिता को प्रबंधकीय कौशल एवं नवप्रवर्तन के संदर्भ में परिभाषित किया है–

एच. डब्ल्यू. जॉनसन के अनुसार– "उद्यमिता तीन आधारभूत तत्वों– अन्वेषण, नवप्रवर्तन एवं अनुकूलन का मिला हुआ रूप है।"

जोसेफ शुम्पीटर के अनुसार– "उद्यमिता एक नवप्रर्वनकारी कार्य है। यह स्वामित्व की अपेक्षा एक नेतृत्व का कार्य है।"

3. आधुनिक विचारधारा की परिभाषा

आधुनिक मत के विचारकों ने उद्यमिता को सामाजिक नवप्रवर्तन एवं गतिशील नेतृत्व से संदर्भित किया है। इस वर्ग में उद्यमिता को व्यावहारिक दृष्टिकोण से परिभाषित किया गया है–

लॉक्स के अनुसार– "उद्यमिता जोखिम उठाने की इच्छा, आय एवं प्रतिष्ठा की चाह, स्वअभिव्यक्ति, सृजनात्मकता एवं स्वतंत्रता की अभिलाषा का मिश्रण हैं। यह दाव लगाने की भावना का उत्साह तथा सम्भवतः सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक तत्व है।"

रॉबर्ट लैम्ब के अनुसार– "उद्यमिता सामाजिक निर्णयन का वह स्वरूप है, जो आर्थिक नवप्रवर्तकों द्वारा सम्पादित किया जाता है।"

उद्यमिता के लक्षण

उद्यमिता के लक्षण को निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत उल्लेखित किया गया है–

1. **नवप्रवर्तन** : उद्यमिता नवप्रवर्तन कार्य है। नवीन संसाधन, नवीन उत्पादन, नवीन तकनीक, नई उपयोगिता का सृजन, नवीन प्रबंधकीय कौशल आदि नवप्रवर्तन के अंतर्गत आते हैं।
2. **जोखिम वहन करना** : उद्यमिता का मूल तत्व अनिश्चितताओं एवं जोखिमों को वहन करने की भावना एवं क्षमता है। उद्यमी जोखिम उठाता है। उपक्रम के विकास के लिये जोखिम लेता है, किन्तु यह ज्ञात नहीं होता कि जोखिम से लाभ होगा या नुकसान।

टिप्पणी

3. **सृजनात्मक क्रिया :** उद्यमिता की प्रकृति रचनात्मक होती है। व्यवसाय प्रवर्तन, संगठन एवं प्रबंध में सदैव रचनात्मक चिंतन द्वारा कार्य संस्कृति एवं गुणवत्ता वृद्धि का सतत् प्रयास किया जाता है। शुम्पीटर ने कहा है कि उद्यमिता वस्तुतः एक सृजनात्मक क्रिया है।
4. **ज्ञान आधारित व्यवहार :** उद्यमिता ज्ञान पर आधारित क्रिया है। उद्यमिता बिना ज्ञान के अर्जित नहीं की जा सकती है। ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर ही व्यक्ति के अंतर उद्यमिता का गुण जन्म लेता है। पीटर ड्रकर के शब्दों में, उद्यमिता न एक विज्ञान है, न कला है, यह व्यवहार है और ज्ञान इसका आधार है।
5. **व्यवसाय अभिमुखी :** उद्यमिता व्यक्ति को व्यावसायिक कल्पना एवं व्यवसाय प्रवर्तन की प्रेरणा देती है। उद्यमिता सामग्री श्रम को संसाधनों में रूपांतरित करने एवं उनके आर्थिक मूल्य को विकसित करने की प्रक्रिया है। उद्यमिता द्वारा समाज में नये–नये उद्यमी एवं व्यावसायिक क्रियाओं की स्थापना होती है।
6. **उद्यमिता व्यक्तिगत लक्षण नहीं बल्कि सामूहिक आचरण :** उद्यमिता में नेतृत्व एक व्यक्ति से विशेषज्ञों के एक संगठित समूह में हस्तांतरित हो जाता है। आधुनिक युग में उद्यमी के साथ ही बहुउद्यमी, संयुक्त उद्यमी अथवा समूह उद्यमी की धारणा अधिक व्यावहारिक है। इसलिये उद्यमिता के संबंध में कहा जात है कि यह व्यक्तिगत लक्षण नहीं होकर सामूहिक आचरण है।
7. **प्रबंध उद्यमिता का वाहन है :** प्रबंध के बिना उद्यमिता की कल्पना भी नहीं की जा सकती है इसलिये उद्यमी प्रवृत्तियों के क्रियान्वयन का आधार प्रबंध को माना जाता है। जोखिम वहन, प्रवर्तन, नवप्रवर्तन एवं उद्यमी निर्णयों व योजनाओं के क्रियान्वयन का माध्यम प्रबंध है। प्रबंध के द्वारा ही उद्यमी आर्थिक नेतृत्व का कार्य करता है एवं प्रबंधक उद्यमी के रूप में अपना निर्वाह करता है। होसलिज ने लिखा भी है कि प्रबंधकीय कौशल एवं नेतृत्व उद्यमिता के सबसे महत्वपूर्ण पहलू हैं।
8. **भूमिका रूपांतरण प्रक्रिया :** उद्यमिता सिर्फ व्यवसाय या उद्योग के प्रवर्तन अथवा नवप्रवर्तन की क्रिया मात्र न होकर व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया भी है। कोई व्यक्ति नवप्रवर्तन को अपनाने मात्र से उद्यमी नहीं बन जाता है, बल्कि उसमें निरंतर संलग्न रह कर अपनी पहचान स्थापित करता है।
9. **परिणामजनित व्यवहार :** उद्यमिता परिणाम पर आधारित व्यवहार है। यह सदैव लक्ष्यों, उद्देश्यों एवं परिणामों को वरीयता देती है। उद्यमिता के अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति एवं संगठन को उद्यमिता के लिये सजग रह कर सार्थक प्रयास करना होता है। उद्यमी को अपने अंदर भावना उत्पन्न करनी होती है, व्यवहार में उद्यमिता की प्रवृत्ति लानी होती है। उद्यमी व्यवसाय एवं उद्यम को कर्तव्य मानते हैं, वे इसके प्रति अनुरक्त होते हैं, प्रयास करते हैं और व्यवहार में लाते हैं।
10. **वातावरण प्रेरित क्रिया :** उद्यमिता वातावरण से प्रेरित किया है। उद्यमिता प्रत्येक बाह्य स्थिति का रचनात्मक उत्तर है। सामाजिक मान्यताओं एवं मूल्यों, शिक्षा, विज्ञान, जनसंख्या, शासकीय एवं प्रशासकीय नीतियों आदि के कारण व्यक्तियों के दृष्टिकोण एवं विचारों में सतत् परिवर्तन का प्रभाव उद्यमिता प्रवृत्तियों के विकास को उत्प्रेरित करता है।

11. **सभी कार्यों में आवश्यक :** साहसिक व्यवहार एवं उद्यमशीलता के द्वारा व्यक्ति प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर सकता है। अतः यह कहना प्रासंगिक है कि उद्यमिता एक जीवनशैली है।

टिप्पणी

नवप्रवर्तन विचारधारा

नवप्रवर्तन विचारधारा के प्रतिपादक जोसेफ शुम्पीटर के अनुसार–उद्यमी एक नवप्रवर्तक व्यक्ति है, जो नवाचार के द्वारा लाभ अर्जित करने की इच्छा रखता है। इसमें मनोवैज्ञानिक शक्तियां होती हैं, इन्हीं से वह अभिप्रेरित होता है। शुम्पीटर ने नवप्रवर्तन को उद्यमी का प्रमुख कार्य बतलाया है और कहा है कि उद्यमी का व्यवहार प्रत्येक स्थिति में सृजनात्मक होता है। इनके अनुसार उद्यमिता एक विश्लेषक के रूप में कार्य करती है, जो अर्थव्यवस्था के विद्यमान प्रवाह को तोड़ती है तथा विकास की प्रक्रिया में नई पहल तथा स्फूर्ति को प्रोत्साहित करती है। नवप्रवर्तन में उद्यमी नये संयोजनों को प्रोत्साहित करता है तथा अर्थव्यवस्था में विकास के नये स्तर को विकसित करता है। कोई भी उद्यमी नवप्रवर्तक के रूप में कुछ महत्वपूर्ण कार्यों को क्रियान्वित करता है जो निम्नवत हैं–

1. एक नये उत्पाद का प्रस्तुतीकरण
2. एक नई पद्धति का प्रस्तुतीकरण
3. एक नये बाजार की खोज
4. कच्चे माल की पूर्ति के लिये नये स्रोतों की खोज
5. किसी उद्योग में नये संगठन को आगे ले जाना आदि।

संक्षेप में कह सकते हैं कि उद्यमी का जन्म अपने निजी औद्योगिक साम्राज्य को स्थापित करने की इच्छा तथा सृजन का आनन्द उठाने या कार्य कौशल का अनुभव करने के लक्ष्य से होता है। उद्यमी कोई तकनीकी व्यक्ति अथवा पूंजीपति नहीं होता है, अपितु वह एक नवप्रवर्तक होता है, जो नवीन परिवर्तनों द्वारा लाभ अर्जित करने की इच्छा रखता है। शुम्पीटर के अनुसार एक उद्यमी के व्यवहार में अग्रलिखित बातें परिलक्षित होती हैं–

1. भावी घटनाओं को इस प्रकार देखने की अन्तःप्रेरणा जो बाद में सत्य सिद्ध होती हैं।
2. सामाजिक प्रतिरोधों का सामना करने की क्षमता।
3. स्थायी आदतों पर विजय पाने की शक्ति, इच्छा एवं संकल्प।

उद्यमी मुख्य रूप से शक्ति पाने की इच्छा, निजी राज्य की स्थापना करने की इच्छा तथा किसी राज्य पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से अभिप्रेरित होते हैं।

व्यवस्थित अन्वेषण का सिद्धांत

व्यवस्थित अन्वेषण परिवर्तनों के लिये अर्थपूर्ण एवं संगठित खोज में निहित है एवं अवसरों के व्यवस्थित विश्लेषणों में इस प्रकार के परिवर्तन आर्थिक एवं सामाजिक अन्वेषण के लिये प्रस्ताव प्रदान कर सकते हैं।

ड्रकर के अनुसार, सफलतम अन्वेषण के लिये तीन शर्तों की पूर्ति किया जाना आवश्यक है, एवं वे हैं–

टिप्पणी

1. कार्य पर अन्वेषण, यह ज्ञान एवं कौशल की मांग करता है, यह कर्मठता, अध्यवसाय एवं प्रतिबद्धता पर भारी मांग निर्मित करता है।
2. अन्वेषण पर सफलता शक्तियों पर निर्मित होनी चाहिए।
3. अन्वेषण सदैव बाजार के निकट, बाजार पर ध्यान केन्द्रित एवं वास्तव में बाजार द्वारा चलित होना चाहिए।

व्यवस्थिति अन्वेषण का अर्थ अन्वेषणात्मक अवसर के लिये छः स्रोतों का निरीक्षण है। प्रथम तीन उद्यम के अन्तर्गत आते हैं, जबकि चाहे यह एक व्यापार या एक सार्वजनिक सेवा संस्था या एक उद्योग या सेवा क्षेत्र के अर्न्तगत हो, वे इस प्रकार उद्योग या सेवा क्षेत्र के अन्तर्गत लोगों के लिये प्राथमिक रूप से दर्शनीय है। ये प्राथमिक रूप से लक्षण परन्तु परिवर्तनों के उच्च रूप से विश्वसनीय संकेतक हैं जो पूर्व घटित हो चुके हैं या अल्प प्रयासों द्वारा घटित बनाए जा सकते हैं। यह महत्वपूर्ण स्रोत हैं–

(क) अनपेक्षित सफलता, अनपेक्षित विफलता, अनपेक्षित बाह्य घटना।

(ख) यथार्थता जैसे कि यह यर्थाथ में है एवं यथार्थता जैसे कि यह होने की धारणा है या जैसे कि यह हो सकता है के बीच असंगति।

(ग) उद्योग ढांचे या बाजार ढांचा में अन्वेषण जो प्रत्येक को अचेतन पकड़ता है।

(घ) अन्वेषणात्मक अवसर का द्वितीय समूह, तीन का एक समूह उद्यम या उद्योग के बाहर परिवर्तनों को संलिप्त करता है और सम्मिलित कर सकता है–

1. जनसंख्या संबंधी (जनसंख्या में परिवर्तनों से संबंधित)
2. बोधन मनोदशा एवं अर्थ में परिवर्तन
3. वैज्ञानिक एवं गैर–वैज्ञानिक दोनों नए ज्ञान।

ड्रकर का मत है कि उद्यमी वह है जो सदैव परिवर्तनों की खोजों में रहता है, इस पर प्रतिक्रिया करता है एवं इसे एक अवसर के रूप में बेहतरीन रूप से उपयोग करता है। अन्वेषण उद्यमिता के एक उपकरण के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। एक उद्यमी अन्वेषण करता है एवं संसाधनों का निर्माण करता है क्योंकि वहां इस प्रकार की संसाधनों के रूप में कोई चीज नहीं है जब तक कोई इसका एक उपयोग प्राप्त करता है एंव इसके साथ आर्थिक मूल्य को जोड़ता है। ड्रकर ने स्पष्ट रूप से उद्यमी की भूमिका को निम्न शब्दों में आगे रखा है–

1. एक उद्यमी को एक अन्वेषक साथ ही एक नेता होना चाहिए।
2. उसे सफलतापूर्वक अवसरों का विश्लेषण करने एवं उपयोग करने के योग्य होना चाहिए।
3. एक उद्योगी को वर्तमान अवधि के लिये अन्वेषण करना चाहिए एवं भविष्य के लिये नहीं।
4. अन्वेषण सरलता से बोधगम्य होना चाहिए अन्यथा यह इच्छित परिणाम नहीं दे सकता।
5. एक उद्यमी को ज्ञान, कौशल, कर्मठता, अध्यावसाय एवं अन्वेषण के प्रति प्रतिबद्धता धारण करनी चाहिए।
6. एक उद्यमी को संसाधन जुटाने चाहिए एवं उन्हें चिन्हित किए गए अवसरों से एक वाणिज्यिक प्राप्ति निर्मित करने के लिये आबंटन करना चाहिए।

अन्वेषण को उद्यमियों के विशिष्ट औजार के रूप में विचारा गया है, साधनों जिनके द्वारा एक विभिन्न व्यापार या सेवा के लिये एक अवसर के रूप में परिवर्तन का उपयोग करते हैं।

टिप्पणी

परिवर्तित हो रहे व्यापार परिदृश्य का नारा है– अन्वेषण करो या नष्ट हो जाओ। कम्पनियां जीवित नहीं रह सकतीं एवं प्रगति नहीं कर सकतीं, जब तक परिवर्तित हो रहे उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को मस्तिष्क में रखते हुए सतत रूप से उत्पादों का आविष्कार नहीं करते। उद्यमियों को अपनी जीवंतता के लिये, परिवर्तनीय प्रवृत्तियों के मार्ग को बनाये रखना एवं अन्वेषण करना होगा।

आदर्श व्यक्तित्व का सिद्धांत

कोकरन के अनुसार, उद्यमी समाज के आदर्श व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करता है। उसका प्रदर्शन अपने व्यवसाय के प्रति उसके स्वयं के दृष्टिकोण पर, अधिकारिक समूहों एवं कार्य की व्यावसायिक आवश्यकताओं की भूमिका और अपेक्षाओं पर निर्भर करता है। समाज के मूल्य दृष्टिकोणों एवं भूमिका अपेक्षाओं के अत्यधिक महत्वपूर्ण निर्धारक हैं। मनोवैज्ञानिक उपलब्धि की कामना, संबंधन एवं शक्ति, जोखिम उठाना, निर्णय निर्मित करना, रचनात्मकता, नेतृत्व इत्यादि जैसे इस प्रकार के अनेक व्यक्तित्व स्वभावों के आधार पर उद्यमियों की विशेषताओं का विश्लेषण करते हैं।

जोसेफ शुम्पीटर के अनुसार, उद्यमी मुख्य रूप से तीन वस्तुओं द्वारा अभिप्रेरित एवं संचालित हैं–

1. एक निजी राज्य की प्राप्ति के लिये स्वप्न एवं कामना
2. जीतने की इच्छा
3. निर्माण का हर्ष।

उनके सूत्रों को निम्न रूप में अनुवादित किया जा सकता है–

1. शक्ति एवं स्वतंत्रता की इच्छा
2. सफल होने की कामना
3. चीजों को करवा लेने की संतुष्टि।

उच्च उपलब्धि अभिप्रेरणा युक्त व्यक्ति उच्च जोखिम, उत्तरदायित्व के लिये इच्छा एवं कार्य प्रदर्शन के एक ठोस उपाय के लिये एक इच्छा की स्थिति में तीक्ष्ण रुचि लेने के लिये प्रवृत्त होता है।

एक पत्रिका, "साहसिक इतिहास में खोज यात्राएं" वर्णन करती है कि उद्यमिता का व्यक्तिगत उद्यमी पर ध्यान केन्द्रित करने द्वारा अध्ययन नहीं किया जाना चाहिये, बल्कि वस्तुतः उद्यम पर ध्यान देने द्वारा। विशेष ध्यान उद्यम एवं इसके परिवेशों के बीच संबंधों के अन्तर्गत सामाजिक संबंधों पर प्रायः दिया गया था।

नेतृत्व का सिद्धांत

एक सुव्यवस्थित कार्यकलाप, जिसके द्वारा उद्यमी उत्पादन के विविध कारकों को साथ–साथ लाता है, सतत प्रबंधन को सुनिश्चित करता है एवं जोखिम रहित कार्यकलाप को प्रदान करता है, के रूप में उद्यमिता को परिभाषित किया गया है।

टिप्पणी

एक उद्यमी किसी एक की भूमि, किसी अन्य का श्रम एवं किसी अन्य की पूंजी का संयोजन करता है एवं इस प्रकार उत्पाद को उत्पादित करता है। बाजार में उत्पाद को बेच कर वह पूंजी पर ब्याज, भूमि पर किराया, श्रमिकों को दिहाड़ियां अदा करता है और जो कुछ शेष रहता है उसका लाभ है। उद्यमिता का आशय व्यवस्था करने, समन्वय करने, पर्यवेक्षण करने, जोखिम अधिग्रहण करने एवं आर्थिक अनिश्चितता संभालने को संलिप्त करता है। उद्यमिता का अर्थ निवेश देखने एवं उत्पादन अवसरों, एक उत्पादन प्रक्रिया अधिग्रहण के लिये एक उद्यम को व्यवस्थित करने, पूंजी जुटाने, श्रमिक/श्रम किराये पर लेने, कच्चे मालों की आपूर्ति की व्यवस्था करने, एक नई तकनीक एवं व्यापारिक वस्तुओं से परिचय कराने, कच्चे मालों के नये स्रोतों की खोज करने एवं उद्यम के दिन–प्रतिदिन के प्रचालन के लिये शीर्ष प्रबंधकों का चयन करने की एक व्यवस्था करना है।

उद्यमिता एक नये एवं बेहतर ढंग में चीजों को करना है एवं यह अनिश्चितता के अधीन निर्णयों को निर्मित करना है। उद्यमी शक्ति की वांछितता एवं उपलब्धि द्वारा कठोर रूप से अभिप्रेरित है। उपलब्धि एवं शक्ति के लिये उच्च लालसा वाले लोग एक उद्यमी के रूप में सफलता के लिये अधिक अपेक्षित हैं, एवं यह एक बहुत दोषदर्शी कारक है जो किसी एक को उद्यमिता के प्रति अग्रसित करता है।

मैकक्लेलैंड बल देते हैं कि साहसिक प्रबंधक के पास दूसरों को प्रभावित करने के लिये एक उच्च लालसा (शक्ति की लालसा), मनोगत संबंधों को स्थापित करने के लिये एक अल्प लालसा (संबंधन के लिये अल्प लालसा) एवं स्वयं के अनुशासन के लिये एक उच्च क्षमता (अंतर्बाधा) होनी चाहिए।

उद्यमिता अपने स्वयं के व्यापार संगठित करने के लिये एवं नेतृत्व, निर्णय निर्मित करने एवं प्रबंधकीय योग्यता के सभी गुणों का प्रयोग करते हुए, इसे लाभप्रद ढंग से चलाने के लिये एक व्यक्ति की प्रवृत्ति है।

सामाजिक परिवर्तन का सिद्धांत

उद्यमिता की इस विचारधारा का प्रतिपादन मैक्स वेबर ने किया है। मैक्स के अनुसार उद्यमिता में धार्मिक विश्वास महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वेबर ने यह बतलाने का प्रयास किया है कि उद्यमशीलता का विकास संबंधित समाज की नैतिक मूल्य प्रणाली पर निर्भर होता है। इस मत के अनुसार व्यक्ति जिस धर्म एवं समुदाय में जीवन व्यतीत करता है तथा जिन धार्मिक मूल्यों एवं विश्वासों को स्वीकार करता है, ये ही उसके व्यावसायिक जीवन तथा उद्यमशील ऊर्जा को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार धार्मिक प्रणाली तथा नैतिक मूल्य बुनियादी रूप से व्यक्ति की मनोवृत्ति, दृष्टिकोण, विश्वास, चिंतन शैली आदि को प्रभावित करते हैं तथा व्यक्ति उसी के अनुरूप अपनी आजीविका प्रणाली का चयन करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि उद्यमिता के विकास में धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों का अहम् योगदान होता है।

सांस्कृतिक विचारधारा : इस विचारधारा का प्रतिपादन बी.एफ. हॉसजिटज ने किया। उद्यमिता की सांस्कृतिक विचारधारा के अनुसार उद्यमिता का विकास केवल ऐसे समाज में ही सम्भव होता है, जहां सामाजिक प्रतिक्रियाएं स्थिर नहीं होती हैं, जहां व्यक्ति के रोजगार के लिये व्यापक विकल्प उपलब्ध होते हैं, तथा जो उद्यमशील व्यक्तियों के व्यक्तित्व के विकास को प्रोत्साहित करता है। इस विचारधारा के प्रतिपादक के अनुसार

टिप्पणी

किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने में सांस्कृतिक दृष्टि से सीमान्त समूहों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि ऐसे समूह सृजनात्मक समायोजन करने के लिये योग्य होते हैं। इस समायोजन की प्रक्रिया के दौरान वे सामाजिक व्यवहार को वास्तविक नवप्रवर्तन युक्त बनाने का प्रयास करते हैं।

थॉमस क्रोकेन की विचारधारा : उद्यमिता की यह विचारधारा इस बात पर बल देती है कि उद्यमिता के विकास में सांस्कृतिक मूल्यों, भूमिका प्रत्याशाओं, आकांक्षाओं तथा सामाजिक स्वीकृति का महत्वपूर्ण स्थान है। इनका मत है कि उद्यमी समाज का एक आदर्श व्यक्ति होता है। उद्यमी का निष्पादन उसकी स्वयं की अभिवृत्तियों, अनुमोदन समूह की आकांक्षाओं, आवश्यकताओं, सामाजिक मूल्यों और रोजगार की परिचालनात्मक आवश्यकताओं द्वारा प्रभावित होता है।

क्रोकेन की भांति स्टोक्स ने भी उद्यमिता के विकास में सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को महत्वपूर्ण माना है। इनका मत है कि आर्थिक संक्रमण के दौर में मनोवैज्ञानिक घटकों की अपेक्षा सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्य उद्यमिता के विकास को अधिक बढ़ावा देते हैं। इनके अनुसार मानसिक चिंतन उद्यमिता के विकास की दशाओं का सृजन अवश्य करते हैं, लेकिन उद्यमिता की ओर आकर्षित करने में समूह–जनित मूल्य ढांचे का अहम योगदान होता है।

प्रतिष्ठा वापसी का सिद्धांत

समाजविज्ञानी जाति, परिवार, सामाजिक स्थिति इत्यादि के क्रम में एक उद्यमी के लक्षणों का विश्लेषण करते हैं। उद्यमिता अति प्रत्याशित रूप से प्रकट होती है, जब एक समाज में मनोगत लक्षण हों। लोग स्व–रोजगार के लिये प्रवृत्त हैं एवं असुविधाजनक बचपन जिसमें शिशु सुरक्षा का अभाव होने या बुरा बर्ताव किए जाने, अल्प आत्म–सम्मान एवं मिथ्या प्रदर्शन, आत्मविश्वास का अभाव आदि के प्रकट होने के कारण सफल हो जाते हैं। इसलिये इस प्रकार के एक खास तरह के वातावरण में उन्नति करते हुए कुछ लोग, उनके प्रति जो नियंत्रण में हैं, हीन भावना रखते हैं।

यह दशा/स्थिति तब पैदा होती है, जब एक बच्चा निम्नलिखित दशाओं/स्थितियों में से किसी में पाला पोषा गया हो–

- एक या दोनों अभिभावकों की मृत्यु
- विवाह संबंध का टूटना
- अत्यधिक निर्धनता
- शरणार्थी
- शिशु दुर्व्यवहार।

ऐसी स्थिति में जब ये बच्चे बड़े होते हैं, वे अपने स्वयं की फर्म या कम्पनी प्रारंभ करने एवं संचालन करने, जिसे अन्वेषणात्मक उद्धतता कहा जाता है, का व्यवहार करते हैं। यह इस तथ्य के कारण कि उद्धत/अक्खड़ होते हुए वह किसी संस्थान में उपयुक्त जगह बनाने में सक्षम नहीं है, क्योंकि वह ढांचागत वातावरण पसन्द नहीं करेगा। ऐसी स्थिति में इस प्रकार के शिशु प्रवृत्त हैं–

- ढांचों के प्रतिकूल होने

- निर्देशों से दूर जाने एवं
- किसी के नियंत्रण में न रह पाने में।

समीक्षा

टिप्पणी

यह सिद्धांत अन्यों को पृथक करते हुए, जो उस श्रेणी में नहीं आते, लोगों की अतिवादी श्रेणी के आचरण की व्याख्या करता है।

समान पृष्ठभूमि वाले कुछ लोग अन्वेष्णात्मक उद्धतता का प्रदर्शन नहीं करते, कुछ अपराधी होने या नशीले पदार्थों के आदी या मादक पदार्थों के आदी होने की ओर प्रवृत्त होते हैं।

जोखिम लेने की प्रवृत्ति

यह सिद्धांत जोखिम स्वीकार करने के लिये किसी एक इच्छा के बारे में बताता है। लोग जो जोखिम स्वीकार करने या अवसर प्राप्त करने के लिये अधिक अपेक्षित हैं, उनके जो जोखिम नहीं उठाते, की अपेक्षा स्वःरोजगारपरक होने के अधिक अपेक्षित हैं।

आलोचना / द्वेषान्वेषण

- लोग कहने के लिये प्रवृत्त हैं कि वे लाभ ग्रहण कर लेते हैं एवं जोखिम को किसी अन्य के लिये छोड़ देते हैं।
- लोग जो जोखिमों को उठाते हैं, सामान्यतः एक नपा तुला जोखिम लेते हैं एवं बाजी नहीं लगाते।
- लोग जो व्यापार में सफल हैं, संयमित जोखिम लेने वाले हैं।
- यह सुझाव दिया गया है कि अन्वेषणात्मक न होना या एक नये उत्पाद का उत्पादन न करना अधिक जोखिम भरा है। अर्थात् आलस्य सतत की अपेक्षा अधिक जोखिमपूर्ण है।

सामाजिक व्यवहार का सिद्धांत

उद्यमिता ज्ञान पर आधारित एक व्यवहार है, जिसका मूल आधार ज्ञान है, जिसके द्वारा लक्ष्यों की प्राप्ति होती है। इस विचारधारा के प्रतिपादक जॉन कुनकेल के अनुसार उद्यमिता का विकास किसी भी समाज के विगत एवं विद्यमान सामाजिक संरचना पर निर्भर करता है तथा वह विभिन्न सामाजिक–आर्थिक प्रेरणाओं से प्रभावित होता है। इनके अनुसार उद्यमिता परिस्थितियों के विशेष संयोजन पर निर्भर करती है, जिनका विनाश करना तो सरल होता है किन्तु सृजन करना कठिन। उद्यमिता मूल रूप से देश की सामाजिक आर्थिक संरचना का परिणाम है। 1980 के मध्य में थॉमस बेगले ने उद्यमिता के निम्न पांच आयाम बताये हैं–

1. उद्यमी उपलब्धि आवश्यकता के सम्बन्ध में उच्च होता है।
2. उद्यमी अपने जीवन का स्वयं मालिक होता है, वह भाग्य को स्वयं नियंत्रित करता है।
3. उद्यमी सम्पत्तियों पर उच्च प्रत्यायों की इच्छा से सदैव जोखिम उठाने के लिये तत्पर होता है।
4. उद्यमी कई ऐसे काम करता है जिसमें न तो निश्चितता होती है न ही स्पष्टता।

टिप्पणी

5. उद्यमी का व्यवहार (अ) टाइप का होता है 'अ' टाइप के व्यक्ति तथा 'ब' टाइप के व्यक्ति में अंतर निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है।

'अ' टाइप का व्यवहार : 'अ' टाइप व्यवहार वाला व्यक्ति हमेशा भ्रमणशील होता है। शीघ्रता से चलता है। शीघ्रता से खाता है। एक ही समय में दो या दो से अधिक कार्य करता है। खाली समय में भी विश्राम नहीं करता। आक्रामक होता है। प्रतिस्पर्धी होता है। निरंतर समय का दबाव अनुभव करता है। यह व्यवहारकुशल नहीं होता है।

'ब' टाइप का व्यक्ति : यह व्यक्ति समय के बारे में नहीं सोचता है तथा स्तुति नहीं करता। मजाक के लिये खेलता है जीतने के लिये नहीं। यह धैर्यवान होता है। बिना अपराध भाव के विश्राम करता है। कभी शीघ्रता एवं दबाव में नहीं जीता है। यह व्यवहारकुशल होता है।

अल्पसमूह विचारधारा : अल्पसमूह विचारधारा प्रतिपादक एवरेट हेगन के अनुसार समाज में किसी पीड़ित अल्पसमूह की सृजनात्मकता ही उद्यमिता का स्रोत है। हेगन ने जापान के समुराई समुदाय के आधार पर इस विचारधारा का विकास किया है। इस विचारधारा के अनुसार किसी सामाजिक समूह की प्रतिष्ठा का ध्यान होना ही उसके व्यक्तित्व निर्माण एवं उद्यमशीलता के विकास का मूल कारण बन जाता है। ऐसा समूह पुनः उस प्रतिष्ठा को पाने के लिये सृजनात्मक व्यवहार करता है, जिससे साहसिकता/उद्यमिता का विकास होता है। ''किसी सामाजिक समूह की प्रतिष्ठा का प्रतिहार (Withdrawal of Status) ही उद्यमी के व्यक्तित्व के विकास का कारण है। हेगेन के अनुसार प्रतिष्ठा का प्रतिहार निम्न चार कारणों से होता है–

1. जबरदस्ती प्रतिहार करना
2. प्रतिष्ठा चिह्न से वंचित करना
3. आर्थिक सत्ता के वितरण में परिवर्तन हो जाने पर अर्थात् शक्ति कमजोर हो जाने से प्रतिष्ठा चिह्न में गिरावट आना
4. नये समाज में प्रवेश करने से आशातीत प्रतिष्ठा का प्राप्त न होना।

अन्य सिद्धांत

उद्यमिता के प्रमुख सिद्धांतों अथवा विचारधाराओं के अलावा कुछ अन्य सिद्धांतों अथवा विचारधाराओं को अग्रलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत उल्लेखित किया गया है–

1. आर्थिक सिद्धांत
2. समाजशास्त्रीय सिद्धांत
3. मनोवैज्ञानिक सिद्धांत
4. एकीकृत सिद्धांत।

1. आर्थिक सिद्धांत

उद्यमिता के आर्थिक सिद्धांत के अनुसार उद्यमिता का विकास अनेक आर्थिक क्रियाओं का परिणाम है। आर्थिक लाभ की मनोवैज्ञानिक प्रेरणा प्रत्येक समाज में विद्यमान होती है, जिससे आर्थिक विकास का जन्म होता है। अर्थशास्त्रियों के अनुसार उद्यमिता एवं आर्थिक

टिप्पणी

विकास विशिष्ट आर्थिक परिस्थितियां अथवा अवसर के अनुकूल होने पर होता है। उद्यमी अनुकूल आर्थिक परिस्थितियों अथवा अवसरों का अधिकतम उपयोग करने के लिये ही व्यावसायिक एवं औद्योगिक क्षेत्र में प्रवेश करता है। सभी देशों की व्यावसायिक एवं औद्योगिक परिस्थितियां बदलती रहती हैं। आर्थिक जगत में कभी मंदी का समय होता है तो कभी तेजी का समय। मंदी के समय मूल्य स्तर में निरंतर गिरावट आती है, जबकि तेजी के समय में मूल्य स्तर में निरंतर वृद्धि होती जाती है। इस सिद्धांत के प्रतिपादक पेपनेक तथा हैरिस ने बताया है कि आर्थिक प्रेरणाएं ही उद्यमिता क्रियाओं की प्रमुख चालक होती हैं।

विद्वानों के अनुसार उद्यमिता का जन्म अनुकूल आर्थिक परिस्थितियों में ही संभव है। किन्तु व्यक्ति का आन्तरिक चालक सदैव आर्थिक लाभ से प्रेरित रहता है। इस दृष्टि से आर्थिक प्रेरणाएं तथा लाभ ही उद्यमिता के उद्‌गम की पर्याप्त शर्त है। जब कोई व्यक्ति ऐसा अनुभव करता है कि उत्पादन अथवा सेवा का बाजार संतुलन से परे है तो वह वर्तमान मूल्यों पर उत्पाद का क्रय करके उसको उन व्यक्तियों को बेच देता है जो उसका अधिकतम मूल्य देने के लिये तत्पर है। इस प्रकार परिवर्तन के समायोजन की आवश्यकता उद्यमिता की मांग को प्रोत्साहित करती है। संक्षेप में उपादानों/संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग हेतु उद्यमिता का जन्म एवं विकास होता है।

2. समाजशास्त्रीय सिद्धांत

उद्यमिता के समाजशास्त्रीय सिद्धांत के अनुसार उद्यमिता का उद्‌भव विशिष्ट सामाजिक संस्कृति में होता है। उद्यमशील क्रियाओं/उद्यमिता के विकास के लिये सामाजिक अनुमोदन, परंपराएं, समूह की गतिशीलता, सांस्कृतिक मूल्य, व्यक्ति की आकांक्षाएं आदि घटक उत्तरदायी होते हैं। इस संदर्भ में प्रमुख विचारधाराएं निम्न हैं–

- **उद्यमशील समूह विचारधारा** : इस सिद्धांत का प्रतिपादन मे. डब्ल्यू. यंग ने किया। इनके अनुसार "व्यक्तियों से नहीं अपितु साहसी समूहों से ही साहसी क्रियाओं का विस्तार सम्भव है।" यह सिद्धांत इस बात पर बल देता है कि उद्यमी क्रियाओं का विस्तार व्यक्तियों से नहीं अपितु उद्यमशील समूहों से होता है क्योंकि समूहों में विशिष्टता के कारण प्रतिक्रिया करने की क्षमता होती है, जो समाज में उद्यमशील व्यवहार को जन्म देती है।

3. मनोवैज्ञानिक सिद्धांत

उद्यमिता के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत के अनुसार उद्यमिता की पूर्ति अनेक मनोवैज्ञानिक, अभौतिक एवं आंतरिक शक्तियों द्वारा प्रभावित होती है। उद्यमिता के विकास के मूल प्रेरक मनोवैज्ञानिक घटक है। समाज में पर्याप्त मात्रा में मनोवैज्ञानिक लक्षणों से युक्त व्यक्तियों की पूर्ति होने पर उद्यमिता के विकसित होने के अवसर अधिक हो जाते हैं। उद्यमिता के विकास पर व्यक्ति की आंतरिक इच्छाओं, मनोवृत्तियों, आदतों, प्रेरणाओं एवं संवेगों का गहरा प्रभाव पड़ता है। इस संदर्भ में प्रमुख विचारधाराएं निम्नलिखित हैं–

- **उपलब्धि विचारधारा** : उपलब्धि विचारधारा के प्रतिपादक मैक्लीलैण्ड ने उपलब्धि इच्छा को उद्यमिता के विकास का एक प्रमुख घटक माना है। इनके अनुसार उपलब्धि पाने की तीव्र इच्छा व्यक्ति को उद्यमिता की क्रियाओं की ओर

टिप्पणी

आकर्षित करती है। उच्च उपलब्धि प्राप्ति की भावना ही उद्यमिता के विकास का आधार है। व्यवसाय अथवा उद्योग के क्षेत्र में उत्कृष्टता की ऊंचाइयों को छूने एवं विशिष्ट उपलब्धियां प्राप्त करने की भावना से ही किसी व्यक्ति में उद्यमी होने की क्षमता विकसित होती है। उच्च उपलब्धि के लिये उद्यमी में पर्याप्त कल्पना, चिंतन–मनन, नवीन संयोजन आदि योग्यताओं का होना जरूरी है। कुछ समाजों में एक निश्चित मापदण्ड के आधार पर ऐसे युवाओं का सृजन किया जाता है जो उच्च उपलब्धि में विश्वास करते हैं। उच्च उपलब्धि की लालसा ही बच्चों के श्रेष्ठ ढंग से पालन–पोषण करने, आत्म निर्भरता, श्रेष्ठता के प्रमापों, स्वतंत्रता, प्रशिक्षण पर निर्भरता, पिता के प्रभुत्व में शिथिलता आदि बातों पर बल देने के लिये अभिप्रेरित करती है। इसलिये मैक्लीलैण्ड ने उद्यमिता के विकास के लिये अभिप्रेरण प्रशिक्षण कार्यक्रम के आयोजन पर अधिक जोर दिया है।

4. एकीकृत सिद्धांत

उद्यमिता की एकीकृत सिद्धांत के अनुसार उद्यमिता अनेक सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा मनोवैज्ञानिक घटकों द्वारा प्रभावित होती है। उद्यमशीलता के विकास की प्रमुख एकीकृत विचारधाराएं निम्नलिखित हैं–

- **साहसिक मनोवृत्ति विचारधारा :** साहसिक मनोवृत्ति विचारधारा के प्रतिपादक टी. वी. राव ने उद्यमिता के विकास के साहसिक मनोवृत्ति को अत्यंत महत्वपूर्ण माना है। उद्यमिता का मूलाधार ही साहसिक मनोवृत्ति है। यदि उद्यमी में से साहसिक मनोवृत्ति को निकाल दिया जाए तो उसका समूचा अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। उद्यमी की साहसिक मनोवृत्ति ही उसे जोखिम उठाने, आगे कदम बढ़ाने तथा नये–नये उपक्रमों को स्थापित करने के लिये अभिप्रेरित करती है। राव ने साहसिक मनोवृत्ति के अंतर्गत निम्न घटकों को भी शामिल किया है–गतिशील प्रेरणा, दीर्घकालीन निष्ठा, सामाजिक एवं भौतिक संसाधन तथा सामाजिक एवं राजनीतिक प्रणाली।
- **प्रक्रिया विचारधारा :** इस विचारधारा के प्रतिपादक वेंकटराव ने उद्यमिता के विकास की प्रक्रिया के निम्न पांच चरण बतलाये हैं–
  1. **उत्प्रेरण :** यह उद्यमिता के विकास का प्रथम चरण है। इस चरण/अवस्था में उद्यमियों के विकास के लिये विभिन्न प्रेरणाएं प्रदान करके उनके लिये एक उपयुक्त पर्यावरण तैयार किया जाता है। देश में औद्योगिक विकास कार्यक्रमों, नीतिगत घोषणाओं, औद्योगिक विकास की विशेष योजनाओं, (सस्ती भूमि, सस्ती बिजली, पर्याप्त पानी, उचित मूल्य पर पर्याप्त कच्चा माल, संचार साधन करों में रियायत आदि), सहायक संसाधनों की स्थापना तथा व्यापक प्रचार–प्रसार द्वारा उद्यमियों को उत्प्रेरित किया जाता है जिससे वे उपक्रम स्थापन हेतु अभिप्रेरित हों।
  2. **विकास :** इस अवस्था में उद्यमियों के विकास के लिये प्रबंधकीय प्रशिक्षण, तकनीकी प्रशिक्षण एवं व्यावसायिक मार्गदर्शन के कार्यक्रम संचालित किये जा सकते हैं। विभिन्न नीतियों एवं कार्यक्रमों के माध्यम से साहसिक क्रियाओं का विस्तार कर सकते हैं।

टिप्पणी

3. **अनुवर्तन** : अनुवर्तन इस अवस्था में उद्यमिता के विकास के लिये बनाये गये सरकारी कार्यक्रमों एवं नीतियों की समीक्षा की जाती है तथा उद्यमिता के संवर्द्धन के लिये नवीन उपाय तलाशे जाते हैं।
4. **संवर्द्धन** : समाज में औद्योगिक क्रियाओं के विस्तार तथा साहस को प्रोत्साहित करने के लिये अनेक सहायता संगठनों का निर्माण किया जाता है ये साहसियों को अनेक प्रेरणाएं, सुविधाएं एवं सेवाएं उपलब्ध करवाते हैं।
5. **पहचान** : समाज में उद्यमी योग्यताओं एवं क्षमताओं की पहचान हेतु विकसित प्रणाली के द्वारा भी उद्यमियों को रचनात्मक कार्यों की ओर प्रवृत्त किया जा सकता है। विभिन्न क्षेत्रों में भावी उद्यमियों की पहचान पर ही आर्थिक प्रगति की रफ्तार आश्रित होती है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. "उद्यमिता तीन आधारभूत तत्वों–अन्वेषण, नवप्रवर्तन एवं अनुकूलन का मिला हुआ रूप है"– किसने कहा है?

   (क) शुम्पीटर (ख) एच.डब्ल्यू. जॉनसन

   (ग) लॉक्स (घ) रॉबर्ट लैम्ब

4. उद्यमिता से सम्बंधित सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत का प्रतिपादन किसने किया है?

   (क) मैकक्लेलैंड (ख) ड्रकर

   (ग) मैक्स वेबर (घ) एच.डब्ल्यू. जॉनसन

1.4 लक्ष्य निर्धारण

उद्यमिता विकास कार्यक्रम का प्रारंभ जन सामान्य को उद्यमी बनाने के लिये हुआ है तथा इस कार्यक्रम के प्रमुख लक्ष्य निम्नलिखित हैं–

1. **स्वरोजगार की पद्धति को प्रोत्साहित करना** : इन कार्यक्रमों का प्रमुख उद्देश्य व्यक्तियों को नौकरी करने के स्थान पर स्वरोजगार की ओर प्रेरित करना है। जीवनयापन के लिये प्रायः दो ही विकल्प होते हैं–
   (i) सवेतन रोजगार
   (ii) स्वरोजगार/सवेतन रोजगार के अंतर्गत व्यक्ति अपने शारीरिक एवं मानसिक श्रम को बेच कर धन अर्जित करता है। इसमें व्यक्ति को अपने मालिक से क्षमताओं के आधार पर सेवाओं के बदले एक निश्चित वेतन प्राप्त होता है। जबकि स्वरोजगार के अंतर्गत व्यक्ति अपना स्वामी स्वयं होता है और अपने व्यवसाय के माध्यम से अन्य लोगों को रोजगार प्रदान करता है। उद्यमी स्वतंत्र होकर कार्य करता है और अपने अंदर विभिन्न योग्यताओं व क्षमताओं को विकसित करने का अवसर प्राप्त करता है। उद्यमिता विकास कार्यक्रमों के माध्यम से व्यक्ति में स्वरोजगार की भावना को विकसित किया जाता है।

टिप्पणी

2. **एक सफल उद्यमी का निर्माण करना :** उद्यमिता विकास कार्यक्रमों का एक मात्र उद्देश्य एक सफल उद्यमी का निर्माण करना है, इसीलिये विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से उनमें वे सभी गुण विकसित करने का प्रयास किया जाता है जो एक सफल उद्यमी में होने चाहिए। जैसे अवसरों की पहचान, साहस, दृढ़ निश्चय, जोखिम उठाने की मानसिकता, निर्णय की क्षमता, नवाचार, रणनीति एवं रणकौशल से भरी हुई दृष्टि तथा आत्मविश्वास आदि। उद्यमिता विकास कार्यक्रम मिट्टी में सोना उगाने की क्षमता को विकसित करने की सामर्थ्य रखते हैं।

3. **प्रथम पीढ़ी के व्यवसायी एवं उद्योगपतियों का निर्माण :** उद्यमिता विकास कार्यक्रमों के माध्यम से प्रथम श्रेणी के उद्योगपतियों को तैयार किया जाता है। व्यापारी के पुत्र में स्वतः व्यापारी बनने की प्रवृत्ति होती है, लेकिन जिन घरों में व्यापार–उद्योग का वातावरण ही न हो उन युवकों को व्यवसायी/उद्योगपति बनने की प्रेरणा देना ही उद्यमिता विकास कार्यक्रमों का उद्देश्य है।

4. **उपलब्ध संसाधनों के विषय में जानकारी प्रदान करना :** प्रत्येक भू–भाग पर कुछ विशेष प्रकार के साधन होते हैं, तरह–तरह का कच्चा माल प्रकृति तथा मनुष्यों द्वारा उत्पादित पदार्थों के रूप में पाये जाते हैं, जिसे पक्के माल के रूप में परिवर्तित करके उपयोगी बनाया जा सकता है। उद्यमिता विकास कार्यक्रमों के माध्यम से लाभार्थियों को ऐसे उपलब्ध संसाधनों–कच्चा माल, श्रम, तकनीक, एवं प्रौद्योगिकी की सूचना उपलब्ध करायी जाती है।

5. **सरकारी योजनाओं एवं कार्यक्रमों की जानकारी प्रदान करना :** सरकार समय–समय पर जन कल्याण के लिये विभिन्न योजनाएं बनाती है, जिनमें से अनेक योजनाओं का उद्देश्य स्वरोजगार को बढ़ावा देना होता है। उद्यमिता विकास कार्यक्रमों के माध्यम से ऐसी योजनाओं की जानकारी उपलब्ध करायी जाती है कि सरकारी योजनाओं का किस प्रकार प्रयोग किया जाये। आजकल सरकार द्वारा मेक इन इण्डिया तथा कौशल विकास जैसी स्वरोजगार के लिये तकनीकी प्रेरित योजनाएं चलाई जा रही हैं। सरकार स्वरोजगार के लिये तकनीकी प्रौद्योगिकी वित्त की सुविधा सुलभ कराती है। उद्यमिता विकास कार्यक्रम इन सुविधाओं की जानकारी देकर प्रथम श्रेणी के व्यवसायियों को जन्म देते हैं।

6. **व्यापार संचालन का प्रशिक्षण देना :** व्यापार संचालन एक कला है। उद्यमिता विकास कार्यक्रमों के माध्यम से उद्यमियों को सिखाने का प्रयास किया जाता है कि व्यापार के सभी घटकों को किस प्रकार संतुलित किया जा सकता है। व्यापार का संचालन किस प्रकार किया जाये ताकि लाभकारी सिद्ध हो सके। व्यापार से संबंधित विभिन्न पक्षकारों में मधुर संबंध किस प्रकार बनाये जाएं, वित्त सम्भरणकर्त्ता, कच्चे माल के आपूर्तिदाताओं, श्रमिकों व व्यापारियों से किस प्रकार का व्यवहार किया जाये उद्यमिता विकास कार्यक्रमों के माध्यम से इन सभी प्रश्नों के उत्तरों से अवगत कराया जाता है। उद्यमिता विकास कार्यक्रमों के माध्यम से केवल निर्देशित ही नहीं किया जाताख् अपितु सघन प्रशिक्षणों का भी आयोजन किया जाता है।

7. **विपणन संबंधी जानकारी :** किसी भी व्यापार की वास्तविक सफलता उसकी विक्रय शक्ति पर निर्भर करती है, क्योंकि संसाधनों को एकत्र करके उत्पादन प्रक्रिया प्रारंभ करके उत्पादन करना तो सरल होता है। वास्तविक समस्या तो

टिप्पणी

उत्पादित माल को बाजार में बेचते समय आती है। इन कार्यक्रमों के माध्यम से उद्यमी द्वारा उत्पादित माल के विक्रय के लिये बाजारों की जानकारी दी जाती है तथा प्रतिस्पर्धा के इस युग में माल को विक्रय करने के कौशल भी सिखाये जाते हैं और विक्रय की समस्त नीति सिखायी जाती है। इस प्रकार उद्यमी में सफल विक्रेता के गुण उत्पन्न किये जाते हैं।

8. **उद्यमियों की शंकाओं व समस्याओं का समाधान :** नये उद्यमियों के मन में अनेक शंकाएं होती हैं। उन्हें उद्यम की स्थापना एवं संचालन में नाना प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उन समस्याओं का समाधान करना तथा शंकाओं को मिटाना इन कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य होता है। विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों को कार्यक्रमों में आमंत्रित किया जाता है, जो अपनी–अपनी योग्यता के आधार पर इन समस्याओं का निदान एवं उपचार करते हैं।
9. **लघु एवं कुटीर उद्योगों का प्रवर्तन :** उद्यमिता विकास कार्यक्रमों का उद्देश्य सम्पर्क क्षेत्र में उपलब्ध कच्चे माल, श्रम एवं तकनीक आदि संसाधनों के माध्यम से कुटीर एवं लघु उद्योगों की स्थापना करने की प्रेरणा देना है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. उद्यमिता विकास कार्यक्रमों के माध्यम से व्यक्ति में मुख्यतः किस भावना का विकास किया जाता है?

   (क) आत्मविश्वास (ख) साहस

   (ग) नेतृत्व (घ) स्वरोजगार

6. व्यापार संचालन है–

   (क) एक विज्ञान (ख) एक कला

   (ग) एक दर्शन (घ) एक प्रौद्योगिकी

1.5 समस्याएं, चुनौतियां एवं समाधान

भारत में व्यवसाय या उद्यम शुरू करते समय उद्यमियों को जिन समस्याओं एवं चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, उनमें से कुछ मुख्य निम्नांकित हैं :

1. नौकरशाही,
2. भ्रष्टाचार,
3. श्रम,
4. क्षेत्रीय भावनाएं,
5. ग्रे मार्केट और नकली उत्पाद तथा
6. सामाजिक पूंजी।

यहां जिन कारकों की चर्चा की जा रही है, सम्भव है हर कोई उन्हें समस्या न माने, लेकिन यह भी सच है कि अगर इन कारकों का प्रबंधन सही तरीके से न किया जाये तो ये समस्याएं पैदा कर सकते हैं। यदि आप भारत में काम कर रहे हैं तो इन कारकों

को ध्यान में रखना होगा। यदि इन्हें सही ढंग से प्रबंधित किया जाये तो ये फायदेमन्द हो सकते हैं; अन्यथा ये किसी भी उद्यम के लिये गंभीर समस्याएं पैदा कर सकते हैं।

टिप्पणी

नौकरशाही

ब्यूरोक्रेसी अथवा नौकरशाही शब्द फ्रांसीसी शब्द 'ब्यूरो' से आया है, जिसका अर्थ है 'कार्यालय' और इसके साथ जो ग्रीक प्रत्यय क्रेटोस जुड़ा है, उसका अर्थ है 'शक्ति' या 'नियम।' इसलिये, नौकरशाही 'कार्यालय के प्रशासन' को संदर्भित करती है।

मैक्स वेबर उन सबसे प्रभावशाली सामाजिक विचारकों में से एक हैं, जिन्होंने नौकरशाही का विस्तार से अध्ययन किया है। वेबर के अनुसार, नौकरशाही की कुछ मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं :

1. आधिकारिक व्यवसाय निरंतरता के आधार पर संचालित किया जाता है।
2. आधिकारिक व्यवसाय लिखित नियमों के अनुसार संचालित किया जाता है।
3. भूमिकाओं और जिम्मेदारियों को एक पदानुक्रम के भीतर परिभाषित किया गया है, जिसमें पर्यवेक्षण और अपील के अधिकार सन्निहित हैं।
4. आधिकारिक तथा निजी व्यवसाय और आय साफ तौर पर भिन्न हैं।

सार्वजनिक कार्यालयों को लोगों की भलाई के लिये स्थापित किया जाता है और पदों पर काम करने वाले अधिकारियों को लोकसेवक के रूप में संदर्भित किया जाता है। लेकिन, अगर उन्हें अनियंत्रित छोड़ दिया जाये, तो ये सार्वजनिक अधिकारी स्वयंसेवी और भ्रष्ट हो सकते हैं।

किसी व्यवसाय को शुरू करने और संचालित करने के लिये सर्वप्रथम बहुत सारी प्रक्रियाओं का पालन किया जाता है और स्वीकृतियां प्राप्त की जाती हैं। दूसरे, इन प्रक्रियाओं में से प्रत्येक में एक बड़ी मात्रा में समय लग सकता है।

प्रक्रियाओं की स्थापना आम आदमी के हितों की रक्षा के लिये की जाती है। लेकिन, कभी–कभी, नियम और विनियम उस उद्देश्य की पूर्ति करना बंद कर देते हैं, जिसके लिये वे तैयार किये गये थे। नियम अपनी प्रकृति में अन्यायपूर्ण बन जाते हैं और नियमों तथा विनियमों के अनुपालन की दिशा में किये गये प्रयास बहुत अधिक मात्रा में निष्फल होने लग जाते हैं।

संसाधनों की कमी उद्यमी कंपनियों के सामने आने वाली प्रमुख समस्याओं में से एक है। इस स्थिति में, नये उपक्रमों को प्रक्रियाओं को पूरा करने में बहुत अधिक समय और श्रम खर्च करना पड़ता है।

भ्रष्टाचार

भ्रष्टाचार को किसी भी परिस्थिति में उचित नहीं ठहराया जा सकता, लेकिन यह एक कड़वा सच है कि यह कई सरकारी विभागों में व्याप्त होता है। यहां तक कि निजी क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। हमें इस सामाजिक बुराई पर अंकुश लगाने के लिये सामूहिक प्रयास करना होगा। चूंकि यह व्यवसाय के विकास को बाधित करता है, इसलिये यह नवोदित उद्यमियों के लिये एक चुनौती है।

कभी–कभी, लोग सिर्फ प्रक्रिया जल्दी पूरी करने और अत्यधिक पूछताछ से बचने के लिये भी पैसे दे देते हैं। कॉफ़मैन और वी (1999) के अनुसार, एक ऐसे

टिप्पणी

वातावरण में, जहां नौकरशाही का बोझ और उसके कारण होने वाली देरी अपरिहार्य है, एक व्यक्तिगत फर्म को प्रभावी लालफीताशाही को कम करने में रिश्वत उपयोगी लग सकता है।

उदाहरण के लिये, जब बैंक धन जारी नहीं कर रहा हो, भले ही उसने धनराशि जारी करने की मंजूरी दी हो। कुछ अधिकारी ऐसे हो सकते हैं जिन्होंने अनुचित आपत्ति दर्ज करायी हो। ऐसे मामलों में, कुछ लोग काम निकालने के लिये रिश्वत का प्रलोभन देते हैं।

कुछ लोग इसलिये भी रिश्वत का भुगतान करते हैं, क्योंकि जो उन्हें चाहिए, उसे प्राप्त करने की उनकी पात्रता में कमी होती है। उदाहरणस्वरूप कागजी कार्रवाई सही क्रम में न होने पर भी बैंक द्वारा जारी धन प्राप्त करने के लिये रिश्वत का भुगतान करना। कभी–कभी, यह कृत्य एक हास्यास्पद स्तर तक भी चला जाता है, जैसे यह सुनिश्चित करने के लिये रिश्वत का भुगतान करना कि प्रतियोगी को बैंक से धनराशि जारी नहीं की जाये!

कई उद्यमियों ने सरकार की तुलना में बड़े निजी क्षेत्र की कंपनियों के कर्मचारियों के बीच उच्च स्तर के भ्रष्टाचार का अनुभव किया है। आप भ्रष्टाचार के मुद्दे से कैसे निपटते हैं, यह आपकी व्यक्तिगत पसंद पर निर्भर करता है। कुछ उद्यमी ऐसे होते हैं जो कठिन रास्ता अपनाते हैं, पर कई उद्यमी बीच का रास्ता चुनते हैं और कुछ मामलों में भ्रष्टाचार को सहन कर लेते हैं, लेकिन बाद में वे इसके खिलाफ मजबूती से लड़ाई लडते हैं और सफल भी होते हैं। कुछ ऐसे खतरनाक उद्यमी भी होते हैं, जो भ्रष्ट अधिकारियों तक अपनी पहुंच का इस्तेमाल प्रतिस्पर्धी बढ़त प्राप्त करने के लिये करते हैं। लेकिन, इस तरह के अभ्यास उन्हें दीर्घकाल में सफलता नहीं देते हैं।

भ्रष्टाचार ने 'परामर्शदाता' के एक व्यवसाय को भी जन्म दिया है, जिसकी एकमात्र गतिविधि है भ्रष्ट अधिकारियों और उनसे एहसान लेने वालों के बीच मध्यस्थता करना। कुछ उद्यमी बैंकों से धन प्राप्त करने, निर्माणों के लिये अनुमोदन प्राप्त करने और श्रम कानूनों, करों तथा औद्योगिक अनुमोदन से सम्बंधित आवधिक क्रियाकलापों के लिये उनका उपयोग करते हैं।

स्थिति अब तेजी से बदल रही है और आशा है कि निकट भविष्य में भ्रष्टाचार कम हो जायेगा। कुछ हद तक भ्रष्टाचार की संभावना वाले कारक निम्नानुसार हैं :

1. सरकारी विभागों में चलने वाली प्रक्रियाओं में अधिक पारदर्शिता दिखायी पड़ती है। कई विभागों ने ई–गवर्नेंस पहलकदमियों की शुरुआत की है, जो पंजीकरण, फाइलिंग, भुगतान आदि को सक्षम बनाते हैं और इंटरनेट के माध्यम से शिकायत दर्ज होने के कारण अधिकारियों का सामना कम करना पड़ता है।
2. सूचना के अधिकार (आरटीआई) अधिनियम ने इच्छुक या प्रभावित जनसमान्य की सरकारी तथ्यों एवं सूचनाओं तक पहुंच बढ़ा कर स्थिति को काफी हद तक बदल दिया है।
3. मीडिया ने भी स्टिंग ऑपेरेशन करके कई स्तरों पर भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करने में एक सक्रिय और उल्लेखनीय भूमिका निभायी है। इन कार्रवाइयों में पकड़े गये अधिकारियों के सार्वजनिक अपमान ने भ्रष्टाचार के लिये एक निवारक के रूप में कार्य किया है।

टिप्पणी

श्रम

भारत में विनिर्माण क्षमता में कमी के लिये लालफीताशाही और भ्रष्टाचार को जिम्मेदार ठहराया गया है, लेकिन श्रम की कम उत्पादकता भी इसका एक बड़ा कारक है। समुद्रतटीय व्यापार के शुरुआती दिनों में, अमेरिका और पश्चिमी यूरोप की कम्पनियां भारत के बजाय थाइलैंड, मैक्सिको और चीन में विनिर्माण सुविधाएं स्थापित करना पसंद करती थीं। हालांकि इन देशों में भी लालफीताशाही और भ्रष्टाचार का रिकॉर्ड समान रूप से बुरा था, लेकिन इन देशों में श्रम की उत्पादकता अधिक पायी गई।

हमारी विशाल जनसंख्या और उच्च आर्थिक विकास के बावजूद, यह केवल 2006 में सम्भव हुआ कि भारत की अर्थव्यवस्था जीडीपी के मामले में मेक्सिको से आगे निकल गई।

एक सक्रिय श्रमिक संघ बुरा नहीं है, लेकिन भारत में कई बार, एक से अधिक श्रम संगठन हो सकते हैं, जो अलग–अलग एजेंडे के साथ, श्रमिकों के हितों का प्रतिनिधित्व करने का दावा करते हैं।

चूंकि भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है, इसलिये यहां प्रत्येक धर्म की धार्मिक मान्यताओं का सम्मान किया जाता है। इसलिये यहां क्रिसमस, गुड फ्राइडे, होली, दीपावली, मुहर्रम, ईद, गुरु नानक का जन्मदिन, बुद्ध जयंती और महावीर जयंती जैसे अवसरों पर छुट्टियां रहती हैं। राष्ट्रीय महत्व के अवसरों पर भी छुट्टियां होती हैं। नतीजतन, एक वर्ष में कार्य दिवसों की संख्या कम हो जाती है। इसके अलावा बांधों, क्षेत्रीय अशांति, बाढ़, भूकंप और अन्य प्राकृतिक आपदाओं के समय में सहायक बुनियादी ढांचे के टूटने के कारण उत्पन्न लंबा व्यवधान भी काम को बाधित करता है।

ऐसे कल्याणकारी उपाय जो लंबे समय तक काम को प्रतिबंधित करते हैं, महिला श्रमिकों की रक्षा करते हैं, और कम उम्र के कर्मचारियों को प्रतिबंधित करते हैं, जो कि आवश्यक भी है; पर वैध व्यवसाय प्रथाओं को बाधित करने के लिये जब इन धाराओं का दुरुपयोग किया जाता है, तो वे उद्योग की वृद्धि के लिये हानिकारक बन जाते हैं।

तुलनात्मक रूप से न्यूनतम वेतन संरचना के कारण भारतीय श्रम सस्ता है। लेकिन, सस्ते श्रम की उत्पादकता हमेशा संतोषजनक नहीं होती है। नियोक्ता को अक्सर अपने कर्मचारियों पर नियमित निगरानी रखने की आवश्यकता पड़ती है।

विनिर्माण क्षेत्र अब उतार पर है और सेवा क्षेत्र में आजकल एक शानदार तेजी देखी जा रही है। कुशल और अर्ध–कुशल जनशक्ति की जबरदस्त कमी है। भारत में पर्याप्त संस्थान नहीं हैं जो रोजगार योग्य युवाओं को उन कौशलों में प्रशिक्षित करने के लिये तैयार हों जिनकी रोजगार बाजार में मांग है।

विनिर्माण क्षेत्र को फिटर, वेल्डर, ड्राफ्ट्समैन और मशीन ऑपरेटरों की कमी का सामना करना पड़ रहा है। हाल के दिनों में नासकॉम (NASSCOM) तथा उद्योगों पर नजर रखने वाले अन्य संगठनों ने कई कॉल सेंटर और बीपीओ कर्मचारियों में प्राथमिक कौशल की कमी का काफी अच्छी तरह से उल्लेख किया है।

अंत में, कर्मचारियों की छंटनी को नियंत्रित करने वाले कड़े कानून खराब प्रदर्शन के मामले में या वित्तीय संकट के दौरान श्रमिकों को बाहर करना बहुत कठिन बना देते हैं, जबकि व्यवसाय संचालन की वित्तीय व्यवहार्यता बनाये रखने के लिये श्रमिकों की छंटनी करना अनिवार्य हो जाता है।

क्षेत्रीय भावनाएं

टिप्पणी

कई व्यवसाय इसलिये विफल हो जाते हैं, क्योंकि वे स्थानीय आबादी की भावनाओं को ध्यान में रखने से चूक जाते हैं। कई सफल व्यवसाय स्थानीय भावनाओं की पहचान करने और प्रतिक्रिया देने में कामयाब रहते हैं। पिज्जा हट और मैकडॉनल्ड्स जैसे अंतर्राष्ट्रीय फास्ट फूड चेन के कई आउटलेट स्थानीय आचार–व्यवहार का सम्मान करते हुए ही गोमांस या पोर्क की सेवा देने अथवा नहीं देने का निर्णय लेते हैं। दूसरी ओर, समाज–विरोधी तत्वों द्वारा राजनीतिक लाभ हासिल करने की कोशिश करने में उग्रता बरते जाने के कारण भी व्यवसायों को नुकसान उठाना पड़ता है।

स्थानीय समुदाय को आसपास के क्षेत्र में स्थापित किये जाने वाले हर व्यवसाय से लाभ होने की उम्मीद रहती है। यह विशेष रूप से तब सच साबित होता है, जब औद्योगिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों में व्यवसायों का आगमन होता है। स्थानीय समुदाय कंपनी में रोजगार पाने की उम्मीद करता है और प्रवासी श्रमिकों को रोजगार दिये जाने को लेकर अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं करता।

यदि व्यवसाय उस क्षेत्र में अपने अंतिम उत्पादों के विपणन की भी योजना बना रहा है, तो कुछ स्थानीय व्यवसाय प्रतिकूल रूप से प्रभावित होंगे। उन लोगों की चिंताओं को संबोधित करना महत्वपूर्ण है, जो अपने व्यवसायों के लिये डरते हैं। अन्यथा, वे आपके व्यवसाय का संगठित विरोध करने की संभावना पैदा कर सकते हैं।

उदाहरण के लिये, यदि आप एक बड़े बिस्कुट कारखाने की स्थापना कर रहे हैं, तो कुछ स्थानीय बेकरी मालिक को डर होगा कि उनकी इकाई को बंद करना पड़ सकता है। स्थानीय बिस्कुट कारखाने के मालिक को आश्वस्त करना होगा कि आपके कारखाने के बिस्कुट एक अलग बाजार के उद्देश्य से हैं और ब्रिटानिया और पार्ले के साथ प्रतिस्पर्धा करने जा रहे हैं, उसके साथ नहीं। आपको सच्चा बनना होगा; इस अवस्था में झूठ बोलने से लंबे समय तक ज्यादा फायदा नहीं होगा।

कभी–कभी, एक औद्योगिक इकाई स्थापित करने से दुर्लभ संसाधनों की उपलब्धता पर दबाव पड़ता है या संसाधनों की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। उदाहरण के लिये, प्रदूषण भूजल की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकता है, या यदि यह एक विद्युत–आधारित इकाई है, तो यह क्षेत्र में बिजली की उपलब्धता को प्रभावित कर सकती है।

स्थानीय आबादी से इस तरह की प्रतिकूल प्रतिक्रियाओं के मामलों में, यह आमतौर पर आवश्यक है कि आसपास के क्षेत्र में व्यापार से होने वाले लाभों के बारे में जानकारी प्रसारित की जाये। स्थानीय समुदाय के लिये प्रस्तुत किये जाने वाले कुछ फायदे इस प्रकार हो सकते हैं, जैसे– रोजगार में वृद्धि, छोटे ट्रांसपोर्टरों और वेल्डिंग की दुकानों जैसे सेवा प्रदाताओं के लिये व्यवसाय उत्पन्न करने की संभावना, छोटी सहायक इकाइयों की दीर्घकालिक संभावना और कुछ स्थानीय बुनियादी ढांचे में सुधार आदि।

कभी–कभी, उद्यमी सद्भावनापूर्ण संकेत करते हैं, जैसे कि स्थानीय पूजा समिति को पैसे दान करना, स्कूल के लिये कम्प्यूटर खरीदना, या कुछ इसी तरह के काम। ये स्थानीय समुदाय की उम्मीदों को बढ़ा सकते हैं।

टिप्पणी

ग्रे मार्केट और नकली उत्पाद

ग्रे मार्केट एक वितरण चैनल के माध्यम से माल के प्रवाह को संदर्भित करता है, जो निर्माता द्वारा अधिकृत या इच्छित नहीं है। आमतौर पर, यह तब होता है जब घरेलू बाजार में किसी उत्पाद की कीमत आस–पास के अन्य बाजारों की तुलना में बहुत अधिक होती है।

कभी–कभी, यह उच्च स्थानीय कराधान के कारण हो सकता है। भारत में, सामान की तस्करी आमतौर पर सेल–फोन, इलेक्ट्रॉनिक सामान, आभूषण और शराब के रूप में होती है। चेन (2002) यहां तक बताती है कि ग्रे मार्केटिंग गतिविधियां निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा की स्थिति विकसित कर सकती हैं, जिसमें सामाजिक कल्याण बढ़ता है। भारत में, सेल–फोन की कीमतें बहुत अधिक हुआ करती थीं, लेकिन बड़े पैमाने पर तस्करी ने करों और कीमतों में बदलाव के लिये प्रेरित किया, जिससे भारत और सिंगापुर या दुबई के बीच अंतर कम हो गया।

एक और समस्या नकली उत्पाद की है। हालांकि, यह जोर डाल कर कहा जाता है कि नकली उत्पाद ग्रे मार्केट का हिस्सा नहीं है, फिर भी लोग ग्रे 'उत्पादों की परिभाषा में असली और नकली दोनों ही उत्पादों को एक साथ शामिल करते हैं।

एक सुसज्जित ग्रे मार्केट का अस्तित्व भारतीय व्यापार परिदृश्य में एक सच्चाई है। ग्रे मार्केट की समस्या की मौजूदगी विभिन्न स्तरों पर देखी जा सकती है। हमें स्पष्ट धारणा के लिये निम्नलिखित स्थितियों को देखना चाहिए–

मान लीजिये कि एक ग्राहक डीवीडी प्लेयर खरीदने में रुचि रखता है। वह एक अधिकृत डीलर के पास जाता है और अधिकृत डीलर उसे एक नकली उत्पाद बेचने की कोशिश करता है। ब्रांडेड इलेक्ट्रॉनिक आइटम, कपड़े, इत्र और सामान के मामले में यह आम है। बेईमान निर्माताओं के लिये वास्तविक उत्पाद की नकल बनाना और इसे असली चीज के रूप में बेचने की कोशिश करना बहुत आसान है।

कभी–कभी पायरेटेड उत्पादों के मामले में, खरीदार जानते हैं कि वे नकली सामान खरीद रहे हैं। वे एक ऐसा उत्पाद खरीदने के लिये तैयार हैं, जो उन्हें वास्तविक उत्पाद के समान उपयोगिता प्रदान करता है। भारत के कई हिस्सों में, लोग उन ग्राहकों को सॉफ्टवेयर, मूवी और वीडियो गेम की पायरेटेड प्रतियां बेच कर जीवनयापन करते हैं, जिन्हें पता है कि वे कानूनी रूप से खरीदे गये कॉपी की लागत के एक अंश के लिये पायरेटेड कॉपी खरीद रहे हैं।

अब कंपनियों द्वारा नकली और ग्रे माल पर मुहर लगाने के लिये कई सक्रिय उपाय किए जाते हैं। इनमें से कुछ यहां उल्लेखित हैं :

1. निर्माता स्थानीय और विदेशी बाजारों में कीमतों में अंतर को कम करने के लिये कीमतों में भारी कमी कर रहे हैं।
2. वारंटियों को उन उत्पादों तक नहीं बढ़ाया जा सकता जो वैध चैनलों के माध्यम से नहीं खरीदे जाते हैं। इसलिये, एक नोकिया सेवा केंद्र एक ऐसे नोकिया उत्पाद पर निर्माता की वारंटी का सम्मान नहीं करेगा, जो अपने करों का भुगतान करने वाले एक सहयोगी व्यक्ति से नहीं खरीदा गया है।

टिप्पणी

3. कुछ हाई–टेक समाधान भी तैयार किये गये हैं, जैसे कि फिल्मों और अन्य डिजिटल सामग्री की सुरक्षा के लिये डीवीडी क्षेत्रीय कोड का उपयोग।

एक नये उद्यम के निर्माण के लिये इच्छुक एक ब्रांड या उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद के किसी निर्माता की छवि को ग्रे मार्केट द्वारा उत्पन्न की गई समस्याओं से निपटने के लिये एक कारगर रणनीति के बारे में सोचना होगा।

नकली उत्पाद अपने आप में एक उद्योग हैं। नकली लेबल, पैकेजिंग आदि बनाने वाले कई छद्म उद्यम हैं, ऐसे कई उत्पाद हैं जो सफल उत्पाद के समान नाम रखते हैं। एचयूएल ने वॉशिंग पाउडर के दर्जनों निर्माताओं की पहचान की है, जो सर्फ के समान एक ब्रांड नाम का उपयोग करते हुए उत्पाद बेचते हैं। यह एचयूएल के बौद्धिक संपदा अधिकारों का प्रत्यक्ष उल्लंघन है।

सामाजिक पूंजी

इसे भारत में पहचान या चीन में गुआंशी के रूप में भी परिभाषित किया गया है। सामाजिक पूंजी को वास्तविक या संभावित संसाधनों के एकत्रीकरण के रूप में परिभाषित किया गया है, जो आपसी परिचय और मान्यता के संबंधों से जुड़े हैं (बोर्दिऊ 1983)। इसे जुड़ावों या संबंधों के रूप में भी जाना जा सकता है। पूंजी के अन्य रूपों के विपरीत, सामाजिक पूंजी इसके उपयोग से कम नहीं होती है; इसके बजाय, इसका उपयोग न होने से यह कम हो जाती है।

लोग उन लोगों के साथ व्यापार करना पसंद करते हैं, जिन्हें वे जानते हैं। इसके विपरीत, यदि आप सही लोगों को जानते हैं तो व्यवसाय करना आसान हो जाता है। वे लोग उद्योग में या नौकरशाही में हो सकते हैं। जब रिश्ते निष्पक्षता और सिद्धांतों पर वरीयता प्राप्त कर लेते हैं, तो वे क्रोनवाद और भाई–भतीजावाद की ओर चले जाते हैं। कभी–कभी, ये रिश्ते आपके सामाजिक समूह या जाति और रिश्तेदारी से जुड़े लोगों के प्रति विशेष एहसान करने के लिये हुआ करते हैं।

पोर्ट्स (1998) ने सामाजिक पूंजी के दुरुपयोग के निम्न नकारात्मक परिणामों की पहचान की है :

(क) मेधावी बाहरी लोगों को बाहर करना,

(ख) समूह के सदस्यों पर अत्यधिक दावा,

(ग) व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर प्रतिबंध एवं

(घ) निचले स्तर के लक्ष्य।

सामाजिक पूंजी को मापना मुश्किल साबित हो सकता है, लेकिन यह इस बात पर निर्भर करता है कि आप कितने लोगों को जानते हैं, वे लोग कितने शक्तिशाली हैं और वे आपके लिये क्या करने को तैयार हैं। उद्यमियों के ऐसे कई मामले हैं, जिन्होंने सही लोगों को जान कर और अपने लाभ के लिये इनका उपयोग करके लाभ उठाया है।

इसी तरह, व्यापार की विफलता के कई ऐसे मामले होंगे, जिन्हें कुछ महत्वपूर्ण व्यक्तियों के साथ घनिष्ठ संबंध नहीं होने के लिये जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। व्यावसायिक उद्देश्य के लिये सामाजिक पूंजी का उपयोग सही है या गलत, इसके लिये लंबे समय तक तर्क–वितर्क किया जा सकता है, लेकिन इसका अस्तित्व एक वास्तविकता है जिससे हर उद्यमी को निपटना है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

7. 'ब्यूरोक्रेसी' शब्द दो शब्दों के मेल से बना है। इसमें 'ब्यूरो' शब्द फ्रांसीसी है, पर इसमें लगा 'क्रेटोस' प्रत्यय किस भाषा का है?

   (क) लेटिन (ख) अमेरिकी

   (ग) ग्रीक (घ) जर्मन

8. सामाजिक पूंजी को वास्तविक या संभावित संसाधनों के एकत्रीकरण के रूप में किसने परिभाषित किया है?

   (क) बोर्दिऊ (ख) रिचर्ड केण्टीलोन

   (ग) फ्रेंक नाइट (घ) एफ.बी. हाने

1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (घ)
2. (क)
3. (ख)
4. (ग)
5. (घ)
6. (ख)
7. (ग)
8. (क)

1.7 सारांश

उद्यमी शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फ्रांस में प्रमुख सैन्य अभियानों के लिये 16वीं शताब्दी में किया गया था। 17वीं शताब्दी में नागरिक अभियान्त्रिक के क्षेत्र में जैसे पुल, बंदरगाह, सड़क, किले आदि का निर्माण करवाने वाले ठेकेदारों के लिये उद्यमी शब्द का प्रयोग किया जाता था। परन्तु 18वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही उद्यमी शब्द का प्रयोग आर्थिक क्रियाओं के सम्बन्ध में किया जाने लगा। पेरेर ब्रदर्स ने सन् 1857 में फ्रांस में एक उद्यमी बैंक की स्थापना की और तब से ही व्यवसाय में इस शब्द का प्रयोग व्यवस्थित रूप से शुरू हो गया।

सामान्य तौर पर एक नवीन उपक्रम शुरू करने वाला व्यक्ति उद्यमी कहलाता है। उत्पादन के आवश्यक साधनों को जुटाता है तथा व्यवसाय की क्रियाओं का प्रबंध एवं नियंत्रण करता है। वह व्यवसाय के विभिन्न जोखिमों (Risk) को झेलता है और व्यवसाय में आने वाली चुनौतियों का सामना करता है। उद्यमी का मुख्य कार्य जोखिमों को वहन करना है, किन्तु आधुनिक युग में इसे उद्यमी का एक मात्र लक्षण नहीं माना जा सकता है।

टिप्पणी

विकासशील अर्थव्यवस्था में उद्यमी को एक संगठनकर्ता, समन्वयकर्ता तथा प्रवर्तक के रूप में देखा गया है। इस दृष्टिकोण के अनुसार उद्यमी उस व्यक्ति को माना जाता है, जो किसी नये उपक्रम की स्थापना करता है। उत्पादन के साधनों को एकत्र करता है, उनमें समन्वय स्थापित करता है और प्रबंधकीय निर्णय लेता है।

व्यवसाय की भावी अनिश्चितताओं का सामना करने व जोखिम उठाने की भावना उद्यमिता में निहित होती है। व्यवसाय में अनेक जोखिमों का ठीक–ठीक पूर्वानुमान लगाना अत्यंत कठिन होता है। उद्यमी अपनी विवेकपूर्ण योजनाओं एवं ठोस निर्णयों से जोखिमों का सामना करते हुए वर्तमान संसाधनों को भावी आवश्यकताओं की पूर्ति में विनियोजित करता है, और ऐसा वह साहस व जोखिम उठाने की क्षमता के आधार पर ही करता है।

लघु व्यवसायों में प्रबंध व संचालन का कार्य स्वयं उद्यमी द्वारा किया जाता है। किन्तु बड़े–बड़े उपक्रमों में उद्यमी एवं प्रबंधक अलग–अलग होते हैं। कम्पनी में उद्यमी प्रवर्तक का कार्य करता है। किसी भी उपक्रम में प्रबंध ही समस्त साहसिक निर्णयों व योजनाओं के क्रियान्वयन का माध्यम होता है। अतः प्रवर्तक उद्यमी प्रबंध के द्वारा ही व्यवसाय में नये–नये परिवर्तन व सुधार लाता है।

उद्यमी के कार्य का स्वरूप बहुत विस्तृत है। वह सिर्फ वस्तुओं के उत्पादन एवं वितरण तक ही सीमित नहीं होता है। उद्यमी को उपक्रम की स्थापना से लेकर वस्तुओं के विक्रय तक अनेक कार्य करने होते हैं। वह समाज में व्यावसायिक क्रियाओं की पहल करता है, आर्थिक गतिशीलताओं को जन्म देता है और सामाजिक रूपान्तरण की अनेक क्रियाओं को सम्पादित करता है। इस तरह उद्यमी अनेक ऐसे कार्यों को सम्पादित करता है, जिससे राष्ट्र एवं समाज का विकास हो सके।

नवप्रवर्तन एवं आर्थिक विकास को उद्यमी का सर्वाधिक विशिष्ट कार्य समझा जाता है। उद्यमी समाज में नये मूल्यों, उच्च जीवन स्तर, नवीन संतुष्टियों तथा नवीन उपयोगिताओं के लिये लगातार खोज करता रहता है। वह अपनी प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति में सुधार करने, समाज को अधिकतम संतुष्टि प्रदान करने के लिये नवप्रवर्तनों का विकास करता है। वह अनुसंधान तथा सृजनात्मक चिंतन के द्वारा अपनी वस्तु तथा उत्पादन प्रणाली में नये–नये सुधार करता है।

नवप्रवर्तन विचारधारा के प्रतिपादक जोसेफ शुम्पीटर के अनुसार–उद्यमी एक नवप्रवर्तक व्यक्ति है, जो नवाचार के द्वारा लाभ अर्जित करने की इच्छा रखता है। इसमें मनोवैज्ञानिक शक्तियां होती हैं, इन्हीं से वह अभिप्रेरित होता है। शुम्पीटर ने नवप्रवर्तन को उद्यमी का प्रमुख कार्य बतलाया है और कहा है कि उद्यमी का व्यवहार प्रत्येक स्थिति में सृजनात्मक होता है। इनके अनुसार उद्यमिता एक विश्लेषक के रूप में कार्य करती है, जो अर्थव्यवस्था के विद्यमान प्रवाह को तोड़ती है तथा विकास की प्रक्रिया में नई पहल तथा स्फूर्ति को प्रोत्साहित करती है।

1.8 मुख्य शब्दावली

- **उद्यमी** : नया उपक्रम शुरू करने वाला।
- **विदोहन** : उपयोग, लाभ उठाना।

टिप्पणी

- **नियोजन** : योजना बनाना।
- **प्रतिवेदन** : विवरण–पत्र।
- **अनुषंगी** : जुड़े हुए, सम्बंधित।

1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. उद्यमी का आशय स्पष्ट कीजिए।
2. उद्यमी की परिभाषा को कितने वर्गों में विभाजित किया जा सकता है?
3. उद्यमी का महत्व एवं उसकी विशिष्टताओं को संक्षेप में लिखिए।
4. उद्यमिता वर्ग का उद्‌भव किस प्रकार होता है?
5. उद्यमी के प्रमुख कार्य क्या हैं?
6. उद्यमी कितने प्रकार के होते हैं?
7. उद्यमी एवं प्रबंधक में क्या अंतर है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. उद्यमिता का नवप्रवर्तन सिद्धांत क्या है? इसके लक्षणों एवं विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।
2. सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत का प्रतिपादन किसने किया है? इस सिद्धांत की प्रमुख विशेषताएं बताइये।
3. उद्यमी की अवधारणा, महत्व एवं कार्यों पर विस्तृत टिप्पणी कीजिये।
4. उद्यमी को कितने आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है? स्पष्ट कीजिए।
5. उद्यमिता के समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों की विशेषता बताइए।
6. उद्यमिता विकास के प्रमुख लक्ष्यों का परिचय दीजिए।
7. उद्यमिता के सामने आने वाली प्रमुख समस्याओं का वर्णन करते हुए समाधान सुझाइये।

1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

जी.एस. सुधा, *उद्यमिता की अवधारणा*, रमेश बुक डिपो, 1995

एम.एल. झिंगन, *आर्थिक विकास में उद्यम वृत्ति*, कोणर्क पब्लिशर्स प्रा. लि. 1972

एस.सी. सक्सेना, *व्यवसाय प्रशासन एवं प्रबंध*, साहित्य भवन, आगरा, 2002

एस.के. गुप्ता, *उत्पादन की विधियां*, विशाल प्रकाशन मन्दिर, मेरठ, 1996

पाण्डेय एवं सिंह, *उत्पादन प्रबंध*, एपसाइलन पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., कानपुर, 1995

अंजनि कुमार मालवीय, *मानव संसाधन प्रबंध*, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2009

डॉ. आर.एस. कुलश्रेष्ठ, *औद्योगिक अर्थशास्त्र*, साहित्य भवन, आगरा, 1992

इकाई 2 परियोजना प्रस्ताव

संरचना

टिप्पणी

2.0परिचय
- 2.1 उद्देश्य
- 2.2 परियोजना प्रस्ताव की आवश्यकता एवं उद्देश्य
  - 2.2.1 उद्यम स्थापना का विचार : प्रवर्तन
  - 2.2.2 परियोजना की पहचान एवं नियोजन
  - 2.2.3 परियोजना मूल्यांकन/आकलन
- 2.3 संगठन का स्वरूप
- 2.4 उत्पादन प्रबंधन
- 2.5 वित्तीय प्रबंधन
- 2.6 विपणन और उपभोक्ता प्रबंधन
  - 2.6.1 विपणन
  - 2.6.2 उपभोक्ता
- 2.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
- 2.8 सारांश
- 2.9 मुख्य शब्दावली
- 2.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
- 2.11 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

किसी व्यापार, विज्ञान या इंजीनियरिंग में किसी विशेष लक्ष्य की प्राप्ति हेतु जो विस्तृत कार्ययोजना बनायी और कार्यान्वित की जाती है, उसे परियोजना (Project) कहते हैं। इसके अन्तर्गत पूरे कार्य को छोटे–छोटे कार्यों के रूप में विभक्त करके उनका समयबद्ध क्रम प्रस्तुत किया जाता है। कौन सा काम कब आरम्भ होगा; कब समाप्त हो जायेगा; कितना धन और अन्य संसाधन लगेगा; समाप्ति पर मिलने वाला परिणाम क्या है; आदि का इसमें उल्लेख किया जाता है। परियोजना में कार्य की समय–सीमा (डेडलाइन) तय करना जरूरी है। इसके साथ ही हर परियोजना के लिये एक निश्चित राशि (बजट) निर्धारित होती है। सीधे शब्दों में कहें तो एक परियोजना उन कार्यों की शृंखला है, जिन्हें एक विशिष्ट परिणाम तक पहुंचने के लिए पूरा करने की आवश्यकता है। एक परियोजना को एक विशेष लक्ष्य प्राप्त करने के लिए आवश्यक इनपुट और आउटपुट के सेट के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है। परियोजनाएं हमें संगठित तरीके से वांछित परिवर्तन करने और विफलता की संभावनाओं को कम करने में मदद करती हैं। इसमें आम तौर पर अंतःसम्बंधित कार्यों की शृंखला शामिल होती है, जिन्हें नियत अवधि के लिये और कुछ आवश्यकताओं, सीमाओं, गुणवत्ता, प्रदर्शन तथा अन्य सीमाओं के भीतर निष्पादन के लिये योजनाबद्ध किया जाता है। किसी परियोजना की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार होती हैं– (1) एक स्थापित उद्देश्य, (2) एक शुरुआत और अंत के साथ एक परिभाषित जीवनकाल, (3) आम तौर पर, कई विभागों और पेशेवरों की भागीदारी, (4) आम तौर पर ऐसा कुछ कार्य जो पहले कभी नहीं किया गया है और (5) विशिष्ट समय, लागत एवं प्रदर्शन आवश्यकताएं।

टिप्पणी

इस इकाई में किसी उद्यम के लिये परियोजना प्रस्ताव निर्मित करने की आवश्यकता और उद्देश्य बताते हुए उसके संगठन के प्रारूप, उत्पादन प्रबंधन, वित्तीय प्रबंधन, विपणन एवं उपभोक्ता प्रबंधन जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- किसी उद्यम या व्यवसाय के लिये परियोजना प्रस्ताव तैयार करने की आवश्यकता एवं उद्देश्य से परिचय प्राप्त करेंगे;
- संगठन के स्वरूप, गुण–दोषों, प्रकारों एवं उनकी विशेषताओं से अवगत हो पाएंगे;
- उत्पादन प्रबंधन और उससे संबंधित दृष्टिकोणों के बारे में जानेंगे;
- वित्तीय प्रबंधन के अंतर्गत वित्तीय योजना, वित्त की प्रकृति एवं कार्य आदि से संबंधित जानकारी प्राप्त करेंगे;
- विपणन एवं उपभोक्ता प्रबंधन के अर्थ, परिभाषा, प्रकृति, उद्देश्य एवं प्रमुख सिद्धांतों से अवगत हो पाएंगे।

2.2 परियोजना प्रस्ताव की आवश्यकता एवं उद्देश्य

जब उद्यमी के मस्तिष्क में किसी उद्यम की स्थापना का विचार उत्पन्न होता है और वह उसे साकार रूप देने के लिए उसकी व्यापक रूप से जांच एवं अन्वेषण करता है कि विचार को क्रियान्वित किया जा सकता है। यदि हां तो फिर उद्यमी उसकी स्थापना करने का प्रयास करता है। अर्थात् उद्यमी उद्यम की स्थापना के लिये भूमि, यंत्र, कच्चा माल, सामग्री व श्रम शक्ति को एकत्रित करके उद्यम के आकार के अनुसार वित्त की व्यवस्था अन्वेषण, संसाधनों का एकत्रीकरण एवं वित्तीय व्यवस्था सारी प्रक्रिया प्रवर्तन कहलाती है। जिस व्यक्ति द्वारा ये क्रियाएं सम्पन्न की जाती हैं उसे प्रवर्तक कहते हैं।

2.2.1 उद्यम स्थापना का विचार : प्रवर्तन

सी.डब्ल्यू. गर्स्टनबर्ग के अनुसार, "प्रवर्तन से आशय व्यापार सम्बन्धी सुअवसरों की खोज करने, उनमें लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से पूंजी, सम्पत्ति और प्रबंधकीय योग्यता को व्यावसायिक संस्था के रूप में संगठित करने से है।"

ई.एस.भीड के अनुसार, "प्रवर्तन में चार तत्व निहित हैं–खोज, जांच, एकत्रीकरण एवं वित्त।"

एच.ई. हॉगलैण्ड के अनुसार, "प्रवर्तन एक विशिष्ट व्यावसायिक उपक्रम के निर्माण की प्रक्रिया है तथा निर्माण में भाग लेने वाली सभी क्रियाओं का योग ही प्रवर्तन है।"

सरल शब्दों में–''प्रवर्तन ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें किसी उद्यम की स्थापना का विचार उत्पन्न होने से लेकर उसकी वास्तविक स्थापना तक समस्त कार्यों को शामिल किया जाता है।''

प्रवर्तन के लक्षण

प्रवर्तन के कुछ प्रमुख लक्षण निम्नवत हैं–

1. प्रवर्तन का प्रारंभ किसी उद्यम की स्थापना के विचार से होता है और उसे प्रारंभ करने की स्थिति में लाने पर समाप्त हो जाता है।
2. प्रवर्तन किसी उद्यम के निर्माण की प्रक्रिया है।
3. प्रवर्तन उद्यम के निर्माण की आधारभूत एवं प्राथमिक सीढ़ी है।
4. प्रवर्तन सम्बन्धी विचार की उत्पत्ति किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के मस्तिष्क में हो सकती है। जिनके मस्तिष्क में उत्पत्ति का विचार आता है उन्हें उद्यमी कहते हैं।
5. प्रवर्तन उद्यम के निर्माण की विभिन्न क्रियाओं (व्यवसाय की खोज, जांच विभिन्न संसाधनों का एकत्रीकरण) तथा वित्तीय व्यवस्था है। जो व्यक्ति प्रवर्तन का कार्य करता है वह प्रवर्तक कहलाता है।

टिप्पणी

प्रवर्तन के चरण

प्रवर्तन के मुख्यतः चार चरण माने जाते हैं जो, निम्नलिखित हैं–

1. **व्यापारिक अवसरों की खोज** : इसका आशय प्रवर्तकों द्वारा किसी व्यवसाय को स्थापित करने की बात सोचने से है। कोई भी उद्योग किसी व्यक्ति की कल्पना एवं विचार शक्ति का परिणाम होता है। यह विचार ही प्रवर्तन की प्रथम सीढ़ी है। एक व्यापारिक सम्भावनाओं को जन्म देने वाले तीन कारण हो सकते हैं–
    1. किसी नई कम्पनी को प्रारंभ करने का विचार
    2. पूर्व स्थापित कम्पनी के विस्तार का विचार
    3. वर्तमान कम्पनियों को संयोजित (Combination) करने का विचार।
2. **विस्तृत अन्वेषण या जांच** : किसी नवीन उद्योग की स्थापना विस्तार या उद्योगों को संयोजित करने का विचार आने के पश्चात् इस बात की जांच करना आवश्यक है कि योजना/विचार के वास्तव में कार्यरूप में परिणत किया जा सकता है अथवा नहीं। बिना जांच पड़ताल के यदि योजना पर कार्य प्रारंभ कर दिया जाए तो संभव है कि योजना बाद में अलाभकारी सिद्ध हो या कठिनाइयों के कारण योजना को बीच में ही छोड़ना पड़े।
3. **विभिन्न व्यापारिक तत्वों का समन्वय** : विचारोत्पत्ति तथा विस्तृत अन्वेषण के पश्चात् योजना को कार्यरूप में परिणत करने के लिए विभिन्न व्यापारिक तत्वों को एकत्रित करने की व्यवस्था करनी होती है। इन व्यापारिक तत्वों के एकत्रीकरण में निम्न कार्य करने होते हैं–
    1. व्यवसाय के लिए उपयुक्त स्थान का चयन करना।
    2. व्यवसाय का आकार निर्धारित करना।
    3. व्यवसाय के स्थान को नकद या पट्टे पर खरीदना।
    4. प्लांट के निर्माण की व्यवस्था करना।
    5. उपकरणों को खरीदने का उपबन्ध करना।
    6. यांत्रिक विशेषज्ञों की खोज करना।

7. पेटेन्ट प्राप्त करना।
8. निर्माण, लेखा विभाग, क्रय–विक्रय विभाग आदि एक–एक अनुभवी की अधिकारी की नियुक्ति करना।

टिप्पणी

4. **पूंजी की व्यवस्था** : प्रवर्तन का चौथा महत्वपूर्ण सोपान है– कम्पनी के लिए पर्याप्त पूंजी की व्यवस्था करना। इसके लिये सर्वप्रथम वित्तीय योजना तैयार की जाती है, जिसके अंतर्गत यह निर्धारित किया जाता है कि पूंजी किस प्रकार किस–किस साधन द्वारा एकत्रित की जायेगी। अंशों, ऋणपत्रों आदि के रूप में विभिन्न प्रतिभूतियों की मात्रा एवं उनका पारस्परिक अनुपात निर्धारित करने के पश्चात् उनके विक्रय के लिये विनिमय बैंकों, दलालों तथा अभिगोपकों आदि की सेवाएं प्राप्त की जायेंगी, क्योंकि इनके बिना पूंजी निर्गमन की सफलता की आशा नहीं की जा सकती है।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहना प्रासंगिक है कि प्रवर्तन में वे सभी क्रियाएं शामिल होती हैं जो किसी कम्पनी को वैधानिक अस्तित्व प्रदान करने एवं स्थापना के लिए आवश्यक होती हैं।

2.2.2 परियोजना की पहचान एवं नियोजन

जब उद्यमी व्यापार/उद्यम के बारे जानकारी ले लेता है, उसे ठीक ढंग से समझ लेता है और निश्चय कर लेता है कि उसे इस उद्योग की स्थापना करनी है, तो सबसे पहले व्यापार योजना की रूपरेखा तैयार की जायेगी। व्यापार योजना की रूपरेखा उद्यमी स्वयं भी तैयार कर सकता है अथवा किसी पेशेवर व्यक्ति की सहायता से तैयार कर सकता है। यहां व्यापार योजना की रूपरेखा के चरण दिए गये हैं, जिनका अनुसरण करते हुए व्यापार योजना तैयार की जा सकती है।

प्रस्तावना

1. व्यापार का प्रारूप/नमूना।
2. व्यापार के उद्देश्य।
3. कम्पनी के नाम का सुझाव/कम्पनी के नाम का निर्धारण।
4. पता/स्थान।
5. स्वामित्व तथा वैधानिक अनुपात पर विचार–विमर्श करना तथा स्वामियों के अनुभवों पर विचार विमर्श करना।
6. कोषों की आवश्यकता का अनुमान लगाकर कोषों की प्राप्ति के अनुमानित साधनों को ज्ञात करना।

बाजार विश्लेषण

बाजार विश्लेषण के अंतर्गत निम्न निर्णय लिया जायेगा–

1. बाजार कहां है?
2. बाजार प्रवृत्ति कैसी है?
3. प्रतिस्पर्धा कैसी है?
4. प्रतिस्पर्धी कौन है?

उत्पाद विश्लेषण

व्यापार योजना की रूपरेखा में उत्पाद का विश्लेषण करते समय उद्यमी के मस्तिष्क में निम्न प्रश्न होंगे–

टिप्पणी

1. उत्पाद अथवा सेवाएं क्या हैं?
2. उत्पाद अथवा सेवा प्रतिस्पर्द्धा में कहां आगे है?
3. पूर्तिकर्त्ता कौन होगा?
4. उत्पादन इकाई के लिये उत्पादन में किस–किस सामग्री की आवश्यकता है?
5. कच्चा माल/उत्पादन सामग्री कहां से आयेगी?
6. उत्पादन की विधि/प्रक्रिया क्या होगी?
7. उत्पादन कार्य के लिए कौन–कौन सी मशीनों की आवश्यकता होगी?

वित्तीय विश्लेषण

वित्तीय विश्लेषण के समय निम्नवत होगा–

1. प्रारंभिक पूंजी की आवश्यकता की अनुमानित मात्रा तथा पूंजी प्राप्ति के साधन।
2. परिचालन का मासिक बजट।
3. प्रथम वर्ष का अनुमानित रोकड़ प्रवाह तथा प्रथम वर्ष के दौरान अनुमानित आय (प्राप्ति)।
4. सम–विच्छेद बिन्दु (ऐसा समय बिन्दु जब उद्यमी लाभ प्राप्त करना शुरु कर देगा)।

बाजार रणनीति

बाजार रणनीति के तहत निम्नवत आते हैं–

1. उत्पाद/वस्तु और सेवा प्रस्तुत करना।
2. वस्तुओं व सेवाओं का मूल्य।
3. ग्राहकों की संतुष्टि के लिये लक्ष्य को पहचानना।
4. बाजार के आकार को परिभाषित करना।
5. विज्ञापन तथा विज्ञापन के माध्यमों की योजना–आंतरिक विज्ञापन, बाहरी विज्ञापन।
6. उत्पाद का वितरण तथा विक्रय किस प्रकार होगा?
7. उत्पाद की सेवाओं के बारे में निर्णय (यदि उत्पाद है, या इलेक्ट्रोनिक वस्तुओं के आय तक है तो)।
8. विशेष संवर्द्धक प्रस्ताव।

गृहीत नीतियां

गृहीत नीतियों के अन्तर्गत निम्नांकित आते हैं–

1. अनुमानित श्रम–शक्ति की आवश्यकता।
2. आवश्यक कौशल।

टिप्पणी

3. वेतन तथा मजदूरी।
4. स्वीकृत/गृहीत नीतियों की परिभाषा।
5. उत्तरदायित्वों को चिन्हित करना/पहचान करना।
6. प्रशिक्षण की आवश्यकता।

प्रबंध

प्रबंध के अन्तर्गत निम्न हैं–

1. व्यावसायिक संगठन का स्वरूप (एकल स्वामित्व/साझेदारी निजी कम्पनी/सार्वजनिक कम्पनी/लाभरहित आदि)।
2. संचालक मण्डल का विस्तृत विवरण।
3. अधिकारियों का विवरण।

उपयुक्त सभी तथ्यों को देखने के पश्चात् कार्यों का चयन करना चाहिए। उद्यमी को अपने व्यवसाय की योजना के सम्बन्ध में बहुत कठोर नहीं होना चाहिए। व्यवसाय की रूपरेखा बनाते समय लचीला होना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि उद्यमी जब व्यवसाय को प्रारंभ करता है, उसके सामने बहुत से परिवर्तन आयेंगे, बहुत विकल्प मिलेंगे उद्यमी को उन विकल्पों व परिवर्तनों के साथ आगे बढ़ना चाहिए ताकि व्यवसाय को सफलतापूर्वक चलाया जा सके।

परियोजना का अर्थ एवं परिभाषा : परियोजना तैयार करना उद्यमी द्वारा मूलभूत निश्चित उद्देश्यों, अनुसूचियों, बजट एवं समय के अधीन कार्य पूरा करने की योजना है। संगठन की सफलता तथा असफलता परियोजना पर निर्भर करती है।

शब्दकोश के अनुसार, परियोजना का अर्थ है– एक योजना, नमूना अथवा किसी चीज की प्राप्ति के लिये बनाया गया प्रस्ताव। नवीकरण किसी परियोजना कार्यक्रम का सम्पूर्ण रूप है।

गिलिंगा के अनुसार, ''परियोजना उन समस्त गतिविधियों का मिश्रण है, जो संसाधनों का प्रयोग करके लाभ प्राप्त करने में प्रयोग की जाती है।''

प्रबंध एनसाइक्लोपीडिया के अनुसार, ''परियोजना एक संगठित इकाई है, जो लक्ष्य की प्राप्ति हेतु समर्पित है। एक विकासशील परियोजना को समय में बजट के अंदर तथा पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुरूप सफलतापूर्वक सम्पन्न किया जाता है। सरल शब्दों में, परियोजना से आशय पूंजी विनियोजन के किसी भी ऐसे अवसर से है, जिसका लाभ प्राप्त करने के लिए विदोहन किया जा सकता है।

परियोजना के उद्देश्य

एक परियोजना के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते हैं–

1. वस्तुओं/सेवाओं के उत्पादन में वृद्धि करना।
2. वस्तुओं व सेवाओं की उत्पादकता में वृद्धि करना।
3. पूर्व स्थापित परियोजनाओं की क्षमता में वृद्धि करना।
4. कम जोखिम पर लाभ दर में वृद्धि करना।
5. वर्तमान संसाधनों के प्रयोग को अनुकूल बनाने के लिये प्रयासरत।

परियोजना की विशेषताएं

टिप्पणी

परियोजना की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं–

1. प्रत्येक परियोजना के निर्धारित उद्देश्य होते हैं। उद्देश्य प्राप्त करते ही परियोजना समाप्त हो जाती है।
2. प्रत्येक परियोजना का अस्तित्व एकाकी होता है।
3. प्रत्येक परियोजना का एक निश्चित जीवनकाल होता है।
4. प्रत्येक परियोजना में अद्वितीयता का गुण पाया जाता है।
5. परिवर्तन जीवन का नियम है। परियोजना पर यह नियम शत–प्रतिशत लागू होता है। एक परियोजना को अपने जीवनकाल में अनेकों परिवर्तनों से होकर गुजरना पड़ता है।
6. प्रत्येक परियोजना ग्राहकों की आवश्यकतानुसार तैयार की जाती है।
7. प्रत्येक परियोजना में जोखिम तत्व विद्यमान रहता है।
8. परियोजना की सफलता दलीय कार्य (Team-Work) पर निर्भर करती है।
9. परियोजना में अनिश्चितता का पर्यावरण होता है।
10. परियोजना में विभिन्नता में एकता पायी जाती है।

परियोजना एक पूर्ण परिभाषित उद्देश्यों वाली आर्थिक क्रिया है, जिसकी एक विशेष शुरुआत एवं अंत होता है।

परियोजना का महत्व

परियोजना के महत्व को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है–

1. परियोजना विकास प्रक्रिया को प्रारंभ करती है।
2. आर्थिक विकास एवं उन्नति में तेजी लाने वाले कारकों के रूप में कार्य करती है।
3. सेवाओं की प्रकृति के आधार पर भविष्य को निर्धारित करती है।
4. समय के अनुसार आवश्यक बदलाव लाने का प्रयास करती है।
5. सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास की गति को तीव्र करने में सहायक होती है।
6. संगठन के भविष्य की गतिविधियों का खाका प्रस्तुत करती है।
7. वातावरण एवं मूल ढांचे के विकास में अपना योगदान देती है।

व्यावसायिक परियोजना का चयन

संगठन की सफलता पूरी तरह से उचित प्रकार की परियोजना के चुनाव पर ही निर्भर करती है। परियोजना की पहचान आर्थिक आंकड़ों को एकत्र करने, जोड़ने तथा विश्लेषण करके निवेश के सम्भावित अवसरों को खोजने से जुड़ी होती है। परियोजना के विचार विभिन्न स्रोतों या विभिन्न कारणों जैसे–रिश्तेदारों की सफलता की कहानियों, विशेष उत्पादों की मांग, मित्रों की व्यावसायिक सफलता, दूसरों के उत्पादन एवं बिक्री से सम्बन्धित अनुभव, किसी आयात किये जाने वाले उत्पादन का विकल्प बनाने का अवसर या फिर वह उत्पाद जिसकी मांग अधिक से तथा अधिक प्रेरणा, पृष्ठभूमि एवं

उद्यमी तथा उसके सहयोगियों की क्षमता से उत्पन्न होते हैं। परियोजना पहचान विनियोजन के सम्भावित अवसरों को ज्ञात करने के उद्देश्य से किया गया है। आर्थिक आंकड़ों का संग्रह, संकलन एवं विश्लेषण है।

टिप्पणी

अवसर से आशय

संयोग स्थिति से लाभ उठाने का नाम ही अवसर है। यह अल्पकालीन एवं अस्थायी दोनों प्रकार का होता है। कुछ लोग अवसर का लाभ उठा लेते हैं और कुछ लोग अवसर निकल जाने पर हाथ मलते रह जाते हैं। उदाहरण के लिये सरकार ने देश मे लघु उद्योगों के विकास के लिए प्रेरणा देने की घोषणा की है। अवसर का लाभ उठाकर कुछ लोग तुरंत आगे बढ़ते हैं और नये छोटे–छोटे कारखाने की स्थापना करते हैं और अच्छा लाभ भी कमाते हैं, जबकि कुछ सोचते ही रहते हैं।

सामान्यतः अवसर दो प्रकार के होते हैं–

1. **पर्यावरण में विद्यमान अवसर :** कागज निर्मित करने का कारखाना स्थापित करना, जूता कारखाना स्थापित करना व उनका निर्यात करना।
2. **निर्मित अवसर :** टेलीविजन, कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर आदि के क्षेत्र में विशाल पैमाने पर अनुसंधान होने के कारण बड़ी मात्रा में उद्यमियों के रोजगार प्रारंभ करने के अवसर प्राप्त होना आदि।

विख्यात प्रबंध विशेषज्ञ पीटर एफ. ड्रकर द्वारा विनियोजन के निम्न तीन अवसरों का पता लगाया गया है–

1. **योगज अवसर :** योगज अवसर निर्णय लेने वाले को विद्यमान संसाधनों का, व्यवसाय के चरित्र को बिना प्रभावित किये उपयोग करने में सहायता प्रदान करते हैं।
2. **पूरक अवसर :** पूरक अवसरों से आशय नवीन विचारों को लागू करने से है, जिनके कारण विद्यमान संरचना में परिवर्तन आता है; एवं
3. **भंग अवसर :** भंग अवसरों में व्यवसाय के चरित्र एवं संरचना में मूलभूत परिवर्तन निहित है। इन तीनों सहयोग से परियोजना का प्रवाह निरंतर चलता रहता है। योगज अवसरों में जोखिम का तत्व सबसे कम होता है। इसका कारण यह है कि याोगज अवसरों में व्यवसाय की विद्यमान दशा में सबसे कम बाधाएं उत्पन्न होती हैं। फिर यदि जोखिम का तत्व अधिक हो जाए तो परियोजना विचार के क्षेत्र एवं प्रकृति की पुनः व्याख्या की जानी चाहिए और परियोजना के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए वैकल्पिक समाधान विकसित किए जाने चाहिए।

परियोजना पहचान की आवश्यकता

परियोजना की सही पहचान करने से उद्यमी की सफलता सुनिश्चित होती है। यद्यपि परियोजना की पहचान करने के लिए कोई स्पष्ट नियम एवं नियमन नहीं है, फिर भी अधिकांश उद्यमी परियोजना की पहचान करने के लिए अपने अनुभव एवं मस्तिष्क का ही सहारा लेते हैं। यदि कुछ उद्यमी उत्पादन/निर्णय के किसी विशिष्ट क्षेत्र में प्रवेश कर गये हैं और उसमें सफल रहे हैं, तो सामान्य उद्यमी भी उसी का अनुकरण करते हैं। धीरे–धीरे उक्त परियोजना में प्रवेश करने वाले उद्यमियों की संख्या इतनी अधिक

टिप्पणी

हो जाती है कि वह लाभ प्रदान करने वाली परियोजना हानि देने वाली परियोजना में बदल जाती है। यह कोई स्वस्थ प्रवृत्ति नहीं है। यदि एक परियोजना किसी विशिष्ट उद्यमी के लिये सफल रही है, तो इस बात का कोई गारण्टी नहीं है कि वह परियोजना अन्य उद्यमियों के लिए भी सफल होगी। इसका ज्वलंत उदाहरण फिरोजाबाद में जैनरेटर सेट का निर्माण करने वाले उद्योग हैं। कुछ वर्ष पूर्व यह उद्योग उन्नति के उच्चतम शिखर पर था और इस उद्योग में संलग्न उद्यमी भी बहुत लाभ कमा रहे थे वे निरंतर सम्पन्नता की ओर अग्रसर हो रहे थे। इस उद्योग में कार्यरत अधिकांश उद्यमी तकनीकी दृष्टि से परिपक्व थे। इसकी चकाचौंध से प्रभावित होकर धीरे–धीरे अनेक ऐसे उद्यमी इस उद्योग में प्रवेश कर गये जिनके पास इस उद्योग से सम्बन्धित तकनीकी ज्ञान लगभग शून्य था। इसका परिणाम यह हुआ कि शीघ्र ही लाभ प्रदान करने वाली यह परियोजना (उद्योग) हानिप्रद परियोजना में परिवर्तित हो गई, जिसके फलस्वरूप कई उद्यमी तो दिवालिया तक हो गये, इसलिये आवश्यक है कि भावी उद्यमियों के लिये परियोजना की पहचान होना आवश्यक है।

परियोजना की पहचान का महत्व

परियोजना/व्यवसाय की पहचान का महत्व निम्नलिखित कारणों से है–

1. पूर्व में पहचानी हुई परियोजना आर्थिक विकास में गति लाने का कार्य करती है।
2. परियोजना की सही पहचान आय एवं रोजगार में वृद्धि की प्रक्रिया को आरंभ करती है।
3. पहचानी हुई परियोजना संगठन द्वारा भविष्य में की जाने वाली प्रक्रियाओं तथा सेवाओं के निर्देश उपलब्ध कराती है।
4. पहचानी हुई परियोजना से दीर्घकालिक लाभ प्राप्त होते हैं।
5. पहचानी हुई परियोजना सामाजिक एवं आर्थिक विकास को गति प्रदान करती है।
6. परियोजना पहचान का परिणाम मूलभूत सुविधाओं तथा वातावरण का विकास करना होता है।
7. परियोजना में साधारणतया बार–बार संशोधन नहीं किया जाता है।

परियोजना पहचान में स्वॉट (SWOT) का उपयोग

परियोजना/उद्योग की पहचान करने में स्वॉट (SWOT) शब्द चार बातों को व्यक्त करता है–

S = Strength – संस्था की शक्तियां, ताकत, अथवा मजबूती

W =Weaknesses – संस्था की कमियां

O =Opportunities– संस्था को उपलब्ध होने वाले अवसर

T= Threats – संस्था के सम्मुख वर्तमान एवं भावी चुनौतियां

SWOT व्यावसायिक संस्था के आंतरिक विश्लेषण का एक उपकरण है, जिसके आधार पर संस्था को आत्मचिंतन का अवसर मिलता है। SWOT संस्था एवं उसके वातावरण के सम्बन्धों एवं प्रभावों की जांच करता है। SWOT विश्लेषण की सहायता

से उद्योग/संस्था ऐसी सूचनाएं प्राप्त करती है, जो उसे संस्था के संसाधन व क्षमताओं की जानकारी प्रदान करती है।

टिप्पणी

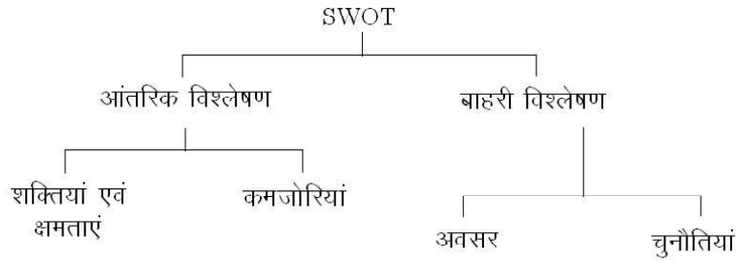

SWOT की विशेषताएं

स्वॉट की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. यह एक प्रबंधकीय तकनीक है।
2. स्वॉट नवीन परियोजनाओं से सम्बन्धित है।
3. स्वॉट का प्रयोग नई परियोजनाओं की पहचान करने के लिए किया जाता है।
4. स्वॉट से उद्यमी को उद्यम की शक्तियों एवं दुर्बलताओं का विश्लेषण करने की प्रेरणा मिलती है।
5. स्वॉट के अंतर्गत विद्यमान अवसरों एवं चुनौतियों का विश्लेषण किया जाता है।

नियोजन का आशय

नियोजन का आशय भविष्य के बारे में अनुमान लगाना है। नियोजन पर ही प्रबंध के सभी कार्य आश्रित होते हैं। नियोजन में इस बात का निर्णय लिया जाता है कि क्या करना है, कहां करना है, कब करना है कैसे करना है तथा किस व्यक्ति द्वारा किया जाना है। नियोजन हेतु पर्याप्त अध्ययन, चिंतन व मनन की आवश्यकता होती है। प्रबंध की प्रक्रिया नियोजन से प्रारंभ होती है तथा नियोजन पर समाप्त मानी जाती है। नियोजन का प्रयोग संगठन के सभी स्तरों संगठन की स्थापना के समय, नियुक्तियां करने समय, निर्देश देते समय तथा नियंत्रण करते समय प्रबंधक करते हैं। नियोजन एक व्यापक एवं निरंतर प्रक्रिया है। व्यावसायिक संस्थाओं की जटिल समस्याओं का समाधान करने के लिए तथा समन्वित ढंग से उद्देश्यों को तथा लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सोच–विचार कर योजना बनाना तथा उसी योजना के अनुसार कार्य करना जरूरी होता है। व्यवसाय के प्रबन्ध में नियोजन के महत्व को सभी प्रबन्धक स्वीकार करते हैं।

नियोजन की परिभाषा

नियोजन के अंतर्गत भविष्य की आवश्यकताओं का पूर्वानुमान लगाया जाता है, जिससे निर्धारित लक्ष्यों की दृष्टि से किए जाने वाले वर्तमान प्रयासों को उनके अनुरूप बनाया जा सकता है।

व्यावसायिक नियोजन मुख्य रूप से कार्यों को व्यवस्थित रूप से करने, कार्य करने से पूर्व उस पर मनन करने और अनुमानों की तुलना में कार्यों के आधार पर करने का एक प्रकार का मानसिक चिंतन है।

कार्य की योजना से अभिप्राय उन परिणामों से है, जिनको प्राप्त करना है, कार्य की उस रूपरेखा से है जिसका पालन करना है, उन सभी अवस्थाओं से जिनसे होकर काम को गुजरना है तथा उन तरीकों से है जिनको प्रयोग किया जाता है।

टिप्पणी

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि नियोजन प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण अंग है, नियोजन के द्वारा ही प्रबन्ध अपने लक्ष्यों को निर्धारित साधनों के माध्यम से प्राप्त करने का प्रयास करता है और इस कार्य को कब किस प्रकार और कैसे करना है, इसका निर्धारण करता है, जिससे निर्धारित परिणामों की प्राप्ति सम्भव हो पाती है।

नियोजन के लक्षण अथवा विशेषताएं

नियोजन की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. **नियोजन प्रबंध का प्राथमिक कार्य है** : प्रबंध के अन्य कार्य संगठन, निर्देशन, आदि नियोजन पर ही आधारित होते हैं। नियोजन के बिना निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता है।
2. **नियोजन की सर्वव्यापकता** : नियोजन की आवश्यकता एक उपक्रम में प्रत्येक स्तर पर होती है। नियोजन कार्य केवल सर्वोच्च प्रबंधक का ही उत्तरदायित्व नहीं है वरन् इसका विस्तार मध्य प्रबंधक तथा निम्न प्रबंधक तक रहता है। इस प्रकार नियोजन का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। प्रबंध को अपने सभी कार्यों का नियोजन करना पड़ता है।
3. **नियोजन एक बौद्धिक एवं मानसिक प्रक्रिया है** : इस बौद्धिक प्रक्रिया में नियोजनकर्ता को सम्मानित कार्य पदों और विकल्पों में से एक का चयन करना होता है। ऐसे चयन के लिए नियोजनकर्ता को विश्लेषण करना होता है। नियोजन न केवल तत्काल उत्पन्न समस्या के समाधान में सहायक है, वरन् सम्भावित समस्याओं के बारे में भी मानसिक तौर पर विचार करता है और सम्भावित समस्याओं की खोज करता है।
4. **वैकल्पिक क्रियाओं में से सर्वोत्तम का चुनाव** : योजनाकार अपने उद्देश्यों की व्याख्या करके उन्हें प्राप्त करने के लिए उपलब्ध भिन्न तरीकों में से किसी एक तरीके का चुनाव करता है, जो कम से कम लागत व श्रम के द्वारा अधिकतम कार्य सिद्धि प्राप्त करा सके। चुनाव का यह निर्णयन नियोजन की मुख्य विशेषता है। इसी कारण उपक्रम की काफी कुछ सफलता चयन पर निर्भर करती है।
5. **नियोजन एक निरंतर प्रक्रिया है** : नियोजन एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। योजना की आवश्यकता केवल स्थापना के समय नहीं होती, अपितु सम्पूर्ण काल में रहती है यह कभी न समाप्त होने वाली प्रक्रिया है। निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये जरूरी है कि प्रभावी नियोजन का कार्य लगातार चलता रहे।
6. **निर्धारित लक्ष्य एवं उद्देश्य** : नियोजन संस्था द्वारा निर्धारित लक्ष्य तथा उद्देश्य की पूर्ति के लिये किया जाता है। नियोजन उद्देश्यों पर ध्यान केन्द्रित कर भविष्यवाणी कर सकता है कि अन्तिम उद्देश्य प्राप्त करने के लिये क्या–क्या क्रियाएं की जानी चाहिए।

टिप्पणी

7. **नियोजन पूर्वानुमान लगाना है** : नियोजन भविष्य की जोखिमों को स्पष्ट करके उपक्रम को इनका सामना करने के लिए सावधान करता है। पूर्वानुमान सांख्यिकीय एवं गणितीय पद्धतियों पर आधारित, वर्तमान परिवर्तनों से समायोजित कर भूतकालीन प्रवृत्ति के आधार पर भावी प्रवृत्तियों का अनुमान है।
8. **नियोजन एक चयन प्रक्रिया है** : नियोजन की समस्या उस समय उत्पन्न हो जाती है जब किसी कार्य के विभिन्न विकल्पों की खोज की जाती है।
9. **नियोजन एक लोचपूर्ण प्रक्रिया है** : नियोजन लोचपूर्ण होना चाहिए ताकि बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप इसमें आवश्यक परिवर्तन किया जा सके। नियोजन लोच का तत्व अनिश्चितताओं को दूर करने में सहायक सिद्ध होता है।
10. **नियोजन एक परस्पर आश्रित प्रक्रिया है** : किसी भी उपक्रम के कार्यक्रमों को अनेक भागों में विभाजित किया जाता है। इन सभी विभागों की अलग–अलग योजनाएं होती हैं, परंतु ये सभी योजनाएं उपक्रम की सामूहिक योजना का एक अंग होती है। ये विभागीय योजनाएं एक दूसरे पर निर्भर करती हैं।

नियोजन के उद्देश्य

नियोजन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. नियोजन द्वारा संस्था के भावी कार्यों की रूपरेखा निश्चित की जाती है, जिससे कार्यों की अनिश्चितता समाप्त हो जाती है।
2. नियोजन का एक मूलभूत उद्देश्य उपक्रम की कुशलता में वृद्धि करना है।
3. नियोजन उपक्रम की भावी जोखिम एवं संभावनाओं को परख कर जोखिमों में कमी लाने का प्रयास करता है।
4. नियोजन एक सुविचारित कार्यक्रम होता है, जिससे उपक्रम के आंतरिक एवं बाहरी व्यक्तियों को उपक्रम के सम्बन्ध में समुचित सूचना एवं जानकारी प्राप्त होती है।
5. नियोजन का महत्वपूर्ण उद्देश्य भविष्य के सम्बन्ध में पूर्वानुमान लगाना है।
6. नियोजन निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए निरंतर प्रयत्न करते रहता है।
7. नियोजन का मुख्य उद्देश्य किसी कार्य विशेष को करने के लिए उसकी रूपरेखा तैयार करना और उसे विशिष्ट दिशा प्रदान करना है।
8. नियोजन का उद्देश्य उपक्रम की समस्त गतिविधियों में एकात्मकता व समन्वय स्थापित करना है।
9. प्रत्येक संस्था के पास पूंजी, मशीन व मानवीय संसाधन सीमित मात्रा में उपलब्ध होते हैं, इन सीमित साधनों से अधिकतम उत्पादन करना नियोजन का ही उद्देश्य है।

नियोजन के महत्व अथवा लाभ

व्यवसाय में नियोजन का महत्वपूर्ण स्थान है। बिना नियोजन के व्यवसाय उसी प्रकार होता है जिस प्रकार बिना नाविक के जहाज। नियोजन के बिना किये गये कार्य केवल भ्रम, सन्देह ही उत्पन्न होते हैं। व्यवसाय में नियोजन के महत्व को निम्न तथ्यों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

टिप्पणी

1. **उद्देश्य प्राप्ति में सहायक** : सभी व्यावसायिक संस्थाओं के उद्देश्य पूर्व–निर्धारित होते हैं और इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नियोजन किया जाता है। नियोजन उनकी प्राप्ति का सर्वोत्तम ढंग निर्धारित करता है। नियोजन इन उद्देश्यों के लक्ष्यों पर प्रबंधकों का ध्यान केन्द्रित करने और उन्हें उचित साधनों से प्राप्त करने में सहायक होता है।
2. **समन्वय में सहायता** : संस्था के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए नियोजन उसके विभिन्न कार्यों में समन्वय स्थापित करता है। यह एक ही लक्ष्य पर पहुंचने के लिए बिखरे हुए और जटिल कार्यों को समन्वित करता है, ताकि कोई कार्य दोबारा न किया जाए और विभिन्न कार्य आपस में रुकावट पैदा न करें।
3. **प्रभावी नियंत्रण सम्भव** : नियोजन द्वारा प्रभावी नियंत्रण हेतु मापदण्ड प्रस्तुत करता है जिसके आधार पर कर्मचारियों की प्रगति का मूल्यांकन किया जाता है।
4. **साधनों का कुशलतम उपयोग** : नियोजन द्वारा संस्था के उपलब्ध एवं भावी साधनों का समुचित उपयोग सम्भव होता है। साधनों के उपयोग का कार्यक्रम भी नियोजन द्वारा ही बनाया जाता है।
5. **मितव्ययी संचालन में सहायक** : नियोजन द्वारा उत्पादन सामग्री, उत्पादन विधियों, मानवीय शक्तियों तथा मशीनों आदि में मितव्ययिता लाने का प्रयत्न किया जाता है, जिससे उत्पादन लागत में कमी आती है। नियोजन साधनों का कुशलतम ढंग से प्रयोग सम्भव बनाकर मितव्ययिता प्राप्त करता है।
6. **प्रबंधकों की कार्य क्षमता में वृद्धि** : प्रबंध के कार्यों की सफलता नियोजन पर निर्भर करती है। नियोजन द्वारा ही प्रबंध तंत्र संस्था के प्रत्येक पहलू पर नजर रखता है और आवश्यकतानुसार सही निर्देश देता है। नियोजन ही प्रबंधकों के कार्य में निश्चितता और नियमितता ला सकता है। प्रबंधक नियोजन के माध्यम से निश्चिन्त होकर प्रबंध कार्यों को अधिक कुशलता से सम्पन्न करते हैं।
7. **संगठन को अधिक प्रभावशाली बनाना** : नियोजन वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति में लगने वाली अनावश्यक देरी तथा लालफीताशाही को समाप्त करके संगठन को प्रभावी बनाता है। नियोजन द्वारा क्रियाओं की अनावश्यक पुनरावृत्ति नहीं हो पाती है जिससे समय व श्रम दोनों की बचत होती है और संगठनात्मक कार्य कुशलता में वृद्धि होती है।
8. **अनिश्चितताओं एवं परिवर्तनों को कम करने में सहायक** : भविष्य सदैव ही अनिश्चित एवं परिवर्तनशील होता है। इस अनिश्चितता एवं परिवर्तनशीलता का सामना करने के लिए नियोजन की आवश्यकता होती है। नियोजन की सहायता से व्यवसाय की दीर्घकालीन प्रवृत्तियों का पता लगाया जाता है और प्रबंधक भविष्य के प्रति आश्वस्त हो जाता है।
9. **कर्मचारियों की संतुष्टि** : नियोजन करते समय कर्मचारियों की भावनात्मक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाता है। नियोजन द्वारा न्यायोचित वित्तीय एवं अवित्तीय सुविधाओं को ध्यान में रखकर व्यवस्था की जाती है, परिणामस्वरूप संतोष की भावना का विकास होता है।
10. **उपभोक्ताओं को लाभ** : कम लागत में अधिकतम उत्पादन होने के कारण उपभोक्ता को सस्ते मूल्य पर माल उपलब्ध हो जाता है।

टिप्पणी

व्यावसायिक अवसरों को प्रभावित करने वाले घटक

किसी भी परियोजना का प्रारंभ उसमें उपलब्ध अवसरों के विश्लेषण से होता है। अवसरों के विश्लेषण से तात्पर्य परियोजना के गुण, दोषों, जोखिमों, बाधाओं, कमियों आदि का व्यापक रूप से मूल्यांकन करना है। यह जांचना होता है कि कौन–कौन से घटक अवसरों की वृद्धि में सहायक सिद्ध होते हैं और कौन–कौन से बाधक होते हैं। निम्नलिखित घटक व्यावसायिक अवसरों को प्रभावित करते हैं–

1. **बाजार एवं मांग :** व्यावसायिक इकाई की सफलता उसके उत्पादन की मात्रा पर निर्भर करने के साथ–साथ, इस प्रतिस्पर्द्धात्मक युग में वह माल की कितनी मात्रा को बेच सकती है इस पर भी निर्भर करती है। इकाई वस्तु का उत्पादन एवं उपभोग के लिये नहीं करती, अपितु उसे बाजार में बेचने के लिये करती है, ताकि ग्राहक संतुष्ट हो सके तथा कम्पनी लाभ कमा सके। एक व्यावसायिक इकाई के उत्पादन की मांग बाजार में जितनी अधिक होगी, वह इकाई उतनी तीव्र गति से प्रगति के पथ पर अग्रसर होगी। आधुनिक उद्यमी उत्पादों का निर्माण नहीं करते अपितु वस्तु की मांग का निर्माण करते हैं। इस प्रतियोगी युग में मांग उत्पन्न करना तथा विक्रय करना सबसे अधिक चुनौतीपूर्ण कार्य है। वस्तु का बाजार जितना विस्तृत होगा, इकाई के अवसरों में उतनी अधिक वृद्धि होगी।
2. **संसाधन :** पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध संसाधन व्यावसायिक अवसरों में वृद्धि करते हैं। यदि संसाधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं होते हैं अवसर समाप्त हो जाता है। यदि संसाधन उपलब्ध है तो उनके बारे में पता लगाया जायेगा अर्थात् ज्ञात किया जाता है कि उनके स्रोत कहां हैं उन्हें कैसे प्राप्त किया जा सकता है। संसाधनों में सामान्यतः निम्न को शामिल किया जाता है–भूमि, भवन, कच्चा माल, प्रौद्योगिकी, यंत्र, मानव–शक्ति, सामग्री, स्थान अभिन्यास जहां यंत्र की स्थापना की जानी है तथा वित्तीय स्रोत।
3. **वित्त :** आधुनिक युग में वित्त पर ही सम्पूर्ण आर्थिक जगत निर्भर है। उद्योग अथवा व्यवसाय की कोई भी परियोजना वित्त के अभाव में प्रारंभ नहीं की जा सकती अथवा अधूरी पड़ी रह जाती है। अवसरों को प्राप्त करने के लिए वित्त अत्यंत महत्वपूर्ण घटक है। पूंजी आर्थिक एवं औद्योगिक विकास की आधारशिला है।
4. **सृजनात्मकता एवं नवाचार :** उद्यमिता एवं सृजनात्मकता में घनिष्ठ संबंध होता है। कहीं–कहीं तो उद्यमिता एवं सृजनात्मकता को ही अर्थ में प्रयोग किया जाता है। सृजनात्मक शक्ति नवाचार की प्राथमिक आवश्यकता है। सृजनात्मक शक्ति के बिना अवसर का लाभ नहीं उठाया जा सकता है। सृजनात्मक शक्ति नवीनता लाने की योग्यता है। सृजनात्मक शक्ति योग्यता के धारण से सम्बन्धित है जबकि नवाचार नये कार्यों को करने से सम्बन्धित है। बहुत से सफल उद्यमी इसलिये अवसर की पहचान कर पाते हैं क्योंकि उनमें विशेष सृजनशीलता का गुण पाया जाता है। सृजनात्मकता यह गुण व्यवसाय का निर्णय लेने में बहुत सहायक होता है इसलिए अवसर पहचान प्रक्रिया में इसका महत्वपूर्ण स्थान होता है। उद्यमिता प्रक्रिया में नये–नये विचार अच्छे विचार उद्यमी की अवसर खोज में सहायता प्रदान करते हैं।

टिप्पणी

5. **पूर्वज्ञान** : सूचना क्रांति के इस दौर में व्यक्ति अवसरों की खोज सूचनाओं के आधार पर करता है। ऐसी सूचनाएं जो उसे पहले से ज्ञात हैं। अवसरों के लिए पूर्वज्ञान तथा अनुभव प्राथमिक स्रोत है व्यक्ति का व्यवसाय के सम्बन्ध में पूर्व ज्ञान व अनुभव जितना ज्यादा होगा, वह उतना अधिक अवसरों का लाभ उठा सकता है अन्यथा नहीं।
6. **तकनीकी ज्ञान** : यह अवसर पहचान हेतु महत्वपूर्ण स्थान रखता है। तकनीकी ज्ञान के अंतर्गत तकनीकी विकल्पों, यंत्र की किस्म एवं आकार, उत्पादन विधि सयंत्र की क्षमता, कुशल श्रम शक्ति की उपलब्धता के बारे में जानकारी को शामिल किया जाता है, जिसके पास तकनीकी ज्ञान पर्याप्त है वह अवसरों का लाभ उठा सकता है अन्य नहीं। इस प्रकार स्पष्ट है कि तकनीकी ज्ञान किसी अवसर की खोज/पहचान का महत्वपूर्ण घटक है।
7. **व्यावसायिक पर्यावरण** : एक उद्यमी सदैव नये–नये व्यावसायिक अवसरों की खोज में रहता है, किन्तु यह कार्य सरल नहीं है। अवसर की खोज से पहले व्यावसायिक पर्यावरण के बारे में जानना अति आवश्यक है। व्यावसायिक पर्यावरण के अंतर्गत औद्योगिक नीति, किस्म नियंत्रण, लाइसेन्सिंग नीति, वितरण प्रणाली, नवाचार हेतु उपलब्ध सरकारी सुविधाएं हैं। नये अवसरों की पहचान के लिये व्यावसायिक पर्यावरण महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इनके ज्ञान के बिना नये उद्योग की खोज स्थापना असम्भव है।
8. **सजगता** : उद्यमी को व्यावसायिक वातावरण का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। उद्यमी को निरंतर अवसरों की खोज करनी चाहिए। कई बार सजगता की कमी के कारण ऐसे अवसरों में चूक हो जाती है जो एक उद्यमी को सफल बना सकते थे। नये सफल व्यवसाय की स्थापना की प्रक्रिया के लिये अवसरों की पहचान अत्यंत महत्वपूर्ण अवस्था है। सजगता के अभाव में आधारों की पहचान करना असम्भव है।

परियोजना प्रबंधन एवं सूत्रीकरण

परियोजना प्रबंधन योजना बनाने, संगइन करने, जांच करने, एवं एक परियेाजना पर नियंत्रण करने एवं एक परियोजना में विशिष्ट समय, लागत एवं प्रदर्शन के अन्तर्गत परियोजना उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संलिप्त सभी को अभिप्रेरित करने की एक प्रक्रिया है। अच्छी परियोजना योजित करना वृहदतर लाभप्रदत्ता एवं वृहदतर ग्राहक संतुष्टि में परिणत होती है। इसलिए उद्यमिता विकास के लिए एक परियोजना को अच्छी तरह स्थापित करना आवश्यक है।

परियोजना अभियोजन की प्रक्रिया

परियोजना चिह्नितीकरण एवं सूत्रीकरण की वर्तमान अध्याय में चर्चा की गई है। परियोजना समाधान स्वचालित रूप से परियोजना मूल्यांकन पश्चात घटित होता है।

परियोजना चिह्नितीकरण

एक नई परियोजना चिन्हित करना एक जटिल समस्या है एवं यह विभिन्न कोणों से सावधानीपूर्ण विश्लेषण संलिप्त करता है। कुछ स्रोत जिनसे एक परियोजना धारणाएं प्रकट होती हैं, निम्न प्रकार हैं–

टिप्पणी

1. **विद्यमान उद्योगों का विश्लेषण एवं प्रदर्शन** : एक विद्यमान उद्योग का प्रदर्शन एक विशेष उद्योग के स्वास्थ्य के बारे में एक अच्छा संकेतक प्रदान करता है। विभिन्न उद्योगों की लाभप्रदता का एक विश्लेषण विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों के वित्तीय स्वास्थ्य के बारे में पर्याप्त सूचना प्रदान करेगा। यद्यपि प्रदर्शन को एक अवसर चिन्हित करने के लिए एक मात्र कसौटी के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए, बल्कि व्यापार चक्रण की अवस्था जिसमें विभिन्न उद्योग एक विशिष्ट समय पर खड़ी होती है बहुत निर्णायक है। एक विशिष्ट औद्योगिक क्षेत्र भली–भांति प्रदर्शन कर सकता है, परन्तु यह अपनी संतृप्ति अवस्था पूर्व ही पार कर चुका हो सकता है एवं अपने व्यापार चक्र की क्षीण अवस्था से पूर्व ही गिर चुका हो सकता है। इस प्रकार के कारक किसी प्रमुख निर्णय निर्मित करने पूर्व सावधानीपूर्वक विश्लेषित किए जाने हैं।
2. **कच्चे मालों की उपलब्धता** : सस्ते मूल्यों पर अच्छी गुणवत्ता वाले कच्चे मालों की सरल उपलब्धता कच्चे मालों की उपलब्धता पर आधारित नई परियोजनाओं को प्रारम्भ करने के लिए एक अवसर प्रदान करती है।
3. **कुशल श्रम की उपलब्धता** : स्थानीय रूप से उपलब्ध कुशल श्रमिक शक्ति के आधार पर, उपयुक्त उद्योग जो कुशल मानव शक्ति का बेहतर उपयोग निर्मित कर सकते हैं पहचाने जा सकते हैं।
4. **आयात/निर्यात अनुपात** : आयात/निर्यात अनुपात एवं सांख्यिकी संम्भाव्यता को जो बिना उपयोग किए रह गये हैं, प्रकट कर सकती है। एक विशिष्ट उत्पाद के आयात का उच्चतर समानुपात इसके आयात में वृद्धि कर रही एक प्रवृत्ति का संकेत देता है एवं इस प्रकार का एक उत्पाद स्थानीय रूप से उत्पादन करने के द्वारा प्रतिस्थापित किया जा सकता है।
5. **मूल्य प्रवृत्ति** : विविध उत्पादों/सेवाओं के मूल्य में वर्तमान प्रवृत्ति मांग–आपूर्ति संबंध के बारे में एक संकेतक के रूप में कार्य करती है। ऐसी स्थिति में, विगत कुछ वर्षों के दौरान सामान्य मूल्य स्तर वृद्धि कर रहा है एवं यदि एक विशिष्ट उत्पाद के मूल्य–स्तर में वृद्धि सामान्य मूल्य–स्तर में वृद्धि की अपेक्षा अधिकतम है तो यह एक मांग–आपूर्ति अन्तराल को इंगित कर सकती है। मांग–आपूर्ति अन्तराल का विस्तृत अध्ययन एक नई परियोजना का चयन करने के लिए बहुत लाभदायक हो सकती है।
6. **शोध एवं विकास गतिविधियां** : शोध दल जो नये उत्पादों या प्रक्रियाओं को चिन्हित करने में संलग्न हैं, कभी–कभी वाणिज्यिक उपयोग के लिए उपाय प्रदान करते हैं। तथापि, समुचित रूप से अनुरूपण दशाओं की विफलता में अग्रसर हो सकता है जब उत्पाद एक विशाल स्तर में उत्पादित किया जाता है।
7. **योजना लागत एवं शासन (सरकारी) मार्गदर्शन** : सरकार किसी देश की आर्थिकी में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। सरकार द्वारा विविध क्षेत्रों में भविष्य की लागतों की योजना परियोजनाओं की योजना बनाना संभाव्य निवेश अवसरों के प्रति लाभप्रद संकेतों के रूप में करती है। वे आर्थिकी के विभिन्न क्षेत्रों द्वारा मालों व सेवाओं के लिए संम्भाव्य मांग के प्रति ध्यान केन्द्रित करते हैं।

परियोजना सूत्रीकरण

टिप्पणी

परियोजना के सूत्रीकरण से तात्पर्य परियोजना के विचार की कदम–कदम पर जांच पड़ताल से है। परियोजना के सूत्रीकरण को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं कि यह एक उद्यमी की परियोजना के विचार पर ध्यानपूर्वक दी गई नजर है, जिससे वह (उद्यमी) विभिन्न चीजों का आकलन कर एक पूर्ण रूप से लाभप्रद परियोजना का निर्माण कर सके। परियोजना का सूत्रीकरण उद्यमी को प्रत्यक्ष तथ्यों पर आधारित पक्का निश्चय लेने में सहायता करता है। परियोजना के सूत्रीकरण का प्रमुख उद्देश्य पर्याप्त संसाधनों तथा मितव्ययितापूर्वक परियोजना के लक्ष्यों को प्राप्त करना होता है।

परियोजना सूत्रीकरण के तत्व

परियोजना का सूत्रीकरण महत्वपूर्ण प्रबंधकीय सहायक है, जो उद्यमी को निवेश से पूर्व की अवस्था में पहचाने गये लाभप्रद तथा प्रभावशाली परियोजना विचारों का निर्णय लेने में सक्षम बनाता है। परियोजना के सूत्रीकरण अवस्था में परियोजना के निर्णय लेने में अत्यंत उपयोगी निम्नांकित तत्व हैं–

1. साध्यता विश्लेषण (Feasibility Analysis)
2. संसाधन विश्लेषण (Input Analysis)
3. वित्तीय विश्लेषण (Financial Analysis)
4. तकनीकी आर्थिक विश्लेषण (Techno-Economic Analysis)
5. परियोजना का नमूना एवं नेटवर्क (Project Design and Network Analysis)
6. परियोजना का मूल्यांकन (Project Appraisal)
7. स्वामित्व स्वरूप का चुनाव (Selection of Ownership Form)
8. सामाजिक मूल्य–लाभ विश्लेषण (Social Value-Profit Analysis)
9. इकाई का स्थान एवं बनावट (Location & Layout of the Unit)

उत्पाद का चयन एवं परियोजना का सूत्रीकरण

एक उद्यमी बाजार की खोज पर आधारित उत्पाद की पहचान या चुनाव करता है। उसे उत्पाद के लघु एवं दीर्घकालीन प्रभावों को पहचानना होता है। हमारे देश में तकनीकी एवं पूंजी बाजार बहुत अधिक प्रभावशाली नहीं है। इसी कारण नवीकरण करने वाले उद्यमियों की कमी है। एक अविकसित अर्थव्यवस्था की कमियां ही उद्यमियों के नकल करने का कारण है। अविकसित अर्थव्यवस्था में प्रशिक्षण सुविधाओं का अभाव होता है। प्रशिक्षण सुविधाओं की कमी के कारण खोज एवं अनुसंधान पर कम ध्यान दिया जाता है। एक उद्यमी अपने ज्ञान, अनुभव, क्षमता तथा प्रेरणा के आधार पर उत्पाद का चयन करने में अपने को सक्षम पाता है। नवीकरण करने वाले उद्यमी में कुछ नया करने की इच्छा होती है। उसकी यही इच्छा नया उत्पाद करने तथा नया बाजार बनाने की प्रेरणा देती है। नकल करने वाले उद्यमी स्थापित बाजार में कुछ सुधार करते हैं। एक उद्यमी को उत्पाद के बारे में निर्णय लेने से पूर्व निम्न प्रश्नों के उत्तर ढूंढ़ने चाहिए–

1. उत्पाद के खरीददार कौन होंगे?
2. वे उत्पाद को किस कीमत पर खरीदेंगे?

टिप्पणी

3. वे उत्पाद कब और कितना खरीदेंगे?
4. उत्पाद को कहां से खरीदेंगे?
5. उन्हें उत्पाद से क्या आशाएं हैं?
6. हमारी उत्पाद प्रतिस्पर्धा किससे है?
7. हमारे प्रतिस्पर्धियों का कार्य करने का तरीका क्या है?
8. उत्पाद की विपणन व्यवस्था कैसे की जायेगी?

2.2.3 परियोजना मूल्यांकन/आकलन

किसी भी परियोजना में विनियोजित किये जाने वाले संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग होना अत्यंत आवश्यक है और यह तब ही सम्भव है, जब उद्यमी की परियोजना सुदृढ़ एवं लाभप्रद हो। एक सुदृढ़ परियोजना जहां एक ओर उद्यमी को निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता प्रदान करती है, वही दूसरी और विनियोजन पर सुस्थिर आय प्रदान करती है। अतः किसी भी प्रस्तावित परियोजना का मूल्यांकन होना अतिआवश्यक है। व्यावसायिक एवं वित्तीय दृष्टिकोण से परियोजना कर्म के लिए तब ही लाभदायक सिद्ध होगी, जब इसके लिए परियोजना की सम्भावित लागतों की तुलना उससे प्राप्त होने वाले सम्भावित लाभ से की जाती है। किसी परियोजना की अनुमानित लागतों Casts और उससे प्राप्त होने वाले सम्भावित लाभ Profit की तुलना करके ही उद्यमी/प्रबंधक परियोजना को स्वीकार करने या अस्वीकार करने का निर्णय लेता है।

परियोजना मूल्यांकन से आशय

किसी परियोजना की अवधारणा से लेकर उसके क्रियान्वयन तक उसमें लगने वाली सम्भावित लागत तथा उससे प्राप्त/उपार्जित होने वाले सम्भावित लाभ की जांच परख को ही परियोजना–मूल्यांकन के नाम से जाना जाता है। परियोजना अथवा प्रोजेक्ट से तात्पर्य पूंजी निवेश के किसी भी ऐसे अवसर से है, जिसमें लाभोपार्जन की सम्भावनाएं स्पष्ट रूप से दिखायी देती हैं।

सरल अर्थ में परियोजना मूल्यांकन किसी प्रस्तावित परियोजना की लागत एवं लाभ का विश्लेषण है। इनका उद्देश्य सीमित कोषों का विभिन्न वैकल्पिक विनियोजन अवसरों में विवेकपूर्ण आवंटन करना है, ताकि निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। उद्यमी के वित्तीय कोष सीमित होते हैं, जबकि उसके समक्ष अनेक वैकल्पिक प्रस्तावित परियोजनाएं होती हैं और उद्यमी को उनमें से सर्वश्रेष्ठ परियोजना को चुनना होता है। इस कार्य के लिए वह परियोजना मूल्यांकन का सहारा लेता है।

विस्तृत अर्थ में परियोजना मूल्यांकन से आशय ''किसी परियोजना की तकनीकी व्यवहार्यता (Feasibility), आर्थिक क्षमता, वित्तीय जीव्यता (Viability) तथा उसके सफल संचालन के लिए आवश्यक प्रबंधकीय योग्यता का निर्धारण करने के लिए किये जाने वाले विस्तृत मूल्यांकन से है। यह उद्यमी द्वारा प्रस्तावित उद्यम योजना की सुदृढ़ता एवं सम्भाव्य सफलता के सम्बन्ध में निर्णय लेने की प्रक्रिया है। अन्य शब्दों में परियोजना मूल्यांकन, परियोजना के विभिन्न तकनीकी, वित्तीय आर्थिक एवं वाणिज्यिक तथा प्रबंधकीय पहलुओं पर विचार करते हुए उसकी भावी लाभदायकता, सक्षमता एवं वांछनीयता को जांचने की एक विधि है।

परियोजना मूल्यांकन के उद्देश्य

परियोजना मूल्यांकन प्रस्तावित परियोजना का सही विश्लेषण करने का औजार है। यह प्रस्तावित परियोजना की अनुमानित लागतों एवं लाभों की पहचान करता है। परियोजना मूल्यांकन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

टिप्पणी

1. प्रस्तावित परियोजना के विशिष्ट एवं पूर्ण निर्धारित परिणाम तक पहुंचना।
2. प्रस्तावित परियोजना की सफलता अथवा असफलता की दर को ज्ञात करने के लिए प्रमाणित माप को लागू करना।
3. प्रस्तावित परियोजना की सफलता अथवा असफलता का पता लगाने के लिए आवश्यक सूचनाएं एकत्रित व संकलित करना।
4. प्रस्तावित परियोजना की अनुमानित लागतों एवं लाभों की पहचान करना।
5. प्रस्तावित परियोजना की व्यवहार्यता की जांच करना एवं उसके तकनीकी दृष्टिकोण का मूल्यांकन करना।

परियोजना मूल्यांकन के विभिन्न पहलू एवं क्षेत्र

प्रस्तावित परियोजना की व्यवहार्यता का मूल्यांकन विभिन्न घटकों के विश्लेषण के आधार पर किया जाता है। इनमें से किसी भी घटक की कमी अथवा कमजोरी पूरी प्रस्तावित परियोजना को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिये बैंक या अन्य वित्तीय संस्थाएं किसी भी प्रस्तावित परियोजना पर वित्तीय सहायता देने से पूर्व उसकी व्यवहार्यता का परीक्षण करती हैं। वित्तीय संस्थाएं इस बात की ओर सर्वाधिक ध्यान केन्द्रित करती हैं कि प्रस्तावित परियोजना पर विनियोजित किये गये धन पर पर्याप्त प्रत्याय (Return) मिलेगा अथवा नहीं। उद्यमी पर्याप्त प्रत्याय प्राप्त होने पर ही परियोजना पर विनियोजित राशि पर ब्याज तथा उधार ली गई धन राशि का उचित अवधि में भुगतान करने में समर्थ हो सकेगा। अतः प्रस्तावित परियोजना को क्रियान्वित करने से पूर्व उसका व्यापक मूल्यांकन किया जाना नितान्त आवश्यक है। परियोजना मूल्यांकन में निम्नलिखित पहलुओं का मूल्यांकन करना जरूरी है–

1. तकनीकी मूल्यांकन
2. वित्तीय मूल्यांकन
3. प्रबंधकीय मूल्यांकन
4. वाणिज्यिक मूल्यांकन
5. क्रियात्मक मूल्यांकन
6. आर्थिक–सामाजिक मूल्यांकन
7. पर्यावरणीय मूल्यांकन।

1. तकनीकी मूल्यांकन

तकनीकी मूल्यांकन का कार्य योग्य एवं अनुभवी विशेषज्ञों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। यदि प्रस्तावित परियोजना का आकार विस्तृत एवं तकनीकी है, तो इस कार्य के लिए बाहरी विशेषज्ञों का भी सहारा लिया जा सकता है। तकनीकी मूल्यांकन निम्नलिखित घटकों के आधार पर किया जाता है–

टिप्पणी

(i) स्थान एवं स्थिति, (ii) संयंत्र का आकार एवं क्षमता, (iii) उत्पाद मिश्रण, (iv) प्रौद्योगिकी एवं उपकरण, (v) कच्चे माल एवं उपभोग योग्य माल के स्रोत, (vi) श्रम शक्ति, (vii) भवन एवं अभिन्यास, (viii) विदेशी सहयोग, (ix) पानी एवं स्टीम गैस, (x) ईंधन एवं बिजली, (xi) व्यर्थ पदार्थ की व्यवस्था, (xii) अनुसंधान एवं विकास की सुविधाएं, (xiii) उपयोग में आने वाली आधुनिकतम प्रौद्योगिकी, (xiv) अवस्थापनात्मक सुविधाएं–सड़के, रेलवे, वायुयान, ब्रिज आदि।

2. वित्तीय मूल्यांकन

किसी भी नवीन परियोजना की शुरूआत के लिए दो तरह की पूंजी की आवश्यकता होती है, दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन। वित्तीय मूल्यांकन का उद्देश्य यह जांचना होता है कि प्रस्तावित परियोजना पर्याप्त लाभ देने में सक्षम है। उद्यमी उपार्जित आय/लाभ से ब्याज का भुगतान निर्धारित अवधि में कर सके और इसका क्षेत्र व्यापक होता है जैसे– (1) लागत अनुमान, (2) उत्पादन लागत, (3) उद्यमी की पुनर्भुगतान क्षमता के सम्बन्ध में उचित सुरक्षा सीमा, (4) वित्त की प्राप्ति के विभिन्न संसाधनों का निर्धारण, (5) ऋण–पूंजी अनुपात, (6) कार्यशील पूंजी के लिये मार्जिन धन, (7) लाभदेयता विश्लेषण आदि। उपयुक्त सभी का व्यापक रूप से परीक्षण एवं मूल्यांकन करना आवश्यक है।

3. प्रबंधकीय मूल्यांकन

किसी भी प्रस्तावित परियोजना की सफलता में प्रबंधकीय कुशलता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रबंधकों एवं प्रवर्तकों की अकुशलता तथा अनुभव की कमी से परियोजनाओं को असफलता का सामना करना पड़ता है। इसके विपरीत अनुभवी, कुशल तथा व्यावसायिक कार्यों में दक्ष प्रबंधकों एवं प्रवर्तकों द्वारा कमजोर से कमजोर परियोजना की भी सफलता सुनिश्चित होती है। प्रबंधकों एवं प्रवर्तकों की प्रबंधकीय योग्यता का मूल्यांकन उनके गत अनुभव, परिवार की पृष्ठभूमि, परियोजना के विभिन्न पहलुओं को संगठित करने में की गई प्रगति, परियोजना को प्रस्तुत करने में उनके चातुर्य के आधार पर किया जाता है। प्रबंधकों एवं प्रवर्तकों की वचनबद्धता का मूल्यांकन उनके द्वारा प्रयोग में लाये गये वित्तीय एवं प्रबंधकीय संसाधन, उनके जोश एवं लगन के आधार पर किया जाता है और यह जांचा जाता है कि वे परियोजना के अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन उद्देश्यों को प्राप्त करने में कितने सक्षम हैं। प्रबंधकों एवं प्रवर्तकों की क्षमता का मूल्यांकन परियोजना की साख, संगठन संरचना, अनुमानित लागत, वित्तीयन रीति, विपणन कार्यक्रमों तथा वित्तीय संस्थानों को प्रदान किये जाने वाले विवरणों द्वारा किया जाता है।

4. वाणिज्यिक मूल्यांकन

वाणिज्यिक मूल्यांकन हेतु निम्न बिंदुओं पर विचार एवं परीक्षण किया जाना चाहिए–

1. बाजार का चयन।
2. उत्पाद की बाजार मांग।
3. बाजार में प्रतियोगी उत्पादों की उपलब्धता।
4. बाजार का आकार एवं भावी विकास।
5. राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में उत्पादन की मांग एवं पूर्ति की स्थिति।

6. प्रतिस्पर्द्धा की प्रकृति।
7. विपणन व्यूह रचना, विक्रय व्यवस्था तथा विक्रय कर्मचारियों की योग्यता।
8. निर्यात की संभावनाएं।
9. उत्पाद आयात स्थापन्न आदि।

टिप्पणी

उपर्युक्त बिन्दुओं के अतिरिक्त उत्पाद की भावी मांग का पूर्वानुमान करने के लिए बाजार सर्वेक्षण किये जा सकते हैं।

5. क्रियात्मक मूल्यांकन

यह परियोजना की क्षमता को ज्ञात करने में सहायता करता है। परियोजना की क्षमता संपूर्ण संयंत्र उत्पाद मिश्रण की मांग को पूरा करने में सक्षम होनी चाहिए। क्रियात्मक मूल्यांकन के आधार पर लक्ष्यों की प्राप्ति का अनुमान लगाया जा सकता है। इसके अभाव में अनेक प्रस्तावित परियोजनाएं केवल फाइलों में ही बंद होकर रह जाती हैं जिसके कारण व्यय किया गया समूचा धन डूब जाता है। परिणामस्वरूप या तो प्रवर्तक दिवालिया घोषित किया जाता है या फिर वह पलायन करने पर मजबूर हो जाता है।

6. आर्थिक–सामाजिक मूल्यांकन

प्रत्येक परियोजना राष्ट्र के आर्थिक–सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक होनी चाहिए। किसी भी परियोजना का सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से मूल्यांकन व्यापक ढंग से किया जाना चाहिए। परियोजना का आर्थिक–सामाजिक दृष्टि से मूल्यांकन निम्न आधार पर किया जाना चाहिए–

1. रोजगार का सृजन।
2. आय एवं संपत्ति के समान वितरण में योगदान।
3. राष्ट्र की आर्थिक प्रगति में योगदान।
4. विदेशी मुद्रा का अर्जन।
5. पिछड़े क्षेत्रों का विकास।
6. लघु कुटीर उद्योगों एवं सहायक उद्योगों का विकास।
7. आत्म–निर्भरता को प्रोत्साहन।
8. प्रौद्योगिकी के उन्नयन एवं हस्तांतरण में सहायता।
9. किस्म एवं उत्पादकता में सुधार।
10. राष्ट्रीय कल्याण, जीवन स्तर, व जीवन गुणवत्ता में सुधार।
11. ग्रामीण क्षेत्रों व समाज के पिछड़े वर्गों के उत्थान में सहायक।
12. दुर्लभ संसाधनों का सदुपयोग आदि।

7. पर्यावरणीय मूल्यांकन

आधुनिक युग में किसी भी परियोजना का पर्यावरणीय मूल्यांकन अत्यन्त आवश्यक है। व्यापक रूप से परियोजनाएं दो प्रकार की होती हैं–

1. उत्पादन उन्मुखी परियोजनाएं
2. सेवा उन्मुखी परियोजनाएं।

टिप्पणी

उत्पादन उन्मुखी परियोजनाओं में भौतिक वस्तुओं जैसे–कागज, सीमेण्ट, स्टील, साबून, तेल उर्वरक आदि तथा सेवा उन्मुखी परियोजनाओं में स्वास्थ्य, शिक्षा, सुरक्षा व कानून की व्यवस्था शामिल होती है। पर्यावरण मूल रूप से उत्पादन–उन्मुखी सेवाओं से सम्बन्धित है। किसी भी उत्पादन–उन्मुखी परियोजना को क्रियान्वित करने से पूर्व राज्य सरकार से प्रमाण लेना आवश्यक होता है कि इस निर्माण परियोजना का पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा अर्थात् परियोजना सर्वथा प्रदूषण मुक्त होगी। इसी आधार पर प्रत्येक परियोजना की स्थापना से पूर्व राज्य सरकार के लिये पर्यावरण व प्रदूषण मुक्त प्रमाण पत्र लेना अनिवार्य है।

लागत–लाभ विश्लेषण

परियोजना मूल्यांकन किसी प्रस्तावित परियोजना की लागत एवं लाभ का विश्लेषण है। लाभ तथा हानि की मात्रा वास्तव में निम्न तीन परिवर्तनशील तत्वों के पारस्परिक सम्बन्धों पर निर्भर करती है।

(क) उत्पादित की जाने वाली इकाइयों की मात्रा।

(ख) प्रति इकाई मूल्य।

(ग) उत्पादन की स्थिर एवं परिवर्तनशील लागत।

इन्हीं के आधार पर इसे लागत मात्रा–लाभ विश्लेषण के नाम से जाना जाता है।

सम–विच्छेद बिन्दु या खण्ड सम–विच्छेद बिन्दु

सम–विच्छेद सीमान्त विश्लेषण लागत का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। इसके अंतर्गत उस स्तर को निर्धारित किया जाता है, जहां कुल लागत तथा कुल आगम दोनों एक दूसरे के बराबर हों। वस्तुतः सम–विच्छेद विश्लेषण लागत–लाभ–मात्रा सम्बन्धों पर आधारित है।

खण्ड सम–बिन्दु व्यावसायिक गतिविधि का वह बिन्दु है जिस पर सकल–आय एवं कुल व्यय बराबर हो जाते हैं। इस प्रकार यह बिन्दु शून्य लाभ व शून्य हानि का बिन्दु होता है।

खण्ड सम–बिन्दु की सहायता से लागत मात्रा तथा कीमत में होने वाले परिवर्तनों का लाभ पर पड़ने वाले प्रभाव को ज्ञात किया जा सकता है। सम–विच्छेद बिन्दु उत्पादन या विक्रय की स्थिति को प्रदर्शित करता है, जहां उत्पादक को न लाभ होता है और न ही हानि होती है। सम–विच्छेद बिन्दु को निम्न सूत्र की सहायता से ज्ञात किया जा सकता है–

$$B \cdot EP = \frac{F}{S - V}$$

$F =$ Fixed Cost

$S =$ Sale Price

$V =$ Variable Cost

माना स्थिर लागत 20,000 रु. और प्रति इकाई मूल्य 10 रु. है परिवर्तनशील लागत 6 रु. है तो $BE \cdot P$ इस प्रकार ज्ञात किया जायेगा।

$$B \cdot EP - \frac{20,000}{10-6} = \frac{26,000}{4} = 5,000 \text{ इकाई}$$

$$BEP \text{ in Rupees} = \frac{F}{1-\frac{V}{S}} = \frac{20,000}{1-\frac{6}{10}} = \frac{20,000}{\frac{4}{10}}$$

$$\frac{20,000 \times 10}{4} = ₹50,000$$

टिप्पणी

इसके लिये खण्ड सम–बिन्दु (Break-Even Point) ज्ञात करना होता है। इसे खण्ड–सम–बिन्दु विश्लेषण भी कहा जाता है।

लाभ नियोजन के लिये चार तत्वों की आवश्यकता होती है, जो निम्न हैं–

1. कुल उत्पादन अथवा विक्रय की मात्रा (इकाइयों में) (Total Valume of Production)
2. प्रति इकाई मूल्य (Price Per Unit)
3. परिवर्तनशील लागतें (Variable Cost)
4. स्थिर लागतें (Fixed Cost)

उपर्युक्त चारों कारकों में से यदि किसी एक या अधिक में परिवर्तन होता है तो उसका प्रभाव लाभ की मात्रा पर अवश्य होता है। व्यवसाय के सफल संचालन के लिए इन चारों कारकों का सर्वोत्तम संतुलन बनाए रखना आवश्यक होता है। प्रबंधकों को प्रयास करना चाहिए कि प्रतिकूल परिवर्तन नियंत्रित रहे तथा अनुकूल परिवर्तनों को प्रोत्साहित किया जाए। इन चारों कारकों के पारस्परिक सम्बन्ध को निम्न सूत्र की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है–

$$P = (SP \times V) - (VC \times V) - FC$$

P = Profit – लाभ

SP= Selling Price – विक्रय मूल्य

V = Volume of Sales – विक्रयमात्रा इकाई में

VC = Variable Cost – परिवर्तशील लागतें

FC = Fixed – स्थिर लागतें

पर्याप्त लाभ का उपार्जन उत्पादन की मात्रा, विक्रय से प्राप्त आय, स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों में परस्पर तालमेल बिठाकर करना संभव है। अन्य बातें समान रहने पर यदि लागतों में कमी की जाती है अथवा प्रति इकाई मूल्य में वृद्धि की जाती है तो उपार्जित लाभ में अवश्य ही वृद्धि होगी।

यदि व्यवसायी लाभ कमाना चाहता है तो उसे सम–विच्छेद बिन्दु से अधिक इकाइयों की बिक्री करनी होगी। यदि वास्तविक विक्रय राशि सम–विच्छेद बिन्दु से कम रहती है तो व्यवसायी को हानि का सामना करना पड़ता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सम–विच्छेद बिन्दु क्रियाशीलता स्तर का वह बिन्दु है, जहां कुल आगम तथा कुल व्यय बराबर हो और लाभ शून्य हो।

टिप्पणी

परियोजना मूल्यांकन की पद्धति

किसी भी उद्योग के लिये तैयार की गई परियोजना रिपोर्ट की सफलता उसकी विश्वसनीयता, सत्यता तथा यथार्थता पर निर्भर करती है। किसी परियोजना की सामाजिक, आर्थिक, वित्तीय एवं तकनीकी योग्यता को ज्ञात करने के उद्देश्य से ही परियोजना का आकलन किया जाता है। परियोजना आकलन के आधार पर ही वित्तीय संस्थान अथवा सरकारी विभागों से ऋण की स्वीकृति प्राप्त होती है। परियोजना का आकलन निम्न प्रकार से किया जाता है–

1. भुगतान वापसी अवधि : किसी वित्तीय संस्था से परियोजना के लिए प्राप्त किये जाने वाले ऋण का भुगतान एक निश्चित अवधि में करना होता है। इस अवधि को भुगतान वापसी अवधि (Pay Back Period) के नाम से जाना जाता है। इस अवधि में शुद्ध रोकड़ अंतर्प्रवाह (Net Cash Flow) परियोजना के मूल परिव्यय के बराबर हो जाता है। लम्बी भुगतान वापसी अवधि वाली परियोजना की अपेक्षा कम भुगतान वापसी अवधि वाली परियोजनाएं अधिक अच्छी समझी जाती हैं। भुगतान वापसी अवधि सामान्यतया तीन से चार वर्ष तक सुनिश्चित की जाती है। वित्तीय संस्थाएं भी प्रायः उन्हीं परियोजनाओं को ऋण प्रदान करने के लिये तैयार होती हैं जिनकी भुगतान वापसी अवधि कम हो तथा परियोजना वास्तव में लाभकारी हो। उद्यमियों को भी भुगतान वापसी अवधि कम रखने से लाभ होता है। भुगतान वापसी की अवधि को ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

$$\text{भुगतान वापसी अवधि} = \frac{\text{मूल ले आउट / परियोजना कुल व्यय}}{\text{वास्तविक रोकड़ अंतप्रवाह}}$$

उदाहरणः माना कि कुल व्यय 1,50,000 रु. है उसका शुद्ध अंतर्प्रवाह पहले, दूसरे, तीसरे तथा चौथे वर्ण में क्रमशः 25,000 रु., 2,51,000, 50,000 तथा 50,000 रु. रहा है। तो भुगतान वापसी चार वर्ष में हो जायेगी। और यदि रोकड़ अंतर्प्रवाह प्रतिवर्ष एक निश्चित राशि में होता है तो भुगतान वापसी अवधि $= \frac{\text{परियोजना कुल व्यय}}{\text{वास्तविक रोकड़ अंतर्प्रवाह}}$ होगी।

2. लेखीय प्रतिफल की दर : इसको औसत प्रतिलाभ की दर भी कहा जाता है। इसकी गणना निम्न सूत्र की सहायता से की जाती है

$$\text{औसत प्रतिलाभ की दर} = \frac{\text{औसत वार्षिक लाभ}}{\text{निविष्ट पूंजी}}$$

यहां निविष्ट पूंजी की गणना में विभिन्नता दिखाई देती है। कुछ उद्यमी प्रारंभिक निवेश को ही निविष्ट पूंजी मानते हैं, जबकि कुछ प्रतिष्ठान निविष्ट पूंजी उस पूंजी को मानते हैं जो कुछ प्रारंभिक वर्षों में लगाई गई पूंजी का औसत मान होती है।

लेखीय प्रतिफल की दर जितनी अधिक होती है, परियोजना उतनी ही अच्छी मानी जाती है। एक अच्छी परियोजना के लिये लेखीय प्रतिफल की दर 15 प्रतिशत से कम नहीं होनी चाहिए।

टिप्पणी

3. आंतरिक प्रतिफल की दर : भविष्य के प्रवाह तथा प्रारंभिक परिव्यय के बराबर हो जाने के लिये निर्धारित डिस्काउंट की दर को आंतरिक प्रतिलाभ की दर कहा जाता है, इसकी गणना निम्न सूत्र की सहायता से की जाती है–

$$I = \sum^{n} \frac{At}{t = 1(1+r)^{t}}$$

I = प्रारंभिक

r = आंतरिक प्रतिलाभ की दर

n = परियोजना का जीवन काल (वर्षों में)

At= t वर्ष का रोकड़ प्रवाह

r का कोई भी मान लेकर I की गणना की जाती है यदि I का मान उनके वास्तविक मान से अधिक हो तो r का मान बढ़ा कर गणना की जाती है और यदि I का मान उसके वास्तविक मान से कम हो तो r का मान घटाकर पुनः गणना की जायेगी। ये गणनाएं r के मान को बदल–बदल कर तब तक की जायेगी, जब तक z का मान उसके वास्तविक मान के लगभग बराबर न हो जाये।

4. शुद्ध वर्तमान मूल्य : अनुमानित वार्षिक रोकड़ प्रवाह के कुल वर्तमान मूल्यों का परियोजना के प्रारंभिक परिव्यय का अंतर किसी निवेश प्रस्ताव का शुद्ध वर्तमान मूल्य कहलाता है। यदि यह अंतर धनात्मक हो तो निवेश लाभकारी होगा, परंतु यदि यह अंतर ऋणात्मक है तो निवेश हानिकारक सिद्ध होगा। अर्थात् लाभ के लिये अंतर्प्रवाह का वर्तमान मूल्य प्रारंभिक परिव्यय से अधिक हो जाये। बिना लाभ और बिना हानि वाली परियोजना में शुद्ध वर्तमान मूल्य शून्य होगा।

अपनी प्रगति जांचिए

1. परियोजना पहचान में उपयोग किये जाने वाले SWOT शब्द का अंतिम अक्षर 'T' किसका द्योतक है?

   (क) संस्था की शक्ति (ख) संस्था की कमियां

   (ग) संस्था की चुनौतियां (घ) संस्था के अवसर

2. निम्नलिखित में से कौन–सा घटक वाणिज्यिक मूल्यांकन के अंतर्गत नहीं आता?

   (क) बाजार चयन (ख) प्रतिस्पर्द्धा की प्रकृति

   (ग) बाजार मांग (घ) उत्पादन लागत

2.3 संगठन का स्वरूप

संगठन से आशय औद्योगिक फर्म अथवा व्यावसायिक फर्म से है। यह एक तकनीकी इकाई होती है, जिसका संगठन लाभ अर्जन के उद्देश्य से किसी वस्तु के उत्पादन अथवा किसी सेवा की पूर्ति के लिए किया जाता है। संगठन का संचालन किसी एक

व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह द्वारा किया जाता है। संगठन की दृष्टि से फर्मों का वर्गीकरण निम्न वर्गों में किया जाता है।

टिप्पणी

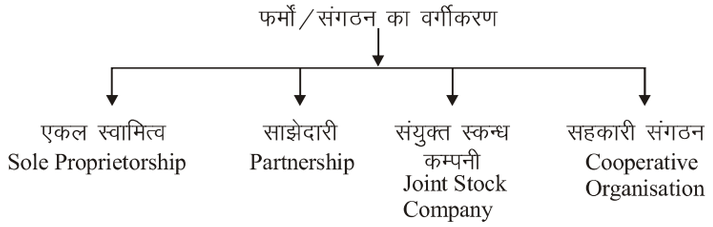

1. एकल स्वामित्व

विश्व भर में अधिकतर फर्म एकल स्वामित्व वाले हैं। इस तरह के संगठन में कोई विशेष औपचारिकताएं नहीं होती हैं। इन्हें एक व्यक्ति का प्रयास कहा जाता है, क्योंकि जो व्यक्ति इन्हें स्थापित करता है वही इनका स्वामी एवं प्रबंधक होता है। एकल स्वामित्व वाली फर्मों का सफल संचालन उस व्यक्ति की योग्यता एवं सूझ–बूझ पर निर्भर करता है जो इनका स्वामी या संगठनकर्त्ता होता है। इस तरह के फर्म में स्वामी के दायित्व असीमित होते हैं। इसमें तथ्यों की गोपनीयता होती है और किसी अन्य का हस्तक्षेप नहीं होता है। ऐसी फर्मों की अपनी कुछ विशेषताएं होती हैं, जिनके आधार पर इनके गुण व दोषों का विवेचन किया जा सकता है।

एकल स्वामित्व संगठन के गुण : एकल स्वामित्व वाली फर्म में निम्न गुण होते हैं–

1. फर्म की स्थापना करना सरल होता है क्योंकि संगठन की स्थापना के लिए विशेष औपचारिकताओं की आवश्यकता नहीं होती है।
2. व्यवसाय के संचालन के लिए संगठनकर्त्ता द्वारा तत्काल निर्णय लिये जा सकते हैं।
3. ऐसी फर्मों के स्वामियों का मुख्य उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना होता है। अधिकाधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से फर्म का स्वामी अपनी समस्त शक्ति व्यवसाय में लगा देता है।
4. एकल स्वामित्व वाली फर्मों में व्यवसाय से सम्बन्धित महत्वपूर्ण तथ्यों में गोपनीयता होती है।
5. फर्म के नियंत्रण प्रबंधन में किसी अन्य का कोई हस्तक्षेप नहीं होता है।
6. स्वामी अपने व्यवसाय की बारीकी को जानता है, इसलिये वह फर्म उत्तम कार्यान्विति के प्रति आश्वस्त बना रह सकता है।
7. इस प्रकार की फर्मों में बाजार की दशाओं के अनुरूप फर्म की गतिविधियों को लचीला बनाए रखना सरल होता है अर्थात् आवश्यकतानुसार फर्म के कार्यकलापों का विस्तार या संकुचन किया जा सकता है।
8. इस प्रकार के फर्म संगठन अधिक संख्या में रोजगार के अवसर प्रदान करते हैं और सम्पत्ति के केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को कम करते हैं अथवा रोकते हैं।

एकल स्वामित्व संगठन के दोष– एकल स्वामित्व वाले संगठन में निम्नलिखित दोष पाये जाते हैं–

टिप्पणी

1. एकल स्वामित्व वाले संगठनों में वित्तीय संसाधन और प्रबंध क्षमता सीमित होती है, परिणामस्वरूप कच्चे माल व अन्य सामग्रियों की उपलब्धि समय पर नहीं हो पाती है।
2. एकल स्वामित्व वाली फर्मों में स्वामी/मालिक का दायित्व असीमित होता है। देनदारियों के प्रति वह व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है।
3. असीमित दायित्वों के कारण वह व्यवसाय वृद्धि के लिए अपेक्षित जोखिम नहीं उठाना चाहता है। कारोबार रूढ़िवादी प्रक्रिया के आधार पर आगे बढ़ता रहता है।
4. फर्म के स्वामी की मृत्यु के बाद फर्म की निरंतरता के विषय में संशय रहता है। उत्तराधिकारियों में बंटवारे या मतभेद के कारण ऐसा होता है।
5. स्वामी जोखिम उठाने से बचने के लिए कई बार लाभ के अवसरों को खो देता है। अधिक लाभोपार्जन के लिए जोखिम उठाना आवश्यक होता है, लेकिन जोखिम कई बार फर्म में हानि का कारण भी होता है।
6. संगठन में व्यवसाय के संचालन हेतु समस्त गुणों से सम्पन्न व्यक्ति का मिलना दुर्लभ होता है।
7. एकल स्वामी से कोई त्रुटि होने पर उसे रोकने वाला कोई नहीं होता है।

उपर्युक्त गुण–दोषों से स्पष्ट होता है कि एकल स्वामित्व वाली फर्मों की सफलता एक व्यक्ति/स्वामी पर निर्भर करती है। एक सीमा तक ही एकल स्वामित्व वाली फर्म के कार्यकलापों का संचालन एक व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है। कालान्तर में फर्म का आकार बढ़ता जाता है और जब अनुकूलतम बिन्दु को पार कर जाता है, तब संचालन एक व्यक्ति की सामर्थ्य के बाहर हो जाता है।

2. साझेदारी

साझेदारी स्वामित्व की फर्म में एक से अधिक व्यक्ति साझे में व्यवसाय करते हैं। इसमें एक से अधिक व्यक्ति व्यवसाय के लाभों में साझेदारी के लिए सहमत होते हैं। भारतीय साझेदारी अधिनियम के अंतर्गत इस प्रकार के संगठन का मूल आधार फर्म के लाभों में साझेदारी के लिए समझौता करना है। यह आवश्यक नहीं कि सभी साझेदार फर्म की पूंजी में योगदान करें अथवा प्रबंध में सक्रिय भाग लें, इसके विपरीत कुछ अन्य साझेदार फर्म की पूंजी में योगदान करते हैं और फर्म के प्रबंध कार्य में भी सक्रिय भागीदारी करते हैं। इस प्रकार साझेदारी संगठन का निर्माण परस्पर सहमति एवं स्वैच्छिक समझौते के आधार पर किया जाता है। ऐसे स्वैच्छिक समझौतों का पंजीकरण करवाना आवश्यक नहीं होता है। परन्तु कानूनी दृष्टि से पंजीकरण करा लेना वांछनीय माना जाता है, ताकि आवश्यकता पड़ने पर न्यायिक सहायता प्राप्त की जा सके। भारत में पंजीकृत (Registered) तथा अपंजीकृत (Unregistered) दोनों प्रकार की फर्में कार्यरत हैं।

स्वैच्छिक अनुबंध की शर्तों के अनुसार साझेदार लाभों में भागीदार होते हैं। ऐसा अनुपात बराबर या असमान हो सकता है। साझेदारी फर्म में साझेदारों की संख्या कम से कम दो तथा अधिकतम 20 हो सकती है। सभी साझेदारों के दायित्व असीमित होते

हैं। सभी साझेदार फर्म के ऋणों एवं दायित्वों के लिए संयुक्त रूप से तथा व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होते हैं।

टिप्पणी

साझेदारों के प्रकार

साझेदारी फर्म में अनेक प्रकार के साझेदार होते हैं–

1. **सक्रिय साझेदार** : व्यवसाय में पूंजी निवेश करने वाले तथा प्रबंध संचालन में सक्रिय भाग लेने वाले सक्रिय साझेदार कहलाते हैं।
2. **सुषुप्त साझेदार** : व्यवसाय में पूंजी निवेश तो करते हैं किन्तु उसके प्रबंध संचालन में सक्रिय भाग नहीं लेते हैं।
3. **गुप्त साझेदार** : ये केवल नाम मात्र के साझेदार होते हैं। ये साझेदार अपना नाम एवं ख्याति का उपयोग करने की अनुमति प्रदान करते हैं, ये साझेदार फर्म में पूंजी एवं प्रबंधन में कोई योगदान नहीं करते हैं।
4. **अवयस्क साझेदार** : यह फर्म में साझेदार तो होता है, लाभों में भागीदार भी होता है, लेकिन फर्म की देनदारियों के प्रति उसका कोई दायित्व नहीं होता।

साझेदारी फर्म के गुण : साझेदारी फर्म में निम्न गुण पाये जाते हैं–

1. फर्म को अपेक्षाकृत कुछ अधिक पूंजी कोष उपलब्ध हो जाते हैं, जिससे फर्म का विस्तार करना सरल हो जाता है।
2. साझेदारी संगठन की स्थापना स्वैच्छिक समझौते के आधार पर की जाती है अतः कोई विशेष औपचारिकताएं नहीं करनी पड़ती है। यदि फर्म का पंजीकरण कराया जाता है तो अवश्य कुछ औपचारिकताएं पूरी करनी पड़ती हैं।
3. सदस्यों के असीमित दायित्व के कारण फर्म की ऋण प्राप्ति की क्षमता बढ़ जाती है। साझेदार अपनी स्वयं की पूंजी के अतिरिक्त ऋण पूंजी प्राप्त करके नवीन परियोजनाओं को हाथ में ले सकते हैं।
4. साझेदारों में पारस्परिक विश्वास के कारण कारोबार/व्यवसाय की गोपनीयता बनाए रखी जा सकती है।
5. प्रत्येक साझेदार अपनी–अपनी योग्यता के अनुसार फर्म के कार्यकलापों का बंटवारा करके उन्हें सुचारू रूप से सम्पन्न कर सकते हैं।
6. स्वामित्व एवं प्रबंधन में गठबंधन के कारण व्यवसाय का संचालन एक से अधिक व्यक्तियों के योगदान से संभव होता है।
7. बाजार की परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुसार व्यवसाय का विस्तार किया जा सकता है और समय की मांग के अनुसार उसे संकुचित भी किया जा सकता है।

साझेदारी फर्म के दोष : साझेदारी फर्मों में निम्न दोष पाये जाते हैं–

1. असीमित दायित्व इसका सबसे बड़ा दोष है। लाभ में तो सभी सदस्य भागीदार होते हैं, यदि फर्म छोटा हो जाता है तो प्रत्येक साझेदार संयुक्त रूप से तथा व्यक्तिगत रूप से फर्म की देनदारियों के लिये उत्तरदायी होता है।

टिप्पणी

2. फर्म में साझेदार का हित हस्तांतरणीय नहीं होता। नये साझेदारों का प्रवेश स्वयं नहीं हो सकता इसके लिए साझेदारी अनुबंध की आवश्यकता होती है।
3. जब किसी साझेदार की मृत्यु हो जाती है अथवा किसी अन्य कारण से उसके अयोग्य हो जाने के कारण फर्म की निरंतरता खतरे में पड़ जाती है।
4. किसी साझेदार की फर्म से सेवानिवृत्ति के बाद भी फर्म के प्रति उसका दायित्व बना रहता है।
5. स्वैच्छिक समझौते के बाद कारोबार आरंभ होने पर ज्ञात हो कि कोई सदस्य बेईमान, झगड़ालू स्वभाव का अथवा स्थायी है तो फर्म का संचालन करना कठिन हो जाता है।
6. साझेदारी फर्मों में जनता का विश्वास सीमित होता है, अतः इन निक्षेपों पर इसे वित्तीय सीमित मात्रा में ही उपलब्ध हो जाते हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि साझेदारी संगठन एकल स्वामित्व वाले संगठन की तुलना में बड़े व्यवसाय संचालित कर सकते हैं। व्यवसाय के टिके रहने के लिए निरंतर वृद्धि करते रहना आवश्यक होता है और उसे सतत् विकास एवं विविधीकरण का सहारा लेकर आगे बढ़ना होता है। यदि साझेदार फर्म के समक्ष बड़ी योजनाएं और उन्हें पूरा करने के लिए पर्याप्त साधन न हो, तो फिर फर्म को प्राइवेट लिमिटेड अथवा पब्लिक लिमिटेड कम्पनी के रूप में परिवर्तित करके आगे बढ़ने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं होता है।

3. संयुक्त स्कंध कम्पनी

कम्पनी एक प्रकार का कृत्रिम व्यक्ति होता है, जिसका निर्माण कानून द्वारा किया जाता है। इसका गठन व्यक्तियों के एक समूह द्वारा किसी समान उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाता है।

कम्पनी वस्तुतः एक कृत्रिम व्यक्ति के रूप में कार्य करती है, जिसका गठन कम्पनी अधिनियम 1956 के प्रावधानों के अनुसार किया जाता है, जिसका अस्तित्व केवल कानून की दृष्टि में होता है। लार्ड लिंडले के अनुसार, ''कम्पनी ऐसे व्यक्ति का एक संघ है, जो किसी सामान्य उद्देश्य के लिये पूंजी एकत्रित करें।'' जस्टिस जेम्स के अनुसार–''कम्पनी किसी सामान्य उद्देश्य के लिये संगठित व्यक्तियों का समूह है।''

संयुक्त पूंजी कम्पनी ऐसी एच्छिक संस्था है, जिसका उद्देश्य लाभ कमाना है तथा जिसका अस्तित्व अपने सदस्यों से पृथक हो और जिसके सदस्य हस्तांतरणीय अंशों के रूप में व्यापार के लिये पूंजी लाते हों, उनका दायित्व अंशों के मूल्य तक सीमित हो।''

संयुक्त स्कंध कम्पनी की विशेषताएं

संयुक्त स्कंध कम्पनी की विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. **कृत्रिम व्यक्ति** : विधान की दृष्टि में कम्पनी एक व्यक्ति है। किसी व्यक्ति की भांति कम्पनी भी अपने नाम से सम्पत्ति रख सकती है, दूसरों के साथ अनुबंध कर सकती है, दूसरों के विरुद्ध विवाद प्रस्तुत किया जा सकता है।

टिप्पणी

2. **सीमित दायित्व** : कम्पनी के सदस्यों का दायित्व सीमित होता है। सीमित दायित्व से तात्पर्य सदस्यों द्वारा खरीदे गए अंशों के अंकित मूल्य के बराबर होता है अथवा उनके द्वारा दी गई गारंटी की राशि के बराबर हो सकता है।
3. **पृथक अस्तित्व** : कम्पनी अस्तित्व उसके संस्थापकों, अंशधारियों और संचालकों के अस्तित्व से सर्वथा पृथक और स्वतंत्र होता है।
4. **लाभ के लिए ऐच्छिक संघ** : सामान्यतः कम्पनियों का निर्माण लाभ कमाने के उद्देश्य से किया जाता है। वह निश्चित नियमों के अनुसार उसके अंशधारियों में बांट दिया जाता है।
5. **सर्वमुद्रा** : कम्पनी के पृथक अस्तित्व के प्रतीक स्वरूप इसकी अपनी एक मोहर होती है, जिसे सर्वमुद्रा (Common Seal) कहते हैं। कम्पनी के अधिकारी जब किसी प्रलेख पर सर्वमुद्रा अंकित करते हैं, और दो संचालक इसके निकट हस्ताक्षर करते हैं, तब यह माना जाता है कि प्रलेख पर कम्पनी ने हस्ताक्षर किए हैं।
6. **शाश्वत अस्तित्व** : कम्पनी का अपने सदस्यों से पृथक स्थायी अस्तित्व होता है। किसी भी सदस्य की मृत्यु के कारण अथवा कम्पनी छोड़ देने के कारण या नये सदस्य के आने के कारण कम्पनी के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है
7. **प्रतिनिधि प्रबंध** : कम्पनी में बहुत से अंशधारी होते हैं, किंतु प्रत्येक अंशधारी प्रबंध में भाग नहीं ले सकता। सभी अंशधारी सम्मिलित रूप से कुछ व्यक्तियों को संचालक नियुक्त कर देते हैं, यहीं संचालक मण्डल कम्पनी का प्रबंध करने का अधिकारी होता है। इस प्रकार कम्पनी में स्वामित्व एवं प्रबंध अलग–अलग होते हैं।
8. **अंशों की हस्तांतरणीयता** : कम्पनी अधिनियम के अनुसार सार्वजनिक कम्पनी के प्रत्येक सदस्य को अपनी अंशपूंजी के हस्तांतरण का अधिकार प्राप्त है। जब एक व्यक्ति अंशों को दूसरे को हस्तांतरित करता है, तो नये व्यक्ति का नाम अंशधारियों की सूची में शामिल हो जाता है। मृत्यु या दिवालिया होने पर वैधानिक उत्तराधिकारी स्वतः अंशधारी बन जाते हैं।
9. **निश्चित कार्य क्षेत्र** : कम्पनी का कार्य क्षेत्र कम्पनी अधिनियम, पार्षद अंतर्नियमों द्वारा निश्चित होता है, कम्पनी इन सीमाओं के बाहर कोई कार्य नहीं कर सकती है।
10. **कम्पनी नागरिक नहीं** : कम्पनी कृत्रिम व्यक्ति है, लेकिन भारतीय संविधान के अनुसार कम्पनी को नागरिक की मान्यता प्राप्त नहीं है।
11. **पूंजी का विभाजन** : कम्पनी की पूंजी अंशों में विभक्त होती है और ये अंश अनेक व्यक्तियों द्वारा खरीदे जाते हैं, जो कम्पनी के अंशधारी कहलाते हैं। ये ही कम्पनी के वास्तविक स्वामी होते हैं।
12. **विधान द्वारा समापन** : जिस प्रकार कम्पनी का जन्म विधान द्वारा होता है उसी प्रकार उसका अंत भी कम्पनी अधिनियम में दी हुई समापन व्यवस्थाओं के अंतर्गत ही हो सकता है।

संयुक्त स्कन्ध कम्पनी के प्रकार

वर्तमान समय में कई प्रकार की संयुक्त स्कंध कम्पनियां पाई जाती हैं। इन विभिन्न प्रकार की कम्पनियों को निम्न बिंदुओं के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है–

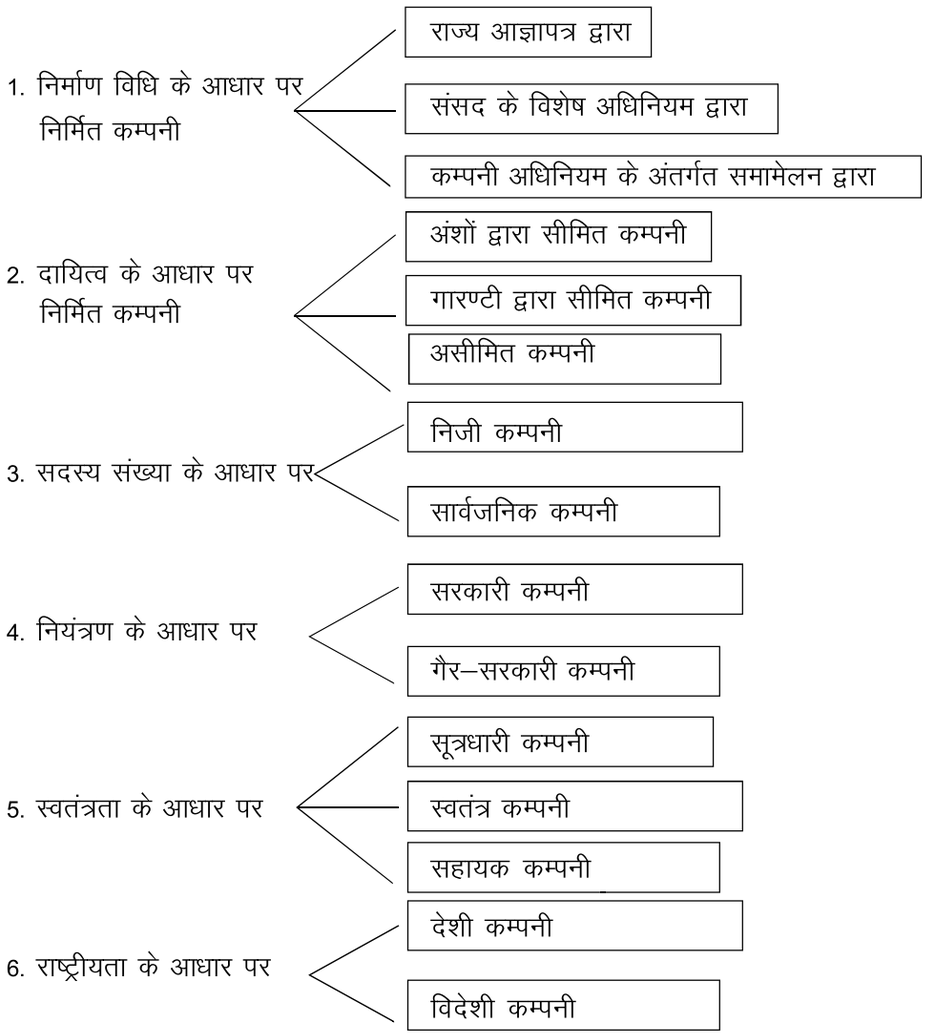

टिप्पणी

संयुक्त स्कंध कम्पनी के गुण : कम्पनी के गुणों का अध्ययन निम्न शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है–

1. **विस्तृत वित्तीय साधन** : संयुक्त स्कंध कम्पनी के वित्तीय साधन पर्याप्त विस्तृत होते हैं क्योंकि कम्पनी की अंश पूंजी छोटे–छोटे मूल्यों वाले अंशों में बंटी रहती है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार इन्हें क्रय कर सकता है।
2. **सीमित दायित्व** : कम्पनी के सदस्यों के दायित्व प्रायः सीमित होते हैं। अंशों द्वारा सीमित कम्पनी की दशा में उसके द्वारा लिये गये अंशों के अंकित मूल्य तक अथवा गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी की दशा में उनके द्वारा दी गई गारण्टी की राशि तक सीमित होती है।
3. **वृहतस्तरी उत्पादन के लाभ** : कुछ व्यवसाय ऐसे होते हैं जिन्हें छोटे पैमाने पर शुरू नहीं किया जा सकता है। बड़े पैमाने पर उत्पादन होने से वस्तुओं की उत्पादन लागत घटती है और किस्म में सुधार होता है। फलस्वरूप उपभोक्ताओं को कम मूल्य पर अच्छे वस्तुएं उपलब्ध हो जाती हैं।

टिप्पणी

4. **जोखिम का बंटवारा** : संगठन को कम्पनी के प्रारूप के अंतर्गत जोखिम का बंटावारा कर सुविधापूर्वक चलाया जा सकता है।

5. **स्थायी अस्तित्व** : कम्पनी का अस्तित्व स्थायी होता है। इसके जीवन पर अंशधारियों की मृत्यु, दिवालिया होने या पागल होने का कोई प्रभाव नहीं होता है। अंशधारियों के आवागमन का भी कम्पनियों के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कम्पनी निरंतर कार्य करती है। स्थायी अस्तित्व के कारण कम्पनी दीर्घकालीन अनुबंध कर सकती है तथा लम्बी अवधि की योजनाओं को कार्यान्वित कर सकती है।

6. **उत्तम प्रबंध एवं संचालन** : कम्पनी के स्वामी तथा प्रबंधक अलग–अलग व्यक्ति होते हैं। कम्पनी के प्रबंध के लिये अत्यंत कुशल, योग्य, अनुभवी तथा ख्याति प्राप्त व्यक्तियों को संचालकों एवं प्रबंधकों के रूप में नियुक्त किया जा सकता है और उनकी सेवाओं को प्रयुक्त करके वैज्ञानिक प्रबंध के लाभों को प्राप्त किया जा सकता है।

7. **विनियोक्ताओं को लाभ** : कम्पनी की पूंजी कम मूल्य के अंशों में बंटी होती है। कम आय वाले व्यक्ति भी उन अंशों को आसानी से खरीद सकते हैं। इसके अतिरिक्त अंश के विभिन्न मूल्य के होने के कारण लोग अपनी इच्छानुसार अंशों में पूंजी लगा सकते हैं।

8. **आय कर सम्बन्धी छूट** : आय कर अधिनियम के अनुसार सरकार संयुक्त स्कंध कम्पनियों को कुछ विशेष छूट प्रदान करती है। ये सुविधाएं एकाकी व्यापार एवं साझेदारी में प्राप्त नहीं होती हैं।

9. **लोकतांत्रिक आधार पर संगठन** : कम्पनी का संगठन एवं प्रबंधन अंशधारियों के प्रतिनिधियों द्वारा होता है। इन प्रतिनिधियों को संचालक कहा जाता है। कम्पनी अधिनियम के अंतर्गत अंशधारियों को संचालकों की नियुक्ति करने तथा पद से हटाने का पूरा अधिकार होता है।

10. **औद्योगिक अनुसंधान के लाभ** : वर्तमान युग में गलाकाट प्रतियोगिता के दौर में वही उद्योग जीवित रह सकता है जो न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन करने में सक्षम हो। लागतों को कम करने के लिए निरंतर नये–नये अनुसंधान व आविष्कार करने होते हैं। कम्पनी के पास पर्याप्त साधन होने के कारण कम्पनी अनुसंधान शालाओं का निर्माण करके नये–नये आविष्कार/अनुसंधान करा सकती है।

11. **जनता का अधिक विश्वास** : कम्पनी का प्रबंध प्रजातंत्रीय आधार पर किया जाता है। इसके खातों का अंकेक्षण स्वतंत्र अंकेक्षकों द्वारा किया जाता है। वित्तीय खातों का प्रकाशन भी होता है, परिणामस्वरूप कम्पनी की आर्थिक स्थिति एवं नीतियों के संबंध में जनता को पूरी जानकारी होती है और कम्पनी के प्रति उनका विश्वास भी बढ़ता है।

12. **स्वामित्व के हस्तांतरण की सुविधा** : एकाकी स्वामित्व के अंतर्गत स्वामित्व हस्तांतरण करने का तात्पर्य व्यवसाय की नीतियों में पूर्ण परिवर्तन होता है। साझेदारी संगठन में भी साझेदार अन्य साझेदारों की अनुमति के अपने हित का हस्तांतरण नहीं कर सकते हैं, किन्तु कम्पनी में विनियोजन की दशा में अंशों की

हस्तांतरणशीलता के कारण स्वामित्व एवं हित के हस्तांतरण की पूर्ण सुविधा रहती है।

13. **बैकिंग एवं बीमा कम्पनियों के विकास में सहायक** : वित्तीय संस्थाओं जैसे बैंक, बीमा कम्पनी आदि के विकास में कम्पनियां अप्रत्यक्ष रूप से सहायक होती हैं। इन संस्थाओं को विनियोग एवं व्यवसाय की सुविधा मुख्य रूप से कम्पनियों द्वारा प्रदान की जाती है।

टिप्पणी

14. **प्रबंध विशेषज्ञों की सेवाओं की प्राप्ति** : प्रबंधकीय विशेषज्ञों की सेवाएं प्रायः महंगी होती हैं। एकाकी स्वामित्व तथा साझेदारी के अंतर्गत सीमित वित्तीय साधनों तथा सीमित आकार के कारण विशेषज्ञों की सेवाओं का पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता है। इसके विपरीत कम्पनी संगठन में श्रेष्ठतम प्रबंध विशेषज्ञों को नियुक्त किया जा सकता है तथा उनसे पूरा काम लिया जाता है। कम्पनी अधिक विस्तृत होने के कारण प्रति इकाई लागत कम हो जाती है।

संयुक्त स्कंध कम्पनी के दोष : कम्पनी संगठन के प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं–

1. **स्थापना कठिन** : संयुक्त पूंजी कम्पनी की स्थापना के लिए अनेक वैधानिक औपचारिकताओं का पालन करना पड़ता है, अनेकों वैधानिक प्रतिबंधों का सामना करना पड़ता है, इसलिए साधारण व्यक्तियों के लिये कम्पनी स्थापित करना कठिन होता है।
2. **वृहत–स्तरीय उत्पादन के दोष** : बड़े पैमाने के उत्पादन के अनेक लाभ होते हुए भी उसे दोष रहित नहीं माना जा सकता है। फैशन, रुचि में परिवर्तन, सरकारी नीति में परिवर्तन, मांग में कमी, नवीन उत्पादन पद्धतियों का विकास तथा मंदी काल का औद्योगिक इकाइयों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। कभी–कभी तो कम्पनियों का अस्तिव ही खतरे में पड़ जाता है।
3. **पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के दोष** : जब कम्पनियां उत्पादन एवं पूर्ति पर नियंत्रण के लिये संयोजन कर लेती हैं तो उपभोक्ताओं का शोषण होता है। ये संयोजन अधिकारी आर्थिक नीतियों को अपने हित में प्रभावित करने का प्रयास करते हैं।
4. **सट्टेबाजी को प्रोत्साहन** : कम्पनी के अंशों का क्रय–विक्रय स्कंध विपणियों पर होता है। कम्पनी द्वारा घोषित लाभांश के कारण इन बाजारों में अंशों का मूल्य घटता–बढ़ता रहता है। यह घोषणा संचालकों द्वारा की जाती है। संचालकों के गलत निर्णय के कारण कभी–कभी मूल्यों में बहुत अधिक उतार–चढ़ाव होते हैं, जिससे सट्टेबाजी को प्रोत्साहन मिलता है और अन्ततः यह कम्पनी के लिए हानिकारक सिद्ध होते हैं।
5. **गोपनीयता का अभाव** : संयुक्त स्कंध कम्पनियों में गोपनीयता का अभाव होता है। कम्पनी के महत्वपूर्ण निर्णय संचालकों की सभा अथवा साधारण सभा में लिए जाते हैं। साथ ही कम्पनी के खातों का अंकेक्षण कराया जाता है और रिपोर्ट का प्रकाशन कराया जाता है।
6. **केन्द्रीय प्रबंध** : कम्पनी का प्रबंध देखने में तो लोकतांत्रिक है, किन्तु वास्तव में कम्पनी का प्रबंधन संचालकों या प्रबंध अभिकर्त्ताओं के हाथ में केन्द्रित होता है।

टिप्पणी

7. **प्रबंध में ढ़िलाई** : कम्पनी का आन्तरिक प्रबंध वेतनभोगी प्रबंधकों के हाथों में होता है। प्रबंधक कम्पनी के कार्यों में रुचि नहीं लेते हैं।
8. **प्रवर्तकों का छल–कपट** : प्रवर्तक कम्पनी के प्रवर्तन में बहुत छल–कपट करते हैं। वे ऐसे अनेक कार्य करते हैं, जिनसे उनको व्यक्तिगत लाभ प्राप्त होता है। ये अधिक प्रारंभिक व्यय दिखाकर लाभ कमाते हैं। कम्पनी के सुचारू रूप से चल जाने पर वे कम्पनी के प्रबंध अभिकर्त्ता बन जाते हैं और कम्पनी के साधनों का अपने लाभ के लिए प्रयोग करते हैं।
9. **स्वाधिकार की प्रवृत्ति को बढ़ावा** : बड़ी–बड़ी कम्पनियां मिलकर छोटी तथा मध्यम श्रेणी की कम्पनियों को प्रतियोगिता द्वारा क्षेत्र से बाहर कर देती है। इससे एकाधिकार की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है।
10. **पार्षद सीमा नियम द्वारा सीमित क्षेत्र** : कम्पनी के अधिकार, कर्तव्य, उद्देश्य तथा दायित्व सभी उसे पार्षद नियम द्वारा निश्चित होते हैं। कम्पनी इन नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकती है।
11. **शीघ्र निर्णय का अभाव** : सभी महत्वपूर्ण निर्णय कम्पनी की सभाओं में लिए जाते हैं, जो निश्चित समय पर होती हैं। परिणामस्वरूप निर्णय में देरी होना स्वाभाविक है, इस कारण कभी–कभी व्यावसायिक सुअवसर हाथ से निकल जाते हैं।
12. **अत्यधिक वैधानिक हस्तक्षेप** : कम्पनी को कदम–कदम पर वैधानिक हस्तक्षेप का सामना करना पड़ता है तथा कम्पनी के प्रबंधकों को अपना बहुमूल्य समय इन नियमों का पालन करने में लगाना पड़ता है। अनेक बार तो कानूनी सलाहकारों की सहायता लेनी पड़ती है।
13. **प्रत्यक्ष प्रोत्साहन का अभाव** : कम्पनी संगठन में स्वामित्व एवं प्रबंध अलग होता है और परिश्रम एवं प्रतिफल में संबंध नहीं होता है। अन्य शब्दों में कम्पनी संगठन में प्रत्यक्ष प्रोत्साहन का अभाव रहता है।
14. **औद्योगिक संघर्ष** : कम्पनी संगठन के अंतर्गत अनेकों (बड़ी संख्या में) कर्मचारी कार्य करते हैं जो प्रभावशाली श्रम संघ बनाकर अपनी उचित व अनुचित मांगों को पूरा करना चाहते हैं, जिससे श्रम प्रबंध संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। यह संघर्ष सभी के लिए हानिकारक होता है।

4. सहकारी संगठन

स्वैच्छिक सहकारिता की भावना के आधार पर छोटे–छोटे समूह अपने समान हितों की पूर्ति के लिये सहकारी संगठनों/समितियों की स्थापना करते हैं। संगठन की पूंजी के रूप में प्रत्येक सदस्य का योगदान नाम मात्र का होता है, जो प्रायः दस या बीस रुपये होता है। इस प्रकार एकत्रित धन से कई गुना धन इस समिति को राज्य सरकार की ओर से, सहकारिता विभाग के माध्यम से उपलब्ध कराया जाता है। यह योगदान अंशिक रूप से सहायता तथा आंशिक रूप से ऋण के रूप में दिया जाता है। इन समितियों का प्रबंध एवं संचालन इसके सदस्यों द्वारा किया जाता है। बड़ी–बड़ी सहकारी समितियों में वेतनभोगी कर्मचारियों की नियुक्ति की जाती है। समय–समय पर सहकारी विभाग द्वारा इन समितियों के हिसाब–किताब का अंकेक्षण भी किया जाता है। ऐसी समितियां अधिकांशतः ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित की जाती हैं। किन्तु शहरी क्षेत्रों में भी अनेक उद्योग सहकारिता के आधार पर चलाये जाते हैं– जैसे डेयरी उद्योग,

गन्ना सहकारी समितियां, दुग्ध संकलन समितियां तथा सहकारी चीनी मिलें आदि। समाज के अपेक्षाकृत कम सम्पन्न एवं निर्धन परिवारों को सहकारी संगठनों के द्वारा रोजगार के उत्तम अवसर प्रदान किए गए हैं।

टिप्पणी

सहकारी संगठन के लक्षण/विशेषताएं

सहकारी संगठन की विशेषताओं को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है–

1. **स्वैच्छिक संगठन** : सहकारी संगठन एक स्वैच्छिक संगठन होता है। कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छा से संगठन में शामिल होकर प्रवर्तन में भाग ले सकता है। समान उद्देश्य वाले व्यक्ति ही इसके सदस्य हो सकते हैं। कोई भी व्यक्ति सूचना देकर कभी संगठन की सदस्यता त्याग सकता है।
2. **समान वोट का अधिकार** : प्रत्येक व्यक्ति को एक वोट का अधिकार होता है, चाहे उसने कितने भी शेयर क्यों न लिये हों।
3. **लोकतांत्रिक प्रबंध** : सहकारी संगठन में प्रबंध का कार्य प्रबंधक कमेटी के हाथों में होता है, जिसका चुनाव संगठन के सदस्यों द्वारा वार्षिक सामान्य सभा में किया जाता है। सामान्य संस्था संगठन के लिये नीतियों की विस्तृत रूपरेखा तैयार करती है। प्रबंध कमेटी को उसके आधार पर कार्य करने होते हैं।
4. **पृथक वैधानिक अस्तित्व** : कम्पनी की भांति पंजीकृत सहकारी संगठन इसके सदस्यों से पृथक और स्वतंत्र वैधानिक अस्तित्व होता है। कम्पनी की भांति इस पर मुकदमा चलाया जा सकता है और यह भी मुकदमा चला सकता है। इसका स्थायी जीवन होता है। किसी भी सदस्य की मृत्यु होने, दिवालिया होने पर अथवा पागल होने पर संगठन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
5. **सेवा उद्देश्य** : सहकारी समिति का मुख्य उद्देश्य अपने सदस्यों को लाभ पहुंचाना है, लाभ कमाना नहीं।
6. **पूंजी** : संगठन सदस्यों की अंश पूंजी के रूप में पूंजी प्राप्त करता है।
7. **अधिक्य वितरण** : इसका लाभ लाभांश और बोनस के रूप में वितरित किया जाता है। लाभांश का वितरण करने के पश्चात् लाभों को कोषों में हस्तांतरित के बाद आधिक्य को बोनस के रूप में बांट लिया जाता है। बोनस प्रत्येक सदस्य द्वारा कारोबार में लगाये गये अंश के अनुपात में वितरित किया जाता है।

सहकारी संगठन के गुण : सहकारी संगठन के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं–

1. **समिति की रचना/स्थापनाः** सहकारी समिति की रचना/स्थापना करना सरल होता है। केवल 10 वयस्क व्यक्ति मिलकर सहकारी समिति की रचना/संगठित कर सकते हैं और यह किसी भी सहकारी रजिस्ट्रार के यहां रजिस्ट्रेशन करवा कर की जा सकती है।
2. **खुली सदस्यता** : कोई भी व्यक्ति जिसकी रुचि, उद्देश्य संगठन के उद्देश्य के समान है, संगठन की सदस्यता ग्रहण कर सकता है। कोई भी व्यक्ति कभी भी सदस्यता को छोड़ सकता है।
3. **स्थायी अस्तित्व** : सहकारी संगठन का अस्तित्व स्थायी होता है। सदस्य की मृत्यु होने से, संगठन छोड़ने से, दिवालिया होने से सहकारी संगठन प्रभावित नहीं होगा। वह स्थायी प्रकृति का होता है।

टिप्पणी

4. **सीमित दायित्व** : सहकारी संगठन के सदस्यों के दायित्व सीमित होते हैं। वे व्यक्तिगत रूप से समिति के ऋणों के लिये उत्तरदायी नहीं होते हैं।
5. **मितव्ययी संचालन** : सदस्यों की स्वैच्छिक सदस्यता है। वे अपनी इच्छा से समिति को सेवा प्रदान करते हैं। इसमें बीच में दलाल/माध्यम नहीं होता है जिसके कारण संचालन कार्य बहुत मितव्ययी होता है।
6. **सरकार द्वारा सहायता** : सरकार के द्वारा सहकारी संस्थाओं को बहुत सी सहायता प्रदान की जाती है। कम ब्याज दर पर ऋण, आय पर कर की निम्न दर तथा अनुदान आदि।
7. **समाजिक सेवा** : सहकारी संगठन अपने सदस्यों के बीच नैतिक एवं शैक्षिक मूल्यों को पहुंचाता है, जो अच्छे जीवन के लिये आवश्यक हैं।

सहकारी संगठनों के दोष : सहकारी संगठनों के निम्नवत दोष हैं–

1. सहकारी संगठनों के पास पूंजी कम होती है, क्योंकि पूंजी पर प्रत्याय दर कम होने के कारण व्यक्ति/सदस्य में बहुत अधिक धन निवेश नहीं करते हैं।
2. सहकारी संगठन में प्रबंध कुशलतम नहीं होतर है क्योंकि सदस्य जो प्रबंध कार्य देखते हैं। उनके पास व्यापार के अनुभव नहीं होते। संगठन कुशल प्रबंधक नियुक्त नहीं कर सकता क्योंकि उन्हें उचित वेतन देने के लिए उसके पास पूंजी नहीं होती है।
3. प्रयासों तथा पुरस्कार में सीधा प्रत्यक्ष संबंध न होने के कारण सदस्य प्रेरित नहीं होते हैं।
4. सदस्यों में संघर्ष होते रहते हैं, जिसके कारण अलग–अलग समूह बन जाते हैं। संघ का सेवा उद्देश्य स्वहित में बदल जाता है। संस्था चलाना कठिन हो जाता है।
5. सरकार के कठोर अधिनियमों के कारण सहकारी संगठन का नियंत्रण, प्रबंध क्षमता बुरी तरह प्रभावित होती है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. "कंपनी किसी सामान्य उद्देश्य के लिये संगठित व्यक्तियों का समूह है"– किसका कथन है?

   (क) जस्टिस जेम्स (ख) लार्ड लिंडले

   (ग) शुम्पीटर (घ) गिलिंगा

4. निम्नलिखित में से कौन–सी संयुक्त स्कंध कंपनी की विशिष्टता नहीं है?

   (क) सीमित दायित्व (ख) पृथक अस्तित्व

   (ग) असीमित दायित्व (घ) सर्वमुद्रा

2.4 उत्पादन प्रबंधन

औद्योगिक इकाइयां विभिन्न प्रकार की हो सकती हैं, जैसे छोटे आकार, मध्यम आकार और वृहद आकार वाली इकाइयां। परंतु अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए औद्योगिक

इकाइयों का परिमाण अनुकूलतम होना चाहिए, क्योंकि इसी परिमाण/आकार में उत्पादन व्यय न्यूनतम होते हैं। अब प्रश्न उठता है कि अनुकूलतम इकाई/अनुकूलतम परिमाण (Optimum Size) से क्या अभिप्राय है?

टिप्पणी

इकाई शब्द का प्रयोग तीन प्रकार से किया जाता है–

प्लाण्ट, फर्म या उद्योग।

- **प्लाण्ट** : इसका आशय उस व्यक्ति समूह से है, जो एक कारखाना, एक मिल, एक वर्कशॉप, एक खान, एक गोदाम का पर्यायवाची है।
- **फर्म** : एक फर्म से अभिप्राय उस इकाई से है, जो प्लाण्ट या प्लाण्टों का स्वामित्व, नियंत्रण एवं प्रबंध करती है।
- **उद्योग** : इसका अभिप्राय उन व्यक्तियों से है, जो कि प्लाण्टों फर्मों में कार्य करते हों अथवा उनसे सम्बन्धित हों। अन्य शब्दों में एक ही प्रकार का माल बनाने वाले कारखानों का स्वामित्व एवं प्रबंध करने वाली फर्मों को मिलाकर उद्योग कहा जाता है।

इकाई से अभिप्राय एक औद्योगिक केन्द्र में उत्पादन की उन समस्त मिलों या कारखानों के समूह से है, जिसका प्रबंध अभिकर्त्ता संस्था करती है।

संक्षेप में इकाई से तात्पर्य उन मिलों एवं कारखानों से है जो एक ही स्वामित्व में हों।

अनुकूलतम आकार से आशय

किसी फर्म में उत्पादन के घटक को एक विशेष अनुपात में लगाकर उत्पादन कार्य कराया जाता है। उद्योगपति व्यापार की स्थापना के समय ही यह निश्चित कर लेता है कि किन–किन घटकों को कितनी–कितनी मात्रा में व्यापार में लगाना है, जिससे अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सके। इसके लिये वह सीमान्त लागत व सीमान्त आगम की तुलना करता है। सीमान्त लागत में कमी अथवा वृद्धि उत्पादन के आकार पर निर्भर करती है। इस कमी–वृद्धि से उत्पादन के घटकों का संयोजन बदल जाता है और सीमान्त लागत में परिवर्तन होता है। ऐसे प्रयोग करते–करते ऐसी स्थिति आ जाती है जब लागत न्यूनतम होती है। उत्पादन के घटकों का यह संयोजन आदर्श संयोजन तथा फर्म का आकार आदर्श आकार/अनुकूलतम आकार (Optimum Size) कहलाता है।

पी. एस. लोकनाथन के अनुसार : प्रत्येक उद्योग में तथा उद्योग के उत्पादन के प्रत्येक ढंग में प्लाण्ट का लगभग निश्चित आकार होता है। उससे कम आकार से उत्पादन यांत्रिक रूप से असम्भव या लाभ रहित होता है। इसी आकार को अनुकूलतम आकार या आर्थिक आकार कहते हैं। यही आकार औद्योगिक इकाइयों के लिये वांछनीय माना गया और निपुणता की यह सबसे बड़ी सीढ़ी है। इस सीढ़ी से आगे बढ़ने या नीचे उतरने पर निपुणता में कमी आ जायेगी।''

फर्म अनुकूलतम आकार को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Optimum Size of Firm)– अनुकूलतम आकार को निश्चित करने/अथवा प्रभावित करने वाले घटकों को निम्न पांच भागों में वर्गीकृत किया गया है–

1. तकनीकी कारक या शक्तियां – अनुकूलतम तकनीकी इकाई
   Technical Factors — Optimum Technical Unit

टिप्पणी

2.	प्रबंधकीय कारक Managerial Factors	– अनुकूलतम प्रबंधकीय इकाई Optimum Managerial Factors
3.	वित्तीय कारक Financial Factors	– अनुकूलतम वित्तीय इकाई Optimum Financial Factors
4.	विपणीय कारक Marketing Factors	– अनुकूलतम विपणीय इकाई Optimum Marketing Factors
5.	जोखिम कारक Risk Factors	– अुनकूलतम जोखिम कारक Optimum Risk Factors

उपरोक्त इन पांचों कारकों में समन्वय होने पर ही अनुकूलतम आकार की इकाई स्थापित की जा सकती है।

1. अनुकूलतम तकनीकी इकाई/तकनीकी कारक

अनुकूलतम तकनीकी इकाई का निर्धारण तकनीकी कारकों के द्वारा होता है। इन तकनीकी शक्तियों का संबंध उत्पादन की विधियों से होता है। इसमें श्रम–विभाजन, श्रम विशिष्टीकरण, प्रमाणीकरण, यंत्रीकरण, अभिनवीकरण आदि आते हैं। इनके कारण उत्पादन की क्रियाओं में मितव्ययिता प्राप्त होती है, जैसे श्रम विभाजन से (1) श्रमिकों की कुशलता में वृद्धि होती है, (2) उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होती है, (3) उत्पादन में लगने वाले समय, श्रम शक्ति एवं यंत्रों की बचत होती है और प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यतानुसार काम मिल जाता है। इसी प्रकार श्रम विशिष्टीकरण–द्वारा (1) आविष्कारों को प्रोत्साहन मिलता है, (2) उत्पादित वस्तु श्रेष्ठ होती है। प्रमापीकरण द्वारा केवल उत्पादन की कार्यक्षमता ही नहीं बढ़ती, अपितु उत्पादन की शक्ति में भी वृद्धि होती है, वस्तु व धन का अपव्यय नहीं होता है। समान गुण वाली सजातीय वस्तुओं का उत्पादन होता है। उत्पादन व श्रमिकों की गतिशीलता में वृद्धि होती है तथा कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। इस प्रकार मानवीय श्रम का अपव्यय नहीं होता और उत्पादन में पर्याप्त सुधार होता है।

तकनीकी कारकों का औद्योगिक इकाइयों के न्यूनतम व अधिकतम आकार पर प्रभाव पड़ता है। ये शक्तियां उद्योगों में औद्योगिक इकाइयों के आकार में वृद्धि को प्रोत्साहित करती हैं परंतु इकाई के अधिकतम आकार की एक सीमा होती है। उस सीमा के पश्चात् तकनीकी विकास एवं सुधार में किसी प्रकार की कोई मितव्ययिता प्राप्त नहीं होती है और इकाइयां अमितव्ययी होने लगती हैं।

2. अनुकूलतम प्रबंधकीय इकाई

औद्योगिक सफलता के लिए आवश्यक है कि इकाई का प्रबंध कुशलता से किया जाना चाहिए। वैज्ञानिक विधि के अनुसार प्रबंध करना बहुत महंगा पड़ता है। उद्योग में प्रबंध के लिए विशेषज्ञों की सेवायें लेनी पड़ती है। उद्योग में इनकी सेवाओं की आवश्यकता प्रारंभ में तो अत्यंत आवश्यक होती है। प्रारंभिक अवस्था में व्यय भी अधिक होते हैं लेकिन बाद की अवस्था में इसी व्यय से काम चलता रहता है और प्रबंध मितव्ययी हो जाता है। बाद में औद्योगिक इकाई के आकार में वृद्धि के अनुपात में प्रबंधकीय व्यय नहीं बढ़ता। बड़ी–बड़ी औद्योगिक इकाइयां अपने प्रबंधकीय कार्यों को कई भागों में

टिप्पणी

विभाजित कर सकती हैं और उनके लिये विशेषज्ञों की नियुक्ति कर सकती है। इस प्रकार प्रबंध कार्य में श्रम–विभाजन से उनके ज्ञान एवं अनुभव से प्रबंधकीय कुशलता बढ़ती है। कुशलता का अपव्यय नहीं हो पाता। कार्यक्षमता में दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि होती है, अनुसंधान कार्य को प्रोत्साहन मिलता है, उत्पादन नियोजित ढंग से होने लगता है तथा प्रति इकाई लागत कम हो जाती है। परन्तु एक सीमा के पश्चात् इकाई के आकार में वृद्धि हो जाने पर न केवल प्रबंधकीय मितव्ययिताओं में कमी आती है बल्कि अमितव्ययिताएं दृष्टिगोचर होने लगती हैं। औद्योगिक इकाई का आकार आवश्यकता से अधिक बढ़ जाने पर विभिन्न विभागों में समन्वय करना कठिन हो जाता है। लाल फीताशाही का बोलबाला हो जाता है। कुशलता को ठेस पहुंचती है तथा नियंत्रण में शिथिलता आती है।

श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण साहस सम्बन्धी समस्याओं को नहीं सुलझाता। छोटी फर्मों में निर्णय में कम लोगों का परामर्श लेना पड़ता है किन्तु एक बड़ी फर्म शृंखलदार पहियों वाली मशीन के समान होती है। निर्णय संबंधी अनुमति के लिए अनेक लोगों से परामर्श लेना पड़ती है जिससे निर्णय लेने में विलम्ब होता है। अतः कुशल प्रबंध बनाए रखने के लिए एक सीमा के पश्चात् औद्योगिक इकाई के आकार को रोका जाता है। इसी सीमा पर अनुकूलतम प्रबंधकीय इकाई का निर्माण होता है।

3. अनुकूलतम वित्तीय इकाई

कोई भी औद्योगिक इकाई चाहे छोटी हो या बड़ी हो, प्रत्येक इकाई को प्रारंभ करने एवं भविष्य में विस्तार करने के लिए पर्याप्त पूंजी की आवश्यकता होती है। पूंजी के बिना कोई भी उद्योग नहीं चल सकता है। वित्त आधुनिक व्यापार एवं औद्योगिक संस्थाओं का जीवन रक्त (Life Blood) एवं उनकी आत्मा है। औद्योगिक इकाई का आकार जितना बड़ा होगा, पूंजी प्राप्त करने में उतनी ही सुविधा होगी। बड़ी औद्योगिक इकाइयों को पूंजी सरलता से सस्ती दर से मिल जाती है। निजी एवं सरकारी दोनों ही क्षेत्र की वित्तीय संस्थाएं बड़े आकार वाली औद्योगिक इकाइयों को बड़ी आसानी से कम ब्याज पर अधिक मात्रा में पूंजी उपलब्ध करा देती हैं। इस प्रकार वित्तीय शक्तियां बड़े आकार वाली औद्योगिक इकाइयों के पक्ष में होती है।

अनुकूलतम वित्तीय इकाई का स्वरूप उद्योग की प्रकृति पर निर्भर करता है। कुछ उद्योग ऐसे होते हैं, जिनके लिये प्रारंभ में पर्याप्त मात्रा में पूंजी की आवश्यकता होती है, इसके विपरीत कुछ उद्योग ऐसे होते हैं, जिनके संगठन एवं विकास के लिये बाद में पूंजी की आवश्यकता होती है। प्रारंभ में एकाकी व्यापार या साझेदारी के रूप में इकाइयों को संगठित किया जा सकता है, परंतु दीर्घकाल में संयुक्त पूंजी वाली कम्पनी के रूप में संगठित औद्योगिक इकाई को पूंजी सरलता से उपलब्ध हो सकती है। इसलिये विकास के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुकूलतम वित्तीय इकाई के लिए संयुक्त पूंजी वाली कम्पनी का स्वरूप सर्वोत्तम समझा जाता है।

4. अनुकूलतम विपणीय इकाई

औद्योगिक इकाई का आकार उसके द्वारा उत्पादित वस्तु के बाजार पर निर्भर करता है। उत्पादन की प्रकृति बाजार की सीमा को निर्धारित करती है। कच्चे माल के क्रय तथा निर्मित विक्रय पर होने वाला व्यय सम्पूर्ण व्ययों का एक बहुत बड़ा भाग होता है। एक

टिप्पणी

बड़ी औद्योगिक इकाई बड़े पैमाने पर कच्चे माल का क्रय करती है। इसलिए उसकी क्रय शक्ति बढ़ जाती है। इस प्रकार वह कम मूल्य पर अच्छा माल खरीद सकती है। इन इकाइयों के परिवहन व्यय में भी मितव्ययिता रहती है। यही नहीं उच्च कोटि का माल खरीदने के कारण इनका तैयार माल भी अच्छा व उच्चकोटि का होता है। उसे अपेक्षाकृत ऊंचे मूल्य पर बेचा जा सकता है।

निर्मित माल के विक्रय की दृष्टि से भी बड़ी औद्योगिक इकाई को कई मितव्ययितायें प्राप्त होती हैं, जैसे वह एक बड़ा विक्रय संगठन रख सकती है। एक बड़ी औद्योगिक इकाई के द्वारा मशीन की पूर्ण क्षमता का प्रयोग किया जाता है, जिससे उसकी प्रति इकाई लागत न्यूनतम रह जाती है। इसके साथ–साथ प्रति इकाई विज्ञापन व्यय में भी पर्याप्त बचत होती है। विदेशों में माल निर्यात करने का अवसर भी निःसन्देह बड़ी औद्योगिक इकाइयों को प्राप्त होता है।

इस प्रकार बड़ी मात्रा में क्रय–विक्रय से अनेक लाभ प्राप्त होते हैं, लेकिन कभी–कभी एक साथ अधिक मात्रा में कच्चा माल खरीदने से भयंकर हानि का सामना करना पड़ता है। इसमें तनिक सी असावधानी होने पर निम्नकोटि का कच्चा माल क्रय कर लेने से काफी अधिक हानि होती है। फिर औद्योगिक इकाई की वृद्धि के साथ–साथ विक्रय संगठन का व्यय भी बढ़ जाता है, और इस प्रकार एक सीमा के बाद माल विक्रय करना अधिक खर्चीला हो जाता है, अतएव अनुकूलतम विपणीय इकाई की स्थापना उसी सीमा पर होगी, जहां पर मितव्ययिताएं अधिकतम होंगी।

5. अनुकूलतम जोखिम व उच्चावचन इकाई

मांग में परिवर्तन जोखिम एवं अनिश्चितता उत्पन्न करते हैं। अतः औद्योगिक इकाई की योजना बनाते समय साहसी को मांग में होने वाले परिवर्तनों को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। मांग में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन निम्न चार भागों में किया जा सकता है–

1. **स्थायी परिवर्तन** : तकनीकी सुधारों अथवा उपभोक्ताओं की रुचि में परिवर्तन के कारण वस्तु की मांग में जो परिवर्तन होते हैं, वे स्थायी प्रकृति के होते हैं। ऐसी कोई भी इकाई जो इन परिवर्तनों के अनुकूल आसानी से तथा मितव्ययितापूर्वक अपने आपको पुनर्गठित कर लेती है सबसे अधिक शक्तिशाली होती है। इस दृष्टि से छोटे आकार वाली इकाई लाभ में रहती है।
2. **सामयिक परिवर्तन** : जिन वस्तुओं की मांग सामयिक होती है, उन वस्तुओं की मांग समय–समय पर परिवर्तित होती रहती है, जैसे सर्दी में गर्म कपड़ों की मांग, गर्मी में बिजली के पंखों, कूलरों व ए.सी. की मांग आदि। ऐसी सामयिक परिवर्तन वाली वस्तुओं का उत्पादन करने वाली औद्योगिक इकाइयों को अपनी उत्पादन क्षमता का संतुलन औसत उपभोग मात्रा से करना चाहिए। परंतु नाशवान प्रकृति की वस्तुओं के संबंध में ऐसा संभव नहीं होता, क्योंकि उन्हें अधिक समय तक संगृहीत करके नहीं रखा जा सकता है।
3. **चक्रीय परिवर्तन** : चक्रीय परिवर्तनों के उत्पन्न होने के कारण मांग व पूर्ति के बीच समन्वय स्थापित नहीं होता और इसके कारण अनावश्यक मन्दी तथा तेजी आती है। मन्दी की स्थिति में जनता की क्रय शक्ति कम हो जाती है और वस्तु

टिप्पणी

की मांग में कमी आ जाती है। परिणामस्वरूप कमजोर इकाइयों को बंद करना पड़ता है। अधिकतम इकाइयां उत्पादन में कमी कर देती हैं, लेकिन इस स्थिति पर नियंत्रण रखने के लिए संयोजन का सहारा लिया जाता है। इसके विपरीत तेजी आने पर जनता के पास धन की मात्रा बढ़ जाती है, वस्तुओं की मांग बहुत अधिक बढ़ जाती है। परिणामस्वरूप औद्योगिक इकाइयों के आकार में विस्तार होने लगता है। नई–नई इकाइयां स्थापित होने लगती है।

4. **अनिश्चित परिवर्तन** : जब मांग का सही–सही अनुमान नहीं लगाया जाता तब अनिश्चित परिवर्तन होते हैं। और जब किसी वस्तु की मांग में अनिश्चित परिवर्तन होते हैं और वस्तु का उत्पादन करने वाली इकाई का आकार छोटा होता है तो उसमें समायोजन आसानी से किए जा सकेंगे। लेकिन बड़े आकार वाली औद्योगिक इकाई में समायोजन करने में काफी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा, क्योंकि इनमें यंत्रों तथा मशीनों में कार्यशील पूंजी अधिक मात्रा में लगी होती है। इस प्रकार अनिश्चित परिवर्तन की स्थिति में छोटे आकार वाली इकाई बड़े आकार वाली इकाई की अपेक्षा ठीक रहती हैं, क्योंकि वे अपने को शीघ्र ही परिवर्तन के अनुकूल बना लेती हैं।

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि जोखिम उच्चावचन की शक्तियां बड़े आकार वाली औद्योगिक इकाइयों की अपेक्षा छोटे आकार वाली औद्योगिक इकाई को अधिक प्रोत्साहन देती हैं, क्योंकि ये शीघ्र ही अपने को परिवर्तन के अनुकूल ढाल सकती हैं परन्तु जब विभिन्न इकाइयां परस्पर समझौते द्वारा सामूहिक कार्यवाही करती हैं तो मांग के परिवर्तन व्यक्तिगत इकाइयों के लिए कम हानिप्रद होते हैं। जैसे व्यापार चक्रों से बचने के लिए व्यावसायिक संयोग स्थापित होते हैं और उनके द्वारा औद्योगिक इकाइयों का आकार विस्तृत हो जाता है। अतः कुछ दशाओं में, जैसे कि समझौते की दशा में जोखिम व उच्चावचन की शक्तियां बड़े पैमाने के उत्पादन को प्रोत्साहित करती हैं।

औद्योगिक इकाई के आकार के मापदण्ड

औद्योगिक इकाइयों के आकार, उत्पादन क्षमता तथा लाभोपार्जन क्षमता का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिये एक ऐसे सर्वमान्य मापदण्ड की आवश्यकता है, जो इकाई के आकार को माप सके। औद्योगिक इकाई के आकार के कुछ प्रमुख मापदण्ड अग्रलिखित हैं–

1. **उत्पादन की मात्रा** : इकाई द्वारा उत्पन्न माल की मात्रा औद्योगिक इकाई के आकार का एक श्रेष्ठ मापदण्ड है। जो इकाई एक तुलनीय समय में दूसरी इकाई की अपेक्षा अधिक उत्पादन करती है तो उसका आकार दूसरी अन्य इकाइयों की अपेक्षा बड़ा माना जायेगा। लेकिन इस मापदण्ड को सर्वश्रेष्ठ नहीं माना जा सकता, क्योंकि उत्पादन की मात्रा केवल आकार पर निर्भर नहीं करती, बल्कि अन्य तत्वों पर भी निर्भर करती है, जैसे उत्पादन की मांग, कच्चे माल की उपलब्धि, वित्तीय साधन आदि।
2. **इकाई में संलग्न श्रम शक्ति** : इकाई के आकार का दूसरा आवश्यक मापदण्ड उसमें संलग्न श्रम–शक्ति है। जिस औद्योगिक इकाई की भृति एवं वेतन सूचियों पर श्रमिकों की संख्या अधिक हो, उसे बड़ी इकाई माना जाना

टिप्पणी

चाहिए। लेकिन यह मापदण्ड भी दोष रहित नहीं है, क्योंकि कुछ उद्योग श्रमप्रधान होते हैं तो उनमें श्रमिकों की संख्या अधिक होना स्वाभाविक है।

3. **उद्योग में विनियोजित कुल पूंजी** : इकाई के आकार के मापन के लिए आवश्यक मापदण्ड औद्योगिक इकाई में विनियोजित कुल पूंजी की मात्रा है। यह सर्वमान्य है कि जिस इकाई में अधिक पूंजी विनियोजित है, वह अन्य इकाइयों से बड़ी है। परंतु यह मापदण्ड भी उचित नहीं है, क्योंकि बहुत से प्रबंधक ऋणपूंजी के आधार पर अपना व्यापार करते हैं। ऐसी स्थिति में उनका आकार विस्तृत होते हुए भी उनकी निजी पूंजी छोटा आकार प्रकट करती हैं।

4. **उपयोग की जाने वाली शक्ति की मात्रा** : औद्योगिक इकाई द्वारा प्रयोग की जा रही शक्ति की मात्रा भी उसके आकार को निर्धारित कर सकती है। एक बड़ी इकाई छोटी औद्योगिक इकाई की अपेक्षा अधिक मात्रा में संचालन शक्ति का प्रयोग करेगी। इस मापदण्ड में भी दोष हैं। यह मापदण्ड केवल उन्हीं इकाइयों के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है, जिनमें यंत्रीकरण प्रगति समान गति से हो और वे एक समान संचालन शक्ति का प्रयोग करते हों।

5. **स्थायी सम्पत्तियों की विनियोजित पूंजी** : कुछ व्यक्ति औद्योगिक इकाई की स्थायी सम्पत्तियों में विनियोजित पूंजी की मात्रा को इकाई के आकार का प्रतीक मानते हैं। जिस औद्योगिक इकाई का ब्लॉक मूल्य अधिक हो, उसे बड़ा माना जायेगा, परन्तु इस मापदण्ड में भी कमियां हैं–

   1. प्रत्येक उद्योग में स्थायी और कार्यशील सम्पत्तियों का आनुपातिक भाग अलग–अलग होता है।
   2. स्थायी सम्पत्तियों का प्रतिशत देश में हुए तकनीकी विकास की गति, मशीनीकरण तथा स्वचालन की गति पर भी आश्रित होता है।

   यदि कोई आधुनिक इकाई आधुनिकतम स्वचालित यंत्रों का प्रयोग करती है, तो उसकी ब्लॉक पूंजी उन यंत्रों का प्रयोग न करने वाली औद्योगिक इकाई की अपेक्षा अधिक होगी।

6. **उपभोग किये जाने वाले कच्चे माल की मात्रा** : किन्हीं दो औद्योगिक इकाइयों के आधार पर तुलनीय समय में इकाइयों द्वारा उपयोग किये गये कच्चे माल की मात्रा भी उनके आकार को मापने का श्रेष्ठ मापदण्ड सिद्ध हो सकती है। उत्पादन की मात्रा की भांति कच्चे माल की वार्षिक खपत की मात्रा को भी आकार के मापन हेतु लिया जा सकता है। इस मापदण्ड का प्रयोग केवल ऐसी आत्म निर्भर इकाइयों के लिये किया जा सकता है, जिनके उत्पादन में प्राकृतिक रूप में पारस्परिक समानता हो।

उपर्युक्त विवेचन से यह पूर्णतया स्पष्ट है कि औद्योगिक इकाई का आकार मापने के लिए भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में भिन्न–भिन्न मापदण्ड प्रयोग में लाये जा सकते हैं। किसी एक मापदण्ड को सामान्यीकृत नहीं कहा जा सकता है, अर्थात् कोई एक मापदण्ड सर्वमान्य नहीं है, जो सम्पूर्ण परिस्थितियों में पूर्णतया उपयुक्त है।

तकनीक का चयन

टिप्पणी

उद्योग की स्थापना से पूर्व संचालक के समक्ष प्रश्न उठता है कि आर्थिक एवं औद्योगिक विकास के लक्ष्य को पूरा करने के लिए उत्पादन की कौन सी तकनीक अपनायें। सामान्यतया उत्पादन की दो तकनीकें हो सकती हैं–

1. श्रमप्रधान तकनीक (Labour Intensive Technique)
2. पूंजीप्रधान तकनीक (Capital Intensive Technique)

श्रमप्रधान तकनीक

श्रमप्रधान तकनीक एक ऐसी तकनीक होती है, जिसके अंतर्गत मशीन की तुलना में मानवीय श्रम को अधिक महत्व दिया जाता है और उत्पादन प्रक्रिया में मानव–श्रम की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। इस तकनीक में श्रम का अधिक व पूंजी की कम आवश्यकता होती है। इसे पूंजी बचाव तकनीक के नाम से भी जाना जाता है। श्रम–प्रधान तकनीक अपनाने के समर्थन में निम्न तर्क दिये जाते हैं–

1. **बेरोजगारी की समस्या का समाधान** : विकासशील देशों में जहां श्रम शक्ति अधिक होती है, जिन देशों में बेरोजगारी की समस्या काफी गंभीर होती है, वहां श्रम–प्रधान तकनीक अपनानी चाहिए। इससे अधिक लोगों को रोजगार मिलेगा और बेराजगारी की समस्या हल होगी।
2. **सीमित पूंजी का महत्वपूर्ण कार्यों में उपयोग** : जिन देशों में पूंजी सीमित मात्रा में उपलब्ध होती है, वहां उत्पादन में श्रम–प्रधान तकनीक अपनाकर सीमित पूंजी को महत्वपूर्ण कार्यों में प्रयोग किया जाना चाहिए।
3. **क्रय शक्ति का व्यापक वितरण** : श्रम–प्रधान तकनीक अपनाने से विकास के लाभों में बढ़ने वाली क्रय शक्ति का जनता के एक बहुत बड़े भाग में वितरण किया जा सकता है।
4. **सामाजिक महत्व** : उत्पादन की श्रम–प्रधान तकनीक का सामाजिक महत्व भी है। विकासशील देशों में विद्यमान सामाजिक परिस्थितियां श्रम–प्रधान तकनीक अपनाने को बाध्य करती हैं।
5. **विदेशी विनिमय की बचत** : उत्पादन कार्य में श्रम–प्रधान तकनीक अपनाने से विदेशी विनिमय की बचत होती है, क्योंकि इस तकनीक द्वारा उत्पादन करने के कारण सामान्य यंत्रों एवं उपकरणों की आवश्यकता होती है, और उन्हें अपने ही देश में बनाया जा सकता है।
6. **मुद्रा स्फीति पर नियंत्रण** : श्रम–प्रधान तकनीक मुद्रा स्फीति पर नियंत्रण स्थापित करने में सहायक सिद्ध होती है।

पूंजी–प्रधान तकनीक

पूंजी–प्रधान तकनीक उत्पादन की एक ऐसी तकनीक है, जिसमें मानव श्रम के स्थान पर मशीनों को अधिक महत्व दिया जाता है। पूंजीप्रधान तकनीक में तुलनात्मक रूप से पूंजी की अधिक और श्रम की कम आवश्यकता होती है। इसलिये इस तकनीक को 'श्रम बचाओ तकनीक' के नाम से भी जाना जाता है। पूंजीप्रधान तकनीक अपनाने के

टिप्पणी

समर्थन में निम्नलिखित तर्क दिये गये हैं–

1. **जीवन स्तर में वृद्धि** : पूंजीप्रधान तकनीक से कम लागत पर अच्छी एवं उच्च गुणवत्ता वाली वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है अतः इससे व्यक्तियों के जीवन स्तर में सुधार आता है।
2. **शीघ्र एवं तीव्र विकास** : देश के शीघ्र एवं तीव्र आर्थिक एवं औद्योगिक विकास के लिये पूंजी–प्रधान तकनीक को अपनाया जाना चाहिए। इसके अभाव में तीव्र गति से आर्थिक विकास करना संभव नहीं है।
3. **दीर्घकाल में अधिक रोजगार** : पूंजीप्रधान तकनीक का विरोध इस आधार पर किया जाता है कि यह तकनीक मानव श्रम का हक छीनती है। इस तकनीक को अपनाने से व्यक्तियों को रोजगार के कम अवसर प्राप्त होते हैं, लेकिन वास्तविकता यह है कि पूंजीप्रधान तकनीक को अपनाने से दीर्घकाल में रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध होते हैं।
4. **श्रमिकों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि** : पूंजीप्रधान तकनीक में श्रमिकों को आधुनिक मशीनों की सहायता से उत्पादन करने के अवसर प्राप्त होते हैं जिससे उनकी उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है।
5. **अनार्थिक इकाइयों से बचत** : पूंजीप्रधान तकनीक के पक्ष में एक यह भी तर्क दिया जाता है कि इस तकनीक को अपनाने से अनार्थिक इकाइयों से बचाव हो जाता है।

कौन सी तकनीक श्रेष्ठ है

श्रमप्रधान एवं पूंजीप्रधान तकनीक के समर्थन में दिये गये तर्कों के आधार पर निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि दोनों में से कौन सी तकनीक श्रेष्ठ है। वास्तविक समस्या तकनीक के चयन की नहीं है, समस्या तो उचित सामंजस्य की है। दोनों तकनीकों के मध्य समन्वय स्थापित किया जाना जरूरी है।

औद्योगिक स्थानीकरण

यदि उद्योगों का स्थानीकरण विवेकपूर्ण भौगोलिक विशिष्टीकरण के अनुसार किया जाता है, तो प्रत्येक प्रदेश स्थानीय, मानवीय और भौतिक साधनों के अनुरूप उत्पादन कार्य में विशिष्टता प्राप्त करता है, और साधनों का सबसे उत्तम उपयोग करके, कम लागतों पर वस्तुओं का उत्पादन करके उस प्रदेश की प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि करता है।

यदि देश में उद्योगों का स्थानीकरण वैज्ञानिक एवं विवेकपूर्ण रीति के आधार पर नहीं किया जाता, तो देश उपलब्ध साधनों का अनुकूलतम विदोहन नहीं कर पाता है। उद्योगों का दोषपूर्ण स्थानीकरण उत्पादन की लागतों को बढ़ा देता है तथा उत्पादन क्षमताओं में कमी लाता है। ऐसे उद्योगों की प्रतियोगितात्मक क्षमता घट जाती है। इस प्रकार अविवेकपूर्ण स्थानीकरण अनेक बाधाओं एवं समस्याओं को जन्म देता है।

औद्योगिक स्थानीकरण का अर्थ : यदि किसी उद्योग की विभिन्न इकाइयां किसी क्षेत्र विशेष अथवा स्थान विशेष में केन्द्रित हो जाती हैं, तो यह उस उद्योग का स्थानीकरण कहलाता है।

स्थानीकरण से आशय विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग उद्योगों के केन्द्रीकरण से है, जिसे अन्तराष्ट्रीय दृष्टिकोण से क्षेत्रीय श्रम–विभाजन भी कहा जा सकता है।

टिप्पणी

वस्तुतः प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र के अनेक सिद्धांतों का प्रतिपादन तो किया है, किन्तु औद्योगिक स्थानीकरण के लिए कोई उपयुक्त सिद्धांत प्रस्तुत नहीं कर सके। यद्यपि अनेक प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने क्षेत्रीय श्रम–विभाजन तथा स्थानीकरण के कारणों का छुटपुट वर्णन अवश्य किया है, किन्तु वे किसी सम्यक् सिद्धांत की स्थापना नहीं कर पाये। स्थानीकरण का सैद्धांतिक विवेचन सर्वप्रथम राशेर (Rasher) ने एक लेख में किया, जिसका समर्थन अमेरिका के प्रो. रौस ने 1895 में प्रकाशित उद्योगों का स्थानीकरण नामक अपने लेख में किया। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में एक जर्मन विद्वान अल्फ्रेड वेबर ने प्रथम बार स्थानीकरण का एक वैज्ञानिक सिद्धांत विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया।

अल्फ्रेड वेबर का औद्योगिक स्थानीकरण सिद्धांत

वेबर ने औद्योगिक स्थानीकरण के सिद्धांत का प्रतिपादन सन् 1909 में जर्मन भाषा में किया था। लगभग बीस वर्षों के लंबे अंतराल के बाद इसका अनुवाद अंग्रेजी भाषा में किया गया। अल्फ्रेड वेबर ने अपने इस सिद्धांत का प्रतिपादन औद्योगीकरण के विभिन्न कारकों का पूर्ण अन्वेषण तथा विश्लेषण करके उनके आधार पर किया। उन्होंने यह पाया कि लागत के कुछ मूल तत्व अलग–अलग स्थानों पर समान नहीं होते हैं, जैसे श्रमिकों की मजदूरी, यातायात की लागत आदि। लागत के कुछ ऐसे तत्व होते हैं, जो सभी स्थानों पर लगभग समान होते हैं, जैसे पूंजी पर ब्याज तथा मशीनों पर ह्रास आदि। इस प्रकार स्पष्ट है कि उद्योग की उत्पादन लागत विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग होती है और उद्योगों का स्थानीकरण उस क्षेत्र में होगा, जहां उत्पादन की लागत न्यूनतम होगी। वेबर के अनुसार परिवहन लागत तथा श्रम लागत उद्योगों के स्थानीकरण को प्रभावित करती हैं। लागत विश्लेषण के आधार पर वेबर ने स्थानीकरण के कारणों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया है।

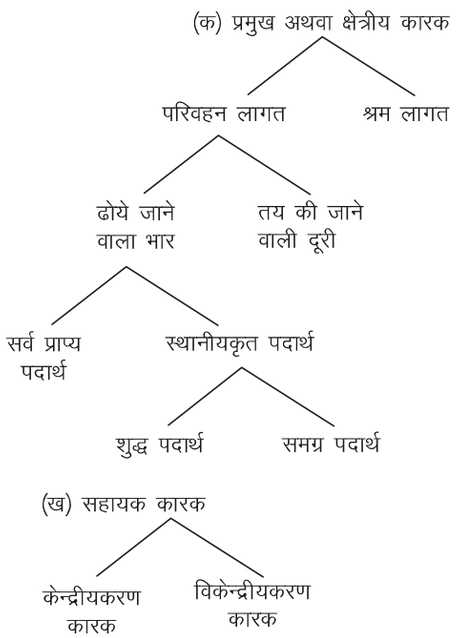

टिप्पणी

1. **परिवहन लागत** : किसी भी औद्योगिक इकाई की परिवहन लागतों के अंतर्गत कारखाने तक कच्ची सामग्री को प्राप्त करने एवं निर्मित वस्तु के वितरण की लागत को शामिल किया जाता है। जहां यह लागत न्यूनतम होती है वहां उद्योग की स्थापना होती है। परिवहन लागत के दो संघटक होते हैं जिन्हें जोड़कर परिवहन लागत ज्ञात की जाती है ये दो संघटक निम्न हैं–

(अ) ढोये जाने वाला भार

(ब) तय की जाने वाली दूरी

(अ) **ढोये जाने वाला भार** : समस्त कच्चे पदार्थ जो कारखाने तक लाये जाते हैं, समान भार अथवा वजन के नहीं होते हैं। कारखाने तक लाये जाने वाले पदार्थ को वेबर ने दो भागों में विभक्त किया है।

(i) **सर्वप्राप्यमाल** : इन पदार्थों की सभी स्थानों पर प्रचुरता होती है जैसे ईंट, मिट्टी, पत्थर, पानी आदि। इनका स्थानीकरण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(ii) **स्थानीकृत पदार्थ** : कुछ पदार्थ विशिष्ट स्थानों पर ही उपलब्ध होते हैं। इनका उद्योगों के स्थानीकरण पर विशेष प्रभाव पड़ता है जैसे कोयला, लोहा, चूना वन तथा कृषि जन्य पदार्थ आदि। वेबर ने इन्हें पुनः दो भागों में वर्गीकृत किया है। I शुद्ध पदार्थ और II भारी अथवा समग्र पदार्थ।

I. **शुद्ध पदार्थ अथवा भार न खोने वाले पदार्थ** : इनके अंतर्गत अनेक ऐसे पदार्थ शामिल होते हैं जिनका भार निर्माण प्रक्रिया में कम नहीं होता है जैसे जूट या पटसन, कपास, रेशम आदि। उत्पादन के लिये ऐसे पदार्थों के उपयोग में तय की जाने वाली दूरी का महत्व नहीं होता। औद्योगिक इकाइयां कच्चे माल स्रोतों के पास स्थापित की जाए अथवा विक्रय केन्द्रों के पास, परिवहन लागतों में कोई विशेष अंतर नहीं होता है।

II. **समग्र पदार्थ अथवा भारी पदार्थ** : इन्हें भार खोने वाले पदार्थ भी कहा जाता है, क्योंकि उत्पादन प्रक्रिया में इनका वजन घट जाता है। जैसे गन्ना, खनिज, लोहा, कोयला आदि ऐसे पदार्थ औद्योगिक इकाइयों को अपनी प्राप्ति के स्रोतों की ओर आकर्षित करते हैं। ये निश्चित रूप से औद्योगीकरण को प्रभावित करते हैं।

(ब) **तय की जाने वाली दूरी** : यदि कच्चे माल की प्राप्ति के क्षेत्र तथा बाजार या विक्रय केन्द्र एक सीधी रेखा के दो सिरों पर स्थित हैं, तो शुद्ध पदार्थों की दशा में परिवहन की दूरी का अधिक महत्व नहीं होगा, लेकिन स्थानीकृत भारी पदार्थों की दशा में परिवहन की दूरी का निश्चित प्रभाव पड़ेगा। और ऐसी दशा में औद्योगिक इकाइयों की स्थापना कच्चे माल की प्राप्ति के केन्द्रों के निकट ही की जायेगी ताकि परिवहन लागतों को न्यूनतम किया जा सके।

पदार्थ सूचकांक : सकल कच्चे माल की अवस्था तथा निर्मित अवस्था के भार के अनुपात को वेबर ने पदार्थ सूचकांक की संज्ञा दी है। इनके अनुसार पदार्थ

टिप्पणी

सूचकांक जितना कम होगा, उस उद्योग विशेष के स्थानीकरण की प्रवृत्ति उतनी ही अधिक बाजार अथवा विक्रय केन्द्रों की ओर आकर्षित होगी। इसके विपरीत पदार्थ सूचकांक जितना अधिक होगा, उस उद्योग विशेष की स्थानीकरण की प्रवृत्ति उतनी अधिक कच्चे माल की प्राप्ति के केन्द्रों के निकट आने की होगी। पदार्थ सूचकांक को निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जा सकता है–

$$\text{पदार्थ सूचंकांक} = \frac{\text{कच्चे माल का भार} \times 100}{\text{निर्मित माल का भार}}$$

2. **श्रम लागत** : वेबर के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में श्रम लागत असमान होती है। कुछ क्षेत्रों में सस्ता श्रम तो उपलब्ध होता है लेकिन गतिशीलता का अभाव होता है अर्थात् सस्ते श्रम को मंहगे क्षेत्रों में सरलता से स्थानांतरित नहीं किया जा सकता है। यदि श्रम लागत किसी उद्योग की कुल लागत में महत्वपूर्ण होती है तो ऐसे उद्योगों का स्थानीकरण सस्ते श्रम केन्द्रों के निकट ही होगा, लेकिन ऐसा उसी दशा में होगा जब श्रम से प्राप्त बचत का परिवहन लागत में वृद्धि पर आधिक्य हो और श्रम की गतिशीलता शून्य हो अन्यथा नहीं।

श्रम गुणांक : श्रम लागत तथा स्थानीकरण भार के अनुपात को वेबर ने श्रम गुणांक की संज्ञा दी है। श्रम गुणांक वह अनुपात है, जो एक ओर श्रम लागत तथा दूसरी ओर स्थानीकरण भार के मध्य होता है। यदि श्रम गुणांक अधिक है, तो यह श्रम स्थानीकरण को प्रोत्साहित करेगा, इसके विपरीत यदि श्रम गुणांक कम हो और पदार्थ निर्देशांक/सूचकांक अधिक है, तो ऐसी दशा में यातायात स्थानीकरण अधिक प्रबल होगा।

स्थानीकरण के सहायक कारक : स्थानीकरण का अनुकूलतम यातायात लागत बिंदु कोई स्थायी बिन्दु नहीं है, जिसमें कोई विचलन न हो। कुछ अन्य कारक उसे विचलित कर सकते हैं। वेबर ने स्थानीकरण के सहायक कारकों को दो भागों में विभक्त किया है– केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण।

सहायक कारक के अंतर्गत उन कारणों या घटकों को शामिल किया जाता है, जो किसी प्रदेश विशेष के भीतर ही उद्योगों के वितरण को केन्द्रीकरण एवं विकेन्द्रीकरण की रीतियों द्वारा प्रभावित करते हैं।

1. **केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति** : किसी उद्योग के किसी विशेष स्थान या क्षेत्र में केन्द्रित हो जाने से क्षेत्र को उत्पादन के कुछ लाभ प्राप्त होते हैं, जिससे उत्पादन लागतें कम होती हैं। जिन उद्योगों में उत्पादन लागत में निर्माण व्यय का अनुपात अधिक होता है, उनमें केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति पायी जाती है। उद्योगों को एक क्षेत्र विशेष में केन्द्रित करने वाले घटक बैंकिंग बीमा विपणन आदि सुविधाएं हैं।
2. **विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति** : जब केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति बहुत अधिक हो जाती है और स्थान विशेष पर केन्द्रीकरण के कारण प्राप्त होने वाले लाभों में कमी आने लगती है, जैसे भूमि का मूल्य बढ़ जाता है श्रम लागतों में वृद्धि हो जाती है, तब विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति प्रबल हो जाती है।
3. **खण्डीय स्थानीकरण** : वेबर के अनुसार यदि कोई उद्योग किसी स्थान विशेष पर स्थानीकृत होने की बजाय अनेक स्थानों पर स्थानीकृत हो जाता है तो उसे

टिप्पणी

खण्डीय स्थानीकरण कहते हैं। यदि तकनीकी दृष्टि से किसी उद्योग की उत्पादन प्रक्रिया को दो या अधिक चरणों में विभक्त किया जाता है, तो निश्चय ही वह खण्डीय स्थानीकरण होगा। कागज उद्योग इसका सर्वोत्तम उदाहरण है, जिसकी उत्पादन प्रक्रिया दो परस्पर स्वतंत्र उत्पादन की प्रक्रियाओं में विभक्त की जा सकती है।

सह स्थानीकरण : सह स्थानीकरण से आशय विभिन्न प्रकार की इकाइयों के एक ही स्थान पर केन्द्रित हो जाने से है। यदि एक उद्योग का निर्मित या अर्द्धनिर्मित माल दूसरे उद्योग में कच्चे माल के रूप में प्रयोग लाया जाता है, तो उन दोनों उद्योगों का सह स्थानीकरण एक ही क्षेत्र में हो सकता है। किसी एक बड़े उद्योग के उप–उत्पादों का लाभ उठाने के लिए अनेक सहायक उद्योग उसी क्षेत्र में स्थानीकरण होते जाते हैं।

वेबर के सिद्धांत की आलोचना

यद्यपि वेबर का सिद्धांत औद्योगिक स्थानीकरण के कारणों का तत्कालीन परिस्थितियों के आधार पर एक अच्छा विश्लेषण प्रस्तुत करता है और आधुनिक समय में तो औद्योगिक स्थानीकरण की समस्या औद्योगिक नियोजन का एक महत्वपूर्ण अंग है। लेकिन इनके सिद्धांत में कुछ कमियां हैं, जिसके आधार पर सिद्धांत की आलोचना की गई जो निम्न हैं–

1. वेबर का सिद्धांत अनेक अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है और यह स्थानीकरण की प्रवृत्ति पर पूर्ण प्रकाश नहीं डालता है।
2. वेबर का सिद्धांत परिवहन लागत तथा श्रम लागत पर आधारित है, जबकि औद्योगिक स्थानीकरण को प्रभावित करने वाले अन्य महत्वपूर्ण घटक भी हैं, जैसे भूमि संरचना, पूंजी की उपलब्धता, जलवायु, राज्य की नीति आदि।
3. वेबर ने परिवहन लागतों में केवल दो तत्वों को शामिल किया है, किन्तु परिवहन लागतों के और भी तत्व होते हैं, जैसे सड़क या मार्ग की बनावट। माल व मात्रा की प्रकृति।
4. कच्चे माल को जिन दो भागों में विभाजित किया गया है, वह कृत्रिम एवं अप्राकृतिक है, क्योंकि आजकल कच्चे पदार्थ बहुत दूर–दूर से लाये जाते हैं।
5. वेबर की मान्यता है कि उपभोग केन्द्र निश्चित होते हैं यह उचित नहीं है। उपभोक्ता प्रायः देश में फैले हुए होते हैं, और समय–समय पर अपनी उपभोग की वस्तुओं में परिवर्तन करते रहते हैं।
6. वेबर द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत में निगमन प्रणाली को अपनाया गया है। स्थानीकरण के अनार्थिक कारणों को कोई स्थान प्राप्त नहीं है, जबकि स्थानीकरण में ऐतिहासिक एवं सामाजिक प्रभावों के महत्व को भूलाया नहीं जा सकता है।
7. वेबर का सिद्धांत अत्यधिक तकनीकी विश्लेषण पर आधारित है, जो साधारण व्यक्ति की समझ से परे है।

सार्जेण्ट फ्लोरेन्स का औद्योगिक स्थानीकरण सिद्धांत

औद्योगिक स्थानीकरण के संबंध में सार्जेण्ट फ्लोरेन्स के विचार अधिक व्यापक एवं वास्तविक हैं। सार्जेण्ट फ्लोरेन्स का स्थानीकरण आगमनात्मक विश्लेषण पर आधारित

है। फ्लोरेन्स के अनुसार किसी उद्योग का किसी क्षेत्र से सम्बन्ध उतना महत्वपूर्ण नहीं जितना कि देश की समस्त श्रमिक–जनसंख्या के वितरण से किसी उद्योग का सम्बन्ध महत्वपूर्ण है।'' इस सिद्धांत में व्यावसायिक गणना तथा उत्पादन गणना से प्राप्त प्रतिशतों के आधार पर स्थानीकरण की प्रवृत्ति के जिन दो मापकों का प्रयोग किया गया है वे मापक हैं– (1) स्थानीकरण भाज्य, (2) स्थानीकरण गुणांक।

टिप्पणी

1. **स्थानीकरण भाज्य :** यह एक निर्देशांक है जो इस बात की माप करता है कि किसी क्षेत्र विशेष में स्थानीकरण किस अंश तक है। इसकी गणना निम्नलिखित सूत्र के आधार पर की जा सकती है–

$$L = \frac{\frac{A \times 100}{B}}{\frac{C \times 100}{D}}$$

L = स्थानीकरण भाज्य

A = किसी क्षेत्र विशेष में उद्योग विशेष में नियेाजित श्रमिकों की संख्या

B = समस्त देश में उस उद्योग विशेष में कार्यरत श्रमिकों की संख्या

C = उस क्षेत्र में कुल औद्योगिक श्रमिकों की संख्या

D = समस्त देश में कुल औद्योगिक श्रमिकों की संख्या

निम्न उदाहरण की सहायता से उपर्युक्त सूत्र का स्पष्टीकरण भली–भांति किया जा सकता है–

श्रम	क्षेत्र विशेष में	सम्पूर्ण देश में
उद्योग विशेष में कार्यरत श्रमिकों की संख्या	40,000 (A)	2,00,000 (B)
कुल औद्योगिक श्रम शक्ति	1,00,000 (C)	10,00,000 (D)

$$L = \frac{\frac{40,000 \times 100}{2,00,000}}{\frac{1,00,000 \times 100}{10,00,000}}$$

$$\frac{20}{10} = 2$$

इसकी गणना निम्न वैकल्पिक रीति से भी की जा सकती है।

$$\frac{\frac{A \times 100}{C}}{\frac{B \times 100}{D}} \qquad \frac{\frac{40,000 \times 100}{1,00,000}}{\frac{2,00,000 \times 100}{10,00,000}} = \frac{40}{20} = 2$$

इसके आधार पर सार्जेण्ट फ्लोरेन्स ने निम्न निष्कर्ष निकाले हैं–

1. यदि किसी उद्योग के लिए विभिन्न क्षेत्रों का स्थानीकरण भाज्य इकाई या उसके निकट है, तो यह इस बात का परिचायक है कि वह उद्योग देश के विभिन्न क्षेत्रों में समान रूप से विभाजित है।

टिप्पणी

2. किसी क्षेत्र विशेष के लिए यदि स्थानीकरण–भाज्य इकाई से अधिक है, तो यह उस क्षेत्र में उस उद्योग की स्थानीकरण की प्रवृत्ति को बताता है। स्थानीकरण भाज्य इकाई से जितना होगा उस क्षेत्र में केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति उतनी अधिक होगी।
3. यदि किसी क्षेत्र में यह भाज्य इकाई से कम है तो यह इस बात का परिचायक होगा कि उस क्षेत्र में स्थानीकरण कम है। भाज्य इकाई जितनी कम होगी उस क्षेत्र में उस उद्योग के स्थानीकरण की प्रवृत्ति उतनी कम होगी।
4. यदि किसी क्षेत्र के लिए यह भाज्य शून्य है तो यह उस क्षेत्र में उस उद्योग विशेष के सर्वथा अभाव का सूचक होगा।

स्थानीय गुणक : किसी क्षेत्र में स्थानीकरण की सीमा को नापने के लिए सार्जेण्ट फ्लोरेन्स ने स्थानीकरण गुणक का उपयोग किया है। इसे ज्ञात करने के लिए निम्न प्रतिशतों की गणना की जाती है।

(क) प्रत्येक क्षेत्र में देश के सम्पूर्ण श्रमिकों की संख्या का प्रतिशत तथा

(ख) प्रत्येक क्षेत्र में किसी उद्योग विशेष में कार्यरत श्रमिकों की संख्या का प्रतिशत।

दोनों प्रतिशतों का विचलन निकालकर उसमें 100 से भाग देकर स्थानीकरण गुणांक ज्ञात किया जा सकता है। स्थानीकरण गुणक उद्योग विशेष के स्थानीकरण की प्रवृत्ति का द्योतक है। यदि गुणक कम है तो इस बात का परिचायक है कि उद्योग में पर्याप्त विकेन्द्रीकरण है। दूसरी ओर यदि यह गुणक अधिक है तो यह उस उद्योग में केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति का प्रतीक है।

सार्जेण्ट फ्लोरेन्स द्वारा ज्ञात किये गये इन सांख्यिकीय भाज्यों एवं गुणकों की औद्योगिक स्थानीकरण के विवेचन तथा विश्लेषण में पर्याप्त उपयोगिता है, फिर भी इस सिद्धांत की अनेक कमियों की ओर विद्वानों ने ध्यान आकर्षित किया है।

1. सार्जेण्ट फ्लोरेन्स का स्थानीकरण सिद्धांत जिन दो निर्देशकों पर आधारित है वे किसी देश में विद्यमान औद्योगिक वितरण की स्थिति को ही स्पष्ट करते हैं। स्थानीकरण भाज्य तथा स्थानीकरण गुणांक यह स्पष्ट नहीं करते हैं कि किसी क्षेत्र में उद्योग के केन्द्रीकरण के क्या कारण हैं।
2. फ्लोरेन्स द्वारा ज्ञात किये गये सांख्यिकीय मापक राष्ट्र में औद्योगिक स्थानीकरण के विषय में किसी भावी नीति के निर्माण में मार्गदर्शन नहीं कर सकते हैं।
3. स्थानीकरण भाज्य के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि उद्योग के स्थानीकरण की सीमा अधिक है अथवा कम। क्योंकि भाज्य की गणना कार्यरत श्रमिकों के आधार पर की जाती है और कुछ क्षेत्रों में श्रमिकों की संख्या अपेक्षाकृत कम होते हुए भी उत्पादन होता है तथा अन्य क्षेत्रों में श्रमिकों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक होते हुए उत्पादन कम होता है।
4. गुणक की गणना औद्योगिक वितरण के वर्तमान ढांचे के आधार पर की जाती है जबकि वितरण ढांचा विभिन्न देशों में असमान होता है।

दोनों सिद्धांतों में कुछ कमियां हैं। दोनों सिद्धांतों की आलोचना की गई है, किन्तु इसके बावजूद दोनों सिद्धांतों का महत्व कम नहीं हुआ। ये सिद्धांत एक दूसरे के विरोधी

न होकर पूरक हैं और औद्योगिक स्थानीकरण की समस्याओं के अध्ययन एवं विश्लेषण के लिए दोनों को साथ–साथ अपनाया जाना चाहिए।

टिप्पणी

स्थानीकरण को प्रभावित करने वाले कारक

स्थानीकरण को प्रभावित करने वाले घटकों को निम्न 5 भागों में बांटा जा सकता है– (1) प्राकृतिक कारण, (2) आर्थिक, (3) राजनीतिक कारण, (4) धार्मिक कारण, (5) अन्य कारण।

1. प्राकृतिक कारण

स्थानीकरण को प्रभावित करने वाले प्राकृतिक कारण को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है–

1. **कच्चे माल की उपलब्धता** : निर्माण करने के लिए कच्चा माल आवश्यक है, अतः ऐसे स्थान पर जहां कच्चा माल प्रचुर मात्रा में मिलता है, उद्योग–धन्धे एकत्रित हो जाते हैं, जैसे– बंगाल में जुट तथा लोहे व इस्पात के कारखाने, उत्तर–प्रदेश में चीनी के कारखाने आदि। प्रायः ऐसा कच्चा माल जो वजन में भारी लेकिन मूल्य में सस्ता होता है, स्थायी होता है। उनका प्रयोग करने वाले उद्योग कच्चे माल के केन्द्रों के समीप ही स्थापित होते हैं।
2. **शक्ति के साधनों की उपलब्धता व समीपता** : बड़े पैमाने के उद्योगों में शक्ति का प्रयोग होता है। अतः ऐसे स्थान पर जहां शक्ति के साधन (कोयला, पेट्रोल व डीजल तथा बिजली) प्रचुर मात्रा में सस्ते प्राप्त हो जाते हैं तथा उन स्थानों पर उद्योगों के केन्द्रित होने की प्रवृत्ति पायी जाती है।
3. **अनुकूल जलवायु** : कुछ उद्योगों के लिए किसी विशेष प्रकार की जलवायु का होना उसकी उपयोगिता में वृद्धि करने के लिए आवश्यक होता है, जैसे–कपड़ा मिलों के लिए नम जलवायु का होना कपड़े की अच्छी किस्म के लिए आवश्यक है। घड़ी के कारखानों के लिए भी नम जलवायु हों आवश्यक है, यही कारण है कि भारत में कपड़े के कारखाने अधिकतर बम्बई, अहमदाबाद आदि में केन्द्रित हैं।

2. आर्थिक कारण

आर्थिक कारण भी उद्योगों के स्थानीकरण को प्रभावित करते हैं–

1. **बाजार की निकटता** : उद्योग ऐसे स्थानों पर स्थापित किया जाना चाहिए जहां पर निर्मित माल की मांग अधिक हो अर्थात् बाजार के निकट ही ऐसे उद्योग स्थापित किये जाते हैं। प्रायः ऐसे उद्योग जिनमें उत्पादन प्रक्रिया में कच्चे माल के भार में कोई कमी नहीं होती, बाजार के नजदीक ही लगाये जाते हैं, क्योंकि उनमें परिवहन लागत कम आती है। बाजार के नजदीक उद्योग स्थापित करने का एक अन्य लाभ यह भी है कि उत्पादकों और उपभोक्ताओं में प्रत्यक्ष सम्बन्ध बना रहता है।
2. **सस्ते और कुशल श्रमिकों की उपलब्धता** : अन्य बातों के समान रहने पर उद्योग ऐसे स्थानों पर केन्द्रित होगा, जहां पर श्रमिक सस्ते और कार्यदक्ष मिल

टिप्पणी

सकें। एक बार उस स्थान पर उद्योग खुल जाने पर दक्ष कारीगर मिल जाते हैं और बाद में अन्य कारखाने भी उसी स्थान पर केन्द्रित हो जाते हैं।

3. **परिवहन व संचार व्यवस्था** : व्यवसाय स्थल ऐसा होना चाहिए, जहां पर कच्चे माल के निर्मित हो जाने पर पक्के माल को आसानी से पहुंचाया जा सके व उसकी लागत भी कम आये। संचार व्यवस्था भी जल्दी माल बेचने व खरीदने के लिए होनी चाहिए तभी उत्पादकों व उपभोक्ताओं तथा व्यापारियों में अच्छा सम्पर्क स्थापित हो सकेगा।

4. **पूंजी की उपलब्धता** : आर्थिक दृष्टि से विकसित स्थान पर पूंजी की व्यवस्था आसानी से कम ब्याज–दर पर हो जाती है, क्योंकि कुछ पेशेवर विनियोक्ता भी इन्हीं स्थानों की ओर आकर्षित होते हैं। कार्यशील पूंजी प्रायः ऐसे स्थान पर होना चाहिए, जहां पर बैकिंग सुविधा पर्याप्त मात्रा में सुलभ हो।

5. **पूरक, सहायक तथा प्रतिस्पर्धात्मक उद्योगों का विकास** : उद्योग के स्थापित करने में एक कारण यह भी देखना होता है कि उस स्थान पर उस उद्योग से सम्बन्धित अन्य पूरक उद्योग या सहायक उद्योग या प्रतिस्पर्द्धात्मक उद्योग है या नहीं। जहां पर ऐसे उद्योग केन्द्रित होते हैं, वहां वह उद्योग भी आसानी से बाजार में उपलब्ध हो जाता है अथवा कच्चा माल खरीदने में सरलता हो जाती है। अतः ऐसे उद्योग भी उन्हीं केन्द्रों पर स्थापित हो जाते हैं।

3. राजनैतिक कारण

स्थानीकरण को प्रभावित करने वाले राजनैतिक कारण को निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत उल्लेखित किया गया है–

1. **राजकीय प्रोत्साहन** : आजकल उद्योग धन्धों के विकास के लिए सरकार उद्योगों में हस्तक्षेप करती है। सरकार यदि किसी स्थान पर उद्योग–धंधों को केन्द्रित करना चाहती है तो उनको विभिन्न प्रकार से प्रोत्साहन दिया जाता है। इनमें मुख्य प्रोत्साहन निम्न प्रकार दिये जा सकते हैं–

   (a) **आर्थिक सहायता प्रदान करना** : एक निश्चित स्थान पर किसी उद्योग को लगाने के लिए सरकार कभी–कभी आर्थिक सहायता प्रदान करती है, अतः इस धनाकर्षण के परिणामस्वरूप बहुत सी इकाइयां उस स्थान पर स्थापित हो जाती हैं।

   (b) **निर्मित माल खरीदने का आश्वासन** : कभी–कभी सरकार एक निश्चित स्थान पर उद्योगों को प्रोत्साहित करने हेतु यह आश्वासन प्रदान करती है कि उनके द्वारा बनाया माल सरकार स्वयं खरीद लेगी।

   (c) **विभिन्न प्रकार की सुविधाएं प्रदान करना** : सरकार किसी स्थान पर उद्योग के विकास के लिए अनेक प्रकार की सुविधाएं भी उपलब्ध कराती है, जैसे–नये औद्योगिक नगरों का विकास, सस्ती दर पर शक्ति प्रदान करना, सस्ते मूल्य पर भूमि उपलब्ध कराना आदि।

2. **कर नीति का निर्धारण** : उद्योगों के केन्द्रीकरण को प्रभावित करने हेतु सरकार द्वारा कर नीति निर्धारित की जा सकती है। अधिकांश उद्योग प्रायः समुद्र

के किनारे ही स्थापित किये गये हैं, क्योंकि पुनर्निर्यात करते समय उन पर लगने वाले कर की मात्रा कम हो जाती है।

टिप्पणी

3. **सुरक्षात्मक दृष्टिकोण** : आधुनिक युग में युद्धों की प्रकृति अत्यंत नाशवान है और दुश्मन भी सर्वप्रथम ऐसे स्थलों पर ही धावा बोलता है, जहां राष्ट्र की औद्योगिक शक्ति केन्द्रित होती है, इसलिए सरकार भी महत्वपूर्ण उद्योगों को ऐसे स्थानों पर केन्द्रित करती है, जहां दुश्मन आसानी से प्रवेश न कर सकें।
4. **क्षेत्र का संतुलित विकास** : देश का संतुलित क्षेत्रीय विकास करने के दृष्टिकोण से सरकार यह इच्छा प्रकट नहीं करती कि उद्योगों का विकास केवल कुछ ही स्थानों पर केन्द्रित हो जाये। अतः सरकार केन्द्रीयकरण के लिए नये–नये केन्द्रों की स्थापना करती है, जिससे राजनीतिक असन्तोष पैदा नहीं होता तथा राष्ट्र की सम्पत्ति भी विभिन्न क्षेत्रों में समान रूप से बंट जाती है।

4. धार्मिक कारण

स्थानीकरण को प्रभावित करने वाले धार्मिक कारणों को निम्न बिन्दु के अन्तर्गत उल्लेखित किया गया है–

तीर्थ स्थानों पर उद्योगों का निर्माण : कुछ उद्योग धार्मिक कारणों से कुछ तीर्थ स्थानों पर निर्मित हो गये हैं, जैसे–मथुरा में मूर्ति उद्योग। प्रायः धार्मिक वस्तुओं का निर्माण ऐसे तीर्थ स्थानों पर ही होता है।

5. अन्य कारण

स्थानीकरण को प्रभावित करने वाले अन्य कारण निम्नवत हैं–

1. **धंधों का प्रारंभ** : कभी–कभी कुछ उद्योग किसी स्थान पर बहुत जल्दी बिना किसी कारण के स्थापित हो जाते हैं, तत्पश्चात् उस प्रकार के उद्योग उसी स्थान विशेष में केन्द्रित होते चले जाते हैं, कारण वहां पर उद्योग से सम्बन्धित आवश्यक सुविधाएं मिलने लगती हैं। मेरठ में कैंची उद्योग इसका सर्वोत्तम उदाहरण है।
2. **औद्योगिक वातावरण** : औद्योगिक वातावरण उस स्थान पर उद्योगों के निर्मित होने को प्रभावित करता है। यदि कोई उद्योग विशेष स्थान से हटकर किसी अन्य स्थान पर केन्द्रित हो जायेंगे, जहां पर अच्छा वातावरण है, वहां पर सरकार सहायता भी प्रदान करेंगी या प्रशिक्षण की सुविधाएं भी बढ़ेगी। कानपुर में उद्योगों के केन्द्रीयकरण का यह भी एक प्रमुख कारण है।
3. **फैशन** : व्यवसाय के केन्द्रीयकरण पर फैशन का भी प्रभाव पड़ता है। जिस स्थान पर जैसा भी फैशन होता है, वहां पर उसी प्रकार के उद्योग स्थापित हो जाते हैं।
4. **व्यक्तिगत कारण** : कभी–कभी औद्योगिक स्थल के चुनाव में किसी व्यक्ति की अपनी रुचि व अरुचि अन्य सभी आर्थिक कारणों के बजाय आगे निकल जाती है। उदाहरणस्वरूप–फोर्ड नेडेट्राइट में मोटरकारों का कारखाना इसलिए स्थापित किया है, क्योंकि वह उसका जन्म स्थान था।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. उन मिलों एवं कारखानों को, जो एक ही स्वामित्व में काम करते हैं, क्या कहा जाता है?

   (क) प्लांट (ख) इकाई

   (ग) फर्म (घ) उद्योग

6. अल्फ्रेड वेबर ने औद्योगिक स्थानीकरण के सिद्धांत का प्रतिपादन कब किया था?

   (क) 1901 में (ख) 1902 में

   (ग) 1908 में (घ) 1909 में

2.5 वित्तीय प्रबंधन

यहां क्षेत्र का अर्थ है विषयगत शोध अथवा अध्ययन का विस्तार। व्यावसायिक वित्त का क्षेत्र इस तरह विस्तृत रूप से संभावनाशील है, जो विषयानुरूप ही है। व्यावसायिक वित्त व्यवसाय हेतु वित्त अर्जन संबंधी व्यापक पहलुओं का अध्ययन, विश्लेषण व परीक्षण करता है और अर्जित निधि को विभक्त करता है। व्यावसायिक वित्त के अंतर्गत विभिन्न क्षेत्र हैं, जिनमें कुछ इस प्रकार हैं–

वित्तीय योजना और नियंत्रण

वित्तीय योजना वांछित पूंजी को आंकने और उसकी प्रतिस्पर्धा स्थापित करने की प्रक्रिया है। यह उपलब्धता, निवेश व किसी उद्योग की निधि के प्रबंधन संबंधी वित्तीय नीतियों को आकार देने की प्रक्रिया है। वित्तीय योजना व नियंत्रण संगठित उद्यम के प्रबंधन की मूल प्रक्रिया है। किसी भी व्यावसायिक उद्योग के लिए अपने वित्तीय विश्लेषण और योजना को मूर्त रूप देना और उसका प्रबंधन अनिवार्य है। इन योजनाओं को बनाने तथा प्रबंधन के लिए वित्तीय प्रबंधक को उद्योग की वर्तमान वित्तीय स्थिति के बारे में ज्ञान होना आवश्यक है। इन सूचनाओं के आधार पर भिन्न आर्थिक परिदृश्य में वह उद्योग की भविष्य की योजनाओं और प्रबंधन रणनीतियों को नियमित करता है। आर्थिक बजट भी इन्हीं वित्तीय योजनाओं पर निर्भर करता है। आर्थिक बजट वित्तीय योजनाओं पर नियंत्रण का आधार बनता है। बजट के आधार पर उद्योग योजनाओं और प्रदर्शन के मध्य भटकाव का पता लगा कर उसे ठीक कर सकते हैं। इस तरह व्यावसायिक वित्त वित्तीय योजना और नियंत्रण से युक्त है।

वित्तीय लेखाजोखा विश्लेषण

वित्तीय लेखाजोखा (अथवा वित्तीय विश्लेषण) बेहतर आर्थिक निर्णयों हेतु किसी कंपनी के वित्तीय लेखेजोखे की समीक्षा और विश्लेषण की प्रक्रिया है। इन लेखेजोखों में आय, बैलेंस शीट, द्रव्य प्रवाह और शेयरधारकों के ब्याज अथवा इक्विटी में परिवर्तन समाहित रहते हैं।

व्यावसायिक वित्त का एक और क्षेत्र वित्तीय लेखेजोखे का विश्लेषण है। हालांकि यह व्यावसायिक उद्योग की प्रगति उन्मुखता से उठने वाली समस्याओं और वित्तीय

स्थितियों का विश्लेषण भी करता है। इनमें नये व्यवसाय की प्रगति उन्मुखता से संबंधित वित्तीय पहलू, विस्तार से जुड़ी प्रशासनिक कठिनाइयां तथा समस्याओं से त्रस्त किसी उद्योग की पुनर्स्थापना हेतु आवश्यक समायोजन समाहित होते हैं।

टिप्पणी

कार्यशील पूंजी प्रबंधन

कार्यशील पूंजी प्रबंधन का उद्देश्य यह निश्चित करना होता है कि एक उद्योग अपने संचालन की निरंतरता में सक्षम हो तथा इसके पास परिपक्व होते अल्पकालिक ऋण और आगामी संचालन संबंधी खर्चों के वहन की क्षमता हो। कार्यशील पूंजी के प्रबंधन में विस्तृत सूचियों (इन्वेंटरी) का प्रबंधन, प्राप्य व देय खाते तथा नकदी समाहित होते हैं।

वित्तीय निर्णय, जो वर्तमान परिसंपत्तियों और अल्पकालिक परिसंपत्तियों से संबंधित होते हैं, कार्यशील पूंजी प्रबंधन के रूप में जाने जाते हैं। अल्पकालिक बचाव दीर्घकालिक बचाव की पूर्व शर्त होते हैं और व्यवसाय में यह महत्वपूर्ण कारक है। इसलिए वर्तमान परिसंपत्तियों का प्रबंधन कुशलतापूर्वक होना चाहिए, जिससे कि व्यवसाय भविष्य में अपर्याप्त निधि, अथवा अनावश्यक निधिहीनता से पीड़ित न हो सके। इस पहलू का अर्थ यह है कि व्यक्ति की वर्तमान परिसंपत्तियों जैसे नकदी, प्राप्य और विस्तृत सूची (इन्वेंटरी) का अति कुशलतापूर्वक प्रबंधन होना चाहिए। इस तरह कार्यशील पूंजी के प्रबंधन में कुशलता तरलता और लाभकारिता में संतुलन निश्चित करती है।

पूंजी निर्माण

लंबी अवधि की परिसंपत्तियों से संबंधित वित्तीय निर्णय पूंजीगत बजट निर्धारण या लंबी अवधि के निवेश निर्णय के रूप में जाना जाता है। यह क्षेत्र फर्म के लिए उपलब्ध कई संबंधित विकल्पों में से एक निवेश प्रस्ताव चुनने से जुड़ा है। फिर भी, प्रस्ताव की स्वीकार्यता उस प्रस्ताव विशेष से जुड़े प्रतिलाभों पर निर्भर करती है। यहां पूंजीगत बजट निर्धारण युक्ति निवेश प्रस्ताव की अर्हता मापती है। यह युक्ति निवेश प्रस्ताव के मूल्यांकन की पद्धति का अध्ययन करती है। यह निवेश प्रस्ताव से भविष्य में होने वाले प्रतिलाभों के संदर्भ में जोखिम व अनिश्चितता का विश्लेषण भी करती है। सभी प्रतिलाभों का मूल्यांकन इनसे जुड़े जोखिम के संदर्भ में किया जाता है।

वित्तीय प्रबंधन– वित्तीय प्रबंधन का संबंध पैसे (फंड्स) के ऐसे कुशल व प्रभावी प्रबंधन से है, जिसके माध्यम से व्यापारिक संगठन के उद्देश्य की पूर्ति की जा सके। यह विशिष्ट कार्य है जिसका सीधा संबंध सर्वोच्च प्रबंधन से होता है।

वित्तपूर्ति का प्रबंधन

वित्त का प्रबंधन व्यापारिक वित्त का एक और महत्वपूर्ण क्षेत्र है। वित्त का प्रबंधन फर्म की परिसंपत्तियों तथा परिसंपत्तियों की संरचना के मिश्रण से संबंधित है। एक फर्म को हमेशा अपनी परिसंपत्तियों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। मुख्य निवेश के समय फर्म को ऋण तथा इक्विटी पूंजी के अनुपात का समुचित मिश्रण करना चाहिए, क्योंकि पूंजी संरचना ऋण व इक्विटी पूंजी का अनुपात है। ऋण व इक्विटी के समुचित अनुपात से युक्त पूंजी संरचना को सर्वोत्कृष्ट पूंजी संरचना कहा जाता है। इस तरह, वित्त प्रबंधक को सर्वोत्कृष्ट पूंजी संरचना तथा शेयरधारकों के प्रतिलाभ बढ़ाने के लिए निर्मित किए जाने वाले फंड के अनुपात के संदर्भ में कोई निर्णय करना चाहिए।

टिप्पणी

लाभांश प्रबंधन

लाभांश एक कॉरपोरशन द्वारा अपने शेयरधारकों को किया जाने वाला भुगतान है, जो अकसर लाभ के वितरण के रूप में होता है। जब एक कॉरपोरेशन मुनाफा या अतिरिक्त मुनाफा कमाती है, तब वह इसे (आरक्षित आय को) व्यापार में पुनर्निवेशित कर सकती है, तथा मुनाफे के एक अंश का भुगतान अपने शेयरधारकों को लाभांश के रूप में कर सकती है। शेयरधारकों को भुगतान नकदी के रूप में (अकसर बैंक खाते में जमा द्वारा) या, अगर कॉरपोरशन की लाभांश पुनर्निवेश की योजना है, तब शेयर जारी कर अथवा शेयरों की फिर से खरीद द्वारा किया जा सकता है।

लाभांश प्रति शेयर तय राशि के रूप में वितरित किया जाता है, जिसे शेयरधारक अपनी शेयरधारिता के अनुपात में प्राप्त करते हैं। 'संयुक्त स्टॉक कंपनी' के लिए लाभांश भुगतान कोई व्यय नहीं है, बल्कि यह ऐसी कंपनी के लिए अपने शेयरधारकों में कर बाद मुनाफे का वितरण है। आरक्षित आय (आय जो लाभांश के रूप में वितरित नहीं हुई) कंपनी की बैलेंस शीट के शेयरधारक इक्विटी खंड में प्रदर्शित की जाती है। यह कंपनी की निर्गमित शेयर पूंजी के समान ही होती है। सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियां सामान्यतया तय कार्यसारिणी के अनुसार लाभांश वितरित करती हैं, लेकिन साथ ही ऐसी कंपनियां किसी भी समय लाभांश घोषणा भी कर सकती हैं। इसे कभी कभी 'तय कार्यसारिणी के अनुसार लाभांश' से भिन्न दिखाने के लिए 'विशेष लाभांश' भी कहा जाता है। दूसरी तरफ सहकारी संस्थाएं लाभांश का वितरण सदस्यों की सक्रियता के अनुसार करती हैं। इन संस्थाओं के लाभांश अकसर कर पूर्व व्यय के रूप में जाने जाते हैं।

व्यावसायिक वित्त लाभांश से जुड़ी नीतियों का भी विश्लेषण करता है, जैसे मूल्यह्रास तथा आरक्षित फंड अथवा आरक्षित आय। लाभांश निर्णय फर्म के वित्तीय निर्णय के आधार पर लिए जाते हैं। फर्म को निर्णय करना चाहिए कि कितना मुनाफा लाभांश के रूप में शेयरधारकों में वितरित किया जाए तथा कितनी आमदनी आरक्षित की जाए। यह निर्णय शेयरधारकों की प्राथमिकताओं तथा फर्म के लिए उपलब्ध निवेश के अवसरों पर निर्भर करता है। यहां वित्त प्रबंधक को एक सशक्त लाभांश नीति विकसित करनी चाहिए।

उपरोक्त वर्णित पहलू व्यावसायिक वित्त के क्षेत्र से संबंधित थे। हालांकि व्यावसायिक वित्त इन सीमित मगर महत्वपूर्ण क्षेत्रों से कहीं अधिक व्यापक है। व्यावसायिक वित्त से जुड़े कुछ दूसरे पहलू हैं नियमन, नियंत्रण व वित्तीय सहायता का अध्ययन तथा आय प्रबंधन।

वित्त की प्रकृति एवं कार्य

वित्त का अध्ययन वर्णनात्मक न रहकर विश्लेषणात्मक हो गया है और परंपरागत विचारधारा के अंतर्गत जिसे 'निगम वित्त' या 'व्यावसायिक वित्त' मानकर अध्ययन करते थे, आधुनिक विचारधारा के अंतर्गत उसे 'वित्तीय प्रबंध' मानकर अध्ययन करते हैं। इस रूप में वित्तीय प्रबंध को सामान्य प्रबंध का ही एक अभिन्न अंग मानते हैं। वस्तुतः यह सामान्य प्रबंध के कार्यात्मक क्षेत्र का स्वरूप है। उत्पादन प्रबंध, विपणन प्रबंध, सेविवर्गीय प्रबंध की भांति ही वित्तीय प्रबंध भी कार्यात्मक प्रबंध की श्रेणी में आता है। सामान्यतः वित्तीय प्रबंध का अर्थ वित्तीय नियोजन, वित्त प्राप्ति, संपत्ति प्रबंध तथा विभिन्न वित्तीय स्रोतों में संतुलन स्थापित करना है। हावर्ड एवं अप्टन के शब्दों में, 'वित्तीय प्रबंध

टिप्पणी

से आशय वित्त क्रियाओं पर नियोजन व नियंत्रण की क्रिया को लागू करने से होता है।' वेस्टन तथा ब्रीघम के अनुसार, 'वित्तीय प्रबंध वित्तीय निर्णय लेने का वह क्षेत्र है जो व्यक्तिगत उद्देश्यों एवं उपक्रम के लक्ष्यों में एकरूपता संबंध पूंजी के न्यायपूर्ण प्रयोग एवं पूंजी के साधनों के सतर्कतापूर्ण चयन से है ताकि खर्च करने वाली इकाई को इसके उद्देश्यों की पूर्ति की दिशा में निर्देशित किया जा सके।' इन सभी परिभाषाओं से स्पष्ट हो रहा है कि वित्तीय प्रबंध में संस्था को आवश्यकतानुसार वित्त उपलब्ध कराना, वित्तीय नियोजन, वित्तीय नियंत्रण, संपत्तियों का प्रबंधन आदि शामिल हैं। जे.एस. मैसी के अनुसार, 'वित्तीय प्रबंध एक व्यवसाय की वह संचालनात्मक क्रिया है, जो कुशल संचालन के लिए आवश्यक वित्त को प्राप्त करने तथा उसका प्रभावशाली प्रयोग करने के लिए उत्तरदायी होती है।

वित्त कार्य

वित्त कार्य–तीन महत्वपूर्ण निर्णयों के रूप में– वित्त कार्य की आधुनिक विचारधारा के अंतर्गत तीन महत्वपूर्ण निर्णयों का जिक्र किया गया है। वस्तुतः इन तीन निर्णयों का सामूहिक नाम ही वित्त कार्य कहलाता है। आधुनिक विचारधारा के अनुसार वित्त कार्य को अग्र रूप में वर्णित किया जा सकता हैः

1. **विनियोग निर्णय**– विनियोग निर्णय में दीर्घकालिक संपत्तियों में विनियोग (पूंजी बजटिंग) तथा अल्पकालीन संपत्तियों में विनियोग (कार्यशील पूंजी प्रबंध) शामिल होते हैं। दीर्घकालीन संपत्तियों (पूंजीगत संपत्तियों) में विनियोग संबंधी निर्णय, पूंजी बजटिंग व अनिश्चितता विश्लेषण के द्वारा विभिन्न वैकल्पिक योजनाओं के सतर्कतापूर्ण मूल्यांकन के बाद ही लिया जाता है। इस प्रकार के पूंजी बजटिंग के तीन तत्व ध्यान में रखने पड़ते हैं। पहला, विभिन्न वैकल्पिक प्रस्तावों में उसी पूंजी विनियोग को चुना जाता है, जो सर्वोत्तम लाभ प्रदान करता हो। इस प्रकार पूंजी विनियोगों का मूल्यांकन अभिन्न अंग बन जाता है। दूसरा तत्व जोखिम व अनिश्चय का विश्लेषण है। चूंकि पूंजी विनियोग से प्राप्त होने वाला लाभ भविष्य से संबंधित होता है इसलिए उसमें अनिश्चितता बनी रहती है। तीसरे, पूंजी विनियोगों का मूल्यांकन सदैव एक प्रमाप लाभ–मापदण्ड के आधार पर ही किया जा सकता है। इसे पूंजी की लागत के बराबर मान लिया जाता है। जहां तक अल्पकालीन संपत्तियों में विनियोग का प्रश्न है, ऐसा विनियोग लेते समय लाभदायकता व तरलता (जोखिम) के बीच तालमेल बिठाना पड़ता है। यह जरूरी नहीं कि जहां तरलता हो वहां लाभ की स्थिति भी हो। यदि अल्पकालीन संपत्तियों में आवश्यकता से अधिक विनियोग कर दिया जाए, तो लाभदायकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। यही नहीं, अल्पकालीन संपत्तियों के संबंध में भी उचित विनियोग नीति अपनानी चाहिए। सारांश में, विनियोग निर्णय वित्तीय प्रबंध का मुख्य कार्य है जिसका प्रभाव लाभदायकता पर और अंततोगत्वा धन पर पड़ता है।
2. **अर्थप्रबंधन निर्णय**– वित्तीय प्रबंध का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य अर्थप्रबंधन निर्णय है। अर्थ प्रबंधन निर्णय का संबंध पूंजी संरचना से होता है। विनियोग के अर्थप्रबंधन हेतु कोषों के विभिन्न स्रोतों से प्राप्त किया जा सकता है। कोष के प्रत्येक स्रोत में भिन्न–भिन्न समस्याएं निहित रहती हैं। वित्तीय प्रबंधक का

टिप्पणी

यह दायित्व होता है कि वह दीर्घकालीन और अल्पकालीन कोषों के बीच एक उचित संतुलन बनाए रखे। दीर्घकालीन विनियोगों के अर्थप्रबंधन हेतु उसे पर्याप्त मात्रा में दीर्घकालीन कोषों का संग्रह करना पड़ेगा। दीर्घकालीन कोषों के अंतर्गत उसे ऋण पूंजी (स्थिर लागत वाले स्रोत) और सम–अंशपूंजी (परिवर्तनशील लागत वाले स्रोत) के मध्य एक समुचित अनुपात निर्धारित करना पड़ेगा। ऋण पूंजी के प्रयोग से समअंशधारियों के प्रत्याय पर पड़ने वाले प्रभावों की भी जांच करनी होगी। दूसरे शब्दों में, इन दोनों प्रकार के स्रोतों के बीच एक अनुकूलतम संतुलन स्थापित करना पड़ता है, ताकि अंशधारियों के धन का अधिकीकरण हो जाए।

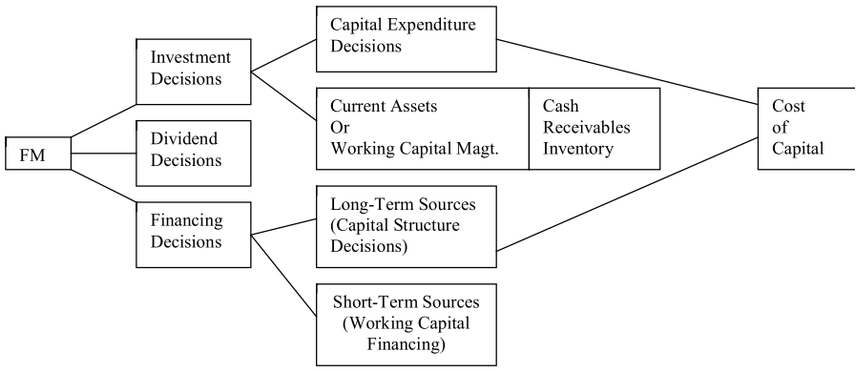

3. **लाभांश निर्णय**– वित्तीय प्रबंध का तीसरा कार्य लाभांश घोषित व भुगतान करने संबंधी निर्णय से संबंधित है। वित्तीय प्रबंधक उच्च प्रबंधक को राय देता है कि लाभ का कितना भाग अंशधारियों को लाभांश के रूप में दिया जाए, और कितना भाग प्रतिधारित किया जाए। एक अनुकूलतम लाभांश भुगतान अनुपात वही होता है जो अंशधारियों के धन को अधिकतम कर दे। प्रतिधारित की जाने वाली या अंशधारियों को लाभांश के रूप में दी जाने वाली राशि का निर्धारण इस बात से होता है कि संस्था उस राशि का अधिकतम प्रयोग कर पाती है या नहीं। लाभांश निर्णय का प्रभाव अर्थप्रबंधन निर्णय पर अवश्य पड़ता है।

वित्तीय प्रबंध के ये तीनों कार्य सहसंबंधित है क्योंकि इनका एक ही उद्देश्य होता है– अंशधारियों के धन का अधिकीकरण। चूंकि विनियोग, अर्थप्रबंधन व लाभांश निर्णय आपस में अंतर्संबंधित होते हैं, अतः इन निर्णयों को संयुक्त रूप से हल करना चाहिए और कंपनी के अंशों के बाजार मूल्य पर पड़ने वाले इनके संयुक्त प्रभावों की जांच करनी चाहिए। एक नई परियोजना में विनियोग करने का निर्णय विनियोग के लिए कोष की आवश्यकता को जन्म देता है अर्थात् अर्थप्रबंध का निर्णय भी लेना पड़ता है। अर्थप्रबंधन निर्णय अपने आप में लाभांश निर्णय को प्रभावित करता है, और उससे प्रभावित भी होता है, क्योंकि आंतरिक अर्थप्रबंधन के रूप में प्रतिधारित लाभ का प्रयोग अंशधारियों को लाभांश से वंचित कर देता है। एक कुशल वित्तीय प्रबंधक अनुकूलतम संयुक्त निर्णय लेकर अपने को आश्वासित कर सकता हे कि अंशधारियों के धन का अधिकीकरण हो जाए।

वित्तीय प्रबंधन के उद्देश्य

टिप्पणी

वित्तीय प्रबंध के उद्देश्य पर दो दृष्टिकोणों से विचार किया जा सकता है–प्रथम, व्यापक स्तर से, दूसरे, सूक्ष्म स्तर से। व्यापक स्तर के दृष्टिकोण के अनुसार वित्तीय प्रबंध का उद्देश्य उपलब्ध सीमित साधनों के गहन, श्रेष्ठतम व कुशलतम प्रयोग द्वारा उपयोगी व उत्तम वस्तु या सेवा का सृजन करके उसे उचित मूल्य पर समाज को उपलब्ध कराना है, ताकि संपूर्ण समाज लाभान्वित हो सके। इसके विपरीत, सूक्ष्म स्तर के दृष्टिकोण से एक कंपनी, फर्म या संस्था के व्यक्तिगत दृष्टिकोण के अनुसार वित्तीय प्रबंध के उद्देश्य का निर्धारण किया जाता है। एकाल संस्था के दृष्टिकोण से वित्तीय प्रबंध के उद्देश्य के संबंध में दो विरोधी विचारधाराएं देखने को मिलती हैं :

(अ) लाभ अधिकीकरण उद्देश्य;

(ब) मूल्य (धन) अधिकीकरण उद्देश्य।

(अ) लाभ अधिकीकरण–वित्तीय प्रबंध का उद्देश्य संस्था के लाभ को अधिकतम करना है। कुछ विद्वानों का मत है कि जब वित्तीय प्रबंधक विनियोग, अर्थप्रबंधन व अन्य संबंधित निर्णयों पर विचार कर रहा हो, तो उसे उस विकल्प का ही चुनाव करना चाहिए, जिसको अपनाने से लाभ अधिकतम हो सके। दूसरे शब्दों में, जिन कार्यों से लाभ बढ़ता हो, उन्हें अपनाना चाहिए और जिनसे लाभ में कमी आती हो, उन्हें त्याग देना चाहिए। लाभ को अधिकतम करने के लिए सीमित साधनों से उत्पादन अधिकतम करना पड़ता है या एक निश्चित उत्पादन की मात्रा के लिए लागत न्यूनतम करनी पड़ती है। संस्था सीमित साधनों के प्रयोग में कुशलता (efficiency) व दक्षता का परिचय देती है। लाभ को अधिकतम बनाने के पीछे बहुत ही सरल तर्क है। लाभ आर्थिक क्षमता व कुशलता का मापदण्ड है। आर्थिक निष्पादन के मूल्यांकन हेतु लाभ मापदण्ड के रूप में प्रयोग किया जाता है। इससे संसाधनों का कुशलतम आवंटन भी संभव हो जाता है, क्योंकि संसाधनों को केवल वहीं पर प्रयोग किया जाता है जहां पर लाभ अधिकतम होने की संभावना होती है। इससे अधिकतम सामाजिक कल्याण भी होता है।

लाभ अधिकीकरण उद्देश्य को एक सीमित उद्देश्य के रूप में माना जाता है, क्योंकि इसकी बहुत सी कमियां हैं :

- लाभ अधिकीकरण उद्देश्य जोखिम तत्व को ध्यान में नहीं रखता है। यह सर्वविदित है कि लाभ व जोखिम का सीधा संबंध होता है। जोखिम जितना ही अधिक होती है, लाभ की मात्रा उतनी ही अधिक होती है। अतः वित्तीय प्रबंधक को जोखिम को भी ध्यान में रखना चाहिए।
- लाभ अधिकीकरण उद्देश्य का दृष्टिकोण बहुत ही संकुचित माना जाता है, क्योंकि यह सामाजिक उत्तरदायित्वों व हितों को ध्यान में नहीं रखता है। नैतिक दायित्वों व मूल्यों को नजरअंदाज करके कोई भी संस्था दीर्घकाल तक जीवित नहीं रह सकती है।
- लाभ अधिकीकरण उद्देश्य अनिश्चितता को भी ध्यान में नहीं रखता है। जब भावी लाभ अनिश्चित होते हैं, तो लाभ को अधिकतम करने की बात अपने आप में निरर्थक हो जाती है।

टिप्पणी

- लाभ अधिकीकरण उद्देश्य में एक कमी यह भी है कि यह भावी लाभ के समय अंतराल को ध्यान में नहीं रखता है। विनियोग के कुल जीवन काल में भिन्न–भिन्न समयाविध में प्राप्त होने वाले लाभ के योग के आधार पर ही निर्णय लिया जाता है। मुद्रा का भी समय मूल्य होता है–जब तक इस सिद्धांत को ध्यान में नहीं रखा जाएगा, लाभ को अधिकतम करने का कोई औचित्य नहीं बनता है।
- लाभ अधिकीकरण उद्देश्य में एक व्यावहारिक कठिनाई 'लाभ' शब्द के परिभाषित व लाभ का मापन करने से संबंधित है। व्यवहार में 'लाभ' शब्द का प्रयोग कई अर्थों में लिया जाता है और अलग–अलग लेखांकन परम्पराओं के अंतर्गत लाभ की मात्रा भी अलग–अलग मापी जा सकती है। ऐसी स्थिति में एक कठिनाई व्यावहारिक रूप में यह उत्पन्न होती है कि किस लाभ का अधिकीकरण किया जाए।

(ब) मूल्य (धन) का अधिकीकरण उद्देश्य–लाभ अधिकीकरण की कमियों व कठिनाईयों को ध्यान में रखते हुए कुछ विद्वानों का मत है कि वित्तीय प्रबंध का उद्देश्य मूल्य या धन को अधिकतम करना होना चाहिए। अन्य शब्दों में, वित्तीय प्रबंधक को प्रयत्न करना चाहिए कि अंशधारियों के लिए संस्था का मूल्य अधिकतम हो जाए। संस्था के मूल्य से तात्पर्य संस्था की शुद्ध संपत्तियों के मूल्य से होता है। कभी–कभी मूल्य का अर्थ कंपनी के सम अंशों के बाजार मूल्य से भी लगाया जाता है। वित्तीय प्रबंधक को इसी मूल्य को अधिकतम करना चाहिए। वान हार्न ने लिखा है कि सम अंशों का यह बाजार मूल्य भावी लाभों के वर्तमान मूल्य में से विनियोगों की प्रारंभिक लागत निकालकर जो शुद्ध वर्तमान मूल्य बचता है, उसी से प्रभावित होता है। इस प्रकार मूल्य अधिकीकरण उद्देश्य के अनुसार व्यवसाय का संचालन इस प्रकार करना चाहिए कि अंशधारियों को अधिकतम शुद्ध वर्तमान मूल्य प्राप्त हो सके। शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग कर सकते हैं :

NPV = GPV of future cashflow –C

जहां NPV = शुद्ध वर्तमान मूल्य

GPV = निश्चित दर पर डिस्काउंटेड भावी रोकड़ बहाव

C = विनियोग की प्रारंभिक लागत

यदि व्यवसाय संचालन के फलस्वरूप शुद्ध वर्तमान मूल्य शून्य से अधिक है, तो यह माना जाएगा कि स्वामियों की संपत्ति के वर्तमान मूल्य में वृद्धि हुई है। शून्य शुद्ध वर्तमान मूल्य इस बात का सूचक है कि संपत्ति के वर्तमान मूल्य में न तो वृद्धि हुई है और न ही कमी। यदि शुद्ध वर्तमान मूल्य ऋणात्मक है तो इसका अर्थ होगा कि संपत्ति के वर्तमान मूल्य में कमी आई है।

परंतु अब एक प्रश्न पैदा होता है कि संस्था के मूल्य अधिकतमीकरण के उद्देश्य और उसके सामाजिक उत्तरदायित्व में क्या आपसी संबंध है? व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व सिद्धांत इस ओर इंगित करता है कि संस्था का लक्ष्य अधिकतम लाभ न होकर 'उचित लाभ' होना चाहिए। इसके अतिरिक्त व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व

टिप्पणी

के अंतर्गत कुछ अन्य बातों भी आती हैं; जैसे–उपभोक्ता संरक्षण, कर्मचारियों का कल्याण और समाज सेवा आदि। स्पष्ट है कि अंशधारियों के हित और व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व के मध्य टकराव संभव है। परंतु यदि गहराई से सोचा जाए तो वास्तविकता यह है कि उपरोक्त दोनों में कोई मूलभूत अंतर न होकर अपर्याप्त समानता है। यदि संस्था अपने सामाजिक उत्तरदायित्व को पूरा करती है तो वह दीर्घकाल तक उचित दर से लाभ अर्जित करने में भी सक्षम हो जाती है। अंशधारियों की दृष्टि से उपार्जन की अनियमितता की अपेक्षा दीर्घकालीन नियमितता अधिक महत्वपूर्ण होती है। संस्था के वित्तीय प्रबंध का उद्देश्य यह अवश्य होना चाहिए कि उसके द्वारा कमाए जाने वाले लाभ की दर उसी प्रकार की अन्य कम्पनियों द्वारा कमाई जाने वाली लाभ दर से कम न हो। चूंकि उपार्जन दर की गणना कुल विनियोजित पूंजी के आधार पर की जाती है, इसलिए कुल विक्रय पर लाभ की सीमांत दर और विनियोग आवर्त उपार्जन दर को प्रभावित करते हैं। अतः प्रबंधकों की दृष्टि से इन दोनों कारकों को नियंत्रित किया जाना आवश्यक है।

वित्तीय आयोजन

मुख्य वित्त अधिकारी का यह प्रमुख दायित्व है कि वह व्यवसाय के लिए आवश्यक वित्त का पूर्वानुमान लगाकर उसे आयोजित करें। उसे सदैव इस बात के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए कि कभी भी व्यवसाय को आर्थिक कठिनाइयों का अनुभव न हो। आर्थिक कठिनाई का अर्थ यह है कि कभी भी फर्म को अपने भुगतान स्थगित न करने पड़े। यदि व्यवसाय को लगातार ऐसी कठिनाइयों पड़ीं तो इससे बाजार में उसकी साख गिर जाएगी, संगठन के कर्मचारियों में निराशा फैल जाएगी और हो सकता है कि संगठन की अकाल मृत्यु (समापन) हो जाए। दूसरी ओर उसे इस बात के लिए भी प्रयत्नशील रहना चाहिए कि कहीं आवश्यकता से अधिक कोष एकत्रित न कर लिए जाएं।

सामान्य शब्दों में, वित्तीय आयोजन का अभिप्राय ऐसी भावी वित्तीय क्रियाओं के पूर्वनिर्धारण से है जो कि फर्म के मुख्य लक्ष्य की पूर्ति के लिए की जानी अनिवार्य है। गस्टेनवर्ग के अनुसार, ''वित्तीय योजना का तात्पर्य किसी भी नये प्रवर्तित किए जा रहे व्यवसाय के प्रारंभिक संपत्ति–संगठन, वैधानिक संचालक, व्ययों, स्थायी और कार्यशील पूंची का उचित अनुमान लगाकर उसकी व्यवस्था करने तथा उसको प्राप्त करने के यथासम्भव स्रोतों के सही विश्लेषण से है।''

जे. एच. बोनविले के शब्दों में, ''एक निगम की वित्तीय योजना के दो पहलू होते हैं–एक, यह निगम के पूंजी–संगठन को संकेत करती है तथा दूसरे यह निगम द्वारा अपनाई गई अथवा अपनाई जाने वाली वित्तीय नीतियों को स्पष्ट करती है।'' इस प्रकार बोनिवले ने वित्तीय आयोजन में केवल दो बातों की ओर ही संकेत किया है– पूंजी संरचना का निर्धारण तथा वित्तीय नीतियों का निर्माण। वास्तव में, वित्तीय आयोजन की यह एक संकुचित व्याख्या है जबकि वास्तव में वित्तीय आयोजन एक विस्तृत शब्द है।

आर्थर एस. डेविंग के अनुसार, वित्तीय आयोजन में निम्न तीन बातें समिम्मलित हैं:

(क) पूंजी की आवश्यक मात्रा का अनुमान लगाना अर्थात पूंजीकरण निश्चित करना।

(ख) पूंजी के विभिन्न स्रोत निश्चित करना तथा विभिन्न प्रतिभूतियों का पारस्परिक अनुपात निश्चित करना।

(ग) पूंजी का उचित प्रबंध करना।

टिप्पणी

यद्यपि डेविंग द्वारा दिया गया वित्तीय–योजना का उपरोक्त परिचय काफी व्यापक है मगर यह उसके स्वभाव तथा कार्य–क्षेत्र को भलीभांति स्पष्ट नहीं करता। वित्तीय आयोजन की सर्वश्रेष्ठ परिभाषा वॉकर एव वॉन द्वारा दी गई है जो इस प्रकार है–''वित्तीय आयोजन वित्त कार्य से संबंधित है जिसमें फर्म के वित्तीय लक्ष्यों का निर्धारण, वित्तीय नीतियों का निर्माण एवं अनुगमन तथा वित्तीय प्रविधियों का विकास सम्मिलित है।'' इस प्रकार, इस व्याख्या में वित्तीय आयोजन में निम्न तीन बातें आती है–

1. **वित्तीय लक्ष्यों का निर्धारण**– वित्तीय आयोजन का पहला तत्व है फर्म के दीर्घकालीन और अल्प कालीन वित्तीय लक्ष्यों का निर्धारण करना। यदि फर्म अपने आधारभूत उद्देश्य को प्राप्त करना चाहती है तो उसे वित्तीय लक्ष्य अवश्य निर्धारित करने चाहिए। ये वित्तीय लक्ष्य वित्त कार्य में संलग्न अधिकारियों के लिए दशा–निर्देश का कार्य करेंगे। फर्म का दीर्घकालीन वित्तीय लक्ष्य होना चाहिए उसके उत्पादक संसाधनों का अधिकतम, क्षमतापूर्वक तथा मितव्ययी उपयोग। फर्म के अन्य उत्पादक साधनों का तभी पूरा उपयोग हो सकता है जबकि उसे आवश्यक मात्रा में, उचित समय पर तथा उचित पूंजी–लागत पर पूंजी उपलब्ध होती रहे। अतः दीर्घकालीन वित्तीय लक्ष्य के रूप में पूंजीकरण तथा पूंजी–ढांचे की व्यवस्था करना वित्त–प्रबंधक का महत्वपूर्ण कार्य होगा। फर्म को अल्पकालीन वित्तीय लक्ष्य है–फर्म की हर क्रिया के लिए आवश्यक नकदी की व्यवस्था होना। इसे हम कार्यशील पूंजी का प्रबंध अथवा नकदी के अंतर्वाह एवं बहिर्वाह का समन्वय भी कह सकते हैं। यह फर्म के कोषों में आवश्यक तरलता बनाए रखने के लिए आवश्यक है ताकि कभी भी फर्म को भुगतानों हेतु नकदी की कमी अनुभव न हो।
2. **वित्तीय नीतियों का निर्माण**– वित्तीय आयोजन का दूसरा पहलू है ऐसी वित्तीय नीतियों का निर्माण करना जोकि फर्म के वित्तीय लक्ष्यों की पूर्ति में सहायक सिद्ध हों। इस संबंध में निम्न वित्तीय नीतियां महत्वपूर्ण रूप से उल्लेखनीय हैं–
   - पूंजी की आवश्यक मात्रा निश्चित करने वाली नीतियां।
   - पूंजी प्रदान करने वाले पक्षों से फर्म का संबंध निश्चित करने वाली नीतियां।
   - ऋण–पूंजी एवं स्वामित्वशील पूंजी का परस्पर अनुपात निश्चित करने वाली नीतियां।
   - पूंजी के विभिन्न स्रोतों का चुनाव करने में सहायक और मार्ग निर्देशन करने वाली नीतियां।
   - आय के वितरण में सहायक नीतियां।
   - कार्यशील पूंजी के प्रबंध में सहायता देने वाली नीतियां।
   - स्थायी संपत्तियों एवं चालू संपत्तियों के कुशल प्रबंध में सहायता देने वाली नीतियां।

ये वित्तीय नीतियां वित्त विभाग में विभिन्न स्तरों पर काम कर रहे वित्तीय अधिकारियों द्वारा बनाई जाती हैं और इनका पालन करने से पूंजी के अनुकूलतम तथा कुशल उपयोग में सहायता मिलती है।

टिप्पणी

3. **वित्तीय प्रविधियों का विकास**– वित्तीय आयोजन का तीसरा पहलू है वित्तीय प्रविधियों का विकास करना। इसमें सबसे पहला काम है विभिन्न वित्त कार्यों को छोटे–छोटे उप–विभागों में बांटना, उन कार्यों तथा दायित्वों को अधीनस्थ अधिकारियों को अन्तरित करना, वित्तीय निष्पादन के नियंत्रण की व्यवस्था करना आदि। वित्तीय नियंत्रण के भी दो पहलू होते हैं–मूल्यांकन के लिए प्रमाप निश्चित करना तथा दूसरे, उन प्रमापों की सहायता से निष्पादन की तुलना करके निष्कर्ष निकालना। वित्तीय नियंत्रण अति महत्वपूर्ण कार्य है। वित्तीय योजना के अंतर्गत पूर्व निर्धारित उद्देश्यों, नीतियों एवं कार्यक्रमों को भली प्रकार अमल में लाने तथा विचलनों और विसंगतियों को रोकने के लिए वित्तीय नियंत्रण आवश्यक है। वित्तीय नियंत्रण के लिए प्रबंधकों द्वारा विभिन्न रीतियां विकसति हो जाती है, जैसे–बजटरी नियंत्रण, लागत नियंत्रण, वित्तीय लेखों का निर्वचन एवं विश्लेषण आदि। इन सभी के विषय में हम इसी पुस्तक में यथास्थान विस्तारपूर्वक पढ़ेगें। उपरोक्त विवरण से यह भली–भांति स्पष्ट हो जाता है कि वित्तीय आयोजन एक सतत और परिवर्तनशील विचार है। एक व्यावसायिक उपक्रम में यह काम लगातार चलता ही रहता है। यह नहीं कि एक बार वित्तीय आयोजन कर दिया और काम समाप्त हो गया। आयोजन मूल्यांकन, विश्लेषण तथा समायोजन और समायोजन हेतु पुनः आयोजन चलता ही रहता है।

वित्तीय आयोजन की आवश्यकता

वित्तीय आयोजन एक आवश्यक और महत्वपूर्ण वित्तीय प्रक्रिया है। इसके दीर्घकालीन, मध्यमकालीन तथा अल्पकालीन वित्तीय योजनाओं से सभी पहलू उपक्रम की लाभोत्पादकता, उपार्जन क्षमता तथा शोधन क्षमता को प्रभावित करते है। जे. बेटी के शब्दों में, ''व्यवसाय में नकदी का पर्याप्त कोष तथा अनवरत प्रवाह अति आवश्यक है। हर समय व्यावसायिक फर्म को अपने दायित्वों का भुगतान करने में समर्थ होना चाहिए। चाहे विस्तार की स्थिति हो, प्रतिस्पर्धा का वातावरण हो, नये उत्पादन का प्रश्न हो अथवा आधुनिकीकरण का प्रश्न हो, फर्म को वित्त की आवश्यकता रहती है और पर्याप्त वित्त की समयानुकूल व्यवस्था करने के लिए वित्तीय आयोजन आवश्यक है।'' संक्षेप में वित्तीय आयोजन की आवश्यकता के पक्ष में निम्न तर्क दिए जा सकते हैं–

1. **पूंजी की सुरक्षा**– समुचित वित्तीय आयोजन करने से उपक्रम को अपनी पूंजी की सुरक्षा करने में बहुत सहायता मिलती है। वर्तमान काल में मशीनें और अन्य उत्पादन संयत्र नये आविष्कारों के कारण बहुत जल्दी ही कालातीत हो जाते हैं। संपत्तियों का एक बहुत बड़ा भाग निकट भविष्य में ही बेकार हो जाता है। अतः उनमें विनियोग पूंजी का अधिकतम उपयोग करने के लिए यह अति आवश्यक है कि अग्रिम नियोजन किया जाए।
2. **संचालन क्रियाओं में मितव्ययिता और समन्वय**– वित्तीय आयोजन का एक मुख्य लाभ है जटिल संचालन क्रियाओं में मितव्ययिता लाना और अपव्यय दूर करना। तकनीकी विकास, ऊंची कर की दरें, ब्याज–दरों में वृद्धि तथा बढ़ती

हुई तीव्र प्रतिस्पर्धा आदि बातें उपक्रम के प्रबंधकों को इस बात के लिए विवश करती है कि वे व्यवसाय की विभिन्न संचालनात्मक क्रियाओं में समन्वय स्थापित करें और यह वित्तीय आयोजन से ही सम्भव होता है।

टिप्पणी

3. **मूल्य–स्तर में परिवर्तन**– एक व्यावसायिक फर्म गतिशील आर्थिक वातावरण में काम करती है जिसमें मूल्य–स्तर में तेजी से वृद्धि हो रही है। ऐसी दशा में यह स्वाभाविक ही है कि संपत्तियों की प्रतिस्थापन लागत उनकी मूल लागत से काफी अधिक हो। अतः प्रबंधकों को भविष्य के लिए मशीनों की सुरक्षा का प्रश्न ही महत्वपूर्ण नहीं है। अपितु उनका बढ़े हुए मूल्य पर प्रतिस्थापन भी महत्वपूर्ण है। इसके लिए जो अतिरिक्त वित्त चाहिए वह समुचित वित्तीय नियोजन करके ही उपलब्ध किया जा सकता है।

4. **उपक्रम की सफलता**– व्यवसाय में सम्पन्न किया जाने वाला वित्त कार्य उत्पादन तथा वितरण आदि सभी उप–क्रियाओं की सफलता/असफलता को प्रभावित करता है। अतः यह अति आवश्यक है कि हर वित्तीय क्रिया को सुव्यवस्थित तरीके से नियोजित किया जाए।

5. **सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार**– भारत में निजी क्षेत्र के व्यावसायिक संस्थानों के लिए तो वित्तीय नियोजन का महत्व सार्वजनिक क्षेत्र के तीव्र विस्तार के कारण और भी अधिक बढ़ गया है। इसका कारण यह है कि अब सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम भी निजी उद्योगों की भांति ही बैंकों तथा वित्तीय संस्थानों से वित्तीय सहायता प्राप्त करने लगे हैं। अतः निजी क्षेत्रों के उद्योगों को पहले की भांति इनसे सरलतापूर्वक आर्थिक सहायता नहीं मिल सकेगी। अब उन्हें सार्वजनिक उद्योगों से इस बारे में प्रतिस्पर्धा करनी पड़ेगी अतः उन्हें अपने वित्तीय आयोजन को अधिक से अधिक सार्थक बनाना होगा ताकि वे काफी समय पहले अपनी वित्तीय आवश्यकताओं का पूर्वानुमान लगा सकें और उचित ब्याज दर पर उसे प्राप्त कर सकें।

वित्तीय आयोजन के रूप

समयावधि की दृष्टि से वित्तीय आयोजन को निम्न तीन वर्गों में बांटा जा सकता है–

(अ) दीर्घकालीन वित्तीय आयोजन– प्रायः 5 वर्ष से ऊपर की अवधि के लिए किया गया वित्तीय आयोजन दीर्घकालीन वित्तीय कहलाता है। दीर्घकालीन वित्तीय आयोजन में ये बातें सम्मिलित होती है– उपक्रम के दीर्घकालीन वित्तीय लक्ष्यों का निर्धारण, पूंजीकरण की मात्रा निश्चित करना, पूंजी ढांचे का निर्धारण, भविष्य में विस्तार तथा एकीकरण के अवसर पर अतिरिक्त पूंजी की व्यवस्था करने की योजना, संपत्तियों के प्रतिस्थापन के लिए आवश्यक वित्त की व्यवस्था आदि। दीर्घकालीन वित्तीय आयोजन दीर्घकालीन वित्तीय समस्याओं का समाधान देता है।

(ब) मध्यमकालीन वित्तीय आयोजन– प्रायः एक वर्ष से अधिक तथा 5 वर्ष के कम की अवधि वित्तीय प्रबंध के क्षेत्र में मध्यमकालीन परिस्थिति मानी जाती है और इस अवधि की वित्तीय आवश्यकतायें मध्यमकालीन वित्तीय आवश्यकतायें कहलाती है। मध्यमकालीन वित्त की आवश्यकता संपत्तियों के प्रतिस्थापन,

रख–रखाव, छोटी अवधि के उत्पाद– कार्यक्रम चलाने, शोध एवं विकास कार्यक्रमों को चलाने तथा कार्यशील पूंजी की विशेष आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पड़ती है। मध्यमकालीन वित्तीय आयोजन पूंजी के ऐसे साधन खोजने से संबंध रखता है जिनसे पूंजी लागत में कमी आए और कंपनी के पूंजी–ढांचे में आवश्यक लोच तथा तरलता भी बनी रहे।

टिप्पणी

(स) अल्पकालीन वित्तीय आयोजन– प्रायः एक वर्ष की अवधि के लिए जो वित्तीय योजनायें बनाई जाती हैं, वे अल्पकालीन वित्तीय योजनायें कहलाती हैं। ये योजनायें वास्तव में मध्यमकालीन अथवा दीर्घकालीन वित्तीय योजनाओं का ही स्थानीय और छोटा स्वरूप होती हैं। इन्हें हम लाभ–नियोजनकारी योजनायें भी कह सकते हैं। इनका मुख्य उद्देश्य है उपक्रम की नियमति कार्यशील पूंजी का प्रबंध करना ताकि उपक्रम के वित्त कोषों में आवश्यक तरलता बनी रहे और कोष प्रवाह अबाध रूप से चलता रहे। विभिन्न प्रकार के बजट तैयार करना (जैसे कार्यशील पूंजी का बजट, उत्पादन बजट, विक्रय बजट आदि) तथा प्रक्षेपित लाभ–हानि खाता व चिट्ठा तैयार करना अल्पकालीन वित्तीय आयोजन के महत्वपूर्ण उपकरण हैं। अल्पकालीन वित्तीय आयोजन आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता देता है तथा नकदी के सन्तुलित प्रवाह को बनाए रखता है ताकि फर्म को कभी भी वित्तीय कठिनाई का सामना न करना पड़े और वह तकनीकी रूप से शोधक्षम (Solvent) बनी रहे।

अपनी प्रगति जांचिए

7. बेहतर आर्थिक निर्णयों हेतु किसी कंपनी के वित्तीय लेखे–जोखे की समीक्षा तथा विश्लेषण की प्रक्रिया क्या कहलाती है?

   (क) वित्तीय नियोजन (ख) वित्तीय नियंत्रण

   (ग) वित्तीय विश्लेषण (घ) पूंजी निर्माण

8. समयावधि की दृष्टि से वित्तीय आयोजन को कितने वर्गों में बांटा जा सकता है?

   (क) दो (ख) तीन

   (ग) चार (घ) पांच

2.6 विपणन और उपभोक्ता प्रबंधन

विपणन एक विस्तृत धारणा है जिसमें उन सभी साधनों तथा क्रियाओं को शामिल किया जाता है जो वस्तुओं और सेवाओं को उत्पादक से उपभोक्ता तक पहुंचाने के लिए आवश्यक होती हैं। विपणन का मुख्य उद्देश्य सही उत्पाद को, सही समय पर, सही स्थान पर तथा सही कीमत पर, सही मात्रा में सही उपभोक्ता तक पहुंचाना होता है। विपणन से ही उत्पादन वृद्धि की प्रेरणा मिलती है। विपणन किसी भी संस्था की सफलता का आधार होता है। यही कारण है कि वर्तमान समय में विपणन का कार्य, उत्पादन (Production), क्रय (Purchase), वित्त (Finance), अनुसंधान (Research), मानव संसाधन (Human Resource) आदि सभी कार्यों से अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है।

टिप्पणी

2.6.1 विपणन

बाजार की धारणा हमें विपणन की धारणा तक ले जाती है। प्रत्येक व्यावसायिक संस्था द्वारा किया जाने वाला सबसे चुनौती भरा कार्य संभवतः विपणन ही है। बाजार के संबंध में की गई सभी मानवीय क्रियाएं विपणन में शामिल की जाती हैं। विपणन शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है। प्राचीन अर्थ (Old Concept) के अनुसार वे सभी क्रियाएं जो उत्पाद को उत्पादन के स्थान से उपभोग के स्थान तक ले जाने के लिए की जाती हैं, विपणन क्रियाएं मानी जाती हैं जैसे क्रय, संग्रह, यातायात, श्रेणीकरण, विज्ञापन, कीमत निर्धारण इत्यादि, जबकि आधुनिक अर्थ (New Concept) के अनुसार विपणन का अर्थ बहुत विस्तृत रूप में लिया जाता है। इस विचारधारा के अनुसार विपणन क्रियाएं वास्तविक उत्पादन से पहले शुरू हो जाती हैं और विक्रय के उपरांत भी चलती रहती हैं, अर्थात उत्पाद नियोजन एवं विकास, क्रय एवं वस्तुओं का एकत्रीकरण, ब्रान्डिंग, पैकेजिंग, मूल्य निर्धारण, यातायात, संग्रहण, श्रेणीकरण, विज्ञापन, वित्त व्यवस्था, जोखिम सहन करना, बाजार अनुसंधान, विक्रय उपरांत सेवाएं इत्यादि सभी को विपणन की व्याख्या में शामिल किया जाता है।

विपणन की परिभाषा

विपणन की परिभाषा कुछ विद्वानों एवं संस्थाओं द्वारा भी की गई है, जिनमें से कुछ प्रमुख निम्न हैं–

1. ''विपणन उन व्यापारिक गतिविधियों का निष्पादन है जो कि माल एवं सेवाओं के प्रवाह को उत्पादक से उपभोक्ताओं की ओर निर्दिष्ट करती हैं।''

   – अमेरिका की विपणन परिषद

2. ''विपणन का आशय उन व्यावसायिक क्रियाओं की संपूर्ण प्रणाली से है, जिसका उद्देश्य वर्तमान एवं भावी ग्राहकों की आवश्यकता पूरी करने वाली वस्तुओं और सेवाओं का नियोजन, मूल्य निर्धारण, संवर्धन एवं वितरण करना है।''

   – विलियम जे. स्टेंटन

इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि विपणन के अंतर्गत उन सभी क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है जो कि उत्पादक, वस्तुओं और सेवाओं को, ग्राहकों तक पहुंचाने के लिए करते हैं।

प्रबंधन का अर्थ

इसकी परिभाषा भी विद्वानों ने अलग–अलग दी है, जैसे –

1. **कुंट्ज तथा ओ' डोनेल** ने प्रबंधन को पारिभाषित करते हुए कहा है कि ''प्रबंधन औपचारिक रूप से संगठित दलों में व्यक्तियों के साथ मिलकर कार्य करने की कला है।''
2. **स्टेनले वेंस के अनुसार**–''प्रबंधन मात्र निर्णय लेने तथा मानवीय क्रियाओं पर नियंत्रण करने की विधि है, जिससे पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।''

प्रबंधन की उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि प्रबंधन, कार्य करने की वह कला है जिसके द्वारा किसी भी संस्था के पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को सफलतापूर्वक पूर्ण किया जा सकता है।

टिप्पणी

प्रबंधन एक कला है जिसके अंतर्गत लोगों के द्वारा लोगों के लिए कार्यों को पूर्ण कराया जाता है, जिससे फर्म के उद्देश्यों की पूर्ति हो सके। विपणन प्रबंधन के अंतर्गत उन क्रियाओं को निर्देशित किया जाता है जो कि विपणन उद्देश्यों को प्राप्त कर सकें; जैसे कि उपभोक्ताओं की संतुष्टि तथा फर्म के लाभों में वृद्धि करना। प्रबंधन के सभी कार्यों; जैसे नियोजन, संगठन, निर्देशन, समन्वय तथा निर्णय आदि को विपणन में भी अपनाया जाता है।

औद्योगिक क्रांति के प्रारंभिक चरण में, प्रबंधन उत्पादन अभिमुखी (Production oriented) था अर्थात औद्योगिक समाज ग्राहक की अपेक्षा उत्पादन को अधिक महत्व देता था और प्रबंधन द्वारा अधिक से अधिक लाभ कमाने के प्रयास किए जाते थे। समय में परिवर्तन के साथ–साथ उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई और नये–नये प्रतियोगी उत्पादन क्षेत्र में आने लगे। विक्रय को प्रभावशाली बनाने के लिए प्रबंधन ने विपणन अनुसंधान, विज्ञापन, संवर्धन आदि की सहायता ली। प्रबंधन के इस परिवर्तित दृष्टिकोण को ही **विक्रय अभिमुखी दर्शन** (Sales-Oriented Philosophy) कहा जाता है।

इसके पश्चात बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जाने लगा, जिससे प्रतिस्पर्धा का विकास हुआ, तकनीकी विधियों में परिवर्तन हुए तथा उपभोक्ताओं की मांग में परिवर्तन होने लगे। इसके परिणामस्वरूप विक्रय अभिमुखी प्रबंधन के सम्मुख अपनी वस्तुओं को विक्रय करने की समस्या उत्पन्न हुई। ऐसी स्थिति के प्रबंधन को पुनः विपणन दर्शन पर विचार करना पड़ा। प्रबंधन ने यह अनुभव किया कि संस्था की सफलता के लिए ग्राहकों या उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं एवं अभिरुचियों के अनुरूप ही वस्तुओं का उत्पादन किया जाना चाहिए। अतः ग्राहकों की महत्ता को स्वीकार किया जाने लगा। आधुनिक समय में, संस्था की सभी व्यावसायिक क्रियाओं में विपणन को सर्वोपरि महत्व दिया जाता है, क्योंकि विपणन के द्वारा ही बाजार विश्लेषण करके ग्राहकों की आवश्यकताओं, प्रतिस्पर्धियों की नीतियों का अध्ययन करके निर्णय लिए जाते हैं। अतः स्पष्ट है कि आधुनिक समय में प्रबंधन के लिए विपणन एक दर्शन के समान है। विपणन दर्शन का केंद्र बिंदु ग्राहक है। इसलिए विपणन दर्शन को ग्राहक अभिमुखी अवधारणा (Customer-oriented Concept) भी कहा जाता है।

विपणन प्रबंधन

विपणन तथा प्रबंधन का अलग–अलग अर्थ स्पष्ट हो जाने के बाद यह कहा जा सकता है कि विपणन प्रबंधन, प्रबंधन का वह भाग है जिसमें विपणन संबंधी क्रियाएं संपादित की जाती हैं। विभिन्न विद्वानों ने विपणन प्रबंधन की परिभाषा भिन्न–भिन्न प्रकार से दी है। इनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

1. **डा. रुस्तम पूसा डावर** के अनुसार, ''विपणन प्रबंधन से आशय उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं का पता लगाने, उत्पादों या सेवाओं में परिवर्तन करने और तत्पश्चात उत्पाद या सेवा को अंतिम उपभोक्ता या प्रयोगकर्ता तक पहुंचाने की प्रक्रिया से है ताकि विशिष्ट ग्राहक वर्ग या वर्गों की इच्छाओं एवं आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके और संगठन को उपलब्ध प्रसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग करते हुए लाभ प्राप्त हो सके।''
2. **कंडिफ एवं स्टिल** के शब्दों में, "विपणन प्रबंधन सामान्य प्रबंधन की वह शाखा है जो कि विपणन संबंधी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सोद्देश्य क्रियाकलापों के संचालन से संबंध रखती है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि विपणन प्रबंधन के अंतर्गत ग्राहकों की आवश्यकताओं का पता लगाने से ग्राहकों को संतुष्टि दिलाने तक की सभी क्रियाएं विपणन प्रबंधन के अंतर्गत सम्मिलित की जाती हैं।

टिप्पणी

1. **विलियम जे. स्टेंटन** के अनुसार, ''विपणन अवधारणा का क्रियात्मक रूप ही विपणन प्रबंधन है।''
2. **प्रो. पाईल** के अनुसार, ''विपणन में क्रय एवं विक्रय दोनों क्रियाएं शामिल होती हैं।''
3. **टाउसले, क्लार्क** एवं **क्लार्क** के अनुसार, ''विपणन में वे सभी प्रयत्न शामिल हैं जो वस्तुओं और सेवाओं के स्वामित्व हस्तांतरण को प्रभावित करते हैं और उनके भौतिक वितरण की व्यवस्था करते हैं।''

उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि 'विपणन प्रबंधन' सामान्य प्रबंधन का वह भाग है, जो संस्था की विपणन क्षमताओं, साधनों, योग्यताओं एवं बाजार अवसरों के बीच फलदायक समायोजन और संतुलन स्थापित करता है, जिसका उद्देश्य उपभोक्ताओं की संतुष्टि में वृद्धि करना तथा संस्था के लाभों को अधिकतम करना होता है।

विपणन की प्रकृति

विपणन उन सभी क्रियाकलापों का अध्ययन है, जिनका उद्देश्य व्यक्तिगत तथा संस्थागत उपभोक्ताओं की इच्छाओं को जाग्रत करना, उनकी आवश्यकताओं का पता लगाना तथा उनकी पूर्ति एवं संतुष्टि हेतु प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष विनिमय संबंध के आधार पर वस्तुएं एवं सेवाएं प्रदान कर पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करना है। विपणन प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं की वास्तविक आवश्यकताओं का पता लगाकर उनके अनुरूप उत्पादों को तैयार करना तथा उन्हें उपभोक्ताओं को उपलब्ध कराना होता है ताकि वे व्यावसायिक फर्म के प्रति निष्ठावान बने रहें।

विपणन की प्रकृति का अध्ययन दो प्रकार से किया जाता है–

1. विज्ञान एवं कला के रूप में विपणन की प्रकृति
2. विभिन्न दृष्टिकोणों के रूप में विपणन की प्रकृति।

विपणन विज्ञान के रूप में

विपणन को अभी पूरी तरह से विज्ञान नहीं कहा जा सकता क्योंकि एक तो विषय के रूप में विपणन का विकास बहुत धीमी गति से हो रहा है, दूसरे विज्ञान बनने के लिए उस विषय में समस्याओं के समाधान हेतु वैज्ञानिक विधियां (Scientific methods) होनी चाहिए। हालांकि विपणन समस्याओं (Marketing Problems) के समाधान के लिए अनेक नियमों एवं विधियों की स्थापना की गई है। समस्याओं के समाधान के लिए सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग भी निरंतर बढ़ रहा है परंतु अभी विपणन पूरी तरह से विज्ञान के रूप में विकसित नहीं हुआ है। एम.जे. बेकर के अनुसार, ''विपणन विज्ञान नहीं है परंतु इसे विज्ञान होना चाहिए।'' विपणन को विज्ञान बनाने के लिए तेजी से काम हो रहा है। अनुसंधान के क्षेत्र में सबसे अधिक कार्य विपणन के क्षेत्र में हो रहा है। शीघ्र ही विपणन को विज्ञान का दर्जा प्राप्त होगा और यह अध्ययन का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बनेगा।

विभिन्न दृष्टिकोणों के रूप में विपणन की प्रकृति

टिप्पणी

आधुनिक युग में उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है तथा उपभोग तो उससे भी बड़े पैमाने पर होता है। उत्पादित वस्तुओं का उपभोग देश और विदेशों में बिखरे हुए असंख्य उपभोक्ताओं द्वारा किया जाता है। ऐसी परिस्थिति में उत्पादक तथा उपभोक्ता के मध्य प्रत्यक्ष संबंध होना असंभव है। संबंध बनाने के लिए अनेक मध्यस्थों की क्रियाओं का सहारा लिया जाता है। अतः आधुनिक समय में विपणन कार्य एक जटिल समस्या बन गया है। इसलिए सफल विपणन के लिए हमें विपणन प्रणाली के विभिन्न तरीकों का विधिवत अध्ययन करना चाहिए। विपणन प्रणाली के अध्ययन के लिए निम्न महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रचलित हैं :

1. **वस्तुगत दृष्टिकोण**–इस दृष्टिकोण से विपणन प्रणाली का अध्ययन करने के लिए विशिष्ट वस्तु का चयन किया जाता है तथा फिर उस वस्तु के संबंध में सविस्तार अध्ययन किया जाता है। जैसे वस्तु की पूर्ति के साधन, वस्तु की किस्म, विशेषताएं, वस्तु की बाजार सीमा, वस्तु विपणन के व्यापारिक मध्यस्थ, वस्तुओं को उपभोक्ता तक पहुंचाने के लिए प्रयोग किए जाने वाले परिवहन के साधन तथा वस्तु के विक्रय के पश्चात दी जाने वाली सेवा (विक्रयोपरांत सेवा) आदि के बारे में विस्तृत अध्ययन किया जाता है।

   वस्तुएं कई प्रकार की होती हैं, जैसे कृषि, खनिज, औद्योगिक आदि। इन सभी प्रकार की वस्तुओं के संबंध में विपणन समस्या का अध्ययन अलग–अलग करना चाहिए क्योंकि अलग–अलग वस्तुओं की अपनी अलग–अलग विपणन समस्याएं होती हैं तथा विपणन कार्य विभिन्न संस्थाओं द्वारा भिन्न–भिन्न ढंग से संपादित किए जाते हैं। वस्तुगत दृष्टिकोण का सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि इसमें प्रत्येक वस्तु के उत्पादन या विपणन में आने वाली समस्याओं की जानकारी हो जाती है लेकिन विपणन का अभ्यास करने में समय अधिक लगता है।

2. **उपयोगिता सृजन संबंधी दृष्टिकोण**–अर्थशास्त्रियों के अनुसार विपणन एक प्रणाली है जो वस्तुओं में उपयोगिताओं के सृजन द्वारा मूल्य उत्पन्न करती है। कन्वर्स, ह्यूजी एवं मिशेल के अनुसार, ''विपणन अर्थशास्त्र का वह भाग है जिसमें स्थान, समय एवं अधिकारमूलक उपयोगिताओं के सृजन का अध्ययन किया जाता है।''

3. **आय उत्पत्ति दृष्टिकोण**–इस दृष्टिकोण से विपणन एक ऐसी आर्थिक प्रक्रिया है, जिसका मूल उद्देश्य संस्था के लिए आय उत्पन्न करना है। अतः आय प्राप्ति के उद्देश्य से की जाने वाली सभी क्रियाएं विपणन में शामिल होती हैं। आय प्राप्ति के अभाव में व्यवसाय का विस्तार नहीं हो सकता। यही नहीं, आय प्राप्ति के अभाव में व्यवसाय का अस्तित्व भी खतरे में पड़ सकता है। आय उचित लागतों द्वारा अर्जित की जानी चाहिए। अत्यधिक या बड़े पैमाने पर व्यय करके अलाभकर आय प्राप्त करना उचित नहीं कहा जा सकता।

4. **संस्थागत दृष्टिकोण**–वर्तमान युग बड़े पैमाने के उत्पादन का युग है। इस युग में उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं के मध्य की दूरी काफी अधिक हो गई है, जिसे संस्थागत दृष्टिकोण के अनुसार विपणन क्रियाओं द्वारा समाप्त किया जा

टिप्पणी

सकता है। यह दृष्टिकोण बतलाता है कि बड़े पैमाने पर किए उत्पादन के वितरण के लिए अनेक मध्यस्थ संस्थाओं की आवश्यकता होती है। जैसे– थोक व्यापारी, फुटकर विक्रेता, आयातकर्ता, निर्यातकर्ता, दलाल, विक्रय एजेंट, यातायात कंपनियां, संग्रहण एजेंसियां, विज्ञापन एजेंसियां, बीमा कंपनियां, बैंक तथा वित्तीय संस्थाएं इत्यादि। ये सभी संस्थाएं मिलकर जो क्रियाएं करती हैं, उन्हें विपणन कहा जाता है। आधुनिक युग में उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है तथा उपभोग दूर–दूर बिखरे असंख्य उपभोक्ताओं द्वारा। अतः उत्पादित माल को उपभोक्ताओं में वितरित करने के लिए अनेक विपणन संस्थाओं की सहायता ली जाती है। विपणन संस्थाओं से अभिप्राय ऐसे व्यावसायिक संगठनों से है, जो मुख्य रूप से वस्तुओं या सेवाओं के वितरण कार्य में संलग्न हैं, जैसे–थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारी, विज्ञापन एवं परिवहन एजेंसियां, विपणन अनुसंधान संस्था, वाणिज्य बैंक, बीमा कंपनियां, गोदाम गृह आदि। विपणन संस्थाओं का चयन वस्तु बाजार की प्रकृति एवं विस्तार, संस्था की वित्तीय स्थिति आदि बातों पर निर्भर करता है।

संस्थागत दृष्टिकोण के अध्ययन से सबसे बड़ा लाभ यह है कि इससे प्रत्येक संस्था द्वारा निष्पादित किए जाने वाले विपणन संबंधी कार्यों का संपूर्ण ज्ञान हो जाता है।

5. **उत्पाद दृष्टिकोण**–इस दृष्टिकोण में विपणन क्रियाओं का अध्ययन उत्पादों के आधार पर किया जाता है जैसे–चाय पत्ती, चीनी, सीमेंट, लोहा एवं इस्पात, साइकिल, टेलीविजन, कूलर इत्यादि। इस दृष्टिकोण में उत्पाद को केंद्र बिंदु मान कर उसके संबंध में की जाने वाली विपणन क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। जैसे जो विपणन क्रियाएं टेलीविजन बेचने के लिए की जाएंगी वे शायद गेहूं बेचने के लिए नहीं की जाएंगी।

   जब हम उत्पादों के आधार पर विपणन का अध्ययन करते हैं, तो हमें अलग–अलग प्रकार की विपणन समस्याओं का समाधान करना होता है। जैसे– (i) पूर्ति के स्त्रोत (ii) मांग के प्रकार (iii) यातायात के साधन (iv) संग्रहण, (v) श्रेणीकरण, (vi) पैकेजिंग, (vii) ब्रांडिंग, (viii) वित्त व्यवस्था (ix) विज्ञापन, (x) विपणन अनुसंधान इत्यादि।

6. **क्रियात्मक दृष्टिकोण**–इस दृष्टिकोण की व्याख्या **ए.डब्ल्यू. शॉ** ने की थी। उनके बाद **एल.डी.एच. वेल्ड** ने इसे विकसित किया। इस दृष्टिकोण में विपणन की प्रकृति का अध्ययन विपणन के कार्यों के आधार पर किया जाता है। विपणन का अध्ययन विभिन्न कार्यों के अध्ययन में विभाजित हो जाता है। जैसे– (i) उत्पाद नियोजन, (ii) उत्पाद विकास, (iii) क्रय, (iv) विक्रय, (v) मूल्य निर्धारण, (vi) ब्रांड नाम का निर्धारण, (vii) पैकेजिंग, (viii) प्रमाणीकरण, (ix) संग्रहण, (x) यातायात, (xi) विज्ञापन, (xii) वित्त व्यवस्था (xiii) जोखिम उठाना, (xix) विपणन अनुसंधान, (xv) विक्रय के बाद की सेवाएं इत्यादि। विपणन के कार्यों की संख्या पर कोई सहमति नहीं है। इन कार्यों की संख्या व्यवसाय की प्रकृति तथा आवश्यकता पर निर्भर करती है।

   इस दृष्टिकोण के अंतर्गत उत्पादक से उपभोक्ता तक वस्तुओं व सेवाओं को पहुंचाने तक जो भी विपणन कार्य निष्पादित किए जाते हैं, उन्हीं क्रियाओं का

टिप्पणी

अध्ययन किया जाता है। विपणन क्रियाओं में क्रय, प्रमाणीकरण, श्रेणीयन, परिवहन, भंडारण, विज्ञापन, वित्त प्रबंधन आदि को शामिल किया जाता है। इस दृष्टिकोण में विपणन के अंतर्गत किए जाने वाले प्रत्येक कार्य का उसकी उपयोगिता अथवा आवश्यकता के आधार पर विश्लेषण करके विपणन के संबंध में आवश्यक एवं उपयोगी जानकारी प्राप्त की जा सकती है। अतः इस दृष्टिकोण से अध्ययन करने से समय बरबाद नहीं होता, तथा विपणन कार्यों में पुनरावृत्ति भी नहीं हो पाती है। परंतु इस दृष्टिकोण का दोष भी है, वह यह कि इसके अंतर्गत विपणन के कार्यों को ही अत्यधिक महत्व दिया गया है, यह नहीं देखा गया कि संस्था उन विपणन क्रियाओं को किस प्रकार संपादित करती है।

यह दृष्टिकोण कार्यों के दोहरेपन को रोकता है, कार्यों को पूरा करने में आने वाली समस्याओं का विश्लेषण करता है तथा समय के सदुपयोग को बढ़ाता है। परंतु यह दृष्टिकोण विपणन कार्यों को व्यावसायिक प्रणाली में कैसे लागू किया जा सकता है यह नहीं समझा पाता है।

7. **प्रणालीगत दृष्टिकोण**–फिलिप कोटलर ने इस दृष्टिकोण को समझाते हुए लिखा है कि ''विपणन प्रणाली उन महत्वपूर्ण संस्थाओं और प्रवाहों का समूह है जो एक संगठन को उसके बाजारों से जोड़ता है।'' फिलिप कोटलर के अनुसार विपणन प्रणाली के मूल तत्व इस प्रकार हैं–(i) कंपनी, (ii) कंपनी का बाजार, (iii) मध्यस्थ, (iv) पूर्तिकर्ता, (v) प्रतियोगी, (vi) वित्तीय संस्थाएं, (vii) सरकारी विभाग, (viii) आम जनता इत्यादि।

   कंडिफ, स्टील एवं गोवोनी के अनुसार, ''विपणन एक व्यावसायिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा वस्तुओं को बाजारों के अनुरूप बनाया जाता है तथा स्वामित्व हस्तांतरित किए जाते हैं।''

   वास्तव में प्रणालीगत दृष्टिकोण, नई विपणन विचारधारा पर आधारित है तथा इसके अनुसार विपणन में वे सभी क्रियाएं शामिल की जाती हैं, जो उत्पादन से पहले प्रारंभ होकर विक्रय के बाद तक चलती रहती हैं। विपणन का यह दृष्टिकोण प्रभावपूर्ण निर्णयन के लिए आवश्यक समझा गया है। इसके अतिरिक्त यह दृष्टिकोण विपणन में मॉडल्स के उपयोग तथा कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी के प्रयोग की दृष्टि से भी आवश्यक समझा गया है। प्रणालीगत दृष्टिकोण फर्म को विपणन अवसरों, प्रतिस्पर्धी व्यवहारों, क्रय व्यवहारों, अर्थ–व्यवस्था, कानूनों आदि को पूरी तरह से समझने का अवसर प्रदान करता है।

8. **सामाजिक विपणन दृष्टिकोण**–यह दृष्टिकोण सामाजिक संगठनों से संबंधित है। पिछले दो दशकों से विद्वानों ने सामाजिक संगठनों में विपणन दर्शन के महत्व की ओर ध्यान आकर्षित किया है। **रॉबर्ट फर्बर** ने सामाजिक और सार्वजनिक नीतिक्षेत्रों में विपणन तकनीकों की उपयोगिता को स्वीकार करते हुए उनके अधिकाधिक प्रयोग पर बल दिया है। प्रसिद्ध विद्वान लेविड का कहना है कि विपणन का कार्य केवल नये उत्पादों के विक्रय से ही संबंधित नहीं है बल्कि सामाजिक दृष्टिकोण से इन उत्पादों का मूल्यांकन करना भी है। यह एक विस्तृत दृष्टिकोण है जिसके अनुसार विपणन का क्षेत्र केवल व्यावसायिक संगठनों तक ही सीमित न रहे बल्कि अन्य संगठनों में भी विपणन तकनीकों का प्रयोग होना चाहिए।

टिप्पणी

9. **कला एवं विज्ञान दृष्टिकोण**–एम.जे. बेकर के अनुसार, ''विपणन विज्ञान नहीं है जबकि इसे विज्ञान होना चाहिए।'' विपणन ने व्यवसाय के अन्य क्षेत्रों, जैसे– अर्थशास्त्र, कानून आदि तथा सामाजिक एवं व्यावहारिक विज्ञानों जैसे गणित आदि से बड़े पैमाने पर सम्यक तथ्य, सिद्धांत, तकनीकें एवं विचारधाराएं प्राप्त की हैं जिनका उपयोग विपणन समस्याओं के समाधान के लिए किया जा रहा है। फिलहाल, विपणन विज्ञान नहीं है परंतु इसके विज्ञान बनने की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति हो रही है। वर्तमान समय में विपणन उपभोक्ता–अभिमुखी (consumer-oriented) है जिसके अंतर्गत उपभोक्ताओं की वास्तविक आवश्यकताओं को पूरा करने वाले उत्पादों को बनाने पर जोर दिया जा रहा है जिससे उपभोक्ता संतुष्टि तथा कल्याण में वृद्धि हो सके। विपणन कला एवं विज्ञान है, क्योंकि यह दृष्टिकोण स्पष्ट करता है कि विपणन उचित उत्पाद को, उचित मात्रा में, उचित मूल्य पर, उचित स्थान पर उचित उपभोक्ता को उपलब्ध कराने की कला तो है ही साथ में यह एक विकासशील विज्ञान भी है।

विपणन की प्रकृति के विषय में निष्कर्ष

विपणन विज्ञान है या कला इस पर कोई विशेष विवाद नहीं है। विपणन के अपने सिद्धांत एवं नियम होते हैं। इसके साथ ही इसमें अन्य सामाजिक विज्ञानों की वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता है। आज की विपणन–व्यवस्था योजनाबद्ध सिद्धांतों पर आधारित है, जिसमें बहुत से भौतिक, नैसर्गिक, व्यवहार संबंधी तथा अन्य सामाजिक सिद्धांतों का समावेश किया गया है। नई वस्तु के निर्माण से पूर्व विपणि–परीक्षण, क्रेता व्यवहार अध्ययन, अभिप्रेरणा अनुसंधान एवं विपणि–अनुसंधान आदि का समुचित प्रयोग किया जाता है। अतः विपणन विज्ञान है।

विपणन कला है, क्योंकि इसके अध्ययन तथा अभ्यास द्वारा योग्यता प्राप्त की जा सकती है। विपणन संबंधी विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए कला द्वारा ही निर्णय लिए जाते हैं, जिनकी अपनी एक निश्चित प्रक्रिया होती है। विज्ञान एवं विक्रय कार्य को कला का ही नाम दिया जाता है।

विपणन विज्ञान और कला दोनों ही है क्योंकि विपणन के सिद्धांतों एवं ज्ञान की अच्छी जानकारी होने पर भी निर्णय–प्रक्रिया के अपर्याप्त अनुभव होने से वह प्रभावकारी नहीं हो सकती। साथ ही, सैद्धांतिक ज्ञान के अभाव में केवल अनुभव पर आधारित निर्णय नहीं हो सकते, क्योंकि योजनाबद्ध ज्ञान की नितांत आवश्यकता होती है। अतः कहा जा सकता है कि विपणन ने अल्पकाल में ही एक विकासशील विज्ञान एवं सुसंगठित कला होने का श्रेय प्राप्त कर लिया है।

जैसा कि इस विषय के प्रारंभ में बताया गया था, विपणन की कोई एक सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। अनेक विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से विपणन की व्याख्या की है, इसलिए जब विपणन की प्रकृति (Nature of Marketing) का अध्ययन करने की बात आती है, तो हमें विभिन्न विद्वानों के विपणन के प्रति दिए गए दृष्टिकोणों का सहारा लेना पड़ता है। विपणन के बारे में कुछ महत्वपूर्ण दृष्टिकोणों की व्याख्या ऊपर की गई है, जिसके आधार पर हम विपणन की प्रकृति के बारे में कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष निम्न प्रकार से निकाल सकते हैं–

1. विपणन कला एवं विज्ञान दोनों है।
2. विपणन का अर्थ केवल विक्रय नहीं है।

3. विपणन उपयोगिताओं के सृजन की प्रक्रिया है।
4. विपणन का उद्देश्य मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना है।
5. विपणन समाज को ऊंचा जीवन स्तर प्रदान करता है।

टिप्पणी

विपणन के अध्ययन के प्रचलित तीन दृष्टिकोणों का विस्तार से अध्ययन करने के बाद एक प्रमुख बात ध्यान में आती है कि इन तीनों दृष्टिकोणों में समानता है, क्योंकि हम वस्तुगत दृष्टिकोण के अंतर्गत वस्तुओं के अनुरूप विपणन क्रियाओं का, संस्थागत दृष्टिकोण के अंतर्गत विपणन क्रियाएं संपादित करने वाली विभिन्न संस्थाओं का तथा क्रियात्मक दृष्टिकोण के अंतर्गत विपणन के संबंध में संपादित की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं के आधार पर विपणन का अध्ययन करते हैं।

ऊपर वर्णित दृष्टिकोण अलग–अलग जरूर हैं परंतु वास्तविक रूप से ये एक–दूसरे के पूरक ही हैं, किसी भी दृष्टिकोण को सर्वश्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता। अतः यदि हम विपणन का गहन अध्ययन करना चाहते हैं, तो हमें केवल किसी एक दृष्टिकोण का नहीं बल्कि तीनों का ही संयुक्त रूप से अध्ययन करना पड़ेगा, तभी हमें विपणन के विभिन्न पहलुओं का ज्ञान हो सकता है।

विपणन का विषय–क्षेत्र

प्रबंधकीय कार्य (Managerial Activities)	क्रियात्मक कार्य (Functional Activities)
• विपणन उद्देश्य निर्धारित करना (Determining Objectives)	• विपणन अनुसंधान (Marketing Research)
• विपणन कार्यों का नियोजन (Planning)	• उत्पाद नियोजन (Product Planning)
• विपणन कार्यों का संगठन (Organisation)	• उत्पाद विकास (Product Development)
• विपणन कार्यों की स्टाफिंग (Staffing)	• क्रय (Buying)
• विपणन कार्यों का समन्वय (Co-Ordination)	• विक्रय (Selling)
• विपणन कार्यों का नियंत्रण (Controlling)	• ब्रांडिंग (Branding)
• विश्लेषण एवं मूल्यांकन (Analysis and Evaluating)	• पैकेजिंग (Packaging)
• प्रमापीकरण (Standardization)	
• संग्रहण (Storage)	
• यातायात (Transportation)	
• मूल्य निर्धारण (Pricing)	
• कटौती नीतियां (Discount Policies)	
• वित्त व्यवस्था (Financing)	
• विज्ञापन (Advertising)	
• विक्रय संवर्धन (Sales Promotion)	
• विक्रय उपरांत सेवाएं (After Sale Services)	

टिप्पणी

विपणन का निर्णय संबंधी क्षेत्र (Decision Related Scope of Marketing)

1. **ग्राहक संबंधी निर्णय**–विपणन के अंतर्गत ग्राहक किस वस्तु को पसंद करता है, कितने मूल्य पर चाहता है तथा वर्तमान ग्राहकों की संख्या एवं उनका क्षेत्र कितना है, संभावित ग्राहकों की संख्या तथा क्षेत्र कितना है आदि सभी बातों का विस्तृत रूप से अध्ययन कर निर्णय किए जाते हैं।
2. **उत्पाद संबंधी निर्णय**–इन निर्णयों के अंतर्गत यह निश्चित किया जाता है कि कौन–सी वस्तु कितनी मात्रा में उत्पादित करनी है तथा वस्तु का आकार, रंग, डिजाइन, ब्रांड, पैकिंग आदि किस प्रकार होंगे।
3. **मूल्य संबंधी निर्णय**–उत्पादित वस्तु को उपभोक्ता तक किस मूल्य पर भेजा जाए इसका निर्णय करना भी विपणन का कार्य है। उत्पादन की अधिक सफलता मूल्य पर ही निर्भर करती है। अतः मूल्य संबंधी निर्णय लेते समय विभिन्न घटकों को ध्यान में रखना आवश्यक है।
4. **प्रवर्तन संबंधी निर्णय**–विक्रय वृद्धि या प्रवर्तन संबंधी निर्णय भी विपणन में शामिल हैं, जैसे – विज्ञापन किया जाए या नहीं, किस साधन को अपनाया जाए, कब, कहां और कितना किया जाए, साधन का मूल्यांकन किस प्रकार किया जाए, आदि। प्रवर्तन के अतिरिक्त विपणन में वैयक्तिक विक्रय संबंधी निर्णयों को भी सम्मिलित किया जाता है।
5. **वितरण मार्ग संबंधी निर्णय**–वस्तु का मूल्य निर्धारित होने के बाद यह निश्चित किया जाता है कि वस्तु को किस माध्यम से वितरित किया जाए, वितरण मार्ग का चुनाव किस आधार पर किया जाए, कितना लंबा मार्ग चुना जाए, कितना व्यय किया जाए आदि।
6. **विक्रय के बाद सेवा संबंधी निर्णय**–इसके अंतर्गत यह निर्णय किया जाता है कि कितने दिनों तक किस प्रकार की सेवा, किसके माध्यम से ग्राहक को देनी है।

विपणन प्रबंधक

विपणन प्रबंधक की स्थिति उपभोक्ताओं तथा व्यावसायिक इकाई के बीच एक मध्यस्थ जैसी होती है, क्योंकि वह व्यावसायिक इकाई के ग्राहकों अथवा उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं का पता लगाता है तथा उनकी आवश्यकतानुसार वस्तुओं का उत्पादन करके ग्राहकों तथा उपभोक्ताओं तक उन्हें पहुंचाने की व्यवस्था करता है। इस प्रकार विपणन प्रबंधन वस्तु के उत्पादन से पूर्व की क्रियाओं से लेकर वस्तु को ग्राहकों तक पहुंचाने एवं विक्रयोपरांत की सेवाओं तक के सभी कार्य करता है। अध्ययन की दृष्टि से विपणन प्रबंधक के कार्यों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. **समन्वित विपणन**–आधुनिक समय में प्रबंधनों में विपणन प्रबंधन का स्थान सर्वोपरि है। विपणन प्रबंधन व्यावसायिक इकाई की सभी क्रियाओं से समन्वय स्थापित करता है ताकि संस्था की समस्त क्रियाएं उसके द्वारा निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति में अधिकतम सहयोग प्रदान करें। समन्वय स्थापित करने के लिए एक विपणन प्रबंधक को निम्न कार्य करने पड़ते हैं–
   (i) विपणन की समस्त जानकारियां एवं तथ्य एकत्रित करना।
   (ii) एकत्रित तथ्यों का विश्लेषण करके महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकालना।

(iii) उत्पाद विकास करना।

(iv) नई–नई विपणन तकनीकी की खोज एवं विकास करना।

(v) विस्तृत विपणन कार्यक्रम तैयार करना तथा उसे सुचारु रूप से क्रियान्वित करना।

टिप्पणी

(vi) उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं एवं उनकी संतुष्टि के मध्य समन्वय स्थापित करना।

2. **लक्ष्य निर्धारित करना**–यह एक विपणन प्रबंधक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य होता है। लक्ष्य वास्तव में दिए हुए समय या स्थान के संदर्भ में समूह विशेष की आवश्यकताओं की व्याख्या करते हैं तथा विपणन प्रबंधन का मार्ग निर्देशित करते हैं।

3. **नियोजन करना**–विपणन प्रबंधन द्वारा निर्धारित करने के पश्चात यह निर्धारित किया जाता है कि लक्ष्य कैसे प्राप्त किया जाए। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए जो योजना बनाई जाती है, उसे नियोजन कहते हैं। नियोजन के अंतर्गत प्रबंधक को निम्न कार्य करने पड़ते हैं–

(i) विक्रय नीतियों का निर्माण करना तथा उन्हें क्रियान्वित करना।

(ii) उत्पादन श्रेणी निश्चित करना तथा उत्पादन विविधीकरण योजना बनाना।

(iii) विपणन अनुसंधान करना, मांग का पूर्वानुमान करना तथा विपणन कार्यक्रम को विकसित करना।

(iv) विपणन कार्यवाही का दीर्घकालीन कार्यक्रम निश्चित करना।

(v) उपक्रम के अन्य विभागों से विपणन विभाग का तालमेल स्थापित करना।

4. **विक्रय कार्य**–एक विपणन प्रबंधक विक्रय के संबंध में निम्न कार्य करता है–

(i) विक्रय को नियंत्रित करना तथा इस संबंध में विक्रय प्रबंधन को आवश्यक निर्देश देना।

(ii) विक्रय क्षेत्र निश्चित करना, विक्रय का कोटा या मात्रा निश्चित करना।

(iii) विक्रय विभाग के लिए आवश्यक कर्मचारियों का चयन करना, उन्हें उनके कार्यों का प्रशिक्षण देना तथा विक्रय संगठन का निर्माण करना।

(iv) वितरण के विभिन्न माध्यमों एवं साधनों का चयन करना एवं उनका उचित विकास करना।

(v) विज्ञापन, विक्रय समर्थन तथा उन संपर्क की स्थापना के लिए प्रयास करना।

5. **सेवा कार्य**–आजकल प्रत्येक उपक्रम का विपणन विभाग उपभोक्ता उन्मुख होता है। अतः व्यावसायिक भवन ग्राहक के लिए है, न कि ग्राहक व्यावसायिक भवन के लिए। इस बात को ध्यान में रखकर विपणन प्रबंधन हर कार्य करता है। वह सदैव इस बात के लिए प्रत्यनशील रहता है कि ग्राहक को अपने कार्यों से यथासंभव संतुष्टि प्रदान करे। सेवा कार्य के अंतर्गत विक्रयोपरांत ग्राहकों की शिकायतों को दूर करने की व्यवस्था करना, उनके द्वारा दिए गए सुझावों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करके उन पर अमल करना आदि शामिल किए जाते हैं।

टिप्पणी

विपणन के उद्देश्य

विपणन का मूल उद्देश्य अधिकाधिक ग्राहक पैदा करना है। यह तभी संभव है जब व्यवसाय के ग्राहकों को अधिकतम संतुष्टि प्रदान की जा सके, क्योंकि व्यवसाय की सफलता, लाभ–हानि आदि बातें ग्राहक की संतुष्टि पर ही निर्भर करती हैं। यदि संस्था के द्वारा निर्मित वस्तुओं से या उसके द्वारा प्रदान की गई सेवा से अधिकतम ग्राहक संतुष्ट हों तो विक्रय की मात्रा बढ़ेगी तथा विक्रय बढ़ने के फलस्वरूप संस्था के लाभों में वृद्धि होगी। इस तरह हम कह सकते हैं कि विपणन का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं तथा उनकी संतुष्टि में उचित समन्वय स्थापित करना है। विपणन के कुछ और प्रमुख उद्देश्यों का विवेचन निम्न प्रकार है –

1. **विक्रय परिणाम में वृद्धि**–विपणन का प्रमुख लक्ष्य या उद्देश्य विक्रय की मात्रा में वृद्धि करना होता है, क्योंकि संस्था का काम विक्रय की मात्रा पर निर्भर करता है। अतः इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए विपणन प्रबंधक विपणन तकनीकों को इस प्रकार से सुव्यवस्थित एवं समायोजित करता है कि जिससे संस्था के विक्रय परिणामों में एक निश्चित वृद्धि होती रहे तथा विनियोजित पूंजी पर अधिकतम लाभ प्राप्त होता रहे।
2. **शुद्ध लाभों में वृद्धि**–विपणन प्रबंधन की कार्यकुशलता का मापदंड उसके द्वारा अर्जित किया गया शुद्ध लाभ है, क्योंकि कोई भी संस्था केवल विक्रय परिणाम में वृद्धि करके ही शुद्ध लाभों में वृद्धि नहीं कर सकती। शुद्ध लाभ की मात्रा केवल विक्रय परिणाम पर ही निर्भर नहीं करती अपितु वस्तु की उत्पादन लागत, वितरण, किस्म, विक्रय लागत, विक्रय मूल्य आदि बातों पर भी निर्भर करती है। अतः शुद्ध लाभों में वृद्धि करने के लिए विपणन प्रबंधक को उत्पादन, वितरण तथा विक्रय लागतों पर नियंत्रण रखना चाहिए तथा विपणन व्यवस्था को सुव्यवस्थित करना चाहिए।
3. **उपक्रम का विकास**–विपणन का एक और प्रमुख उद्देश्य उपक्रम का विकास करना है। यह विकास संस्था की लाभ अर्जन शक्ति पर निर्भर करता है। संस्था की लाभ अर्जन की शक्ति तभी बढ़ सकती है जब संस्था की ख्याति बाजार में पहले की तरह बनी रहे। संस्था के उत्पादकों का बाजार में अपना एक अलग महत्वपूर्ण व विशिष्ट स्थान है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उपक्रम का विकास दीर्घकाल में विक्रय की मात्रा तथा शुद्ध लाभों में होने वाली वृद्धि पर निर्भर करता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विपणन का उद्देश्य संस्था के विक्रय की मात्रा तथा शुद्ध लाभों में वृद्धि करके संस्था का विकास करना है।

विपणन प्रबंधन के सिद्धांत

एक विपणन प्रबंधन अपने कार्य में तभी सफलता प्राप्त कर सकता है जबकि वह निम्नलिखित सिद्धांतों का पूर्णरूपेण पालन करे–

1. **नियोजन का सिद्धांत**–एक विपणन प्रबंधक के लिए आवश्यक है कि वह विपणन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए योजना बनाए तथा एक सुनिश्चित विपणन कार्यक्रम का निर्माण करे।

टिप्पणी

2. **संगठन का सिद्धांत**–विपणन प्रबंधक को लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अपने विभाग का संगठन आधुनिक प्रचलित सिद्धांतों पर आधारित करना चाहिए, जिसके अधीन अधिकारियों एवं कर्मचारियों के कार्यक्षेत्र की सीमा, उनके उत्तरदायित्व तथा अधिकार पहले से निश्चित एवं स्पष्ट होने चाहिए।
3. **नियंत्रण का सिद्धांत**–विपणन के पूर्वनिर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि विपणन के अंतर्गत होने वाली विभिन्न प्रक्रियाओं पर नियंत्रण रखा जाए। इस नियंत्रण के अंतर्गत प्रायः चार क्रियाएं सम्मिलित की जाती हैं– (i) प्रमाप निश्चित करना, (ii) वास्तविक निष्पादन का मूल्यांकन करना, (iii) उपलब्ध प्रमापों से निष्पादन की तुलना करना, (iv) यदि पूर्व निर्धारित प्रमापों को प्राप्त नहीं किया जा सका हो, तो इसके लिए प्रयत्न करना। एक विपणन प्रबंधक को विपणन क्रियाओं, लागतों तथा विक्रेता की क्रियाओं पर नियंत्रण रखना चाहिए।
4. **निर्देशन का सिद्धांत**–विपणन प्रबंधक अपने अधीन कर्मचारियों के सहयोग से संपूर्ण विपणन गतिविधियों पर नियंत्रण रखता है तथा विपणन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अपने विभाग तथा दूसरे अन्य विभागों जैसे–उत्पादन, वित्त, सेविवर्गीय विभागों के बीच समन्वय स्थापित करता है, क्योंकि आधुनिक युग में प्रबंधकीय क्रियाओं में विपणन प्रबंधन का स्थान सर्वोपरि है। इसी के आधार पर संस्था की अन्य प्रबंधकीय क्रियाएं संपादित की जाती हैं।
5. **उद्देश्य विविधता का सिद्धांत**–विपणन प्रबंधन की सभी क्रियाएं विपणन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए की जानी चाहिए। इसके लिए समय–समय पर विपणन प्रबंधक विशेष आवश्यक विविध निर्णय लेते रहते हैं।
6. **विक्रय संवर्धन का सिद्धांत**–एक विपणन प्रबंधक को सदैव यह स्मरण रखना चाहिए कि किसी भी उपक्रम का अंतिम लक्ष्य अधिकतम विक्रय होता है, इसलिए उसे सदा ऐसे तरीके अपनाने चाहिए ताकि उपक्रम का विक्रय बढ़े।
7. **अभिप्रेरण का सिद्धांत**–संस्था के द्वारा निश्चित लक्ष्यों को अधिक से अधिक मात्रा में प्राप्त करने के लिए एक विपणन प्रबंधक को अपने अधीन कर्मचारियों तथा अन्य विक्रेताओं को अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित करते रहना चाहिए।
8. **शोध एवं विकास सिद्धांत**–ग्राहकों की आवश्यकताओं में परिवर्तन, प्रतिस्पर्धियों की नीतियों में परिवर्तन का अध्ययन एवं उसके अनुसार वस्तु का विकास करने के लिए विपणन प्रबंधक को संस्था में शोध एवं विकास कार्यक्रम चलाते रहना चाहिए ताकि वस्तु में पर्याप्त नवीनता बनाई रखी जा सके तथा विक्रय की मात्रा में वृद्धि की जा सके।
9. **उपभोक्ताओं की संतुष्टि का सिद्धांत**–एक विपणन प्रबंधक को सदा यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि आधुनिक विपणन का प्रमुख उद्देश्य उपभोक्ताओं को अधिकतम संतुष्टि प्रदान करना ही है, क्योंकि उसकी (उपभोक्ता की) संतुष्टि पर ही संस्था के प्रमुख उद्देश्य–अधिक विक्रय एवं शुद्ध लाभों में वृद्धि–की प्राप्ति निर्भर करती है।

यदि किसी संस्था का विपणन प्रबंधक ऊपर वर्णित सिद्धांतों का नियमित पालन करे, तो वह संस्था अपने लक्ष्यों को आसानी से प्राप्त कर सकती है।

टिप्पणी

भारत में विपणन की समस्याएं (Major Problems of Marketing in India)

भारत ने यद्यपि आर्थिक विकास के प्रत्येक क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है, फिर भी जब हम भारत का मुकाबला विश्व के विकसित देशों जैसे अमरीका, इंग्लैण्ड, जर्मनी, जापान, फ्रांस, इटली, आस्ट्रेलिया, सिंगापुर आदि से करते हैं तो हमें लगता है कि भारत विपणन के क्षेत्र में इन देशों से पीछे है। इसके अनेक कारण हैं, कुछ मुख्य कारणों की व्याख्या अग्र प्रकार से है–

1. **कुशल विपणनकर्ताओं की कमी** (Lack of trained marketing personnel)– भारत में प्रशिक्षित एवं कुशल विपणनकर्ताओं की कमी पाई जाती है। हालांकि प्रत्येक विश्वविद्यालय में तथा अनेकों प्रबन्धकीय प्रतिष्ठानों में विपणन प्रबन्ध के विषय की विधिवत रूप से पढ़ाई हो रही है। हजारों की संख्या में शिक्षित विपणनकर्ता प्रतिवर्ष इस क्षेत्र में आ रहे हैं परन्तु अभी भी जितने लोगों की आवश्यकता है यह संख्या उससे काफी कम है। यही कारण है कि भारत में विपणन का विकास धीमी गति से हो रहा है।
2. **उत्पाद नियोजन की कमी** (Lack of product planning)– भारत में उत्पाद नियोजन पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। क्योंकि बहुत से उत्पादों में अभी भी 'विक्रेता बाजार' की स्थिति बनी हुई है इसलिये उत्पादक जो कुछ बनाते हैं उपभोक्ता उसका क्रय कर लेते हैं।
3. **विपणन अनुसन्धान की कमी** (Lack of marketing research)– विपणन अनुसन्धान के क्षेत्र में भारत में बहुत कम काम हुआ है। इस प्रकार के अनुसन्धान के बिना विपणनकर्ताओं के लिये प्रतियोगी बाजारों में उचित निर्णय लेना कठिन हो जाता है। इस दिशा में विशेष प्रयत्न होने चाहिए तथा विपणन अनुसन्धान की सुविधाएं प्राप्त होनी चाहिए।
4. **ऊंची विपणन लागतें** (High marketing costs)– विकसित देशों के मुकाबले भारत में विपणन लागतें काफी अधिक हैं क्योंकि हमारे यहां साधनों का पूरा उपयोग नहीं हो पाता। विपणन लागतों में वृद्धि होने से उत्पादों की कीमतों में वृद्धि हो जाती है।
5. **ग्रामीण अर्थव्यवस्था** (Rural Economy)– भारत एक ग्रामीण अर्थव्यवस्था है। भारत की 75% जनसंख्या गांवों में रहती है तथा ग्रामीण जनसंख्या का अधिकतर भाग कृषि या कृषि सम्बन्धी कार्यों में लगा हुआ है। गांवों में यातायात, संचार, बिजली आदि की सुविधाएं पूरी तरह से विकसित नहीं हैं। अधिकतर लोग अनपढ़ तथा गरीब हैं। यह सभी बातें ग्रामीण विपणन (Rural Marketing) के विकास में बाधा बनती हैं। इन कठिनाइयों को दूर करने की कोशिश की जा रही है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत में प्रभावषाली विपणन की आवश्यकता है। पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा भारत सरकार गांवों के विकास में लगी है, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार जैसी बुनियादी आवश्यकताओं की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। आज ग्रामीण इलाकों में आधुनिक उपभोक्ता उत्पादों जैसे कूलर, पंखे, ट्रांजिस्टर, फ्रिज, टेलिविजन, मोटरसाइकल, कॉस्मेटिक, बिजली के उपकरण आदि की मांग में वृद्धि हो रही है।

विपणन के कार्य

टिप्पणी

विपणन से संबंधित सभी क्रियाएं विपणन कार्यों में सम्मिलित की जाती हैं। कंडिफ एवं स्टिल के अनुसार विपणन में निम्नलिखित क्रियाएं सम्मिलित की जाती हैं–

विपणन कार्य		
(1) विनिमय कार्य	(2) भौतिक वितरण कार्य	(3) सहायक कार्य
(i) क्रय	(i) संग्रहण	(i) विपणन वित्त व्यवस्था
(ii) विक्रय	(ii) परिवहन	(ii) जोखिम वहन करना
(iii) उत्पाद नियोजन		(iii) मूल्य निर्धारण
(iv) प्रमापीकरण एवं श्रेणीयन		(iv) बाजार सूचना

1. **विनिमय कार्य**–विपणन में विनिमय संबंधी निम्नलिखित कार्यों को सम्मिलित किया जाता है–

   (क) **क्रय**–विपणन में क्रय से आशय निर्माता द्वारा कच्चे माल का क्रय किए जाने से है। इसके अंतर्गत उन सभी निर्णयों, जैसे– वस्तु की किस्म, मात्रा, काम का समय तथा क्रय–स्त्रोतों आदि को शामिल किया जाता है।

   (ख) **विक्रय**–यहां विक्रय से आशय उन समस्त कार्यों से लगाया जाता है, जो भावी क्रेताओं को खोजने, उन्हें वस्तु के विषय में ज्ञान कराने एवं क्रय के लिए प्रोत्साहित करने से संबंधित हैं। विक्रय विपणन का एक महत्वपूर्ण अंग है, क्योंकि व्यवसाय की अन्य सभी क्रियाएं अंतिम रूप से विक्रय पर ही निर्भर करती हैं।

   (ग) **उत्पाद नियोजन**–वर्तमान समय में उत्पाद नियोजन एवं विकास संबंधी सभी कार्य विपणन विभाग द्वारा संपन्न किए जाते हैं। प्राचीन काल में ये कार्य उत्पादन विभाग, इंजीनियरिंग एवं प्रावैधिक अनुसंधान विभाग द्वारा पूरे किए जाते थे। इस समय विपणन विभाग द्वारा उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं एवं रुचियों को ध्यान में रखते हुए वस्तु की डिजाइन, किस्म, वस्तु का निर्माण, ब्रांड बैंकिंग एवं प्रमाप संबंधी निर्णय लिए जाते हैं और इनके संबंध में योजना तैयार की जाती है तथा उत्पादन विभाग को निर्देश दिए जाते हैं।

   (घ) **प्रमापीकरण एवं श्रेणीयन**–इसके अंतर्गत वस्तुओं के गुण, आकार, किस्म, रंग आदि के आधार पर उनके प्रमापक निर्धारित किए जाते हैं और फिर इन प्रमापकों की सहायता से उनका उप–विभाजन करके इन्हें विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है। वस्तुओं को निर्धारित प्रमापों के आधार पर श्रेणीबद्ध करने से विक्रय में काफी आसानी होती है। इस प्रकार प्रमापीकरण एवं श्रेणीयन की क्रियाएं उत्पादक और ग्राहक दोनों के लिए ही लाभदायक हैं।

2. **भौतिक वितरण कार्य**

   (क) **संग्रहण**–संग्रहण का उद्देश्य वस्तुओं को, जब तक कि उपभोक्ता उनकी मांग न करें, इस प्रकार सुरक्षित रखना है कि जिससे किसी प्रकार की क्षति

टिप्पणी

न हो। संग्रहण में माल को सुरक्षित रखने के साथ–साथ भंडारण की लागत को भी सम्मिलित किया जाता है। विशेष रूप से मौसमी वस्तुओं के उत्पादन करने वाले उत्पादकों के लिए भंडारगृह का अत्यधिक महत्व है।

(ख) **परिवहन**–वस्तुओं को उत्पादन स्थल से उपभोग स्थलों तक पहुंचाने के लिए परिवहन की आवश्यकता पड़ती है। आधुनिक अर्थव्यवस्था में उत्पादन देश के एक स्थान पर होता है, लेकिन उपभोग उसका न केवल संपूर्ण देश में होता है, बल्कि विदेशों में भी होता है। यह परिवहन की सुविधा के कारण ही संभव हुआ है। वास्तव में देखा जाए तो बड़े पैमाने पर उत्पादन, विशिष्टीकरण, बाजारों का भौगोलिक विकेंद्रीकरण आदि के कारण परिवहन विपणन का एक अनिवार्य अंग हो गया है।

3. **सहायक कार्य**–विपणन को सुविधाजनक बनाने के लिए निम्नलिखित सहायक कार्य निष्पादित किए जाते हैं–

(क) **विपणन वित्त व्यवस्था**–वित्त–प्रबंधन विपणन का मुख्य कार्य है। इसके अंतर्गत वित्तीय आवश्यकताओं का पूर्वानुमान, स्थायी तथा चल पूंजी की व्यवस्था, उधार और वसूली आदि को सम्मिलित किया जाता है। पर्याप्त मात्रा में वित्त होने पर ठीक समय पर भुगतान करके व्यापार की साख को बनाए रखा जा सकता है। साथ ही व्यापार की साख भी बढ़ती जाती है।

(ख) **जोखिम वहन करना**–जोखिम से आशय उत्पादक से उपभोक्ता तक वस्तु को पहुंचाने में आने वाले जोखिम से है, जैसे वस्तु का खो जाना, आग लगना, चोरी हो जाना, दुर्घटना हो जाना, भुगतान न होना आदि। इसके अतिरिक्त, मूल्यों में होने वाले उतार–चढ़ाव को भी जोखिम में सम्मिलित किया जाता है।

(ग) **मूल्य–निर्धारण**–बिक्री की मात्रा पर मूल्यों का अधिक प्रभाव पड़ता है। अधिक लाभ कमाने के लिए बिक्री की मात्रा को बढ़ाना आवश्यक है। इसके साथ ही वस्तु का मूल्य भी ठीक प्रकार से निर्धारित किया जाना चाहिए ताकि उपभोक्ता को भी पूर्ण संतुष्टि प्राप्त हो सके।

(घ) **बाजार सूचना**–विपणनकर्त्ता की प्रवृत्तियों, सरकार की नीतियों, विभिन्न व्यापारिक संस्थाओं का उत्पादन, वितरण, कीमत निर्धारण संबंधी नीतियों एवं ग्राहकों की रुचियों और फैशनों में हुए परिवर्तनों की सूचनाओं की जानकारी रखना आवश्यक है। इन्हीं सूचनाओं के आधार पर विपणनकर्त्ता अपने उत्पादन, वितरण, विक्रय वृद्धि आदि में उचित परिवर्तन करके बाजार की बदली हुई स्थिति में अपनी वस्तु की मांग को बनाए रख सकता है।

विपणन विचार–उत्पादन विचार, उत्पाद विचार, विक्रय विचार, विपणन विचार और सामाजिक विचार

विपणन विचार का जन्म अमेरिकन अर्थव्यवस्था में हुआ। शुरू–शुरू में उत्पादकों का मुख्य कार्य उत्पादों का निर्माण करके उन्हें थोक तथा फुटकर व्यापारियों के माध्यम से बेचना था। परन्तु 19 वीं शताब्दी के अन्त में औद्योगिक क्रान्ति के कारण उत्पादन की मात्रा इतनी अधिक हो गई कि उत्पादकों को अपने उत्पादों की मांग बढ़ाने की

आवश्यकता महसूस होने लगी। इसके लिये व्यक्तिगत विक्रय, विज्ञापन तथा अन्य विक्रय संवर्धन क्रियाओं का प्रयोग होने लगा। उत्पादकों ने विपणन क्रियाओं के बारे में बकायदा सोच विचार करके निर्णय लेने शुरू किये, जिसका लाभ भी हुआ। इसी के साथ ही विपणन विचार का विकास होना शुरू हुआ, जो कि आज भी चल रहा है। विपणन विचार के विकास के इतिहास को चार चरणों में विभाजित किया जा सकता है।

टिप्पणी

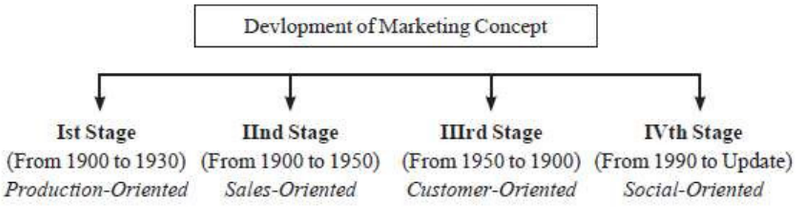

1. **प्रथम अवस्था (1900 से 1930 तक)**– इस अवस्था को **'उत्पादन–अभिमुखी'** (Production-oriented) अवस्था कहते हैं। विपणन विचार का जन्म अमेरिका की अर्थव्यवस्था में हुआ था। उस समय अमेरिका की अर्थव्यवस्था में उत्पादन की बहुत अधिक कमी थी। इसलिये उस समय अमेरिकन व्यवसायियों ने सबसे अधिक ध्यान उत्पाद वृद्धि की ओर लगाया। उस समय उत्पादन ही मुख्य समस्या थी, न कि उसका विक्रय। इसलिए विपणन क्रियाओं को अधिक महत्व प्राप्त नहीं था। इसीलिये इस अवस्था को उत्पादन–अभिमुखी अवस्था का नाम दिया गया। यह विचारधारा निम्न मान्यताओं को आधार मानती थी–
   (i) उत्पादक जिस भी वस्तु का उत्पादन करेंगे, उसका विक्रय हो जायेगा।
   (ii) प्रबन्धकों का मुख्य कार्य उत्पादन लागत को कम रखना था।
   (iii) फर्म को केवल कुछ प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करना चाहिए।
   (iv) उत्पादक उन्हीं तकनीकों पर अधिक ध्यान देंगे जो उनके उत्पादन को बढ़ाने में सहायक हों।
2. **द्वितीय अवस्था (1930 से 1950 तक)**– इस अवस्था को **'विक्रय–अभिमुखी'** (Sales-oriented) अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में अमेरिका की अर्थव्यवस्था में उत्पादन के क्षेत्र में बहुत अधिक प्रगति हुई। अभाव की स्थिति समाप्त हो गई। उत्पादित माल का कहां और कैसे विक्रय किया जाये इस समस्या ने जन्म ले लिया। इस समस्या के समाधान ने उत्पादकों का ध्यान उत्पादन से हटाकर विक्रय पर केन्द्रित कर दिया। परिणामस्वरूप, औद्योगिक प्रतिष्ठान 'विक्रय–अभिमुखी' बनने लगे और विक्रय प्रबन्ध की स्थिति सुदृढ़ बनने लगी। इस अवस्था में विज्ञापन तथा विक्रय संवर्धन क्रियाओं पर ध्यान केन्द्रित किया जाने लगा। विक्रय अभिमुखी विचारधारा निम्न मान्यताओं पर आधारित थी–
   (i) उत्पादों का क्रय नहीं होता उन्हें बेचा जाता है।
   (ii) उच्च क्वालिटी के उत्पादों का उत्पादन किया जाये।
   (iii) उत्पादों के क्रेताओं की खोज की जाये।
   (iv) क्रेताओं को जोरदार विज्ञापन तथा विक्रय संवर्धन क्रियाओं द्वारा अपना उत्पाद क्रय करने के लिये प्रेरित किया जाये।

टिप्पणी

3. तृतीय अवस्था (1950 से 1990 तक– इस अवस्था को **'उपभोक्ता–अभिमुखी'** (Consumer-oriented) अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में अमेरिकन अर्थव्यवस्था बाहुल्य एवं तीव्र प्रतियोगिता से युक्त हो चुकी थी। विक्रय–अभिमुखी संस्थाओं के लिये विक्रय कठिन समस्या बन गया था। इस समस्या के समाधानों ने उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं के अनुरूप ही उत्पाद बनाने और सेवायें उपलब्ध कराने की बात सामने रखी। इस समय तक अमेरिकन उपभोक्ता अपनी आय का एक बड़ा हिस्सा सेवाओं पर भी खर्च करने लगे थे। बढ़ती हुई क्रय–शक्ति, चिकित्सा सुविधाएं तथा ऊंचे उठते हुए शिक्षा एवं जीवन स्तरों ने व्यावसायिक संस्थाओं को उपभोक्ताओं के निकट लाना प्रारम्भ कर दिया था। परिणामस्वरूप विपणन विचार ने एक नया आधुनिक रूप धारण किया जिसे 'उपभोक्ता–अभिमुखी' विपणन विचार कहते हैं।

इस अवस्था में विपणन योजनायें पूरी तरह से उपभोक्ता–अभिमुखी हो गईं। व्यवसाय का उद्देश्य अल्पकाल में अधिक लाभ अर्जित करने के स्थान पर दीर्घकालीन लाभ बन गया। इस विचार के विकास ने संगठन संरचनाओं को प्रभावित करना और विपणन प्रबन्धकों को संस्था के सर्वोच्च प्रबन्धकों के रूप में स्थान देना प्रारम्भ कर दिया। वर्तमान समय में यह विपणन विचार अन्य देशों की अर्थव्यवस्थाओं में विद्यमान विपणन दृष्टिकोणों को बड़ी तेजी से प्रभावित कर रहा है। उपभोक्ता–अभिमुखी विचारधारा निम्न मान्यताओं पर आधारित है –

(i) यह विचार विक्रय की मात्रा की अपेक्षा लाभकारी विक्रय पर ध्यान देता है।

(ii) उपभोक्ता सन्तुष्टि को विपणन प्रक्रिय का केन्द्र बिन्दु मानता है।

(iiii) उपभोक्ताओं को सन्तुष्ट करने से फर्म की ख्याति में वृद्धि होती है।

(iv) फर्म को वही उत्पाद बनाने चाहिए जिनकी उपभोक्ताओं को आवश्यकता है।

4. चौथी अवस्था (1990 से अब तक) – यह विपणन विचार विकास की वर्तमान अवस्था है, इसे 'समाज–अभिमुखी' (Social-oriented) अवस्था कहते हैं। 1980 और 1990 के दशकों से इस अति आधुनिक विपणन विचारधारा का जन्म हुआ। इसमें उपभोक्ता अनुसन्धान (Consumer Research) को महत्वपूर्ण माना गया। अब उत्पादकों के लिये आवश्यक हो गया है कि वह उपभोक्ता अनुसन्धान द्वारा उपभोक्ताओं की शीघ्रता से परिवर्तित होने वाली आवश्यकताओं का पता लगाते रहें और उनके अनुसार अपने उत्पादों का विकास करते रहें।

यह विचारधारा केवल उपभोक्ता सन्तुष्टि को महत्वपूर्ण नहीं मानती बल्कि इससे अधिक महत्व उपभोक्ता कल्याण (Consumer Welfare) तथा सामाजिक कल्याण (Social Welfare) को देती है। जैसे एक मोटर साइकिल बनाने वाली कम्पनी केवल कम कीमत और ईंधन की बचत (Fuel economy) को ही ध्यान में न रखे बल्कि वाहन प्रदूषण रहित हो, सुरक्षित हो, सुविधाजनक हो, सुन्दर हो इन बातों का भी ध्यान रखना चाहिए। 'समाज–अभिमुखी' विचारधारा निम्न मान्यताओं को महत्वपूर्ण मानती है–

(i) फर्म को ऐसे उत्पाद बनाने चाहिए जिनकी उपभोक्ताओं को आवश्यकता है अथवा जैसा वह चाहते हैं।

टिप्पणी

(ii) फर्म का उद्देश्य शीघ्र विक्रय करना न होकर दीर्घकालीन लाभ कमाना होना चाहिए

(iii) फर्म को अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन करना चाहिए

(iv) फर्म को आधुनिक तकनीकों का प्रयोग करके उच्च गुणवत्ता के उत्पाद बनाने चाहिए।

(v) उपभोक्ता सन्तुष्टि के साथ–साथ उपभोक्ता कल्याण को भी महत्वपूर्ण मानना चाहिए।

विपणन विचार की समाज–अभिमुखी धारणा अति आधुनिक तथा एकीकृत धारणा है। इस विचारधारा को हम आधुनिक विचारधारा कह सकते हैं। व्यावसायिक जगत में इस विचारधारा के लम्बे समय तक चलने की उम्मीद की जा सकती है। हालांकि इसमें निरन्तर परिवर्तन होते रहेंगे। उत्पाद–नियोजन, पैकेजिंग, विज्ञापन, विक्रय संवर्धन, वितरण तथा अन्य

विपणन कार्यों में तेजी से होने वाले परिवर्तनों ने आधुनिक विपणन विचार को महत्वपूर्ण बना दिया है। यही कारण है कि आज अधिक से अधिक कम्पनियां आधुनिक विपणन को अपना रही हैं।

विपणन का सही अर्थ जानने के लिए इसे दो भागों में बांट दिया गया है– (i) विपणन संबंधी पुरानी विचारधारा, (ii) विपणन संबंधी नवीन या आधुनिक विचारधारा।

(i) **विपणन संबंधी पुरानी विचारधारा या उत्पाद अभिमुखी विचारधारा**–विपणन संबंधी पुरानी या संकीर्ण या उत्पाद अभिमुखी विचारधारा को निम्नलिखित अर्थशास्त्रियों ने इस प्रकार परिभाषित किया है–

1. प्रो. पाइल के अनुसार–''विपणन में क्रय एवं विक्रय दोनों ही क्रियाएं शामिल होती हैं।''

   (इसका अर्थ यह है कि विपणन में केवल क्रय एवं विक्रय क्रियाओं का ही अध्ययन किया जाता है, शेष अन्य क्रियाओं, जैसे–परिवहन, भंडार, वित्त व्यवस्था, जोखिम, आदि विपणन की इस परिभाषा के अंतर्गत नहीं आते।)

2. टाउसले, क्लार्क एवं क्लार्क के अनुसार–''विपणन में वे सभी प्रयत्न सम्मिलित होते हैं, जो वस्तुओं और सेवाओं के स्वामित्व, हस्तांतरण एवं उनके भौतिक वितरण में सहायता प्रदान करते हैं।''

   (इसमें सभी मानसिक एवं शारीरिक श्रम आ जाते हैं। इस प्रकार वस्तुओं और सेवाओं के स्वामित्व को बदलने में जो क्रियाएं होती हैं, वे सब विपणन की परिभाषा के अंतर्गत आती हैं। इसके साथ–साथ उनके भौतिक वितरण का कार्य भी विपणन क्षेत्र के अंतर्गत आता है।

3. **अमेरिकन विपणन परिषद्** के अनुसार–''विपणन का तात्पर्य उन व्यावसायिक क्रियाओं के निष्पादन से है, जो उत्पादक से उपभोक्ता या प्रयोगकर्त्ता तक वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह को निर्दिष्ट करती हैं।''

   (इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि विपणन के अंतर्गत उन सभी क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है जो उत्पादक वस्तुओं और सेवाओं को ग्राहकों तक पहुंचाने के लिए करते हैं।)

टिप्पणी

4. **एडवर्ड एवं डेविड** के अनुसार–''विपणन एक आर्थिक रीति है, जिसके द्वारा वस्तुओं व सेवाओं को बदला जाता है तथा उनके मूल्य मुद्रा में तय किए जाते हैं।''

(इस परिभाषा से स्पष्ट है कि इसके द्वारा वस्तुओं और सेवाओं को बदला जाता है तथा इसे बदलने के लिए उन वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्य इसके द्वारा निर्धारित किए जाते हैं।)

ऊपर वर्णित परिभाषाओं के विवेचन से यह स्पष्ट है कि विपणन कार्य उत्पादन होने के बाद आरंभ होता है और उत्पादक यह जानते हैं कि ग्राहक के लिए किस वस्तु का उत्पादन किया जाना है तथा इस विचारधारा के अनुसार विपणन कार्य उस समय समाप्त हो जाता है जब उपभोक्ता को वस्तु बेच दी जाती है।

विपणन क्रियाओं की आवश्यकता विक्रय के बाद भी पड़ती है। व्यवसाय को भविष्य में सफलतापूर्वक संचालित करने के लिए, बाजार में संस्था की ख्याति बनाए रखने व उसमें वृद्धि करने और ग्राहकों को पुनः अपनी वस्तु को क्रय करने के लिए प्रेरित करने हेतु विक्रय के पश्चात भी कुछ विशिष्ट विपणन क्रियाएं की जाती हैं, जैसे–वस्तु की कीमत, गुण, किस्म, स्थायित्व, तकनीकी विशेषताएं आदि के विषय में गारंटी, आदि।

ऊपर वर्णित विवेचन से यह स्पष्ट है कि वस्तु का उत्पादन करके बेच देना ही विपणन नहीं है, अपितु विपणन के अंतर्गत वस्तु के उत्पादन से पूर्व तथा वस्तु के विक्रय के बाद भी विपणन क्रियाएं की जाती हैं। अतः ऊपर वर्णित परिभाषाएं संकुचित दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं।

विपणन की पुरानी विचारधारा तब प्रचलित थी जब व्यवसाय छोटे स्तर पर होता था तथा प्रतियोगिता न के बराबर थी। इस विचारधारा के अनुसार विपणन के अंतर्गत क्रय एवं विक्रय की क्रियाओं को शामिल किया जाता है जो उत्पादों एवं सेवाओं के स्वामित्व को प्रभावित करती हैं। यह विपणन क्रियाओं के प्रति परंपरागत दृष्टिकोण है। विपणन की पुरानी विचारधारा में उत्पादन की मात्रा को अधिक महत्व दिया जाता था। पुराना विचार इस मान्यता पर आधारित था कि उत्पादक जो कुछ भी बनाएंगे, उपभोक्ता उसका क्रय कर लेंगे। पुराने विचार के अनुसार विपणन में केवल क्रय–विक्रय शामिल होता है जिससे स्वामित्व का हस्तांतरण होता हो।

विपणन के पुराने विचार की आलोचनाएं

विपणन का पुराना विचार उपभोक्ता को सर्वश्रेष्ठ नहीं मानता और न ही उसकी पसंद, आवश्यकता अथवा संतुष्टि पर कोई ध्यान देता है। पुराना विचार तो इस बात को महत्व देता है कि उत्पादक जो कुछ भी बनाएंगे, उपभोक्ता उसे क्रय कर लेंगे। विपणन के पुराने विचार की आलोचना निम्नलिखित के आधार पर हैं–

- यह उत्पादन–अभिमुखी धारणा है।
- इसमें उपभोक्ता अनुसंधान को कोई महत्व नहीं दिया गया है।
- इसमें विक्रय के बाद की सेवाओं को कोई महत्व नहीं दिया गया है।
- इस विचारधारा में उपभोक्ता की संतुष्टि तथा सामाजिक उत्तरदायित्वों के लिए कोई स्थान नहीं है।

- यह विचारधारा उत्पाद की मांग और पूर्ति में संबंध स्थापित करने में असफल रही है।
- यह विचारधारा उत्पादन, क्रय तथा विक्रय को विपणन में शामिल करती है, इसमें अन्य विपणन क्रियाओं को कोई महत्व नहीं दिया गया है।

टिप्पणी

आज के प्रतियोगी युग में, जिसमें उत्पादक विभिन्न किस्मों के उत्पादों द्वारा विभिन्न उपभोक्ता वर्गों की आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयत्न कर रहे हैं, इस विचारधारा का महत्व बहुत ही कम हो जाता है। यह एक संकीर्ण विचारधारा है।

विपणन संबंधी नवीन या ग्राहक अभिमुखी अथवा आधुनिक विचारधारा

आधुनिक विपणन विचारधाराओं के प्रमुख चार स्तंभ या अवधारणाएं निम्नलिखित हैं– 1. ग्राहक अभिमुखी 2. समन्वित या सुग्रंथित विपणन 3. ग्राहक संतुष्टि द्वारा लाभ 4. उपभोक्ता कल्याण।

1. **ग्राहक अभिमुखी**–इस विचारधारा के अंतर्गत ग्राहक सर्वोपरि होता है। जिस वस्तु को ग्राहक पसंद करता है, उत्पादक या निर्माता उस वस्तु का निर्माण करता है। इस संबंध में किसी व्यवसायी ने ठीक ही कहा है कि ''हमें वे वस्तुएं उत्पन्न करनी चाहिए जो लोग चाहते हैं न कि वे जो हम बेच सकते हैं।'' इसके अतिरिक्त इस विचारधारा के अनुसार ग्राहकों की ऐसी इच्छाओं और आवश्यकताओं का पता लगाया जाता है जिनका ग्राहकों को ज्ञान भी नहीं होता, जैसे–कुकर, कुकिंग गैस, टेलीविजन आदि अनेक वस्तुओं का निर्माण ग्राहक की सुविधा के लिए किया गया। अतः ग्राहक अभिमुखी विचारधारा की सफलता के लिए आवश्यक है कि निर्माणकर्ता उसी तरह की वस्तु का निर्माण करें जो उपभोक्ता चाहता है। इसके साथ ही उपभोक्ता–अनुसंधान भी करते रहना चाहिए ताकि ग्राहकों की नई एवं परिवर्तनशील आवश्यकताओं का ज्ञान प्राप्त होता रहे। इस विचारधारा को अपनाने से मुख्यतः निम्नांकित लाभ प्राप्त हो सकते हैं–
   (i) इस विचारधारा के अनुसार नई–नई वस्तुओं का उत्पादन प्रारंभ करने के अवसर प्राप्त होते हैं।
   (ii) संस्था के प्रबंधकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो जाता है। वे यह अनुभव करने लगते हैं कि ग्राहक की आवश्यकता उनकी वस्तु से अधिक महत्वपूर्ण है।
   (iii) ग्राहकों को उनकी आवश्यकतानुसार वस्तु उपलब्ध कराने के कारण संस्था की प्रक्रियाएं अधिक प्रभावशाली हो जाती हैं अर्थात विपणन कार्य आरंभ हो जाता है।
   (iv) इस विचारधारा को अपनाने से संस्था और समाज के हितों में समानता आ जाती है।
2. **सुग्रंथित या समन्वित विपणन**–सुग्रंथित या समन्वित विपणन से आशय, फर्म के विभिन्न विभागों, जैसे– शोध एवं विकास, नियोजन, उत्पादन, वित्त, क्रय, विक्रय, सेविवर्गीय विभागों आदि के कार्य–कलापों में विपणन विभागों के साथ पूर्ण समन्वय अथवा समायोजन से है। इसके अंतर्गत फर्म के विभिन्न विभागों के बीच पूर्ण समन्वय स्थापित करते हुए ग्राहकों की आवश्यकता की पूर्ति की जाती

टिप्पणी

है। इसमें विपणन विभाग को फर्म के विभिन्न विभागों का इस प्रकार से समन्वय करना होता है कि जिससे सभी विभाग अपनी–अपनी क्रियाओं को उचित प्रकार से संचालित कर सकें। इस प्रकार समन्वित विपणन द्वारा कंपनी के सभी विभागों की क्रियाओं में विपणन प्रबंधक के निर्णय के अनुसार समन्वय किया जाएगा। **विपणन प्रबंधक के द्वारा निम्न प्रकार से समन्वय किया जा सकता है।**

3. **ग्राहक संतुष्टि द्वारा लाभ**–आधुनिक विपणन विचारधारा के अनुसार प्रत्येक संस्था या कंपनी को अपने दीर्घकालीन स्थायित्व को ध्यान में रखकर ग्राहक संतुष्टि को लक्ष्य बनाना चाहिए। जो संस्था ग्राहकों की संतुष्टि पर अधिक ध्यान केंद्रित करेगी, वह अधिक बिक्री करके अधिक लाभ कमाने में सफल हो सकेगी। इस विचारधारा का उद्देश्य लाभ कमाना तो है लेकिन ग्राहक को संतुष्ट करना भी जरूरी है।

4. **उपभोक्ता कल्याण**–यह आधुनिक विचारधारा का महत्वपूर्ण अंग है। इसमें उपभोक्ता संतुष्टि के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि दीर्घकालीन विपणन कार्यों से उपभोक्ता के कल्याण में भी वृद्धि हो।

इस प्रकार विपणन की आधुनिक विचारधारा ग्राहक अभिमुखी (Customer-Oriented) है तथा उपभोक्ता की संतुष्टि पर विशेष ध्यान देती है अर्थात कंपनी की क्रियाएं ग्राहकों की आवश्यकताओं से शुरू होकर ग्राहक की संतुष्टि पर ही समाप्त होती हैं। अतः किसी का यह कथन कि ''विपणन उपभोक्ताओं से ही प्रारंभ होता है और उपभोक्ता पर ही समाप्त होता है।''–विपणन की आधुनिक विचारधारा प्रस्तुत करता है।

यह आधुनिक विचारधारा वस्तु के स्थान पर ग्राहकों को अधिक महत्व देती है, इसलिए इसे **ग्राहक अभिमुखी विचारधारा** भी कहते हैं। इस विचारधारा के अनुसार ऐसी वस्तुओं का ही निर्माण किया जाता है, जो अधिकांश ग्राहकों की विभिन्न आवश्यकताओं, अभिरुचियों आदि के अनुरूप हों। इस विचारधारा के अनुसार विपणन को निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है–

1. **कंडिफ एवं स्टिल** के अनुसार– ''विपणन एक व्यावसायिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा उत्पादों को बाजारों के अनुरूप बनाया जाता है और स्वामित्व हस्तांतरित किए जाते हैं।''

   (इस परिभाषा से स्पष्ट है कि उत्पादक वस्तुओं को बाजार की आवश्यकताओं के अनुरूप अर्थात ग्राहक की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाता है। अतः विपणन कार्य वस्तु के उत्पादन होने से पूर्व ही प्रारंभ हो जाता है।)

2. प्रो. पॉल मजूर के अनुसार–''जीवन–स्तर प्रदान करना विपणन है।''

3. प्रो. मेल्कम मंकनयर के अनुसार–''जीवन स्तर का सृजन कर उसे समाज को प्रदान करना ही विपणन है।''

   (इसका अर्थ यह है कि विपणन का कार्य नई–नई वस्तुओं का निर्माण करके उनके प्रयोग में वृद्धि करना है, जिससे कि समाज को या तो नया जीवन स्तर मिल सके या उसके पुराने जीवन स्तर में सुधार हो सके।)

4. प्रो. मैकार्थी के विचारानुसार– ''उपभोक्ता मांगों की आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पादन योग्यताओं को समायोजित करने की आवश्यकता का व्यापारियों द्वारा दिया जाने वाला उत्तर विपणन कहलाता है।''

(ऊपर वर्णित परिभाषा से स्पष्ट है कि उपभोक्ता की मांग के अनुरूप व्यापारियों द्वारा उत्पादन में समायोजन किया गया है अर्थात मांग के अनुरूप उत्पादन करने की क्रिया विपणन कहलाती है।)

टिप्पणी

5. (क) फिलिप कोटलर के अनुसार, ''विपणन विचार एकीकृत विपणन द्वारा समर्थित उपभोक्ता–अभिमुखी होता है जिसका लक्ष्य ग्राहक संतुष्टि उत्पन्न करना होता है, जिससे कि संगठनात्मक लक्ष्यों की पूर्ति की जा सके।''

(ख) विलियम जे. स्टेंटन के अनुसार, ''विपणन एक व्यावसायिक दर्शन है, जो यह बताता है कि ग्राहकों की आवश्यकता–संतुष्टि ही किसी कंपनी के अस्तित्व के लिए आर्थिक एवं सामाजिक औचित्य है। परिणामस्वरूप उत्पादन, इंजीनियरिंग एवं वित्त तथा विपणन संबंधी कंपनी के सभी क्रियाकलाप सर्वप्रथम इस बात के लिए समर्पित होने चाहिए कि ग्राहकों की आवश्यकताएं क्या हैं। तत्पश्चात उचित लाभ कमाते हुए उन आवश्यकताओं की पूर्ति करनी चाहिए।''

नये विपणन विचार की विशेषताएं

ऊपर वर्णित व्याख्या तथा परिभाषाओं के आधार पर हम विपणन के आधुनिक विचार की निम्नलिखित विशेषताओं का वर्णन कर सकते हैं–

1. आधुनिक विपणन विचार व्यावसायिक संगठन को विपणन संगठन में परिवर्तित करता है।
2. आधुनिक विपणन विचार उपभोक्ता–अभिमुखी है। इसमें उपभोक्ता को सर्वोपरि माना गया है। विपणन का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ता की संतुष्टि में वृद्धि करना है।
3. आधुनिक विपणन विचार एकीकृत विपणन प्रयासों को महत्व देता है तथा विपणन प्रबंधक को संस्था के उच्च अधिकारियों में मानता है।
4. यह उच्च जीवन स्तर का निर्माण कर उसे समाज को प्रदान करता है।
5. यह उपभोक्ता को राजा के समान मानता है। आधुनिक विपणन उपभोक्ता से प्रारंभ तथा उपभोक्ता पर ही समाप्त होता है।
6. इस विचार के अनुसार जो संस्था उपभोक्ता को संतुष्टि प्रदान करने में सक्षम होती हैं, शीघ्र ही उपभोक्ताओं में प्रसिद्ध हो जाती है।
7. इसका मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं को संतुष्टि प्रदान करके लाभ प्राप्त करना है।

पुराने एवं आधुनिक विपणन विचारों में अंतर

आधुनिक विपणन विचार वस्तुतः बदलते हुए प्रबंधन–दर्शनों (Management Philsosophies) का कारण–परिणाम रहा है। पुराना विपणन विचार वस्तुतः आधुनिक विपणन विचार की पष्ठभूमि है। पुराना विपणन विचार उत्पादोन्मुखी तथा आधुनिक विपणन विचार उपभोक्ता–उन्मुखी है। विपणन के पुराने तथा नये विचार में निम्नलिखित अंतर पाये जाते हैं–

1. **अभिमुखी**–विपणन की पुरानी विचारधारा उत्पाद–अभिमुखी थी। इसमें उत्पादन की मात्रा को अधिक महत्व दिया गया था। इसके विपरीत आधुनिक विचारधारा उपभोक्ता– अभिमुखी है। इसमें उपभोक्ता की संतुष्टि को अधिक महत्वपूर्ण माना गया है।

टिप्पणी

2. **उद्देश्य**–विपणन की पुरानी विचारधारा का उद्देश्य अधिकतम उत्पादन एवं विक्रय द्वारा लाभों को अधिकतम करना था। इसके विपरीत आधुनिक विपणन विचार का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ता संतुष्टि के द्वारा लाभ कमाना है।

3. **क्षेत्र**–पुरानी विचारधारा विपणन के क्षेत्र को सीमित करती है। पुराने विचार के अनुसार विपणन का प्रारंभ उत्पादन के साथ और अंत विक्रय के साथ होता है। इसके विपरीत आधुनिक विपणन विचार काफी व्यापक है। यह अपने क्षेत्र में उत्पादन से पूर्व की क्रियाएं (जैसे विपणन अनुसंधान, उत्पाद नियोजन एवं विकास आदि) तथा विक्रय के बाद की क्रियाएं (जैसे गारंटी, मरम्मत, विक्रय के बाद की सेवाएं आदि) को भी विपणन क्रियाओं में शामिल करता है।

4. **उपभोक्ता संतुष्टि**–विपणन के पुराने विचार में उपभोक्ता संतुष्टि को कोई स्थान नहीं दिया गया था। जबकि आधुनिक विचार में उपभोक्ता संतुष्टि को सर्वोपरि माना गया है।

5. **उपभोक्ता कल्याण**–विपणन की पुरानी विचारधारा में उपभोक्ता कल्याण को कोई महत्व प्राप्त नहीं था, जबकि आधुनिक विचार में उपभोक्ता कल्याण को फर्म का मुख्य उत्तरादायित्व माना गया है। उपभोक्ता संतुष्टि एवं कल्याण द्वारा विपणनकर्ता समाज के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने का प्रयास करते हैं।

6. **उपभोक्ता अनुसंधान**– पुरानी विचारधारा में इसकी कोई आवश्यकता महसूस नहीं की गई, जबकि आधुनिक विपणन विचार में उपभोक्ता अनुसंधान पर पर्याप्त ध्यान देने तथा धन व्यय करने पर जोर दिया जाता है।

7. **सामाजिक उत्तरदायित्व**–विपणन की पुरानी विचारधारा में व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व को कोई महत्व नहीं दिया गया था, जबकि आधुनिक विपणन विचार सामाजिक उत्तरदायित्व को समर्पित है। इसके अनुसार कंपनी का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं को अच्छी किस्म के उत्पाद उचित कीमतों पर उपलब्ध कराना है।

8. **विपणन कार्यों का एकीकरण**–पुरानी विचारधारा में विपणन के कार्यों में पारस्परिक संबंध या तो था ही नहीं, या फिर बहुत कम था। इसके विपरीत आधुनिक विचार के अनुसार विपणन के विभिन्न क्षेत्रों का आपसी संबंध केवल आवश्यक है बल्कि उन सबका नियोजन एवं समन्वय भी अनिवार्य है। बिना इनके एकीकरण के उपभोक्ता संतुष्टि नहीं की जा सकती है।

9. **सिद्धांत**–पुराना विचार 'क्रेता सावधान रहो' (Beware Buyer's) के सिद्धांत पर आधारित था, जबकि आधुनिक विचार 'विक्रेता सावधान रहो' (Beware seller's) के सिद्धांत पर आधारित है, जिसके अनुसार उत्पादकों को ऐसे उत्पाद ही बनाने चाहिए जिनकी उपभोक्ताओं को आवश्यकता है तथा जिन्हें वे पसंद करते हैं।

10. **अंतर्विभागीय संबंध**–पुराने विचार के अंतर्गत कंपनी के विभिन्न विभागों को विपणन के दृष्टिकोण से अलग–अलग माना गया था, जबकि आधुनिक विचार में कंपनी के विभिन्न विभागों को परस्पर संबंधित माना गया है तथा सभी विभागों की क्रियाएं विपणन विभाग द्वारा निर्देशित एवं समन्वित की जाती हैं।

ऊपर वर्णित व्याख्या से स्पष्ट होता है कि विपणन के पुराने तथा नये विचारों में काफी अंतर हैं। पुराने विचार में क्रय–विक्रय को ही विपणन माना जाता था, जबकि

टिप्पणी

आधुनिक विचार के अनुसार विपणन अनेकानेक व्यावसायिक क्रियाओं का समन्वित समूह है, जिसका उद्देश्य उपभोक्ता संतुष्टि में वृद्धि करना है। आज के परिवर्तनशील युग में पुरानी विचारधारा अपना महत्व खो चुकी है, लगभग सभी छोटी–बड़ी कम्पनियां आधुनिक विपणन विचार को अपनाने की कोशिश कर रही हैं।

वर्तमान समय में बड़े पैमाने पर वस्तुओं का उत्पादन, कड़ी प्रतिस्पर्धा, बाजार परिवर्तन की तीव्र दर आदि विशेषताओं के कारण ग्राहक अभिमुखी विचारधारा अत्यंत आवश्यक है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि विपणन की क्रिया वस्तु विचार के उत्पन्न होने से प्रारंभ होती है और यह तब तक चलती रहती है जब तक कि ग्राहक संतुष्ट न हो जाए। दूसरे शब्दों में विपणन क्रिया ग्राहक से शुरू होती है और ग्राहक तक पहुंचकर समाप्त हो जाती है।

विपणन का आधुनिक विचार 'उपभोक्ता–अभिमुखी' है। जिसमें उपभोक्ता को राजा के समान माना जाता है। सभी विपणन क्रियाएं उपभोक्ता की संतुष्टि तथा हित को ध्यान में रखकर निर्धारित की जाती हैं। पहले उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं का पता लगाया जाता है, उसके बाद उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उत्पादों एवं सेवाओं का निर्माण कर उनका विपणन किया जाता है।

विपणन के आधुनिक विचार के अनुसार किसी भी फर्म के अस्तित्व का आर्थिक एवं सामाजिक आधार उपभोक्ता की संतुष्टि है। अतः फर्मों की समस्त क्रियाएं जैसे उत्पादन, इंजीनियरिंग, वित्त एवं विपणन आदि उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं पर आधारित होती हैं। आधुनिक विपणन विचार उपभोक्ता संतुष्टि पर आधारित है। फर्म की सफलता का माप उत्पादों से होने वाले भारी लाभों से नहीं लगाया जाता, बल्कि सफलता का माप उपभोक्ता की संतुष्टि को माना जाता है। उपभोक्ता किसी भी उत्पाद को कुछ आशाओं जैसे कीमत, किस्म, मात्रा तथा समयानुसार उत्पाद की पूर्ति आदि के आधार पर क्रय करता है। एक विपणनकर्ता, जो उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को जानने में असमर्थ रहता है, उन्हें संतुष्ट करने में भी असमर्थ रहता है और अंत में उसका व्यवसाय असफल हो जाता है।

विपणन का विकास एवं विक्रय बनाम विपणन

विपणन–अवधारणा की सटीक समझ आधुनिक विपणन एवं विपणन प्रबन्धन के अध्ययन का मूल है। जीवन के प्रत्येक पड़ाव में विचार सदा कम से आगे बढ़ते हैं व विचार की रीति से कर्मदिशा निर्धारित की जाती है। 'अवधारणा' एक दर्शन है, एक अभिदृष्टि है, विचार करने की एक शैली है अथवा वह विचार अथवा धारणा है जो दैवी अथवा मानवीय कृति के किसी परिदृश्य से सम्बन्धित है। विपणन के गतिशील क्षेत्र में किसी संगठन के दर्शन का अभिप्राय 'विपणन अवधारणा' से होता है। अवधारणा एक अभिविन्यास अथवा दर्शन है।

इस प्रकार विपणन अवधारणा दिनचर्या की वह शैली हुई जिसमें संगठन के समस्त संसाधनों को एकजुट करना होता है ताकि अपने लाभ पर उपभोक्ताओं को निर्मित, उद्दीप्त व संतुष्ट किया जा सके। इसमें व्यापार का भिन्न दर्शन होता है व विपणन को भौतिक प्रक्रिया से अधिक माना जाता है।

यह अवधारणा जहां भी हो वहां विपणन–संगठन तो भविष्य–उन्मुख, ग्राहक–उन्मुख, मूल्य–उन्मुख व लाभ–उन्मुख होता है एवं समस्त विक्रय, डिस्ट्रीब्यूशन व अन्य मार्केटिंग कार्यों में आधुनिक प्रबन्धन–पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है।

टिप्पणी

यह एक प्रबन्धात्मक दर्शन एवं सांगठनिक संरचना है जिसमें उपभोक्ताओं की इच्छाएं केन्द्र में रखी जाती हैं।

इससे कम्पनी यह तैयारी कर पाती है कि वह क्या बेच सकती है। इसीलिये अतीत का यही तर्क फिर से सामने आ जाता है कि विपणन का कार्य हैः संस्था के उत्पाद का विक्रय करना।

विपणन अवधारणा का क्रमिक विकास

विपणन दर्शन महाऔद्योगिक क्रान्ति के आरम्भ से अब तक कई परिवर्तनों से होकर गुजरा है जो अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध व उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के दौरान घटित हुए। यह क्रमिक परिवर्तन–काल चार अवधियों में विभक्त किया जा सकता हैः उत्पादन–उन्मुख अवधि, विक्रय–उन्मुख अवधि, ग्राहक–उन्मुख अवधि एवं सामाजिक उन्मुख अवधि। ऐसे प्रत्येक दर्शन व सम्बन्धित अवधि की संक्षिप्त व्याख्या निम्नानुसार हैः–

1. उत्पादन–उन्मुख दर्शन

1930 के दशक तक यही भाव प्रबल हुआ करता था कि संस्था उत्पाद ठीक बनायेगी तो उपभोक्ता स्वमेव आकर्षित होंगे एवं प्रमोशनल प्रयास की आवश्यकता शून्य अथवा नगण्य लगती थी। इस उत्पाद–उन्मुख विपणन अवधारणा का आधार 'आकर्षक को आकर्षण पैदा करने की आवश्यकता नहीं' था। इस कारण उत्पाद यदि वास्तव में ठीक हुआ व कीमत वाजिब रही तो विशेष विपणन प्रयासों की आवश्यकता नहीं है।

इस अवधारणा की धारणाएं निम्नांकित हैं–

(i) जिसका भी उत्पादन किया जा सकता है उसे विक्रित किया जा सकता है;

(ii) प्रबन्धन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य उत्पादन की लागत को कम रखना है;

(iii) संस्था को कुछ ही मूल उत्पादों का उत्पादन करना चाहिए।

इस अवधारणा को निम्नानुसार दर्शाया जा सकता है–

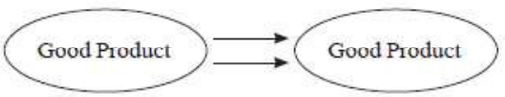

इस अवधारणा में उत्पादन 'आरम्भन–बिन्दु' होता है। उत्पाद के उत्पादन के उपरान्त उत्पाद–स्वीकार्यता का स्थान आता है।

2. विक्रय–उन्मुख दर्शन

1930 के दशक के उत्पादन–उन्मुख दर्शन की विफलताओं ने दृष्टिकोण में उस परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त किया जो 1940 के दशक के दौरान सम्भव हुआ। इस दर्शन का रूप 'विक्रय–उन्मुख' हो गया जो कि कुछ सीमा तक अब भी है।

इसमें कहा गया कि श्रेष्ठ उत्पाद उपलब्ध करा देना मात्र पर्याप्त नहीं है; संस्था द्वारा आक्रामक सेल्समेनशिप न किए जाने के प्रकरण में यह व्यर्थ है।

प्रभावी सेल्स–प्रमोशन, विज्ञापन एवं जन–सम्पर्क का महत्व सर्वाधिक है। हाई–प्रेशर सेल्समेनशिप व भारी–भरकम विज्ञापन से संस्था के उत्पादों को सामने लाया जा सकता है।

टिप्पणी

विक्रय–उन्मुख दर्शन का सार रहा– "उत्पाद लाये नहीं, बेचे जाते हैं"। उत्पाद के निर्माता को कहना पड़ता है कि उसका उत्पाद श्रेष्ठ है व यदि वह मौन रहता है तो विफल रहेगा।

इस दर्शन की धारणाएं निम्नांकित हैं:–

(i) श्रेष्ठ सम्भव उत्पाद का उत्पादन;

(ii) उत्पाद हेतु क्रेता खोजना;

(iii) प्रबन्धन का प्रमुख कार्य हाई–प्रेशर टॅक्टिक्स (यदि आवश्यक हुआ तो) द्वारा क्रेताओं को सहमत करना होता (यदि आवश्यक हुआ तो) है।

इसे निम्नानुसार दर्शाया जा सकता है–

यह दर्शन 1940 से प्रचलित है। बीमा–पॉलिसी, कन्ज़्यूमर नॉन–ड्यूरेबल्स एवं कन्ज़्यूमर ड्यूरेबल उत्पादों, विशेषकर प्रतिष्ठा के सभी प्रतीकों का विक्रय करने में यह प्रचलित है।

3. ग्राहक–उन्मुख दर्शन

यह दर्शन 1950 के दशक में लाया गया एवं इसमें कहा गया कि व्यापारिक उपक्रम का मूलभूत कार्य सम्भावित उपभोक्ताओं की इच्छाओं व मांगों को समझना है। इन परिणामों के सन्दर्भ में उत्पादों का उत्पादन करना महत्वपूर्ण माना जाने लगा ताकि उपभोक्ता के विशेषीकरणों को पूर्णरूपेण तृप्त किया जा सके।

यहां आरम्भन–बिन्दु उपभोक्ता है, न कि उत्पाद। उद्यम उपभोक्ता से आरम्भ करना होता है व अपेक्षित उत्पाद पर समाप्त। इसमें बाज़ारस्थल में उत्पाद उपलब्ध कराने से पहले विपणन–अनुसंधान की भूमिका पर ज़ोर दिया जाता है।

ग्राहक–उन्मुख दर्शन की धारणाएं हैं–

1. संस्था को वे ही उत्पाद उत्पादित करने चाहिए जो उपभोक्ता द्वारा वांछित हों।
2. प्रबन्धन को अपनी समस्त गतिविधियां इस प्रकार एकीकृत करनी होंगी कि उपभोक्ताओं की इच्छाओं को तृप्त करने हेतु कार्यक्रम विकसित कर सकें।
3. प्रबन्धन को 'दीर्घ–परास लाभ लक्ष्यों' की ओर कार्य करना है, न कि 'तात्कालिक विक्रय' के लिये।

इसे निम्नानुसार दर्शाया जा सकता है–

इसका तात्पर्य है कि दर्शन में आमूल–चूल परिवर्तन हुआ।

टिप्पणी

इसका अभिप्राय निम्नलिखित दो मूलभूत परिवर्तनों से है–

1. उत्पादन–उन्मुखता से बाज़ार–उन्मुखता की ओर बढ़ना;
2. पुराने 'Caveat emptor' से 'Caveat vendor' की ओर क्रमिक बढ़ाव।

1950 से यह दर्शन लोकप्रिय रहा है एवं तब तक यह छाया रहेगा जब तक कि उपभोक्ता को बाज़ार का राजा समझा जाता रहेगा।

4. सामाजिक उन्मुख दर्शन

विशेषतया 1970 व 1980 के दशकों के दौरान विपणन–अवधारणा में और परिष्कार किये गये। तदनुसार नवीन अवधारणा उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को समझने से भी आगे की ओर बढ़ जाती है एवं तदनुरूप उत्पाद का मिलान करने की ओर ले जाती है।

यह दर्शन उपभोक्ता–संतोष का ध्यान रखता है, साथ ही में उपभोक्ता–कल्याण अथवा सामाजिक कल्याण का भी ख्याल रखता है। ऐसे सामाजिक कल्याण की दिशा प्रदूषण–मुक्त पर्यावरण एवं मानव–जीवन की गुणवत्ता की ओर होती है।

इस प्रकार वाहन–निर्माण करने वाली संस्था को ध्यान में रखना चाहिए कि वह ऐसे वाहन निर्मित करे जो कम ईंधन–आवश्यकता के माध्यम से उपभोक्ताओं को बचत भी करायें एवं ध्वनि–प्रदूषण–रोधिता इत्यादि दृष्टियों से पर्यावरण के लिये भी तुलनात्मक रूप से सुरक्षित हों। अन्य शब्दों में– संस्था को अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना चाहिए। इस प्रकार समाज–कल्याण एक अतिरिक्त आयाम हुआ।

सामाजिक उन्मुख दर्शन की धारणाएं निम्नांकित हैं–

(अ) संस्था को वे ही उत्पाद उत्पादित करने हैं जो उपभोक्ताओं द्वारा चाहे गये हों;

(आ) संस्था को दीर्घकालिक लाभ–लक्ष्यों की ओर बढ़ना है, न कि तात्कालिक विक्रय की ओर;

(इ) संस्था अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करे;

(ई) प्रबन्धन द्वारा संस्था के संसाधनों व कार्यकलापों का एकीकरण किया जाना है ताकि इन भिन्न–भिन्न उपभोक्ता व सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कार्यक्रम विकसित किये जा सकें।

इस अवधारणा को निम्नानुसार दर्शाया जा सकता है–

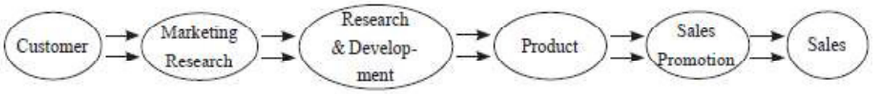

यह सामाजिक उन्मुख दर्शन नवीनतम है एवं इसे एकीकृत अवधारणा समझा जाता है। चूंकि इस दर्शन में पहले से चली आ रही अवधारणाओं का समावेष किया जाता है अतः यह बहुत समय तक विपणन जगत् में राज करेगी ही। वैसे हमें देखना होगा कि आगामी वर्शों में किस प्रकार के परिवर्तन होंगे एवं दशकों बाद विपणन–अवधारणा कौन–सा नवीन रूप धारण करेगी।

विपणन एवं विक्रय में अन्तर

टिप्पणी

साधारणतया हम 'विपणन' व 'विक्रय' शब्दों का उपयोग पर्याय के रूप में करते हैं परन्तु दोनों ही अवधारणाओं में बहुत भिन्नता है। सफल विपणन प्रबन्धक को इन दोनों में भेद समझ लेना आवश्यक है। विक्रय उत्पाद–केन्द्रित अवस्था है जो कि अधिकांशतया उत्पादक–संचालित होती है। यह विपणन का कार्यभाग मात्र है एवं बाज़ार–अंश पाने का अल्पकालिक लक्ष्य लिये रहता है। इसमें विक्रय की क्लोज़िंग के लिये कीमत–विविधता पर बल दिया जाता है जहां उद्देश्य इस प्रकार कहा जा सकता हो– "मुझे येन–केनप्रकारेण उत्पाद विक्रित करना ही है"। इस अल्पकालिक फोकस में बाज़ारस्थल में ब्रांड बनाने के लिये एवं ग्राहकों के उच्च निष्ठावान सेट के माध्यम से दूसरों से आगे बढ़ने के बुद्धिमत्तापूर्ण नियोजन का विचार नहीं किया जाता। किसी भी विक्रय कार्यकलाप का अन्तिम लक्ष्य विक्रय–अधिकतमीकरण के द्वारा लाभों को अधिकतम करना रहता है। जब ध्यान विक्रय पर केंद्रित हो तो व्यापारी सोचता है कि उत्पादन पूर्ण करने के उपरान्त विक्रय–बल का कार्य आरम्भ कर देंगे। यह कार्य भी विक्रय–विभाग का है कि उत्पादन–विभाग द्वारा जो भी निर्मित किया जाये उसका विक्रय करे। आक्रामक सेल्स विधियों से इस लक्ष्य को पूर्ण करने के प्रयास किये जाते हैं एवं ग्राहक की वास्तविक आवश्यकताओं व संतोष को बाद के लिये छोड़ दिया जाता है। विक्रय से उत्पाद को कम्पनी के लिये अल्पकाल हेतु नगदी में परिणत कर दिया जाता है।

विक्रय से तुलना में विपणन एक अवधारणा व उपागम (एप्रोच) के रूप में बहुत व्यापक है एवं गतिशील भी क्योंकि इसमें फोकस ग्राहक पर रहता है, न कि उत्पाद पर। विक्रय का केन्द्र निर्माता अथवा विपणनकर्त्ता की आवश्यकताएं अथवा रुचि है जबकि विपणन का केन्द्र ग्राहक की इच्छा है। यह पूरी कार्यविधि उपभोक्ता की इच्छाओं की तुष्टि से सम्बन्धित है।

विपणन में वे सभी कार्यकलाप सम्मिलित हैं जो उत्पादन नियोजन, कीमत–निर्धारण सहित उत्पाद अथवा सेवा के प्रमोशन व डिस्ट्रीब्यूशन से सम्बन्धित हों। कार्य का आरम्भ उपभोक्ता की इच्छाओं को पहचानने से आरम्भ कर दिया जाता है एवं उत्पाद–उपभोग के प्रति उसके संतोषप्रद प्रत्युत्तर (फ़ीडबैक) की प्राप्ति तक समाप्त नहीं किया जाता। यह कार्यकलापों की एक सुदीर्घ शृंखला है जिसमें उत्पादन, पैकिंग, प्रमोशन, कीमत–निर्धारण, डिस्ट्रीब्यूशन व तदुपरान्त विक्रय सम्मिलित हैं। उपभोक्ता को इन समस्त कार्यकलापों का निर्धारक बल बनने की आवश्यकता है। लाभों की अनदेखी नहीं की जाती परन्तु इनका निर्धारण दीर्घकालिक आधार पर किया जाये। विपणन में बाज़ार–अंश से अधिक महत्वपूर्ण विचार–अंश होता है।

प्रो. थियोडोर लेविट के अनुसार "विक्रय व विपणन के मध्य भेद अर्थगत भेद से अधिक है। वास्तव में विपणन–विचार वाली संस्था मूल्य–संतोषप्रद उत्पादों व सेवाओं का निर्माण करने को प्रयासरत् रहती है जिन्हें उपभोक्ता क्रय करना चाहेंगे। विक्रय हेतु क्या प्रस्तुत किया जा रहा है उसका निर्धारण विक्रेता द्वारा नहीं अपितु क्रेताओं द्वारा किया जाता है। विक्रेता तो क्रेता से संकेत प्राप्त करता है व उत्पाद को विपणन–प्रयास के एक परिणाम के रूप में सामने लाता है, न कि इसके विपरीत। विक्रयमात्र का सम्बन्ध तो कम्पनी के उत्पादों के लिये अपनी–अपनी नगदी सौंपने की इच्छा ग्राहकों में जगाने की युक्तियों व विधियों से है, इसमें उस मूल्य–संतोष का विचार नहीं किया जाता जो

उस विनिमय में घटित होता है। इसके विपरीत विपणन–दृष्टिकोण में समूचे व्यापार को ग्राहक की इच्छाएं ढूंढने, रचने, उद्दीप्त करने व संतुष्ट करने के दृढ़ एकीकृत प्रयास के रूप में देखा जाता है"।

टिप्पणी

विक्रय बनाम विपणन

विक्रय एवं विपणन दोनों का लक्ष्य आय बढ़ाने से होता है। ये परस्पर इस प्रकार गुंथे हुए हैं कि लोग इनके मध्य के भेद को समझ ही नहीं पाते। वस्तुतः छोटे संगठनों में समान व्यक्तियों द्वारा विक्रय व विपणन दोनों कार्य किये जाते हैं। फिर भी विपणन विक्रय से भिन्न है एवं संगठन के बढ़ने के सापेक्ष भूमिकाएं व उत्तरदायित्व अधिक विशेषीकृत हो जाते हैं।

तुलना–कण्डिका (Comparison chart)

विपणन बनाम विक्रय तुलना–कण्डिका		
	विपणन	**विक्रय**
परिभाषा	विपणन में क्रेताओं व विक्रेताओं को साथ लाने के लिये व्यापारिक कार्यकलापों का क्रमबद्ध नियोजन, क्रियान्वयन एवं नियन्त्रण किया जाता है।	विक्रय में (अ) दो पक्षों के मध्य लेनदेन किया जाता है जहां क्रेता को धन–विनिमय में उत्पाद (मूर्त्त अथवा अमूर्त्त), सेवा एवं/अथवा परिसम्पत्तियों की प्राप्ति होती है; (आ) प्रतिभूति (जमानत) की कीमत पर यह क्रेता व विक्रेता के मध्य एक करार है।
उपागम	उत्पाद/सेवा के विक्रय हेतु कार्यकलापों की विस्तृत परास, ग्राहक–सम्बन्ध इत्यादि; भावी इच्छाओं का निर्धारण एवं दीर्घकालिक सम्बन्ध के लिये उन इच्छाओं की पूर्ति की स्ट्रेटजी बनाना।	ग्राहक की इच्छा से उन उत्पादों का मिलान करना जो कम्पनी द्वारा अभी उपलब्ध कराये जा रहे हैं।
फोकस	उत्पाद/सेवा को प्रमोट, डिस्ट्रीब्यूट करने व कीमत–निर्धारण का समग्र परिदृश्य; ग्राहक की इच्छाओं को कम्पनी द्वारा उपलब्ध कराये जा सकने वाले उत्पादों एवं/अथवा सेवाओं से पूर्ण करना	सेल्स–वॉल्यूम उद्देश्यों की पूर्ति
कार्यविधि	बाज़ार, डिस्ट्रीब्यूशन–चैनल्स, कॉम्पेटीटिव प्रॉडक्ट्स व सेवाओं का विश्लेषण; प्राइसिंग स्ट्रेटजीज़; सेल्स ट्रॅकिंग व बाज़ार–अंश विश्लेषण; बजट	प्रायः एक–एक
विस्तारक्षेत्र	बाज़ार–अनुसंधान; विज्ञापन; विक्रय; जनसम्पर्क; ग्राहक सेवा एवं संतोष	उपभोक्ता की इच्छा के लिये उत्पाद एक बार बना लिये जाने के बाद ग्राहक को तैयार करना कि वह उस इच्छापूर्ति के लिये उस उत्पाद का क्रय करे
दूरदर्शिता	दीर्घकालिक	अल्पकालिक
रणनीति	Pull	Push
प्राथमिकता	विपणन में प्रदर्शित होता है कि ग्राहकों तक कैसे पहुंचें एवं दीर्घस्थायी सम्बन्ध कैसे बनायें	विपणन का अन्तिम परिणाम विक्रय है
पहचान	विपणन में ब्रांड–आयडेंटिटी बनाना लक्ष्य होता है ताकि उसे इच्छा–पूर्ति से सरलता से जोड़ा जा सके	विक्रय में मानव–संवाद द्वारा संचालित, अवसरवादी, व्यष्टिगत विधि में इच्छापूर्ति की स्ट्रेटजी बनायी जाती है। यहां ब्रांड–आयडेंटिटी, दीर्घकाल अथवा निरन्तरता के लिये स्थान नहीं होता। इसमें बस उपयुक्त समय पर इच्छापूर्ति की योग्यता होती है।

विक्रय बनाम विपणन कार्यकलाप

टिप्पणी

विपणन का प्रारूपिक लक्ष्य उत्पाद में रुचि लाना एवं रुचि को क्रय में परिणत करना होता है। विपणन–कार्यकलापों में निम्नांकित सम्मिलित हैं:–

- उपभोक्ता–अनुसंधान : ग्राहकों की इच्छाओं को पहचानने के लिये;
- उत्पाद–विकास : वर्तमान अथवा प्रसुप्त इच्छाओं की पूर्ति हेतु नवीन उत्पादों का निर्माण;
- विज्ञापन : उत्पाद की जानकारी बढ़ाने एवं ब्रांड बनाने के लिये;
- कीमत–निर्धारण : दीर्घकालिक आय को अधिकतम करने के लिये उत्पादों व सेवाओं का।

वहीं दूसरी ओर विक्रय–कार्यकलापों में सम्भावनाओं को वास्तविक भुगतानकारी ग्राहकों में परिणत करने पर ज़ोर दिया जाता है। विक्रय में ग्राहकों को तैयार करने के लिये सम्भावित ग्राहकों से प्रत्यक्ष संवाद किया जाता है। इस प्रकार विपणन में सर्वसाधारण जनसंख्या (अथवा किसी प्रकरण में विषाल जन–समूह) पर फोकस किया जाता है जबकि विक्रय में व्यक्तियों अथवा सम्भावित ग्राहकों के छोटे–छोटे समूहों पर फोकस किया जाता है।

अतीत में जब छोटे–छोटे व्यापारिक ऋणों का प्रसंग आता था तो बैंक प्रबन्धकों द्वारा बस नगदी प्रवाह को ध्यान में रखा जाता था। वर्तमान में बैंकों द्वारा व्यापार की विपणन–योजना पर भी ज़ोर दिया जाने लगा है। बैंक जानना चाहते हैं कि आपकी व्यापारिक योजना कैसी है। अधिक महत्तापूर्ण यह है कि वे यह जानना चाहते हैं कि आपका व्यापार धनार्जन की ओर कैसे बढ़ेगा। विक्रय व विपणन के मध्य का अन्तर क्या व क्यों के मध्य अन्तर जैसा है। मान लें कि घोड़ागाड़ी बेचनी है तो आपको उसके लिये नगर के सबसे उपयुक्त स्थान पर जाना होगा व आसपास चल–चलकर विक्रय हेतु सम्भावित ग्राहकों से चर्चा करनी होगी। यहां विपणन में वॉल्यूम, समय व बारम्बारता के आधार पर पदयात्रियों के आवागमन–प्रवाह का विश्लेषण करना होगा। कई व्यक्ति बातें सुनने के प्रति अनिच्छुक रहेंगे, कुछ तो सुनकर भी अगम्भीर रहेंगे एवं कुछ ही व्यक्ति गम्भीर पूछताछ के लिये आगे आयेंगे। एक अन्य उदाहरण में रीयल एस्टेट बाज़ार में आपको घर–घर जाकर पता लगाना होगा कि मकान के क्रय–विक्रय का इच्छुक कौन–कौन है। आपकी सफलता उन पतों की संख्या पर निर्भर होगी जिन तक आप गये। विपणन में सफलता की सम्भावना बढ़ायी जाती है ताकि अभिकर्त्ता जब घर–घर जाये तो सम्भावना का प्रतिशत् बढ़े। यह स्पष्ट है कि जब आप रीयल एस्टेट की ओर देखें तो घर के मुख्य द्वार पर लगे 'विक्रय हेतु' नामपट्ट पर ध्यान दें क्योंकि आप भूखण्ड को सम्भावित क्रेता तक नहीं ले जा रहे किन्तु आपको उसे इससे अवगत कराना है। क्या आपको नहीं लगता कि महत्वहीन लगने वाले ये संकेत वास्तव में विक्रय में महती भूमिका निभा सकते हैं?

एक ही द्वार पर दोबारा जाने पर सम्भावित ग्राहकों की 'न' को 'हां' में बदलने की सम्भावना बढ़ जाती है क्योंकि सम्भावित ग्राहक अभिकर्त्ता व कम्पनी को पहचानने लगा है। मकान के सम्भावित क्रेता को जब लगता है कि इसके द्वारा नीरस प्रतिक्रिया करने के बाद भी अभिकर्त्ता द्वारा सहज व्यवहार किया जा रहा है तो क्रय की सम्भावना बढ़ जाती है। उपरोक्त

उदाहरणों से स्पष्ट है कि विपणन सभी व्यापारों में किस प्रकार लागू है। विपणन का महत्व विज्ञापन करने तक सीमित नहीं है। इसमें अपने ग्राहकों व प्रतिस्पर्धियों को समझना होता है एवं अनुसंधान, विश्लेषण व उत्पाद विकास सम्मिलित है।

टिप्पणी

विपणन मिश्रण : अवधारणा एवं संरचना

विपणन के क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए विपणनकर्ता द्वारा विक्रय की विभिन्न नीतियों का जो सम्मिश्रण किया जाता है, वह विपणन मिश्रण (Marketing Mix) कहलाता है। इसमें उत्पाद नियोजन एवं विकास, ब्रांडिंग, पैकेजिंग, मूल्य निर्धारण, वितरण माध्यम, विज्ञापन एवं विक्रय संवर्धन, भौतिक वितरण, विपणन अनुसंधान आदि को शामिल किया जाता है। प्रत्येक कंपनी ऊपर वर्णित तत्वों का सम्मिश्रण इस प्रकार करती है कि किसी एक निश्चित समय एवं स्थिति में उस व्यवसाय से सर्वाधिक लाभ कमाया जा सके। विपणन मिश्रण के विभिन्न तत्वों को मुख्य रूप से चार समूहों में बांटा जाता है–(i) उत्पाद मिश्रण, (ii) मूल्य मिश्रण (iii) संवर्धन मिश्रण, (iv) वितरण मिश्रण।

आज के युग में व्यावसायिक सफलता प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता को संतुष्टि प्रदान करना आवश्यक है। सभी विपणन क्रियाएं उपभोक्ता से प्रारंभ होकर उपभोक्ता पर ही समाप्त हो जाती हैं। सफल विपणन के लिए सर्वप्रथम उपभोक्ताओं की वास्तविक आवश्यकताओं तथा इच्छाओं का पता लगाना चाहिए, उसके पश्चात ऐसे उत्पादों एवं सेवाओं का उत्पादन करना चाहिए, जो इन आवश्यकताओं को उचित प्रकार से पूरा कर सकें। वर्तमान समय में यह कहना गलत नहीं होगा कि आज उत्पादों का विक्रय नहीं किया जाता बल्कि संतुष्टि का विक्रय किया जाता है। विपणन में उपभोक्ता को संतुष्टि प्रदान करने के लिए बहुत से कार्य किए जाते हैं। ये कार्य एक–दूसरे पर निर्भर करते हैं। इन कार्यों के बहुत कुशल संवहन को विपणन मिश्रण कहा जाता है।

विपणन मिश्रण के अंतर्गत विपणन प्रबंधक को बाजार शक्तियों (Market forces) का अध्ययन तथा उनका विस्तृत विश्लेषण करना होता है और सभी शक्तियों के सामूहिक प्रभावों को ध्यान में रखते हुए विपणन तत्वों (Marketing factors), विपणन नीतियों (Marketing policies) एवं विपणन विधियों (Marketing methods) का एक ऐसा मिश्रण तैयार करना होता है, जो बाजार शक्तियों के अनुरूप हो। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि एक फर्म के परिवर्तनशील वातावरण के अनुरूप विपणन की निरंतर बदलती हुई दशाओं के अनुकूल विपणन तत्वों का प्रयोग ही विपणन मिश्रण कहलाता है।

1. **आर. आर. डाबर** के अनुसार, ''निर्माताओं द्वारा बाजार में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रयोग की जाने वाली नीतियां विपणन मिश्रण का निर्माण करती हैं।''
2. **मैकार्थी** के अनुसार, ''विपणन मिश्रण चार तत्वों का एक पुलिंदा है, जिसमें उत्पाद, मूल्य संवर्धन तथा वितरण तत्व होते हैं।''

विपणन मिश्रण की प्रकृति

विपणन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विपणन मिश्रण एक महत्वपूर्ण उपकरण है। विपणन मिश्रण विभिन्न कारकों का एक संयोग है, जो मिलकर विपणन प्रणाली की संरचना करते हैं। इन कारकों को 'Four P' के रूप में संबोधित किया जाता है जिसमें उत्पाद (Product), मूल्य (Price), संवर्धन (Promotion) तथा स्थान (Place) शामिल होते हैं।

टिप्पणी

विपणन मिश्रण परिवर्तनशील प्रकृति का होता है। विपणन वातावरण के आंतरिक तथा बाहरी घटकों में परिवर्तन होने पर इसमें भी परिवर्तन हो जाता है। प्रत्येक विपणन फर्म का विपणन मिश्रण अलग प्रकार का होता है। ऐसा फर्मों की उत्पाद समूहों (Product lines), बाजारों तथा प्रतियोगिता आदि के अंतर के कारण होता है। विपणन मिश्रण की प्रकृति को निम्न व्याख्या से समझा जा सकता है–

1. **उत्पाद मिश्रण**–उत्पाद ऐसा होना चाहिए जो उपभोक्ता की आवश्यकता को सही ढंग से पूरा कर सके। उत्पाद मिश्रण में निम्न तत्वों को शामिल किया जाता है– भौतिक उत्पाद, उत्पाद सेवाएं, उत्पाद का रंग, आकार तथा डिजाइन, ब्रांडिंग, पैकेजिंग, प्रमापीकरण, श्रेणीकरण, उत्पाद संशोधन, उत्पाद नवाचार इत्यादि।
2. **मूल्य मिश्रण**–उत्पाद का मूल्य उत्पाद के विक्रय को प्रभावित करता है। मूल्य मिश्रण में इन तत्वों को शामिल किया जाता है–मूल्य उद्देश्य, मूल्य नीतियां, मूल्य निर्धारण, लाभ की मात्रा, भुगतान की शर्तें, उधार नीति, कटौती नीति, रिबेट, प्रीमियम इत्यादि।
3. **संवर्धन मिश्रण**–विक्रय संवर्धन क्रियाओं द्वारा उपभोक्ताओं को उत्पाद क्रय करने के लिए प्रेरित किया जाता है। संवर्धन मिश्रण में निम्न तत्वों को शामिल किया जाता है–व्यक्तिगत विक्रय, विज्ञापन, जन संपर्क, उत्पादों का प्रदर्शन, मुफ्त उपहार, मुफ्त सैम्पल, मेले तथा प्रदर्शनियां इत्यादि।
4. **स्थान मिश्रण**–यह स्थान, समय तथा अधिकार मूलक उपयोगिताओं का सृजन करता है। स्थान मिश्रण में निम्न तत्वों को शामिल किया जाता है–वितरण माध्यम, संग्रहण, भंडारण, परिवहन, भौतिक वितरण क्रियाएं इत्यादि।

विपणन मिश्रण के ये सभी तत्व परस्पर संबंधित हैं। एक के बारे में लिया गया निर्णय अन्य तत्वों को भी प्रभावित करता है इसलिए आदर्श विणन मिश्रण के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि इन चारों तत्वों को समन्वित करते हुए ही इनके बारे में निर्णय लिए जाएं।

विपणन एवं रूप उपयोगिता

कोई भी वस्तु उपभोक्ता के लिए तभी उपयोगी हो सकती है, जब उसका रूप परिवर्तन इस प्रकार किया जाए कि वह और अधिक प्रभावी ढंग से आवश्यकताओं को पूरा कर सके। उदाहरण के लिए–कपास को धागे या कपड़े के रूप में, लकड़ी को फर्नीचर के रूप में, गन्ने को गुड़ या चीनी के रूप में परिवर्तित कर उसकी उपयोगिता में वृद्धि की जा सकती है। इस कार्य के लिए विपणन, उत्पादन, नियोजन और विकास का सहारा लिया जाता है।

विपणन एवं स्थान उपयोगिता

स्थान उपयोगिता का आशय उपयोगिता के विकास के उस पहलू से है, जो किसी वस्तु में स्थान के बदल जाने से उत्पन्न हो अर्थात वस्तु की उपयोगिता उस स्थान पर अधिक होगी जहां उपभोक्ता चाहता है, न कि वहां जहां उत्पादक। यह स्वाभाविक है कि जहां वस्तु की अधिकता होगी वहां उसकी उपयोगिता कम होगी। अतः वस्तुओं को ऐसे

टिप्पणी

स्थान पर भेज देने से जहां उनकी मांग अधिक हो, मूल्य ज्यादा प्राप्त होगा। यही अधिक मूल्य स्थान उपयोगिता है। थोक व्यापारी एवं फुटकर विक्रेता आदि वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थानों पर स्थानांतरण करने में विशेष रूप से इस बात का ध्यान रखते हैं कि कहां वस्तुओं की अच्छी मांग है अर्थात ऐसे स्थान पर माल भेजा जाता है जहां अधिक लाभ मिल सके। यह लाभ उपयोगिता वृद्धि पर ही निर्भर करता है।

विपणन एवं समय उपयोगिता

वस्तु को ठीक समय पर उपभोक्ताओं को उपलब्ध कराना उसकी उपयोगिता में वृद्धि करना है। बहुत सी वस्तुएं ऐसी होती हैं जो किसी विशेष मौसम में अत्यधिक मात्रा में उत्पन्न की जाती हैं लेकिन उनके उत्पादन की मांग किसी अन्य विशेष मौसम में होती है। ऐसी स्थिति में वस्तु का संग्रह करना इसलिए आवश्यक हो जाता है कि उन वस्तुओं की पूर्ति ऐसे समय में भी की जा सके, जब वे उत्पन्न नहीं होतीं। अतः संग्रह ही विपणन की वह क्रिया है जो एक से दूसरे समय तक वस्तुओं का हस्तांतरण कर उसमें उपयोगिता वृद्धि कर देता है। उदाहरणतः गेहूं एक विशेष मौसम गर्मी में पैदा होता है, परंतु उसकी मांग वर्ष भर होती है। अतः संपूर्ण वर्ष में इसकी पूर्ति बनी रहे, इसके लिए आवश्यक है कि अधिक से अधिक गेहूं को सुरक्षित रखा जाए। इस सुरक्षा व्यय के कारण ही अन्य मौसमों में गेहूं के मूल्यों में वृद्धि हो जाती है। कुछ वस्तुएं ऐसी होती हैं, जिनकी उपयोगिता समय बीतते जाने के साथ ही बढ़ती है जैसे–चावल, शराब आदि।

विपणन एवं अधिकार उपयोगिता

अधिकार उपयोगिता का सृजन विनिमय कार्य के द्वारा संपन्न होता है अर्थात एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को देना विनिमय है या वस्तु पर उपभोग का अधिकार प्रदान करना, जिससे वह उसका प्रभावी उपयोग कर सके, अधिकार उपयोगिता है। वैधानिक रूप में विपणन की परिभाषा ही इस प्रकार से दी गई है– ''विपणन में वे सभी क्रियाएं सम्मिलित हैं, जो वस्तुओं एवं सेवाओं के स्वामित्व एवं अधिकार के हस्तांतरण से संबंधित होती हैं।'' यदि किसी अनपढ़ व्यक्ति को कलम दी जाए तो उसके लिए उसकी कोई उपयोगिता नहीं है और यदि वही कलम किसी लेखक को दी जाए तो उसके लिए उपयोगी होगी। इसी हस्तांतरण को अधिकार उपयोगिता कहते हैं। इस हस्तांतरण में विपणन की समस्त क्रियाएं सम्मिलित होती हैं, जैसे–उत्पादक से थोक विक्रेता, थोक विक्रेता से फुटकर विक्रेता, फुटकर विक्रेता से उपभोक्ता आदि।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विपणन क्रियाओं का वस्तु के रूप, स्थान, समय एवं स्वामित्व (अधिकार) उपयोगिता से घनिष्ठ संबंध है। इसी कारण उपर्युक्त परिभाषा में विपणन को इन उपयोगिताओं का सृजन कहा गया है।

विपणन मिश्रण का महत्व

विपणन मिश्रण की सफलता इस बात से आंकी जाती है कि यह कितने अच्छे तरीके से उपभोक्ताओं को संतुष्ट तथा प्रतिस्पर्धा का सामना करता है। जब कोई कंपनी इन दो उद्देश्यों को प्राप्त कर लेती है तो यह मान लेना चाहिए कि वह अपने प्रतिस्पर्धियों से आगे निकल गई है। यह आदर्श विपणन मिश्रण निर्धारण का लाभ है। विपणन मिश्रण के अग्रलिखित लाभ हैं–

टिप्पणी

1. विपणन मिश्रण स्पष्ट करता है कि यदि उसके चारों तत्वों को समन्वित तरीके से समायोजित किया जाए, तो उत्पाद का डिजाइन, ब्रांड, पैकेजिंग, मूल्य, संवर्धन तथा वितरण सब कुछ बेहतरीन होगा।
2. विपणन मिश्रण विभिन्न उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को पूरा करने की कोशिश करता है। जैसे ही उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं में परिवर्तन होता है, विपणन प्रबंधक संशोधित उत्पाद बाजार में ले आते हैं।
3. विपणन मिश्रण उत्पादक तथा उपभोक्ता के मध्य संबंधों को मजबूत करता है, क्योंकि यह हमेशा उपभोक्ता संतुष्टि पर ध्यान केंद्रित करता है।
4. विपणन मिश्रण क्योंकि उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को प्राथमिकता देता है, इसलिए कंपनी के विक्रय तथा लाभ दोनों अधिकतम रहते हैं।
5. विपणन मिश्रण में विपणन प्रणाली के विभिन्न तत्वों को पूरा महत्व दिया जाता है इसलिए इनके संबंधों में संतुलन बना रहता है।
6. विपणन मिश्रण लागत लाभ विश्लेषण को संभव बनाता है। इसलिए व्ययों को निर्धारित करने में आसानी होती है।
7. विपणन मिश्रण के द्वारा विभिन्न विभागों के प्रबंधकों के उत्तरदायित्वों को निश्चित किया जा सकता है। इससे कार्यकुशलता में वृद्धि होती है।
8. विपणन मिश्रण विपणन वातावरण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसलिए वातावरण में होने वाले परिवर्तनों के अनुरूप विपणन कार्यों को निश्चित करना आसान हो जाता है।

आज के परिवर्तनशील युग में बहुत कुछ तेजी के साथ बदलता जा रहा है। उपभोक्ताओं की आवश्यकताएं, रुचियां, प्राथमिकताएं, क्रय–शक्ति, शिक्षा, फैशन, रीति–रिवाज, जीवन–स्तर, सामाजिक स्थितियां आदि तेजी से बदल रहे हैं। यातायात एवं संचार सुविधाएं, पेशेवर सेवाएं, मध्यस्थ सेवाएं, बीमा एवं बैंकिंग सेवाएं निरंतर बढ़ती जा रही हैं। प्रौद्योगिकी उन्नति के कारण उत्पाद जीवन चक्रों की अवधि कम होती जा रही है, नये उत्पाद शीघ्रता से बाजार में आ रहे हैं। संवर्धनात्मक क्रियाओं का क्षेत्र व्यापक होता जा रहा है और इसी के साथ विपणन मिश्रण का महत्व बढ़ता जा रहा है।

विपणन मिश्रण के तत्व (Elements of Marketing Mix)

नील एच. बोर्डन के अनुसार, ''विपणन मिश्रण उन महत्वपूर्ण तत्वों की सूची है जो विपणन कार्यक्रम को बनाते हैं।''

"Marketing mix consists a list of the important elements or in gradients that make-up the marketing programme."

– Prof. Neil H. Borden

विपणन मिश्रण के तत्वों से अभिप्राय है विपणन मिश्रण की संरचना। विपणन मिश्रण परिवर्तनशील प्रकृति का होता है। आन्तरिक तथा बाहरी तत्वों में परिवर्तन के साथ इसमें भी परिवर्तन आ जाता है। अलग–अलग फर्मों के विपणन मिश्रण भी अलग–अलग होते हैं यह उन फर्मों के व्यवसायों की प्रकृति तथा आवश्यकता पर निर्भर करता है। विपणन के विभिन्न विद्वानों ने विपणन मिश्रण के तत्वों की व्याख्या अग्र प्रकार से की है–

टिप्पणी

1. प्रो. अलबर्ट डब्ल्यू. फ्रे (Albert W. Frey) ने अपनी पुस्तक 'Advertising' में विपणन मिश्रण के तत्वों को दो भागों में विभाजित किया–

   (i) **उत्पाद सम्बन्धित तत्व** (Product related variables) : इसमें उत्पाद, ब्रान्ड, पैकेज, मूल्य तथा सेवा आदि को शामिल किया।

   (ii) **विधि सम्बन्धित तत्व** (Procedure related variables) : इसमें विज्ञापन, वितरण माध्यम, व्यक्तिगत विक्रय तथा विक्रय संवर्धन आदि को शामिल किया।

2. विलियम लेजर एवं ई.जे. कैली (William Lazer and E.J. Kelley) ने अपनी पुस्तक 'Managerial Marketing' में विपणन मिश्रण के तत्वों को दो भागों में विभाजित किया –

   (i) **उत्पाद एवं सेवा मिश्रण** (Product and Service Mix) : इसमें उत्पाद, ब्रान्ड, लेवल, पैकेजिंग, मूल्य निर्धारण तथा सेवा आदि को शामिल किया।

   (ii) **वितरण मिश्रण** (Distribution Mix) : इसमें मध्यस्थ, परिवहन, संग्रहण, भण्डारण आदि को शामिल किया। संवर्धन तथा अनय विक्रय सहायक क्रियाओं को शामिल किया।

3. एच.ए. लिप्सन एवं जे.आर. डार्लिंग (H.A. Lipson and J.R. Darling) ने अपनी पुस्तक 'Introduction to Marketing Administration' में विपणन मिश्रण के तत्वों को चार भागों में विभाजित किया–

   (i) उत्पाद (Product)

   (ii) विक्रय की शर्तें (Condition of sales)

   (iii) वितरण (Distribution)

   (iv) संचार (Communication)

4. जे.ई. मैकार्थी (Jerome E. McCarthy) ने अपनी पुस्तक 'Basic Marketing' में विपणन तत्वों की व्याख्या 'Four P's' के रूप में की। इस वर्गीकरण का प्रत्येक तत्व अंग्रेजी के 'P' अक्षर से शुरू होता है।

   1. PRODUCT (उत्पाद) – P1 2. PRICE (मूल्य) – P2

   3. PROMOTION (संवर्धन) – P3 4. PLACE (स्थान) – P4

मैकार्थी की उपरोक्त व्याख्या को विश्व में सबसे अधिक समर्थन प्राप्त है। विपणन के पूरे पाठ्यक्रम में इन्हीं तत्वों की व्याख्या की गई है। इन तत्वों की संक्षिप्त व्याख्या निम्न की गई है–

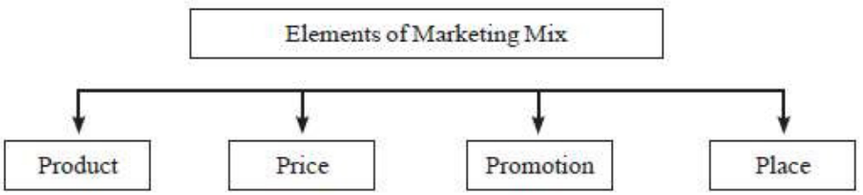

उत्पाद मिश्रण (Product Mix)

टिप्पणी

उत्पाद सभी विपणन क्रियाओं का केन्द्र बिन्दु होता है। उत्पाद से अभिप्राय इसकी सभी भौतिक तथा अभौतिक विशेषताओं से लिया जाता है। जैसे उत्पाद का आकार, शैली, डिजाइन, गुणवत्ता, रंग, ब्रान्ड, लेबल, पैकेजिंग तथा विक्रय उपरान्त सेवाएं आदि। उत्पाद मिश्रण में उत्पाद विभेद (Product Defferentitaiton), प्रमापीकरण, श्रेणीकरण, उत्पाद श्रृंखला आदि को भी शामिल किया जाता है। इस प्रकार कुल उत्पाद जो कम्पनी के द्वारा विक्रय के लिए प्रस्तुत किया जाता है उसे उत्पाद मिश्रण कहते हैं। उत्पाद मिश्रण के कुछ मुख्य तत्वों की व्याख्या निम्न की गई है–

1. **उत्पाद डिजाइन** (Product design) : उपभोक्ता उत्पादों में उत्पाद का डिजाइन उत्पाद की एक महत्वपूर्ण विशेषता होती है, जैसे जूते, रेडिमेड, वस्त्र, फर्नीचर, क्राकरी, आटोमोबाइल आदि। उत्पाद का डिजाइन उपभोक्ता की आवश्यकताओं के अनुसार होना चाहिए। उचित डिजाइन उत्पाद की प्रतियोगिता को बढ़ाने, आकर्षण को बढ़ाने, सुरक्षा तथा शक्ल को अच्छा बनाने, विक्रय को बनाने, उत्पादन लागत कम करने, विज्ञापन तथा उत्पाद का अधिक मूल्य प्राप्त करने में सहायता करता है। उपभोक्ता उत्पाद डिजाइन को बहुत अधिक महत्व देने लगे हैं।

2. **उत्पाद गुणवत्ता** (Product quality) : उत्पाद की गुणवत्ता उसके डिजाइन, कारीगरी, पैकेजिंग, उत्पादन प्रक्रिया तथा उत्पाद को बनाने में प्रयोग की गई सामग्री पर निर्भर करती है। उत्पाद की गुणवत्ता का सम्बन्ध उत्पाद के रंग–रूप, आकार, वजन, स्वाद, पैकेजिंग आदि से होता है। वर्तमान उपभोक्ता उच्च गुणवत्ता के उत्पादों को पसन्द करते हैं।

3. **उत्पाद श्रृंखला** (Product line) : उत्पाद श्रृंखला अथवा उत्पाद पंक्ति ऐसे उत्पादों का समूह है जो परस्पर सम्बन्धित होते हैं क्योंकि वह समान रूप से कार्य करते हैं, विशेष प्रकार की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करते हैं, समान उपभोक्ता समूहों को बेचे जाते हैं, एक जैसे विपणन माध्यमों से वितरित किये जाते हैं। जैसे – ओनिडा कम्पनी फ्रीज, टेलीविजन, म्यूजिक सिस्टम, वाशिंग मशीन, आदि अनेक प्रकार के उत्पाद बनाती हैं, इन्हें अलग–अलग उत्पाद श्रृंखलाएं कहा जायेगा।

4. **उत्पाद विभेदीकरण** (Product differenentiation) : इसके अन्तर्गत उत्पादक अपने उत्पाद को प्रतियोगी फर्मों के उत्पाद से अलग दिखाने की कोशिश करता है इसके लिए उन्नत उत्पादों का विकास किया जाता है तथा विपणन कार्यक्रमों में सुधार किया जाता है।

5. **उत्पाद नियोजन एवं विकास** (Product planning and development) : विपणन मिश्रण के तत्वों में उत्पाद नियोजन एवं विकास बहुत ही महत्वपूर्ण तत्व है। इसमें उत्पाद का डिजाइन, ब्राण्ड पैकेजिंग, उत्पाद के प्रयोग, उत्पाद की गारन्टी तथा सेवा आदि को शामिल किया जाता है। यह सभी विपणन मिश्रण के तत्व हैं।

उत्पाद मिश्रण के अन्य तत्वों की व्याख्या 'विपणन के कार्यों' तथा 'उत्पाद मिश्रण' के अध्यायों में की गई है।

टिप्पणी

मूल्य मिश्रण (Price Mix)

मूल्य उत्पाद की कीमत है जिसे मुद्रा में व्यक्त किया जाता है। यह क्रेता तथा विक्रेता दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। जब क्रेता तथा विक्रेता किसी एक मूल्य पर राजी हो जाता हैं तो उत्पाद का विनिमय संभव हो जाता है। फर्म के लिए मूल्य आय का स्रोत है। वर्तमान समय में उत्पाद एवं फर्म की सफलता या असफलता मूल्यों पर निर्भर करती है। इसलिए प्रत्येक विपणन प्रबन्धक मूल्यों सम्बन्धी नीति को बनाने तथा लागू करने में विशेष रुचि लेता है। मूल्य मिश्रण में निम्न तत्वों को शामिल किया जाता है– मूल्य उद्देश्य, मूल्य नीतियां, मूल्य निर्धारण, साख की शर्तें, भुगतान की शर्तें, कटौती नीति, लाभ की दर, रिबेट, प्रीमियम आदि। मूल्य मिश्रण के कुछ मुख्य तत्वों की व्याख्या निम्न की गई है–

1. **मूल्य नीतियां** (Pricing policies) : मूल्य नीतियां मूल्य निर्धारण में पथ प्रदर्शक का कार्य करती हैं। विपणनकर्ता को उत्पाद का वह मूल्य निर्धारित करना चाहिए जो बाजार की आवश्यकता के अनुरूप हो। उत्पाद का मूल्य निर्धारण अन्य तत्वों से भी प्रभावित होता है, जैसे उत्पाद की मांग, लागत, उत्पाद की प्रकृति, उपभोक्ता की प्रकृति, प्रतियोगिता, वितरण माध्यम, सरकारी नियम, आर्थिक वातावरण आदि।
2. **साख की शर्तें** (Terms of credit) : विक्रय को बढ़ाने के लिए उधार विक्रय करना आवश्यक होता है। उधार विक्रय फर्म की तरलता स्थिति (Liquidity position) को खराब करती है परन्तु लाभों में वृद्धि करती है। साख नीति बनाते समय उत्पाद की प्रकृति, उपभोक्ताओं का प्रकार, प्रतियोगिता, वित्तीय संस्थाओं द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली साख सुविधाएं आदि को ध्यान में रखना चाहिए।
3. **पुनः विक्रय मूल्य अनुरक्षण** (Resale price maintenance) : पुनः विक्रय मूल्य अनुरक्षण एक ऐसी नीति है जिसके अन्तर्गत उत्पादक इस बात की कोशिश करता है कि उसका उत्पाद अन्तिम उपभोक्ता को निर्धारित मूल्य पर बेचा जाए। इससे एक तो कीमत युद्ध समाप्त होता है, दूसरे उत्पाद एवं उत्पादक की ख्याति में वृद्धि होती है।
4. **लाभ की दर** (Rate of profit) : लाभ से अभिप्राय है उत्पादन लागत तथा उत्पाद के मूल्य का अन्तर। इसमें उत्पादक, थोक विक्रेता, फुटकर विक्रेता सबके लाभ शामिल होते हैं।
5. **छूट** (Rebate) : सूची मूल्य में से घटाई गई राशि को छूट कहते हैं। छूट उपभोक्ता को उत्पाद से होने वाली असन्तुष्टि की हानि को पूरा करने के लिए दी जाती है। यह असन्तुष्टि उत्पादों के खराब हालत में पहुंचने, देरी से पहुंचने, रास्ते में टूट जाने आदि के कारण उत्पन्न होती है। छूट की कोई प्रमाणित दर नहीं होती यह असन्तुष्टि अर्थात हानि की मात्रा पर निर्भर करती है।

मूल्य मिश्रण के अन्य तत्वों की व्याख्या उत्पाद मूल्य निर्धारण के अध्याय में की गई है।

संवर्धन मिश्रण (Promotion Mix)

कम्पनी का उत्पाद चाहे कितना भी उच्च कोटि का क्यों न हो उसका अधिक विक्रय नहीं किया जा सकता, यदि प्रबन्धकों द्वारा उत्पाद का संवर्धन (Promotion) न किया

टिप्पणी

जाये। संवर्धन एक ऐसा तरीका है जिसके द्वारा उत्पादक अपने उपभोक्ताओं से बात कर सकता है। संवर्धन क्रियाओं द्वारा उत्पाद को उपभोक्ता स्वीकृति आसानी से प्राप्त हो जाती है। संवर्धन मिश्रण में व्यक्तिगत संचार तथा अव्यक्तिगत संचार दोनों को शामिल किया जाता है। व्यक्तिगत संचार से अभिप्राय है व्यक्तिगत विक्रय और अव्यक्तिगत संचार से अभिप्राय है विज्ञापन, प्रचार, जनसम्पर्क तथा अन्य विक्रय संवर्धन क्रियाएं। संवर्धन मिश्रण के कुछ मुख्य तत्वों की व्याख्या निम्न की गई है–

1. **व्यक्तिगत विक्रय** (Personal selling) – व्यक्तिगत विक्रय में क्रेता तथा विक्रेता दोनों आमने–सामने होते हैं। यह तभी उपयोगी है यदि बाजार केन्द्रित है। उत्पाद का प्रति इकाई मूल्य अधिक है तथा उत्पाद के विषय में प्रदर्शन की आवश्यकता है। व्यक्तिगत विक्रय उत्पाद के प्रति जागरूकता उत्पन्न करता है तथ ब्रान्ड वरीयता का विकास करता है। इसके द्वारा उपभोक्ताओं की शिकायतों को तुरन्त दूर किया जा सकता है। व्यक्तिगत विक्रयकर्ताओं की भर्ती, चुनाव, प्रशिक्षण मनोबल तथा नियन्त्रण सम्बन्धी उचित नीतियां अवश्य बनानी चाहिए।
2. **विक्रय संवर्धन** (Sales promotion) – यह क्रिया विक्रय में तेजी से वृद्धि करती है। यह उपभोक्ता को सीमित समयावधि में उत्पाद क्रय करने के लिए विशेष प्रस्ताव (Offer) देती है। यह प्रस्ताव कूपन, उपहार, नमूने, मूल्य कटौती आदि के रूप में हो सकते हैं। विक्रय संवर्धन विज्ञापन तथा व्यक्तिगत विक्रय के मध्य सेतु का काम करता है। विक्रय संवर्धन के द्वारा उपभोक्ताओं को अपने उत्पादों के प्रति वफादार बनाया जा सकता है।
3. **व्यापारिक मेले एवं प्रदर्शनियां** (Trade fairs and exhibitions) – व्यापारिक मेले तथा प्रदर्शनियां वह स्थान होते हैं जहां उत्पादक अपने उत्पादों का प्रदर्शन कर उपभोक्ताओं को उनका क्रय करने के लिए प्रेरित करता है। व्यवसाय बढ़ाने में यह काफी सहायक सिद्ध हो रहे हैं।
4. **जन सम्पर्क** (Public relations) – इसका उद्देश्य उन सभी व्यक्तियों से अच्छे सम्बन्ध स्थापित करना है जो फर्म की क्रियाओं से प्रभावित होते हैं, जैसे उपभोक्ता, विनियोजक, अंशधारक, आपूर्तिकर्ता, वित्तीय संस्थाएं, सरकारी विभाग, प्रतियोगी फर्में, मध्यस्थ तथा साधारण जनता। वर्तमान समय में जनसम्पर्क इतना अधिक महत्वपूर्ण होता जा रहा है कि इसे कुछ विपणनकर्ता 'Fifth P' मानने लगे हैं।
5. **विज्ञापन** (Advertising) – वर्तमान युग विज्ञापन का युग है। प्रत्येक उत्पादक अपने उत्पाद को बेचने के लिए विज्ञापन का सहारा लेता है। विज्ञापन से अभिप्राय उपभोक्ताओं को अधिक से अधिक जानकारी देने से है। विज्ञापन के लिए समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, रेडियो, टेलीविजन आदि माध्यमों का प्रयोग किया जाता है।

संवर्धन मिश्रण के अन्य तत्वों की व्याख्या 'संवर्धन मिश्रण' के अध्याय में की गई है।

स्थान मिश्रण (Place Mix)

इसमें उचित उत्पाद को उचित बाजार में प्रस्तुत करने की समस्या को शामिल किया जाता है। इसमें स्थान, समय तथा अधिकार मूलक उपयोगिता का सृजन होता है।

टिप्पणी

इसके अन्तर्गत संग्रहण, भण्डारण, परिवहन, वितरण माध्यम तथा भौतिक वितरण से सम्बन्धित क्रियाओं को शामिल किया जाता है। स्थान मिश्रण के कुछ मुख्य तत्वों की व्याख्या नीचे की गई है–

1. **परिवहन** (Transportation) – यह उत्पादित माल को उत्पादन के स्थान से उपभोग के स्थान तक पहुंचाने में सहायता करता है। परिवहन के अनेक साधन है, जैसे– सड़क यातायात, रेल यातायात, जल यातायात, वायु यातायात तथा पाईपलाइन। मितव्ययी, कुशल एवं भरोसे के परिवहन साधन का चुनाव उत्पाद की प्रकृति, दूरी, परिवहन लागत, भण्डारण सुविधा तथा ग्राहक की आवश्यकतानुसार करना चाहिए।

2. **भण्डारण** (Warehousing) – उत्पादन तथा उपभोग के मध्य लम्बी समयावधि होती है, अतः उत्पादित माल के सुरक्षित भण्डारण की आवश्यकता होती है। भण्डारण के द्वारा समय मूलक उपयोगिता का सृजन किया जाता है। आजकल भण्डार गृहों में प्रमाणीकरण, श्रेणीकरण तथा पैकेजिंग की सुविधा भी प्राप्त होने लगी है जिससे उत्पाद के मूल्य में वृद्धि संभव हो जाती है। अनेक प्रकार की भण्डारण सुविधाएं उपलब्ध हैं, जैसे– निजी भण्डार, बन्धक भण्डार, सरकारी भण्डार, शीत भण्डार इत्यादि। उत्पादन एवं विक्रय की स्थिति के अनुसार उचित भण्डारण नीति बनानी चाहिए।

3. **स्टाक का स्तर** (Inventory level) – स्टाक की उचित मात्रा भी व्यवसाय की सफलता का आधार होती है। स्टाक की उचित मात्रा का निर्धारण पूर्व तथा वर्तमान विक्रय की मात्रा, प्रतिस्पर्धा का स्तर तथा आर्थिक स्थितियों के आधार पर किया जाता है। स्टाक के द्वारा मांग को कम से कम समय में पूरा किया जा सकता है परन्तु बहुत अधिक स्टाक व्यवसाय की प्रगति के लिए अच्छा नहीं होता।

4. **वितरण माध्यम** (Distribution channel)– विपणन मिश्रण में वितरण माध्यम एक महत्वपूर्ण तत्व है। बिना उचित वितरण व्यवस्था के विक्रय सम्भव नहीं होता। मध्यस्थों के द्वारा उत्पादित माल को उत्पादन के स्थान से उपभोग के स्थान तक पहुंचाया जाता है। इससे अधिकार मूलक उपयोगिता का सृजन होता है। व्यवहार में अनेक प्रकार के मध्यस्थों का प्रयोग किया जाता है जिनमें दो प्रमुख हैं– थोक विक्रेता तथा फुटकर विक्रेता। मध्यस्थ उत्पाद को उचित स्थान, उचित समय तथा उचित मात्रा में उपलब्ध कराते हैं।

5. **भौतिक वितरण** (Physical distribution)– भौतिक वितरण का भी विपणन मिश्रण में एक महत्वपूर्ण स्थान है। बड़े पैमाने के उद्योगों में तो भौतिक वितरण का महत्व सबसे अधिक होता है। भौतिक वितरण के अन्तर्गत आन्तरिक परिवहन, सामग्री रखना एवं पहुंचाना, स्टाक प्रबन्ध, फैक्टरी में भण्डारण, पैकिंग, माल की आपूर्ति के लिए आदेशों की प्राप्ति एवं निपटारा, माल को भेजना, वितरण योजना एवं अभिलेखा आदि क्रियाओं को शामिल किया जाता है।

वितरण मिश्रण के अन्य तत्वों की व्याख्या 'वितरण माध्यम' के अध्याय में की गई हैं।

विपणन मिश्रण का निर्धारण (Determining the Marketing Mix)

टिप्पणी

वर्तमान समय में विपणनकर्ता उपभोक्ताओं को आकर्षित करने के लिए, प्रतियोगिता का सामना करने के लिए तथा उत्पाद बाजार को जीतने के लिए विपणन मिश्रण को एक उपकरण/हथियार के रूप में प्रयोग करते हैं। विपणन मिश्रण निर्धारित करने का एकमात्र उद्देश्य उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को प्रभावषाली तथा अधिक कुशल तरीके से संतुष्ट करना है। उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं में परिवर्तन होते रहते हैं इसलिए विपणन मिश्रण में परिवर्तन होना स्वाभाविक है।

आदर्श विपणन मिश्रण निर्धारित करना कोई आसान कार्य नहीं है। इसके लिए बहुत अधिक सूचनायें कल्पनाशक्ति तथा निर्णय शक्ति की आवश्यकता होती है। विपणन प्रबन्धक आदर्श विपणन मिश्रण निर्धारित करने के लिए सर्वप्रथम लक्षित उपभोक्ताओं की पहचान करता है उनकी असंतुष्ट आवश्यकताओं का पता लगता है उसे संतुष्ट करने के लिए उत्पाद अथवा सेवाएं तैयार करता है और उनका विपणन करता है। विपणन मिश्रण निर्धारित करना कोई एक बार का काम नहीं है यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। क्योंकि विपणन मिश्रण एक गतिशील धारणा है। उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं, इच्छाओं, प्राथमिकताओं तथा विपणन वातावरण के घटकों में परिवर्तन होने पर विपणन मिश्रण को भी परिवर्तित करना पड़ता है। इसलिए सफल विपणन के लिए विपणन मिश्रण का निरन्तर अध्ययन एवं निर्धारण आवश्यक हो जाता है।

विपणन मिश्रण को प्रभावित करने वाले तत्व
(Factors affecting the Marketing Mix)

एक बार निर्धारित विपणन मिश्रण हमेशा के लिए निर्धारित नहीं होता। विपणन मिश्रण परिवर्तनशील प्रकृति का है। विपणन वातावरण में परिवर्तन होने पर विपणन मिश्रण में भी परिवर्तन करना पड़ता है। विपणन मिश्रण विपणन वातावरण का नियन्त्रण योग्य (Controller) भाग है। आजकल व्यावसायिक जगत में दिन–प्रतिदिन परिवर्तन होते रहते हैं अतः समय–समय पर विपणन मिश्रण में परिवर्तन कर इसे वर्तमान वातावरण के अनुकूल रखना चाहिए।

विपणन मिश्रण को अनेक तत्व प्रभावित करते हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए इन्हें दो भागों में विभाजित किया गया है–

(i) अनियन्त्रित तत्व (Uncontrollable Factors)

(ii) नियन्त्रित तत्व (Controllable Factors)

विपणन मिश्रण को प्रभावित करने वाले अनियन्त्रित तत्व (Uncontrollable Factors affecting Marketing Mix)

विपणन मिश्रण को प्रभावित करने वाले अनियन्त्रित तत्व प्रायः बाहरी वातावरण अर्थात बाजार से सम्बन्धित होते हैं इसलिये इन्हें 'बाजार तत्व' (Market Factors) भी कहते हैं। यह विपणन प्रबन्धक के नियन्त्रण से बाहर होते हैं, परन्तु कम्पनी की विपणन क्रियाओं को प्रभावित करते हैं।

टिप्पणी

विपणन मिश्रण को प्रभावित करने वाले कुछ मुख्य अनियन्त्रित तत्व निम्नलिखित हैं–

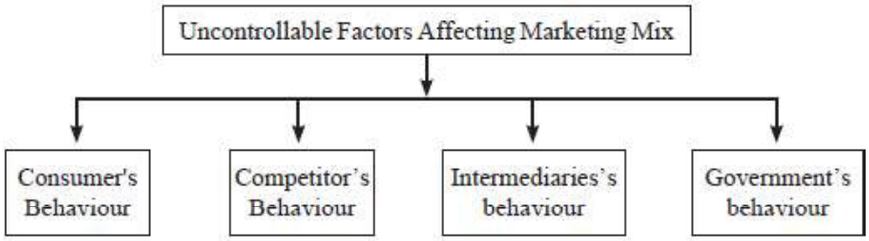

1. **उपभोक्ता व्यवहार** (Consumer's behaviour) – यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि प्रत्येक उत्पाद की मांग पर उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं, इच्छाओं तथा प्राथमिकताओं का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। जैसे–जैसे उपभोक्ताओं का जीवन स्तर परिवर्तित होता है उत्पाद की मांग भी उसी के अनुरूप परिवर्तित होती रहती है। आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, तकनीकी किसी भी प्रकार के वातावरण में परिवर्तन होने पर उपभोक्ता के क्रय व्यवहार में परिवर्तन हो जाता है। इसके अलावा आय, शिक्षा, फैशन, सामाजिक स्थिति आदि में परिवर्तन होने पर भी उपभोक्ता व्यवहार परिवर्तित होता है अतः विपणन मिश्रण में परिवर्तन करना अनिवार्य हो जाता है।

2. **प्रतियोगी का व्यवहार** (Competitor's behaviour) – बाजार प्रतियोगिता पर विपणनकर्ता का नियन्त्रण नहीं होता परन्तु प्रतियोगिता की स्थिति का उत्पाद की मांग पर गहरा प्रभाव पड़ता है। अतः विपणन मिश्रण निर्धारित करते समय विपणनकर्ता को निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए – (i) प्रतियोगिता का आधार, (ii) प्रतियोगियों की संख्या, (iii) प्रतियोगियों की विपणन नीतियां, (iv) प्रतियोगी उत्पादों की क्वालिटी तथा अन्य विशेशताएं, (v) प्रतियोगी फर्मों का उपभोक्ताओं के प्रति दृष्टिकोण आदि। विपणन मिश्रण के निर्धारण के समय इन सभी तत्वों पर भली–भांति विचार करना चाहिए।

3. **मध्यस्थों का व्यवहार** (Intermediaries's behaviour) – वितरण माध्यम विपणन मिश्रण का महत्वपूर्ण अंग होते हैं, जिसके द्वारा उत्पादक अपने उत्पादों को अन्तिम उपभोक्ता तक पहुंचाता है। अतः विपणन मिश्रण निर्धारण के लिए विपणन प्रबंधक को अपनी वितरण व्यवस्था का स्वरूप, मध्यस्थों का स्वभाव तथा व्यवहार, उनका उत्पाद एवं उत्पादक के प्रति दृष्टिकोण, वितरण माध्यम की लागत, मध्यस्थों की उपलब्धता आदि अनेक बातों पर विचार कर लेना चाहिए। यदि किसी उत्पाद के लिए किसी विशेश समय पर वितरण व्यवस्था बड़ी कुशल नहीं है तो विपणनकर्ता को दूसरे विपणन माध्यम का प्रयोग करना चाहिए। इससे विपणन मिश्रण प्रभावित होगा।

4. **सरकारी व्यवहार** (Government's behaviour) – आज प्रत्येक देश की सरकार प्रत्यक्ष रूप में उत्पादों एवं सेवाओं की उत्पादन तथा वितरण क्रियाओं में भाग लेती है अथवा इन गतिविधियों का नियमन एवं नियन्त्रण करती है। सरकार उत्पादों, मूल्यों, प्रतियोगी व्यवहारों, विज्ञापनों, पैकेजिंग आदि के सम्बन्ध में अनेक नियम तथा अधिनियम बनाती है। इन नियमों में थोड़ा सा भी परिवर्तन विपणनकर्ता को विपणन मिश्रण में परिवर्तन करने के लिए विवश

करता है। इसलिए विपणन मिश्रण निर्धारण के समय सरकारी हस्तक्षेप का ध्यान रखना आवश्यक हो गया है।

टिप्पणी

5. **औद्योगिक प्रगति** (Industrial Development) – वर्तमान युग औद्योगिक प्रगति का युग है। औद्योगिक अनुसंधान के कारण नये प्रकार के कच्चे माल, नई उत्पादन तकनीकें, नई मशीनें तथा नये तरह के उत्पाद बाजार में आ रहे हैं। यह परिवर्तन उत्पादों को अधिक आकर्षक, कार्यकुशल तथा ऊंचे जीवनस्तर के सूचक बनाते हैं।

6. **अन्य तथ्य** (Other Factors) – उपरोक्त तत्वों के अलावा कुछ अन्य कारण भी होते हैं जो कम्पनी के विपणन मिश्रण को प्रभावित करते हैं। जैसे–

   (i) मौसम में परिवर्तन होना।

   (ii) फैशन में परिवर्तन होना।

   (iii) समाजिक वातावरण में परिवर्तन होना।

   (iv) आर्थिक वातावरण में परिवर्तन होना।

   (v) सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन होना।

   (vi) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार गठबन्धनों में परिवर्तन होना।

उपरोक्त तत्वों में परिवर्तन होते ही विपणन प्रबन्धक को अपने विपणन मिश्रण में आवश्यक परिवर्तन कर लेने चाहिए।

विपणन मिश्रण को प्रभावित करने वाले नियन्त्रित तत्व
(Controllable factors affecting Marketing Mix)

विपणन मिश्रण को प्रभावित करने वाले नियन्त्रित तत्व वह होते हैं जो विपणन प्रबन्धक के नियन्त्रण में होते हैं। यह तत्व फर्म की विपणन क्रियाओं से सम्बन्धित होते हैं इसलिए इन्हें 'विपणन तत्व' (Marketing Factors) भी कहते हैं। इस प्रकार के कुछ मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं–

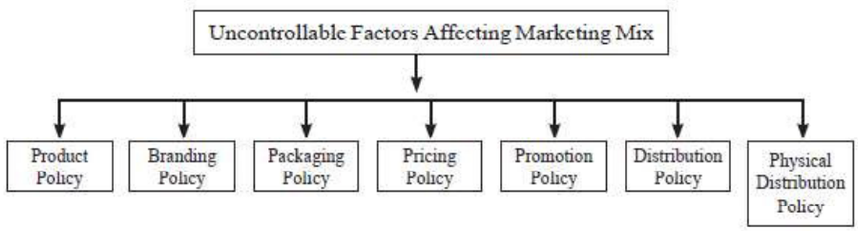

1. **उत्पाद नीति** (Product Policy) – उपभोक्ता को उत्पाद की किस्म, डिजाइन, आकार, रंग, कार्यशैली आदि में सुधार करके सन्तुष्ट किया जा सकता है। उत्पाद नीति में वर्तमान उत्पादों में संशोधन, नये उत्पादों का विकास तथा कम लाभदायक उत्पादन का समापन शामिल होता है। इन सभी कार्यों से वर्तमान विपणन मिश्रण पर प्रभाव पड़ता है।

2. **ब्रान्डिंग नीति** (Branding Policy) – ब्रान्ड नीति के अन्तर्गत ब्रान्ड नाम, व्यापार चिन्ह, लेबल तथा ऐसे ही अन्य तथ्यों का निर्धारण किया जाता है। ब्रान्ड उपभोक्ता के मस्तिष्क में उत्पाद की एक विशेष छवि उत्पन्न करता है।

टिप्पणी

प्रतियोगिता, मितव्ययता तथा कम्पनी के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए जब ब्रान्ड नीति में परिवर्तन किया जाता है तो विपणन मिश्रण में परिवर्तन आ जाता है।

3. **पैकेजिंग नीति** (Packaging Policy) – विपणन प्रक्रिया में पैकेजिंग की भी महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है। वर्तमान समय में प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए पैकेजिंग को एक हथियार के रूप में प्रयोग किया जाता है। पैकेजिंग सामग्री तथा पैकेजिंग तकनीकों में नये–नये उत्पादों को नये रूपों में प्रस्तुत किया जा सकता है। पैकेजिंग निर्णयों में परिवर्तन होने पर भी विपणन मिश्रण में बदलाव आ जाता है।

4. **मूल्य नीति** (Pricing Policy) – उत्पाद के मूल्य विक्रय स्तर को प्रभावित करते हैं। उपभोक्ताओं को आकर्षित करने के लिए विपणनकर्ता कई बार मूल्यों में परिवर्तन करता है। यह परिवर्तन कटौती (Discount), छूट (Rebate), मूल्य कम करना (Price-cut), अतिरिक्त लाभ (Extra profit), उधार विक्रय आदि के रूप में किया जाता है। इन निर्णयों से भी विपणन मिश्रण प्रभावित होता है।

5. **संवर्धन नीति** (Promotion Policy) – प्रत्येक फर्म विक्रय वृद्धि के लिए अनेक तरह की संवर्धन क्रियाएं करती है, जैसे – विज्ञापन, जनसम्पर्क, मुफ्त उपहार, स्क्रैच कूपन इत्यादि। इन क्रियाओं का प्रयोग उपभोक्ताओं को सूचना देने तथा प्रभावित करने के लिए किया जाता है। विज्ञापन संदेश, विज्ञापन माध्यम अथवा संवर्धन की किसी भी तकनीक को शुरू करने अथवा उसमें परिवर्तन करने से विपणन मिश्रण प्रभावित होता है।

6. **वितरण नीति** (Distribution Policy) – विपणन मिश्रण में वितरण वाहिका (Channel) का चयन एक महत्वपूर्ण कार्य है, जबकि उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जा रहा हो। मध्यस्थों की सहायता के बिना विक्रय करना बड़ा कठिन हो जाता है। क्योंकि उत्पादकों और उपभोक्ताओं के मध्य हजारों मील की दूरी होती है। अतः मध्यस्थों का सहयोग प्राप्त करने के लिए विभिन्न उपायों की खोज इसी के अन्तर्गत आती है। यह भी विपणन मिश्रण को प्रभावित करता है।

7. **भौतिक वितरण नीति** (Physical Distribution Policy) – विपणन के क्षेत्र में केवल उत्पाद की मांग उत्पन्न करना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उत्पाद का भौतिक वितरण भी महत्वपूर्ण है। भौतिक वितरण की सफलता के बिना उपभोक्ता की मांग केवल मांग बन कर रह जाती है। भौतिक वितरण के अन्तर्गत आन्तरिक परिवहन, संग्रहण, भण्डारण, स्टाक प्रबन्ध, आदेशों की प्राप्ति एवं पूर्ति आदि को शामिल किया जाता है। भौतिक वितरण को शीघ्रगामी, मितव्ययी तथा आधुनिकतम बनाने के लिए अनेक प्रकार के निर्णय लिये जाते हैं जिससे विपणन मिश्रण प्रभावित होता है।

8. **विपणन अनुसंधान नीति** (Marketing Research Policy) – विपणन अनुसंधान को सफल विपणन की आत्मा माना जाता है। विपणन अनुसन्धान के द्वारा विपणन प्रबन्धक अनेक ऐसी सूचनायें प्राप्त कर सकता है जिनके अनुसार काम करने से फर्म को लाभ हो सकता है। इससे भी विपणन मिश्रण प्रभावित होता है।

टिप्पणी

उपरोक्त तथ्यों के अध्ययन से स्पष्ट है कि विपणन तत्वों का उचित अध्ययन किये बिना प्रभावी विपणन मिश्रण तैयार करना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव प्रतीत होता है। विपणन मिश्रण के किस तत्व को किस अनुपात में मिलाया जाये इसके लिए सुनिष्चित एवं विश्वसनीय सिद्धान्त नहीं है। परन्तु विपणन प्रबन्धक का अनुभव, समझदारी और दूरदर्शिता इस असम्भव कार्य को सम्भव बना सकती है। अन्त में यह कहा जा सकता है कि सफल विपणन के लिए विपणन प्रबन्धक को अपने विपणन मिश्रण में आवश्यक परिवर्तन कर इसे विपणन वातावरण के अनुकूल बनाये रखना चाहिए।

व्यवसाय एवं विकासशील अर्थव्यवस्था में विपणन का महत्व

प्रसिद्ध प्रबंधशास्त्री पीटर एफ. ड्रकर के अनुसार, ''विपणन एक विशिष्ट व्यावसायिक कार्य है।'' एक अनुमान के अनुसार रोजगार में लगे लोगों का एक तिहाई हिस्सा विपणन कार्यों में लगा हुआ है तथा कुल राष्ट्रीय आय का एक चौथाई हिस्सा विपणन कार्यों से प्राप्त होता है। इस तथ्य से व्यावसायिक कार्य के रूप में विपणन के महत्व का अनुमान लगाया जा सकता है। व्यावसायिक कार्य के रूप में विपणन के निम्नलिखित महत्व हैं–

1. **व्यावसायिक कार्यों का आधार**–विपणन सभी व्यावसायिक क्रियाओं का आधार है। व्यवसाय का मुख्य प्रबंधक कोई योजना नहीं बना सकता, उत्पादन प्रबंधक कुछ भी उत्पादित नहीं कर सकता, क्रय अधिकारी कुछ भी क्रय नहीं कर सकता, वित्त नियंत्रक बजट नहीं बना सकता जब तक कि विपणन प्रबंधक कोई निर्णय नहीं लेता। इस तथ्य से विपणन का व्यावसायिक कार्यों में महत्व पता चलता है।
2. **उपयोगिता का सृजन**–उपभोक्ताओं के लाभ के लिए विपणन क्रियाएं जैसे उत्पादन, भंडारण, परिवहन, क्रय–विक्रय आदि रूप, स्थान, समय तथा अधिकार मूलक उपयोगिताओं का सृजन करती हैं। इससे आधारभूत पदार्थों की उपयोगिता तथा मूल्य दोनों में वृद्धि होती है।
3. **आर्थिक क्रियाओं का आधार**–आर्थिक क्रियाएं जैसे उत्पादन, उपभोग, विनिमय, वितरण आदि सभी विपणन पर निर्भर करती हैं। एक कुशल विपणन प्रणाली उत्पादन के साधनों को लाभकारी कार्यों में लगाए रखती है।
4. **जन उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन**–विपणन कार्यक्रम के अंतर्गत वर्तमान तथा भावी उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं का पता लगाया जाता है तथा अनेक ऐसे जन उपयोगी कार्य एवं सुविधाएं हैं जो उपभोक्ताओं के कल्याण में वृद्धि कर सकती हैं, उनका उत्पादन एवं वितरण किया जाता है।

ऊपर वर्णित तथ्यों से स्पष्ट होता है कि व्यावसायिक कार्य के रूप में विपणन का विशेष महत्व एवं योगदान है। आज करोड़ों लोगों के रोजगार का एकमात्र कारण विपणन है। विपणन के कारण ही नये–नये उत्पाद बन रहे हैं। नये कारखाने खुल रहे हैं, नये बाजारों की स्थापना हो रही है और प्रत्येक व्यक्ति व्यावसायिक कार्यों में भाग लेकर कुछ न कुछ कमा रहा है। आज व्यवसाय प्रबंधन विपणन प्रबंधन बन गया है। यही इसका महत्व है।

टिप्पणी

विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में विपणन का महत्व

विपणन और अर्थव्यवस्थाओं के आर्थिक विकास में सीधा संबंध माना गया है। यही कारण है कि विकसित, अल्पविकसित तथा विकासशील प्रत्येक प्रकार की अर्थव्यवस्था में विपणन की सुदृढ़ता, तीव्र आर्थिक विकास के लिए अनिवार्य समझी जाती है। भारत ग्रामों का देश है तथा यह एक कृषि प्रधान देश भी है। यहां की अधिकांश जनता अभी भी अशिक्षित है। तब यह प्रश्न उठता है कि क्या इस देश के लिए भी विपणन का कोई महत्व है? क्या भारतीय बाजारों में भी विपणन की कोई आवश्यकता है? यदि हम गंभीरतापूर्वक विचार करें तो हमें यह पता चलेगा कि भारत में भी विपणन प्रबंधन की बहुत अधिक आवश्यकता है, क्योंकि आज के तीव्र प्रतिस्पर्धा के युग में प्रत्येक व्यावसायिक प्रबंधन में विपणन प्रबंधन का महत्वपूर्ण योगदान है। यद्यपि भारत में स्वतंत्रता के पश्चात निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र में कई उद्योग खोले गए, कृषि के लिए व्यापक कार्यक्रम अपनाए गए, पूंजीगत एवं उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में विविधता आने लगी, हमारे देश के आयातों एवं निर्यातों में भारी परिवर्तन हुआ, जिसका प्रभाव वस्तु एवं सेवाओं की मांग पर पड़ा। ऊपर वर्णित परिवर्तन के कारण ही भारत में विशेशतः प्रबंधन की महत्ता में वृद्धि हुई है। भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए प्रबंधन के महत्व को निम्न दृष्टिकोणों से देखने पर स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है–

1. **ग्रामीण विपणन**–भारत की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है। परंतु अभी भी भारतीय उत्पादकों एवं विक्रेताओं का एक प्रमुख आकर्षण केंद्र शहरी उपभोक्ता है। अतः अभी भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में विपणन के विकास के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध है। यह बात सही है कि स्वतंत्रता के पश्चात हरित क्रांति, कृषि पद्धतियों में सुधार, आधुनिक उर्वरकों एवं बीजों के प्रयोग, सिंचाई सुविधाओं एवं आधुनिक उपकरणों में वृद्धि होने से विपणन का विकास हुआ है, जिसके कारण कृषकों की आय में वृद्धि हुई है, परंतु उसके व्यय करने का तरीका भी बदल गया है। अब भारतीय कृषक अपना पैसा सिर्फ रोटी–पानी में ही खर्च न करके, आरामदायक वस्तुएं जैसे–पंखे, रेडियो, घड़ियां खरीदने में भी खर्च करता है। परंतु अभी भी ग्रामीण क्षेत्र में विपणन का पर्याप्त विकास नहीं हो पाया है, इसके लिए व्यापक बाजार अध्ययन एवं विश्लेषण की आवश्कता है।
2. **निर्यात वृद्धि की दृष्टि से**–भारतीय अर्थव्यवस्था को ऋणग्रस्तता से मुक्त करने तथा आत्म–निर्भर बनाने के लिए निर्यात में वृद्धि की अत्यंत आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, हमें कुछ वस्तुओं, जिनका हमारे देश में अभाव है, तथा कुछ उच्च तकनीकी का भी आयात करना पड़ता है। अतः भुगतान संतुलन बराबर बनाए रखने के लिए भी निर्यातों में वृद्धि की आवश्यकता होती है। निर्यातों में वृद्धि करने के लिए उत्पादन में वृद्धि, किस्म में सुधार, उत्पादन लागत में कमी तथा नई–नई विपणन नीतियों का प्रयोग करने की आवश्यकता है। यद्यपि गत कुछ वर्षों में हमारी वस्तुओं की लागत अधिक है तथा नई–नई तकनीकों के प्रयोग का अभाव रहा है। अतः निर्यातों में संतोषजनक वृद्धि करने के लिए यह आवश्यक है कि विपणन के प्रबंधन की नई तकनीकों का प्रयोग किया जाए, वस्तुओं के विक्रय के लिए नये–नये बाजारों की खोज की जाए एवं वर्तमान बाजारों में निर्यात की मात्रा बढ़ाने के प्रयास किए जाएं।

ऊपर वर्णित विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारत में विपणन प्रबंधन के विकास की तीव्र आवश्यकता है।

विभिन्न प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में विपणन के महत्व की व्याख्या इस प्रकार की गई है–

टिप्पणी

1. **विकसित अर्थव्यवस्था में विपणन का महत्व**–एक विकसित अर्थव्यवस्था में विपणन की आवश्यकता सबसे अधिक होती है क्योंकि आधुनिक तकनीकों के माध्यम से बड़े पैमाने पर उत्पादन कार्य किए जाते हैं। बाजार में उत्पादों की पूर्ति मांग से अधिक होती है, स्थानापन्न उत्पादों की संख्या बहुत अधिक होती है, प्रतिस्पर्द्धा का स्तर ऊंचा होता है तथा उत्पादों के जीवन चक्रों की अवधि छोटी होती है। ऐसी स्थिति में विपणन का महत्व और भी बढ़ जाता है ताकि उपभोक्ता की रुचियों व फैशन में परिवर्तन के आधार पर उत्पादन का नियोजन किया जा सके, उत्पादन की गति को बनाए रखने के लिए नये बाजारों की खोज की जा सके तथा नवीनतम तकनीकों के प्रयोग से स्थानापन्न उत्पादों की प्रतिस्पर्द्धा का सामना किया जा सके।

   प्रायः विकसित अर्थव्यवस्थाओं में उत्पादन में कमी करना संभव नहीं होता, क्योंकि उद्योग पहले से ही नवीनतम तकनीकों का प्रयोग करते हुए न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन कर रहे होते हैं। इसलिए समस्या विक्रय की होती है। उत्पादन सुधारों, नई पैकेजिंग, आधुनिक विज्ञापनों, विक्रय संवर्धन क्रियाओं तथा विक्रय उपरांत सेवाओं द्वारा उपभोक्ताओं को आकर्षित किया जाता है। विश्व की विकसित अर्थव्यवस्थाएं जैसे अमेरिका, इंग्लैंड, जापान, जर्मनी, फ्रांस, आस्ट्रेलिया आदि इसलिए विकसित हैं, क्योंकि वहां पर विपणन पूरी तरह से विकसित रूप में है।

2. **अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में विपणन का महत्व**–अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में भी विपणन की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। ऐसी अर्थव्यवस्था का तेजी से विकास तभी संभव है, जब विपणन की आधुनिक तकनीकों को अपनाया जाए। अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में या तो प्राकृतिक साधनों की कमी पाई जाती है या फिर गरीबी के कारण इन साधनों का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता। परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था अल्पविकसित रह जाती है।

   अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में विपणन एक गुणक (Multiplier) की तरह काम करता है। विपणन के अंतर्गत उत्पादन की नई तकनीकों का प्रयोग करके, नये कारखाने लगाकर, उत्पादन के नये साधनों का प्रयोग करके, व्यापारिक गतिविधियों की संख्या में वृद्धि करके उत्पादन की मात्रा को बढ़ा कर अर्थ व्यवस्था के विकास की दर में वृद्धि की जा सकती है।

   अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में विपणन अपनी प्रारंभिक अवस्था में होता है। विपणन गतिविधियां केवल शहरों तक सीमित होती हैं जबकि देश की अधिकांश जनसंख्या गांवों में रहती है। अतः ग्रामीण विपणन (Rural Marketing) का प्रयोग करके हम अधिकांश जनसंख्या के जीवन स्तर को ऊंचा उठा सकते हैं। इस व्याख्या से स्पष्ट होता है कि अल्पविकसित देशों में विपणन का महत्व सबसे अधिक है। आवश्यकता है विपणन कार्यों को प्रोत्साहित करने की।

टिप्पणी

3. **विकासशील अर्थव्यवस्था में विपणन का महत्व**–विकासशील अर्थव्यवस्था में विपणन एक प्रभावी उपकरण माना जाता है। ऐसी अर्थव्यवस्था में विपणन के महत्व को प्रसिद्ध प्रबंधनशास्त्री पीटर एफ. ड्रकर ने निम्न्र प्रकार से व्यक्त किया है–

   1. विपणन के द्वारा हम अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों जैसे कृषि, उद्योग, सेवाओं आदि को एकजुट करके आर्थिक विकास की दर को बढ़ा सकते हैं।
   2. विपणन के द्वारा हम उत्पादन के साधनों, उत्पादन क्षमता तथा राष्ट्रीय संपत्ति का पूरी तरह से प्रयोग कर सकते हैं।
   3. विपणन अज्ञात (unknown) तथा बेकार पड़े (untaped) आर्थिक साधनों के उपयोग को भी संभव बनाता है।
   4. विपणन के विकास के द्वारा हम उद्यमशीलता तथा प्रबंधकीय क्षमता का विकास कर सकते हैं।

उन देशों में, जो विकास की ओर बढ़ रहे हैं, जहां उद्योगीकरण हो रहा है, जहां नगरीकरण (Urbanisation) का काम चल रहा है, विपणन की नई–नई समस्याएं सामने आती रहती हैं, जिनका समाधान करने के लिए विपणन का महत्व दिनानुदिन बढ़ रहा है।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि किसी विकासशील अर्थव्यवस्था में विपणन का अत्यधिक महत्व है। यदि कोई देश अपनी जनता को उचित गुण की वस्तु उपलब्ध कराना चाहता है, तो वह विभिन्न कानूनों का सहारा लेकर ऐसी व्यवस्था करता है। उत्पादन क्षेत्र की गति को कायम रखने के लिए अथवा उसमें वृद्धि करने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि उत्पादित माल का शीघ्र विक्रय हो। इसके लिए विपणन की आधुनिक तकनीकों का सहारा लिया जाता है। विपणन ही उत्पादित माल के विक्रय का प्रबंधन करता है। इस अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में अधिक कमी करना संभव नहीं है, क्योंकि वे पहले से ही न्यूनतम होती हैं। ऐसी स्थिति में गैर कीमत प्रतिस्पर्धा के आधार पर वस्तुओं और सेवाओं की बिक्री की जा सकती है। वस्तु में सुधार (Product Modification), उधार विक्रय नीति, अत्यधिक विज्ञापन की सहायता से ही अर्थव्यवस्था में बिक्री संभव होती है। जापान, स्विटजरलैंड़ आदि देशों में उत्पादन सुधार दर इतनी अधिक है कि घड़ी और इलेक्ट्रिक सामान आदि के डिजाइन, मॉडल आदि में प्रतिमास परिवर्तन होते रहते हैं जिसमें विपणन का महत्वपूर्ण योगदान है।

विपणन का महत्व–देश, फर्म और समाज से संबंधित

पुराने समय के मनुष्य की आवश्यकताएं सीमित थीं और वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं कर लेता था। लेकिन आज आवश्यकताएं अनंत हैं और इसीलिए उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है, जो कि व्यक्तिगत या पारिवारिक उपभोग के लिए न होकर राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय उपभोग के लिए होता है। इसी के परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार के मध्यस्थों, परिवहन साधनों, गोदाम सुविधाओं, विक्रयकला, विज्ञापन एवं विक्रय संवर्धन आदि पर ध्यान दिया जाने लगा है। प्रत्येक उत्पादक के लिए विपणन का विशेष महत्व है। विपणन केवल उत्पादक या व्यावसायिक उपक्रम के लिए महत्वपूर्ण नहीं है,

विपणन के महत्व का विवेचन निम्न शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है –

टिप्पणी

1. **समाज के लिए महत्व**–समाज के लिए विपणन का काफी महत्व है, क्योंकि विपणन के द्वारा समाज के विभिन्न वर्गों को वस्तुएं एवं सेवाएं प्रदान की जाती हैं। समाज के लिए विपणन की महत्ता निम्न कारणों से है–

   (क) **रोजगार की सुविधा**–विपणन के विकास से रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है। विपणन कार्य में विपणन शोध विभाग, उत्पादित वस्तुओं को ग्राहक तक पहुंचाने के लिए थोक व फुटकर संस्थाओं, परिवहन, गोदाम, विज्ञापन करने वाली संस्थाओं की सेवाओं का उपयोग किया जाता है। इन संस्थाओं में समाज के अनेक वर्गों को रोजगार मिलता है। एक अनुमान के अनुसार, विकसित राष्ट्रों (अमेरिका, जापान, जर्मनी आदि) में कुल श्रमिक शक्ति का लगभग 40 प्रतिशत भाग विपणन कार्यों में लगा हुआ है। भारत जैसे अर्द्ध विकसित देश में बेरोजगारी की समस्या बड़े पैमाने पर है, जिसका समाधान करने में विपणन सहायक सिद्ध हो सकता है।

   (ख) **रहन–सहन का उच्च स्तर प्रदान करना**–विपणन जनसाधारण के लिए नई–नई वस्तुएं उपलब्ध कर उनके रहन–सहन के स्तर में वृद्धि करता है। इसके लिए जनसाधारण को नई–नई वस्तुओं की जानकारी देने के लिए विज्ञापन एवं विक्रय संवर्धन का सहारा लिया जाता है तथा उन्हें बताया जाता है कि वस्तु उनके लिए किस प्रकार आवश्यक एवं लाभदायक है। जब अधिकाधिक व्यक्तियों द्वारा वह वस्तु खरीदी जाती है, तो उनके रहन–सहन में वृद्धि होती है।

   (ग) **राष्ट्रीय आय में वृद्धि**–जब समाज में विपणन क्रियाओं द्वारा विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं की मांग बढ़ती है और उनके परिणामस्वरूप विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं का राष्ट्र में अधिक उत्पादन होने लगता है तो इस प्रकार पहले से अधिक उत्पादन होने पर राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है, जिसका लाभ समाज के विभिन्न वर्गों को होता है।

   (घ) **उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को पूरा करना**–विपणन का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं को संतुष्टि प्रदान करना है। विपणन व्यवस्था की सुदृढ़ता से उपभोक्ताओं की संतुष्टि के आधार को भी दृढ़ता मिलती है। कोई भी उपभोक्ता वस्तु इसलिए नहीं खरीदता कि वस्तु का मूल्य कम है, उपभोक्ता की क्रय–शक्ति अधिक है, वस्तु बहुत गुणवान है, सुंदर है अथवा दूसरों के पास इसी प्रकार की वस्तु है, वरन् क्रय का मुख्य उद्देश्य उसकी आवश्यकता की पूर्ति होता है। यदि किसी वस्तु के क्रय से उपभोक्ता की आवश्यकता पूरी नहीं हो, तो फिर वह उस वस्तु का क्रय कभी नहीं करेगा। अतः विपणन का मुख्य उद्देश्य भी उपभोक्ताओं की संतुष्टि करना होता है और यही कार्य विपणन कर भी रहा है।

   (ङ) **व्यापारिक मंदी से सुरक्षा**–विपणन अर्थव्यवस्था को मंदी से बचाता है। यदि वस्तुओं का विपणन न हो, या कम मात्रा में हो, या ग्राहकों द्वारा उसको कम न किया जाए तो देश में मंदी–काल आ जाएगा जिसके परिणाम दूरगामी होंगे। कारखानों में स्टॉक एकत्रित हो जाएगा, मूल्य गिर जाएंगे, बेरोजगारी बढ़ जाएगी एवं सरकार की आय कम हो जाएगी। इस

टिप्पणी

प्रकार विपणन ग्राहकों की आवश्यकताओं के अनुरूप वस्तु का उत्पादन कर एक देश की अर्थव्यवस्था को इन परिणामों से बचाता है।

(च) **उपभोक्ताओं को सुरक्षा**–यदि उपभोक्ता विवेकशील है, विपणन संबंधी ज्ञान रखता है, तो वह शोषण का कभी–भी शिकार नहीं हो सकता। उपभोक्ता की संगठन की भावना के कारण सहकारी उपभोक्ता भंडारों का विकास तथा अनुचित विपणन व्यवहारों के प्रति विरोध उपभोक्ता के लिए विपणन ज्ञान के महत्व का ही तो प्रदर्शन करते हैं।

2. **फर्म के लिए विपणन का महत्व**–फर्म के लिए भी विपणन का बहुत अधिक महत्व है। संक्षेप में विपणन निम्न कारणों से फर्म के लिए महत्वपूर्ण है–

(क) **लाभों में वृद्धि**–प्रत्येक फर्म का प्रमुख उद्देश्य लाभार्जन करना होता है। विपणन फर्म को अधिक से अधिक लाभदायक व्यापार करने में सहायता प्रदान करता है। विपणन एक ओर विभिन्न विक्रय लागतों में कमी करके वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में कमी करता है तो दूसरी ओर आधुनिक तरीकों के द्वारा वस्तुओं और सेवाओं की मांग में वृद्धि करता है। परिणामस्वरूप कीमतों में कमी और मांग में वृद्धि होने के कारण कुल विक्रय स्तर में वृद्धि होती है, जिससे फर्म की कुल आय में वृद्धि होती है।

(ख) **वितरण में सहायक**–विपणन फर्म और समाज के मध्य सूचनाओं का आदान–प्रदान करता है। विपणन के द्वारा समय–समय पर समाज में होने वाले परिवर्तनों की सूचना फर्म के उच्च प्रबंधकों को प्रदान की जाती है। इसके साथ ही विपणन ग्राहकों को वस्तु की विशेषताओं, कीमतों, वैकल्पिक प्रयोग आदि के विषय में सूचनाएं देकर वस्तुएं प्रदान करता है।

(ग) **नियोजन एवं निर्णय में सहायक**–एक निर्माता के लिए विपणन का अध्ययन व्यवसाय संबंधी नियोजन एवं निर्णय में सहायक होता है तथा निर्माता द्वारा निर्णय लिया जाता है कि वह किस वस्तु का किस मात्रा में उत्पादन करेगा। इसी बात को इस प्रकार भी कह सकते हैं कि उपभोक्ताओं की रुचियों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप ही व्यवसाय में निर्णय लिए जाते हैं।

(घ) **आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन**–पुरातन उत्पादन विधियां केवल ऐतिहासिक सत्य बनकर ही रह गईं, इसका मुख्य कारण दिन प्रतिदिन की वैज्ञानिक प्रगति ही है। विपणन उपभोक्ताओं की भावी मांग की किस्म व संख्या को निर्धारित करता है और उसी के अनुरूप उत्पादन की सलाह देता है, परिणामस्वरूप बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन मिलता है और उद्योग भावी मांग की पूर्ति करने में सक्षम होता है।

(ड.) **संप्रेषण में सहायक**–विपणन के माध्यम से औद्योगिक इकाई उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं का पूर्वानुमान लगाती है। दूसरी ओर उपभोक्ताओं को विपणन के माध्यम से ही नये–नये उत्पादों, उनके गुणों व मूल्यों का ज्ञान होता है अतः एक श्रेष्ठ विपणन व्यवस्था न केवल औद्योगिक इकाई व समाज के मध्य संदेश–वहन का साधन बनती है वरन् विज्ञापन आदि माध्यमों से उपभोक्ताओं को शिक्षित भी करती है।

3. **राष्ट्र के लिए महत्व**–समाज और राष्ट्र का संबंध महत्वपूर्ण होता है। जिस क्रिया से समाज को लाभ होता है, वही क्रिया राष्ट्र के लिए भी लाभदायक होती है। संक्षेप में, विपणन अग्रांकित कारणों से राष्ट्र के लिए महत्वपूर्ण है–

टिप्पणी

(क) **देश के साधनों का सर्वोत्तम उपयोग**–देश के साधनों का प्रभावी तथा उत्तम उपयोग विपणन द्वारा ही संभव है, क्योंकि समाज तथा भावी पीढ़ी का ध्यान रखकर साधनों का उपयोग उत्तम माना जाता है और यह कार्य विपणन द्वारा ही किया जा सकता है।

(ख) **औद्योगिक उन्नति**–समाजवादी अर्थ–व्यवस्था में यह आवश्यक होता है कि उद्योगों का समुचित विकास हो। वस्तुएं ऐसे स्थान पर उपलब्ध कराई जाएं, जहां उनकी आवश्यकता हो। विपणन का उद्देश्य एकमात्र लाभार्जन न होकर उपभोक्ता संतुष्टि भी होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उद्योगों की स्थापना ऐसे स्थान पर की जाती है, जहां उपभोक्ता को अधिकतम संतुष्टि प्राप्त होती है। उद्योगों का विकेंद्रीकरण इस बात का प्रमाण है। अतः औद्योगिक जगत् का संतुलित विकास विपणन के द्वारा ही संभव है।

(ग) **राष्ट्रीय आय में वृद्धि**–विपणन का उद्देश्य वस्तुओं का निर्माण और सेवाएं प्रदान करना होता है, जिससे राष्ट्रीय आय में पर्याप्त वृद्धि होती है। जब अधिक वस्तुओं का निर्माण हो और ऐसी वस्तुओं का निर्माण हो, जिन्हें उपभोक्ता चाहते हों, जिससे विक्रय अधिक हो, तो इससे राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी। वस्तुओं के मूल्यों में कमी से उपभोक्ताओं की क्रय–शक्ति की बचत होगी, जिससे वस्तु की मांग बढ़ेगी, उत्पादन क्रियाओं को प्रोत्साहन मिलेगा, जिससे राष्ट्रीय आय बढ़ेगी और देश का आर्थिक स्तर उन्नतिशील होगा।

विपणन की विशेषताएं (Characteristics or Features of Marketing)

(i) यह एक आर्थिक कार्य न होकर प्रबंधकीय कार्य है।

(ii) विपणन क्रिया का मूल उद्देश्य क्रेता की आवश्यकता को पूरा करना है।

(iii) यह गत्यात्मक व्यावसायिक प्रक्रिया है।

(iv) विपणन का दीर्घकालीन उद्देश्य लाभकर मूल्य पर वस्तुओं का विक्रय करना है।

2.6.2 उपभोक्ता

उपभोक्ता व्यवहार का अर्थ व्यवहार विशिष्ट आचरण अथवा तरीके का प्रतीक है। इस विश्व में प्रत्येक व्यक्ति उपभोक्ता है। प्रत्येक व्यक्ति जीवन भर अनेकानेक उत्पादों एवं सेवाओं का क्रय और उपभोग करता है। उत्पादों एवं सेवाओं के क्रय के समय जो आचरण उपभोक्ताओं द्वारा किया जाता है अथवा किया जा सकता है उसे उपभोक्ता व्यवहार (Consumer Behaviour) कहते हैं। विपणन विद्वानों का यह कहना है कि ''उपभोक्ता व्यवहार वह प्रक्रिया है, जो किसी उत्पाद अथवा ब्रांड के क्रय संबंधी निर्णयों का संकेत देती है। अर्थात उपभोक्ता अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कब, (when) क्या, (What), कहां (Where), कैसे (How) तथा किससे (Which) उत्पाद एवं

सेवाएं क्रय करते हैं तथा ऐसा क्रय जिस व्यवहार का परिणाम होता है उसे 'उपभोक्ता व्यवहार' अथवा 'क्रेता व्यवहार' कहते हैं।''

टिप्पणी

विपणन की संपूर्ण प्रक्रिया उपभोक्ता के चारों ओर चक्कर लगाती है। यही कारण है कि उपभोक्ता को बादशाह की संज्ञा दी गई है। उपभोक्ता किसी वस्तु को कब, कहां, कैसे, क्यों क्रय करता है, इसका पता लगाना ही उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन करना है। उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन विपणन प्रबंधन के लिए आवश्यक हो जाता है, क्योंकि विपणन संबंधी सभी निर्णय उपभोक्ता के व्यवहार से प्रभावित होते हैं।

एक पुरानी कहावत है–''शेर से लड़ने से पहले शेर बनना सीखो।'' अर्थात विपणन का सही ज्ञान प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता व्यवहार का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक होता है। आधुनिक विपणन विचारधारा (Modern Concept) के अनुसार एक सफल विपणन प्रबंधन के लिए लक्षित बाजार के उपभोक्ताओं के व्यवहार की सही जानकारी होना आवश्यक है।

भारतीय उपभोक्ताओं का व्यवहार

भारत एक ग्रामीण अर्थव्यवस्था है। अधिकांश जनसंख्या गांवों तथा छोटे शहरों में रहती है। अधिकतर लोग अनपढ़ या कम पढ़े–लिखे हैं। गरीबी के कारण लोगों की क्रयशक्ति कम है। परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात पंचवर्षीय विकास योजनाओं के द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था अल्पविकसित से विकासशील अर्थव्यवस्था बनी है, शिक्षा का प्रसार हुआ है, बड़े नगरों की संख्या में वृद्धि हुई है। वहीं, औद्योगिक उन्नति के कारण उपभोग के स्तर में भी वृद्धि हुई है। परंतु भारत में उपभोक्ता विभिन्न धर्मों, जातियों, रीति–रिवाजों, खान–पान के तरीकों, तथा सामाजिक स्तरों से बंधे हुए हैं, उनका इसलिए भारतीय क्रय व्यवहार एक सा नहीं है। परंतु जब हम पूरे भारत के उपभोक्ताओं का अध्ययन करते हैं तो उनकी कुछ विशेषताओं का पता चलता है, जिनकी संक्षिप्त व्याख्या निम्नलिखित है–

1. **सौदेबाजी** : भारतीय उपभोक्ताओं में सौदेबाजी अर्थात मोलभाव करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। विक्रेता द्वारा बताए गए मूल्यों में कमी करके उत्पादों को क्रय करना इन्हें बहुत अच्छा लगता है। दूसरी ओर विक्रेता भी एक मूल्य नीति अपनाने की कोशिश नहीं करते, क्योंकि उन्हें लगता है कि इससे उनका विक्रय कम हो जाएगा। यही कारण है कि क्रय करते समय सौदेबाजी करने की प्रवृत्ति भारतीय उपभोक्ताओं (विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों) में अब भी पाई जाती है। परंतु जैसे–जैसे शिक्षा का विस्तार हो रहा है, बड़े–बड़े शापिंग माल खुल रहे हैं, जनसंख्या का नगरीकरण हो रहा है, भारतीय उपभोक्ताओं में सौदेबाजी की प्रवृत्ति कम हो रही है।
2. **मूल्य प्रवृत्ति** : कृषि कार्यों में लगे होने के कारण भारतीय उपभोक्ताओं की आय का स्तर नीचा होता है, इसलिए वे उत्पाद की किस्म पर ध्यान न देकर उसके मूल्य पर अधिक ध्यान देते हैं। परिणाम यह होता है कि वे अधिक मूल्य वाले अच्छे उत्पादों की उपेक्षा करते हैं और कम मूल्य वाले घटिया उत्पादों का ही क्रय कर लेते हैं। परंतु पिछले कुछ वर्षों से इस प्रवृत्ति में सुधार हुआ है। शहरों के साथ–साथ गांवों के उपभोक्ता भी अच्छे किस्म के उत्पादों का क्रय करने लगे हैं, क्योंकि उनका शहरों तक आना–जाना आसान होता जा रहा है।

टिप्पणी

3. **ब्रांड चेतना** : निरक्षरता के कारण आज भी अधिकांश ग्रामीण उपभोक्ता अच्छे ब्रांड नामों के बारे में कुछ नहीं जानते। उन्हें उत्पाद से मतलब होता है, ब्रांड नाम से नहीं, जिस उत्पाद को विक्रेता अच्छा कह दे, वे उसी का क्रय कर लेते हैं। शिक्षा स्तर में सुधार तथा संचार सुविधाओं में वृद्धि के कारण उपभोक्ताओं को ब्रांड नाम का महत्व पता चलने लगा है। अब उपभोक्ता प्रसिद्ध ब्रांड नाम के उत्पाद क्रय करना पसंद करने लगे हैं भले ही उन्हें इसके लिए कुछ अधिक मूल्य क्यों न देना पड़े।
4. **शिकायत की प्रवृत्ति** : भारतीय उपभोक्ता कम शिकायती होते हैं। भारतीयों की भगवान पर आस्था अधिक है वे यह मानते हैं कि यदि कोई उत्पादक या विक्रेता उनके साथ ठगी करेगा, तो भगवान स्वयं उसे सजा देंगे। भारतीय उपभोक्ताओं के कम पढ़े लिखे होने के कारण उनके हितों की रक्षा के लिए बनाए गए विभिन्न अधिनियमों की जानकारी भी उन्हें नहीं होती और न ही अपने अधिकारों का पता होता है। इसलिए उनमें शिकायत की प्रवृत्ति कम होती है। परंतु आधुनिक समय में उपभोक्तावाद के आंदोलन तथा सरकारी व गैर–सरकारी संस्थाओं द्वारा उपभोक्ताओं को जागरूक करने के कारण अब उत्पाद खराब निकलने पर वे शिकायतें करने लगे हैं तथा उन शिकायतों का निवारण भी चाहते हैं। समाचार पत्रों में इन शिकायतों के लिए अलग से जगह रखी जाती है। उपभोक्ता शिकायतों के निपटारे के लिए उपभोक्ता जिला मंच भी बनाए गए हैं।
5. **महिलाओं की भूमिका** : वैसे तो भारत में शुरू से ही क्रय के मामले में महिलाओं का बोलबाला रहा है परंतु वे आमतौर पर दैनिक उपयोग की कम खर्च वाली वस्तुओं का ही क्रय करती हैं। बड़े क्रय निर्णय तो अब तक पुरुष ही लेते रहे हैं। परंतु जैसे–जैसे नौकरी तथा व्यवसाय करने वाली महिलाओं की संख्या में वृद्धि हो रही है, नारी उत्थान तथा नारी स्वतंत्रता आंदोलन तेज हो रहा है और महिलाओं के उपयोग के उत्पादों की संख्या बढ़ रही है, क्रय निर्णयों में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण होती जा रही है। महिला उपभोक्ता प्रायः उन उत्पादों को अधिक पसंद करती हैं, जो अनेक प्रकारों में तथा आकर्षक रूपों में उपलब्ध होते हैं। यही कारण है कि आज बाजार में प्रत्येक उत्पाद अनेक किस्मों तथा आकर्षक पैकेजिंग में उपलब्ध है।

उपभोक्ता व्यवहार का विषय क्षेत्र

उपभोक्ता व्यवहार में उसकी भौतिक तथा दिमागी दोनों क्रियाएं शामिल की जाती हैं। उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन से विपणनकर्ता को उपभोक्ताओं की वास्तविक आवश्यकताओं को पहचानने, जानने तथा पूरा करने में सहायता मिलती है। उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन का संबंध उसके वास्तविक उपभोग (Actual consumption) से न होकर उपभोक्ता के क्रय व्यवहार (Buying behaviour) से होता है।

उपभोक्ता व्यवहार के अंतर्गत विभिन्न विपणन विद्वानों ने निम्न तथ्यों के अध्ययन पर बल दिया है–

1. **उपभोक्ता कब क्रय करते हैं?**–विपणनकर्ता को यह पता होना चाहिए कि उपभोक्ता उसके उत्पाद को कब क्रय करेगा अर्थात कौन से मौसम में, कौन से दिन तथा किस समय पर? इन तीनों बातों को ध्यान में रखकर विपणन प्रयासों

टिप्पणी

को नियोजित किया जाता है। ऐसे अनेक उत्पाद हैं जो मौसम विशेष में क्रय किए जाते हैं, जैसे सर्दियों में ऊन, स्वेटर तथा गर्म कपड़े, गर्मियों में कूलर, एयर कंडीशनर तथा सूती कपड़े, बरसात में छतरी तथा बरसाती आदि। कुछ उत्पाद विशेष अवसरों पर ही क्रय किए जाते हैं, जैसे रक्षाबंधन पर राखी, दीपावली पर मोमबत्ती और पटाखे, होली पर रंग और गुलाल। इसी प्रकार नौकरीपेशा लोग प्रत्येक माह के प्रारंभ में खरीदारी करना पसंद करते हैं जबकि बुजुर्ग व्यक्ति सुबह के समय और युवक व युवतियां फैशनेबल बाजार में शाम के समय खरीदारी करना पसंद करते हैं। यदि विपणनकर्ता इस 'कब' प्रश्न का सही विश्लेषण कर ले, तो निश्चय ही विपणन नियोजन/कार्यक्रम को उचित दिशा दे सकता है।

2. **क्रय कौन करता है?**– एक सफल विपणन प्रबंधक को यह ध्यान रखना चाहिए कि 'क्रय कौन करता है?' इसमें तीन बातें आती हैं–

   (क) क्रय कौन करता है?

   (ख) क्रय का निर्णय कौन लेता है?

   (ग) क्रय किए गए उत्पाद का प्रयोग कौन करेगा?

   आमतौर पर देखा जाता है कि उत्पाद का उपयोग तो पूरा परिवार करता है, परंतु उसका क्रय परिवार का मुखिया करता है और कुछ दशाओं में उत्पाद का क्रेता तथा उसका प्रयोग करने वाले व्यक्ति अलग–अलग होते हैं। जैसे जॉन्सन एंड जॉन्सन कंपनी के उत्पाद तो शिशुओं के काम आते हैं परंतु उनका क्रय माताएं करती हैं। विपणन योजना पर इस बात का प्रभाव पड़ता है कि क्रय कौन करता है? उत्पाद उपभोक्ताओं के अनुरूप बनाया जाता है और उन्हीं के अनुरूप वितरण का माध्यम अपनाया जाता है।

3. **उपभोक्ता कैसे क्रय करते हैं?**–उपभोक्ताओं का क्रय करना उनकी आदतों एवं व्यवहारों से संबंधित है जिसका विपणन पर प्रभाव पड़ता है। उनकी क्रय आदतों एवं व्यवहारों के अनुरूप उत्पाद के ब्रांड का नाम, पैकेजिंग, मूल्य आदि निर्धारित किए जाते हैं। कुछ उपभोक्ता कम मूल्य के उत्पाद क्रय करना पसंद करते हैं चाहे ब्रांड कोई भी हो, जबकि कुछ उपभोक्ता इच्छित ब्रांड के लिए अधिक मूल्य देने को भी तैयार हो जाते हैं।

4. **उपभोक्ता कहां से क्रय करते हैं?**–एक विपणन प्रबंधक को अपनी विपणन नीतियों को तय करते समय इस तथ्य का पता लगा लेना चाहिए कि उपभोक्ता कहां से क्रय करते हैं? इसमें दो बातें हैं–

   (क) उपभोक्ता क्रय करने का निर्णय कहां पर लेता है?

   (ख) उपभोक्ता वास्तविक क्रय कहां करता है?

प्रायः यह देखा जाता है कि कुछ उत्पादों को क्रय करने का निर्णय क्रेता अपने परिवार के सदस्यों के साथ मिलकर करता है। अर्थात वह घर से सोच कर निकलता है कि उसे टेलीविजन, बिजली के उपकरण, फर्नीचर आदि कहां से क्रय करने हैं किंतु कई बार वह घर से निर्णय करके नहीं जाता बल्कि किसी दुकान या बाजार में उसे जो चीज अच्छी लगती है उसे क्रय करने का निर्णय वह दुकान या बाजार में ही कर लेता है। कुछ दशाओं में यह भी पाया गया है कि उपभोक्ता उत्पाद क्रय का निर्णय

तो घर से करके चलता है परंतु ब्रांड की पसंदगी स्टोर में पहुंचकर ही करता है। ऐसी स्थिति में उत्पाद का पैकेजिंग, विज्ञापन तथा रंग–रूप आकर्षक होना चाहिए, ताकि उपभोक्ता प्रभावित हो सके।

टिप्पणी

ऊपर वर्णित प्रश्नों के उत्तरों से उपभोक्ता व्यवहार को जानने का अवसर मिलता है। उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन उसके 'क्रय व्यवहार' (Buying Pattern) के आधार पर भी किया जा सकता है। इसके लिए विपणनकर्ता को निम्न प्रश्नों को समझना चाहिए–

1. क्रय निर्णय को कौन प्रभावित करता है?
2. क्रय निर्णय कौन लेता है?
3. वास्तव में क्रय कौन करता है?
4. वास्तव में उत्पाद का उपयोग कौन करता है?

किसी उत्पाद की क्रय प्रक्रिया (Buying Process) में कई व्यक्तियों का योगदान हो सकता है, कुछ उत्पादों की दशा में अलग–अलग व्यक्ति प्रभावक (influencer), निर्णायक (Decider) क्रेता (Purchaser) तथा प्रयोक्ता (user) की भूमिका निभाते हैं तो कुछ उत्पादों में एक या दो व्यक्ति ही क्रय प्रक्रिया को पूरा कर देते हैं, जैसे कार या एयर कंडिशनर क्रय करते समय पति, वाशिंग मशीन या प्रेशर कुकर क्रय करते समय पत्नी, स्टेशनरी या आइसक्रीम क्रय करते समय बच्चे। ऊपर वर्णित व्याख्या से स्पष्ट होता है कि सफल विपणन योजना के लिए उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन अति आवश्यक है।

उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन का महत्व

आधुनिक विपणन विचारधारा अपनाने के पश्चात ही उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन को महत्व मिला है। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय तक विपणनकर्ता अधिक विक्रय के लिए विज्ञापन तथा विक्रय संवर्धन क्रियाओं को ही पर्याप्त मानते थे। वे उपभोक्ताओं को विवेकशील प्राणी मानते थे जो बाजार का संपूर्ण ज्ञान रखते थे तथा अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पाद स्वयं क्रय कर लेते थे। इसलिए विपणनकर्ताओं को उनके क्रय व्यवहारों का अध्ययन करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

परंतु अब परिस्थितियां बिल्कुल बदल गई हैं। उत्पादन कोई समस्या नहीं रह गया है। प्रतिस्पर्धा बढ़ती जा रही है। विपणन दृष्टिकोण उपभोक्ता अभिमुखी होता जा रहा है। आधुनिक विपणन प्रबंधन उपभोग के क्षेत्र में उपभोक्ताओं की मूल समस्याओं को सुलझाने का प्रयास कर रहा है अर्थात उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन, विपणनकर्ता के लिए अपने विपणन कार्यक्रमों को सफल बनाने हेतु आवश्यक हो गया है।

आज विपणनकर्ता को अपनी विपणन नीतियां निर्धारित करने से पूर्व इस बात का अध्ययन करना अति आवश्यक हो गया है कि वह जो उत्पाद बेचने जा रहा है उसे उपभोक्ता क्यों क्रय करेगा? उपभोक्ता किसी उत्पाद विशेष को ही क्यों क्रय करते हैं? वे किसी विशेष स्थान से ही क्यों क्रय करते हैं? यदि विपणनकर्ता इन प्रश्नों की सही जानकारी प्राप्त करने में सफल हो जाता है तो वह एक सफल विपणन कार्यक्रम निर्धारित कर सकता है। अर्थात उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन विपणनकर्ता के लिए आवश्यक है। उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन के निम्नलिखित लाभ एवं महत्व हैं–

1. **उत्पादन नीतियों का निर्धारण** (Determining production policies): उत्पादन नीतियों के निर्धारण में उपभोक्ता व्यवहार का ज्ञान अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता

टिप्पणी

है। यदि उपभोक्ता उत्पाद के रंग, आकार शैली या मूल्य पैकेजिंग जैसे किसी भी गुण से प्रभावित होकर उत्पाद क्रय करता है, तो विपणनकर्ता को उस गुण के विकास पर विशेष ध्यान देना चाहिए। जैसे गिफ्ट के सामान में पैकेजिंग की भूमिका अहम् होती है, अतः गिफ्ट के रूप में दिए जाने वाले सामान की पैकेजिंग पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए और इसे आकर्षक बनाना चाहिए। क्रेता (उपभोक्ता) व्यवहार व्यवसायी की उत्पादन नीतियों को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए, यदि प्रबंधक को क्रेता व्यवहार के अध्ययन से पता चल जाता है कि क्रेता उसकी वस्तु को अच्छी पैकिंग के कारण पसंद करते हैं, तो प्रबंधक वस्तु की पैकिंग पर अधिक ध्यान देगा। अतः क्रेता के व्यवहार के अध्ययन के बाद ही उत्पादक पैकिंग पर ध्यान देना चाहिए। इस प्रकार उपभोक्ता व्यवहार उत्पादन नीतियों को प्रभावित करता है।

2. **मूल्य नीतियों का निर्धारण** (Determining Pricing Policies): बाजार में अनेक ऐसे उत्पाद होते हैं जिनके क्रय से उपभोक्ता के मान–सम्मान में वृद्धि होती है, जैसे हीरे–जवाहरात, बड़ी कार, बड़ा टेलीविजन इत्यादि। इन्हें केवल धनी वर्ग क्रय करता है। इसलिए इन उत्पादों का मूल्य ऊंचा रखा जाता है। इसी प्रकार समाज में स्थान, सौंदर्य, प्रेम, सेक्स आदि विभिन्न भावनाओं से प्रेरित होकर क्रय किए जाने वाले उत्पादों का मूल्य ऊंचा रखा जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन मूल्य संबंधी नीतियों के निर्धारण को प्रभावित करता है। यदि विक्रेता क्रेता व्यवहार को ध्यान में रखकर अपनी वस्तु का मूल्य निर्धारण नहीं करता तो वह अधिक विक्रय करने में असमर्थ रहेगा, क्योंकि क्रेता व्यवहार वस्तु की मूल्य नीति को प्रभावित करता है, जैसे–कुछ व्यक्ति वस्तु का क्रय केवल इसलिए करते हैं कि समाज में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ जाएगी। ऐसी दशा में उचित मूल्य भी रखा जा सकता है। इसी प्रकार क्रेता वस्तु को इस कारण से भी क्रय कर सकता है, क्योंकि उसका मूल्य स्थानापन्न वस्तुओं के मूल्य से कम है। इन बातों का ज्ञान क्रेता व्यवहार के अध्ययन से ही हो सकता है।

3. **वितरण नीतियों का निर्धारण** (Determining channels of distribution): यदि कोई उत्पाद कम मूल्य वाला है तो उसकी वितरण प्रक्रिया सरल होनी चाहिए। जैसे दैनिक आवश्यकता की वस्तुएं, तेल, साबुन, टुथपेस्ट आदि। यदि उत्पाद विक्रयोपरांत अच्छी सेवा की गारंटी के आधार पर क्रय किया जाता है तो इसके वितरण के स्रोत ऐसे चुनने होंगे जो उपभोक्ताओं को विक्रयोपरांत उत्तम सेवा दे सकें। जैसे एयर कंडीशनर, जेनरेटर सेट, कार, टेलीविजन, फ्रीज आदि। इससे स्पष्ट होता है कि वितरण संबंधी नीतियों के निर्धारण में उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है। विक्रय एवं वितरण संबंधी निर्णयों के लिए भी क्रेता व्यवहार का अध्ययन सहायक होता है। उदाहरण के लिए, किसी वस्तु की बिक्री केवल इसलिए होती है कि वह बाजार में नियमित रूप से और सरलता से उपलब्ध हो। अब यदि विक्रेता क्रेता व्यवहार का अध्ययन करके वितरण सुविधाओं पर बल देता है, तो उसकी बिक्री में वृद्धि की संभावनाएं बढ़ जाएंगी।

4. **विक्रय संवर्धन नीतियों का निर्धारण** (Determining sales promotion policies): उत्पाद की विक्रय वृद्धि के लिए विक्रय संवर्धन नीतियों का निर्धारण भी उपभोक्ता व्यवहार से प्रभावित होता है। विक्रय संवर्धन प्रयास उपभोक्ता व्यवहार के

टिप्पणी

अध्ययन के बिना सफल नहीं होते, क्योंकि उत्पाद कौन क्रय कर रहा है, उत्पाद क्रय निर्णय को कौन प्रभावित कर रहा है, उपभोक्ता उत्पाद को किस समय क्रय कर रहा है, कहां से क्रय कर रहा है, और कैसे क्रय कर रहा है? आदि बातें विक्रय संवर्धन तथा प्रचार कार्यक्रमों को प्रभावित करती हैं। उपभोक्ता समूहों को ध्यान में रखकर ही विक्रय संवर्धन नीतियां बनाई जाती हैं। विक्रय प्रवर्तन संबंधी नीतियां भी क्रेता व्यवहार से प्रभावित होती हैं, जैसे यदि कोई व्यक्ति कार इसलिए क्रय करता है कि उसकी समाज में प्रतिष्ठा बढ़ जाएगी, तो विक्रेता कार का अधिक उत्पादन कर सकता है।

5. **बाजार भिन्नताएं** (Market difference): आधुनिक बाजारों में व्यापक भिन्नताएं दिखाई देती हैं जैसे क्रेता बाजार, विक्रेता बाजार, देशी बाजार, विदेशी बाजार आदि। ये बाजार परस्पर बहुत कम समानताएं रखते हैं अतः एक–सी विपणन नीतियां एवं कार्यक्रम इन बाजारों की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकते। वर्तमान समय में यह नहीं कहा जा सकता कि एक विपणनकर्ता का यदि एक उत्पाद बाजार में सफल हो जाता है तो दूसरा भी पूरी तरह से सफल होगा। वहीं देशी बाजार में जो फर्म सफल है वह विदेशी बाजार में भी पूरी तरह से सफल होगी ही यह भी जरूरी नहीं। इसका मुख्य कारण है कि प्रत्येक बाजार की क्रय प्रेरणाएं और क्रय उद्देश्य दूसरे बाजार के क्रय व्यवहारों एवं क्रय प्रयोजनों (Buying Motives) से भिन्न होते हैं अतः बाजारों की भिन्नताओं का अध्ययन किए बिना विपणन नीतियों का निर्धारण उचित नहीं।

6. **अन्य कारण** (Other reasons): ऊपर वर्णित तथ्यों के अलावा कुछ और बातें भी है जो उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन को महत्वपूर्ण बनाती हैं। जैसे–

   (i) उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन से हम उन उत्पादों को आसानी से बेच सकते हैं जिन्हें बेचने में कठिनाई हो सकती थी। जैसे–आग बुझाने वाला यंत्र, वेक्यूम क्लीनर, बीमा पॉलिसी आदि।

   (ii) उपभोक्ता अनुसंधानों से पता चलता है कि उपभोक्ता एक ही उत्पाद के लंबे समय तक उपयोग के कारण उससे ऊब जाते हैं और परिवर्तन चाहते हैं। उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन से ऐसी स्थिति का पता लगाकर उत्पाद परिवर्तन का निर्णय लिया जा सकता है।

   (iii) उपभोक्ता एक सामाजिक प्राणी है। सामाज में परिवर्तनों के फलस्वरूप उसके स्वभाव में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। अतः परिवर्तनशील स्वभाव का अध्ययन अनिवार्य हो जाता है ताकि विपणनकर्ता अपने विपणन मिश्रण तथा विपणन कार्यक्रम को बाजार की परिस्थितियों के अनुकूल बनाए रख सके।

   (iv) विपणन नीतियों में सरकारी हस्तक्षेप (जैसे उत्पाद की गुणवत्ता, पैकेजिंग, मूल्य आदि) भी उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन को महत्व प्रदान करते हैं।

उपरोक्त व्याख्या से स्पष्ट होता है कि उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन विपणन प्रबंधकों को विपणन के प्रत्येक क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान देता है। यही कारण है कि इसका महत्व निरंतर बढ़ता जा रहा है। इस प्रकार, कहा जा सकता है कि क्रेता व्यवहार का अध्ययन एक व्यवसायी के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि क्रेता व्यवहार से व्यवसाय की सभी नीतियां प्रभावित होती हैं।

टिप्पणी

उपभोक्ता के प्रकार

विपणन की बात की जाये तो समस्त उपभोक्ताओं को एक वर्ग में नहीं माना जा सकता। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार समान अथवा एकरूप उत्पादों व सेवाओं को किसी एक स्तर पर रखकर नहीं देखा जा सकता। पूर्णतया समान सेवा अथवा उत्पाद का क्रय करने वाले भिन्न उपभोक्ताओं का दृष्टिकोण, अभिदृष्टि व मानसिकता सबमें व्यापक भिन्नता पायी जानी सम्भव है जिसके अधीन वे क्रय करते हैं अथवा करना चाह सकते हैं। ब्रांड का विपणन सफलतापूर्वक करना हो तो व्यापार में विभिन्न उपभोक्ता–प्रकारों की समझ आवश्यक है एवं यह समझ भी कि उनके अनुसार विपणन–दिशाओं को किस प्रकार मोड़ना है। उपभोक्ताओं के चार प्रमुख प्रकारों पर नीचे प्रकाश डाला जा रहा है–

लॉयल उपभोक्ता : इनमें आपके उपभोक्ता–आधार का छोटा–सा भाग होगा ऐसा सम्भावित है। वैसे इनकी लॉयल्टी के कारण ये प्रत्येक व्यापार के लिये मूल्यवान् रहते हैं। एक बार यदि इन्हें कोई कम्पनी भा जाये तो ये व्यापार आगे भी उसी से करना पसन्द करते हैं एवं अपने परिचितों से अपने अनुभव साझे करते हुए बहुधा ब्रांड के अघोशित प्रमोटर–से बन जाते हैं। एक नवीन अध्ययन के अनुसार एक खुदरा–व्यवसायी के 12 से 15 प्रतिशत उपभोक्ता ही लॉयल उपभोक्ता के रूप में जाने गये। यद्यपि ब्रांड–बिक्री का 55 से 70 प्रतिशत भाग छोटे–से समूह के कारण ही सम्भव होता पाया गया। ब्रांड द्वारा लॉयल उपभोक्ता को सफल विपणन किस प्रकार किया जा सकता है? व्यक्तिकरण, व्यक्तिकृत ध्यान एवं आवर्ती विपणन अनुबन्ध इसकी कुंजियां हैं। इस प्रकार की मार्केटिंग–स्ट्रेटजीज़ से निवेष पर बड़े रिटर्न मिलेंगे।

डिस्काउंट उपभोक्ता : ये सदा ही छूट की आस में बैठे रहते हैं। लॉयल उपभोक्ता के जैसे ये भी समान संगठनों व ब्रांड्स में बारम्बार आते रहते हैं। वैसे ये तभी क्रय करते हैं जब किसी प्रकार की छूट मिल रही हो। डिस्काउंट उपभोक्ता को विपणन के लिये आपको अपने प्रस्तावों व विशेष स्थितियों का विज्ञापन करने की आवश्यकता होगी। तथाकथित सोषल मीडिया वह उपयोगी साधन लग रहा है जहां बिक्री के लिये प्रमोशन किये जा सकते हैं क्योंकि अब पर्सेनॅलाइज़्ड इलेक्ट्रॉनिक मॅलिंग अथवा ब्रोशर्स सरल हैं। यदि आपकी बिक्री पहले से हो रही हो तो आप ग्राहकों को इससे अवगत करायें यह आवश्यक है।

इंपल्सिव उपभोक्ता : ये उपभोक्ता बहुधा विशिष्ट उत्पाद अथवा सेवा को ध्यान में रखकर क्रय नहीं करते, न ही ब्रांड ध्यान में लाते हैं। ये वास्तव में मनमौजी रूप से क्रय करते हैं। ये तड़क–भड़क लग रही किसी भी वस्तु का क्रय कर ले जाते हैं। इंपल्सिव उपभोक्ता के मनमौजी रूप को ध्यान में रखा जाये तो इनकी क्रय–प्रवृत्तियों के अनुरूप विपणन–प्रयासों में काट–छांट करनी होती है क्योंकि ये अपने संसाधनों के बेहतर उपयोग के बारे में सोचते ही नहीं। अधिकांश क्रय वास्तव में इसी श्रेणी के होते हैं।

ब्रांड्स जब पता लगा लेते हैं कि इंपल्स उपभोक्ताओं को प्रभावी विपणन कैसे करें तो ये अपनी बिक्री बढ़ा सकते हैं। ध्यान रखना होगा कि इम्पल्स ख़रीदारी का झुकाव भावनात्मक होता है, न कि तार्किक। यह अधिक तर्क–चालित उपभोक्ता प्रकारों: लॉयल उपभोक्ता (विशिष्ट ब्रांड्स के प्रति लगाव से प्रेरित) व डिस्काउंट उपभोक्ताओं (धन की बचत की इच्छा से प्रेरित) से भिन्न है। मुख्य ज़ोर इंपल्सिव उपभोक्ताओं को भावनाओं से लुभाने पर रहता है।

टिप्पणी

आवश्यकता–आधारित उपभोक्ता : ये आवश्यकता–पूर्ति के लिये क्रय करते हैं। हो सकता है कि ये वित्तीय समस्या से घिरे हों व परामर्श अपेक्षित हो। कदाचित् ये अवकाश हेतु निकल रहे हों व कुछ नवीन यात्रा–सामग्रियां चाहिए हों। ये जीवन में किसी वैधानिक दुविधा में आ पड़े हों व वैधानिक समाधान की खोज में हों। आवश्यकता–आधारित उपभोक्ता को विपणन के लिये आपकी मार्केटिंग–स्ट्रेटजी ऐसी हो जो इन आवश्यकताओं का अनुमान प्रभावीरूपेण लगा सके। इसका तात्पर्य यह हुआ कि यह उपयोगिता–केन्द्रित विपणन है जिसे बहुल माध्यमों में लाया जाता है जिनके अन्तर्गत प्रिण्ट, ऑनलाइन व सोषल मीडिया सम्मिलित हैं। आपको अपने उपभोक्ताओं को आवश्यकतावार वर्गीकृत करना होगा एवं इनमें से प्रत्येक आवश्यकता के लिये एक मार्केटिंग स्ट्रेटजी लानी होगी, रूपरेखा बनानी होगी कि परिस्थिति विशेष में आप सहायता कैसे कर सकते हैं अथवा विशिष्ट सेवा प्रमोट किस प्रकार करेंगे।

उपभोक्ता व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारक

क्रेता व्यवहार को प्रभावित करने वाले अनेक तत्व हैं, जिनमें आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक तत्व प्रमुख हैं। क्रेता व्यवहार का अध्ययन करने के लिए इन तत्वों का अध्ययन आवश्यक है। इनका वर्णन निम्नलिखित है–

(I) आर्थिक तत्व (Economic Factors)

(1) व्यक्तिगत आय (Personal Income)– ग्राहकों की निजी आय उनकी क्रय शक्ति को बहुत प्रभावित करती है। उनकी निजी आय में वृद्धि प्रायः उपभोग में वृद्धि और कमी उपभोग में कमी करती है।

(2) पारिवारिक आय (Family Income)– ग्राहकों की पारिवारिक आय भी उनकी क्रय शक्ति को प्रभावित करती है। यदि परिवार की आय गरीबी की है, तो उनका क्रय व्यवहार उन व्यक्तियों के क्रय व्यवहार जैसा नहीं होगा जिनकी आय निर्धारित रेखा से ऊपर है।

(3) भावी आय की आशाएं (Expectation of Income)–यदि किसी व्यक्ति को निकट भविष्य में कुछ आय प्राप्त होने की आशा हो तो उसका व्यवहार अपनी पूर्ण अवस्था से भिन्न होगा। सामान्यतः भावी आय की आशा व्यक्ति को अधिक क्रय के लिए प्रेरित करती है।

(4) उपभोक्ता की साख (Consumer's Credit)– यदि उपभोक्ताओं को वस्तुएं उधार मिल जाती हैं तो वे अधिक वस्तुएं खरीदने के लिए प्रेरित होते हैं विपणन के क्षेत्र में उपभोक्ता की साख का बहुत महत्व है, जिसकी सहायता से बाजार का विकास किया जा सकता है।

(5) स्वाधीन आय (Discretionary Income)– स्वाधीन आय का आशय उस आय से है, जो आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद बच जाती है। इस प्रकार की आय को उपभोक्ता अपनी इच्छा से खर्च करता है जिसकी आय अधिक होगी उतना ही वह अधिक वस्तुओं का उपयोग करने के लिए प्रेरित होता है।

(6) सरकारी नीति (Government Policy)– सरकारी नीति भी क्रेता व्यवहार को प्रभावित करती है। उदाहरणार्थ यदि आय कर की दर अधिक, हो तो उपभोक्ता की आय कम होकर क्रय शक्ति बढ़ेगी। इस प्रकार यदि मुद्रा–प्रसार किया जाता

है, तो मूल्य बढ़ेंगे, बचत कम होगी और उपभोक्ता को अपने व्यय के तरीकों में परिवर्तन करना होगा।

टिप्पणी

(II) मनोवैज्ञानिक तत्व (Psychological Factors)

मनोवैज्ञानिक तत्व से उपभोक्ता व्यवहार पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। ये तत्व निम्नलिखित हैं–

(1) आधारभूत आवश्यकताएं (Basic Needs)– क्रेता की कुछ आधारभूत आवश्यकताएं होती हैं जिनकी पूर्ति वह सर्वप्रथम करना चाहता है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री ए.एच. मास्लोव ने आवश्यकताओं में निम्नलिखित प्राथमिकताएं निश्चित की हैं–

(i) सुरक्षा आवश्यकताएं, (ii) शारीरिक आवश्यकताएं, (iii) अपनत्व एवं प्रेम, (iv) सम्मान एवं प्रतिष्ठा तथा (v) आत्मपरिपूर्ति की आवश्यकता।

जब कोई ग्राहक किसी वस्तु का क्रय करना चाहता है तो क्रय–व्यवहार में उपयुक्त आवश्यकताओं का प्रभाव पड़ता है जिस वस्तु के द्वारा इन आवश्यकताओं की पूर्ति अधिक होती है, वही सफलता प्राप्त करती है।

(2) छवि (Image)– किसी वस्तु या विषय के संबंध में ज्ञान या अज्ञानता वश किसी वस्तु की मस्तिष्क में जो छाप होती है उसे छवि कहा जाता है। उपभोक्ता व्यवहार पर इसका भी बहुत प्रभाव पड़ता है। छवि कई प्रकार की हो सकती है, जैसे– आत्म छवि, वस्तु छवि, ब्रांड छवि इत्यादि।

(3) ज्ञान सिद्धांत (Learning Theory)– ज्ञान सिद्धांत के अनुसार उपभोक्ता व्यवहार को निम्न तत्व प्रभावित करते हैं–

(i) अभिप्रेरण (Motivation)– क्रय प्रेरणाओं से उपभोक्ता व्यवहार बहुत अधिक प्रभावित होता है। इन प्रेरणाओं के अंतर्गत भावात्मक, विवेकपूर्ण, स्वाभाविक आदि प्रयोजन शामिल होते हैं।

(ii) नित्यता (Repetition)– किसी वस्तु को उपभोक्ता के निरंतर संपर्क में लाने से उसके वस्तु ज्ञान में वृद्धि हो जाती है। उदाहरण के लिए, किसी वस्तु के निरंतर विज्ञापन से उपभोक्ता को उस वस्तु के बारे में अधिक ज्ञान प्राप्त हो जाता है और वह वस्तु का क्रय करने के लिए प्रोत्साहित होता है।

(iii) वस्तु स्थिति (Conditioning)– वस्तु स्थिति के ज्ञान से भी उपभोक्ता व्यवहार बहुत अधिक प्रभावित होते हैं। जैसे, यदि किसी वस्तु की पैकिंग को सुंदर और आकर्षक बना दिया जाए, तो बहुत से क्रेता उससे प्रभावित होकर उसका क्रय कर लेंगे।

(iv) समूह प्रभाव (Group Influence)– समूह का प्रभाव भी उपभोक्ता व्यवहार पर है। यदि समाज में कोई धनी या प्रतिष्ठित व्यक्ति किसी वस्तु का उपभोग आरंभ कर देता है, तो समाज के अन्य लोग भी उसका अनुसरण करने लगते हैं।

(4) आधारभूत आवश्यकताएं एवं उपभोक्ता व्यवहार (Basic Needs and Consumer Behaviour)– उपभोक्ता व्यवहार आधारभूत आवश्यकताओं से भी प्रेरित होता है। सबसे पहले वह इन्हीं आवश्यकताओं को पूरा करता है।

टिप्पणी

(5) लाक्षणिक मनोविज्ञान (Clinical Psychology)– लाक्षणिक मनोविज्ञान के अंतर्गत निम्न दो प्रकार के तत्वों को सम्मिलित किया जाता है–

(i) विवेकीकरण (Rationalisation)– यह मस्तिष्क संबंधी निर्णय है। इसके द्वारा यह पता लगाया जाता है कि मनुष्य किसी वस्तु का क्रय क्यों करता है?

(ii) अचेत अवस्था (Unconsciousness)– अचेत अवस्था का आशय उस अवस्था से है जिसमें उपभोक्ता वस्तु विशेष को खरीदने या न खरीदने के कारण नहीं बता सकता है।

उपभोक्ता व्यवहार के मॉडल या सिद्धांत
(Models or Theories of Consumer's Behaviour)

ग्राहक एक विशेष प्रकार का व्यवहार क्यों करता है? वह सदैव एक सा व्यवहार क्यों नहीं करता है? विपणन प्रबंधक को यह जानना बहुत आवश्यक हो जाता है। कोई भी विपणन प्रबंधक इन बातों के अध्ययन के लिए निम्न सिद्धांतों का सहारा लेता है–

(1) स्वाभाविक क्रय व्यवहार (Inherent Motives)– स्वाभाविक क्रय व्यवहार का आशय ऐसे व्यवहार से है, जो व्यक्तित्व में अंतर्निहित आवश्यकताओं से प्रेरित होता है, जैसे – भूख लगना। इन आवश्यकताओं से प्रेरित होकर किए गए वस्तु के क्रय को स्वाभाविक क्रय व्यवहार कहा जाएगा। इनकी पूर्ति के लिए एक चक्र चलता रहता है। सर्वप्रथम, आवश्यकता का अनुभव होता है, फिर इनकी पूर्ति के लिए प्रयत्न किए जाते हैं और अंत में, पूर्ति का लक्ष्य प्राप्त कर लिया जाता है। यदि इन प्रेरणाओं की पूर्ति नहीं की जाती, तो व्यक्ति में तनाव उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि–

(i) स्वाभाविक क्रय व्यवहार कुछ मानवीय प्रवृत्तियों पर आधारित होता है।

(ii) स्वाभाविक क्रय व्यवहार की शीघ्र संतुष्टि न होने पर व्यक्तित्व में तनाव की भावना आ जाती है।

(iii) इन व्यवहारों की संख्या सीमित होती है।

(2) सीखे हुए क्रय व्यवहार (Learned Motives)– इस क्रय व्यवहार का आशय ऐसे क्रय व्यवहार से है, जिसे व्यक्ति अपने वातावरण तथा सामाजिक परिवेश में सीखता है, जैसे–एक शिशु जन्म के समय भूख लगने पर रोता है। अतः रोना एक स्वाभाविक व्यवहार है। लेकिन जब रोने की क्रिया बार–बार होती है, तो बच्चे को इस बात का ज्ञान होता है कि रोना भोजन प्राप्ति का साधन है। अतः रोना अब सीखा हुआ व्यवहार है। लेकिन जब बच्चा बड़ा होता है तो उसके व्यवहार को उसका ज्ञान प्रभावित करता है और ज्ञान का बोध समाज कराता है। जैसा समाज होगा, व्यक्ति वैसा ही व्यवहार करेगा। इस सिद्धांत को पावलोव मॉडल (Povlovian Model) भी कहते हैं। इस मॉडल के परिणामों को मानवीय व्यवहार के उत्तेजना उत्तर मॉडल (Stimulus Response Model) के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इससे संबंधित दो मुख्य तथ्य इस प्रकार हैं–

(i) यह क्रय व्यवहार व्यक्ति में सीखने से आता है।

(ii) इन व्यवहारों की संख्या एवं तीव्रता अधिक होती है।

टिप्पणी

स्वाभाविक एवं सीखे हुए क्रय व्यवहारों में अंतर

स्वाभाविक एवं सीखे हुए क्रय व्यवहारों में अंतर इस प्रकार हैं –

(1) प्रभावित करने वाले तत्व– स्वाभाविक क्रय व्यवहार व्यक्ति की अंतर्निहित आदतों से प्रभावित होता है, जबकि सीखे हुए क्रय व्यवहार को व्यक्ति अपने चारों ओर फैले हुए वातावरण से सीखता है।

(2) संख्या एवं तीव्रता– स्वाभाविक क्रय व्यवहार की संख्या एवं तीव्रता सीखे हुए क्रय व्यवहार की संख्या एवं तीव्रता की अपेक्षा कम होती है।

अतः विक्रेताओं के लिए आवश्यक है कि वे स्वाभाविक क्रय व्यवहार की अपेक्षा सीखे हुए क्रय व्यवहार पर अधिक ध्यान दें।

भावात्मक एवं विवेकात्मक क्रय व्यवहार (Emotional V/s Rational Motives)

(1) भावात्मक क्रय व्यवहार (Emotional Motives)– भावात्मक क्रय व्यवहार का आशय ऐसे व्यवहार से है, जो हृदय से संबंधित क्रियाओं से प्रभावित होता है, अर्थात इन्हीं क्रियाओं से प्रेरित होकर क्रेता क्रय के लिए तैयार हो जाता है। इसमें अहंकार, सुविधा, प्रतिष्ठा, गौरव, ईर्ष्या, शत्रुता, प्रेम जैसी क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है। उदाहरण के लिए, जब एक बिस्कुट उत्पादक अपने किसी बिस्कुट का विज्ञापन इन शब्दों में देता है, ''देश के चोटी के खिलाड़ियों का सबसे अधिक लोकप्रिय बिस्कुट'' तो उसका उद्देश्य छात्र एवं खिलाड़ी जगत की भावात्मक प्रेरणाओं को ही उकसाने का होता है।

(2) विवेकात्मक क्रय व्यवहार (Rational Motives)– इस व्यवहार का आशय ऐसे क्रय व्यवहार से है, जिससे क्रेता क्रय की जाने वाली वस्तु के मूल्य, उपभोग, स्थिरता, सेवा और विश्वसनीयता आदि अनेक तत्वों पर विचार करके ही क्रय करने का निर्णय लेता है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति जान–बूझकर एक कम शुद्ध लागत का उत्पाद खरीदने का निश्चय करता है, तो इसे विवेकात्मक क्रय माना जाएगा। इस विवेकात्मक क्रय प्रेरणा में विवेक–बुद्धि अर्थात मस्तिष्क की प्रधानता रहती है।

क्रय प्रेरणाओं के निर्धारण में आने वाली कठिनाइयां
(Main Difficulties in Determining Buying Motives)

क्रय प्रेरणाओं के निर्धारण में जो प्रमुख कठिनाइयां उत्पन्न हेाती हैं, वे निम्नलिखित हैं–

(1) क्रेता की अज्ञानता (Consumer's Ignorance)– जब कोई उपभोक्ता किसी वस्तु को क्रय करता है, तो वह कभी–कभी इस बात से अनजान भी रहता है कि उसने इस वस्तु को क्यों खरीदा है। ऐसी परिस्थिति में यदि विक्रेता क्रेता व्यवहार का अध्ययन करना चाहता है, तो वह इसमें असफल रहता है, क्योंकि क्रेता उचित सूचना नहीं देता।

(2) उपभोक्ता का संकोच या मिथ्या वर्णन (Consumer's Hesitation or Misstatement)– कभी–कभी कोई उपभोक्ता क्रय का कारण दूसरों के सामने प्रकट करने में शर्म महसूस करता है अथवा वह गलत कारण बताता है। उदाहरण के लिए–यदि कोई क्रेता शृंगार का सामान क्रय करे और यदि उससे

पूछा जाए कि यह सामान आपने क्यों खरीदा, तो वह अपना सही कारण 'सुंदरता में निखार' नहीं बताएगा। ऐसी दशा में उत्पादक के लिए क्रेता व्यवहार का अध्ययन करना कठिन हो जाता है।

टिप्पणी

(3) क्रय प्रेरणाओं की परिवर्तनशील प्रकृति (Dynamic Nature of Buying Motives)— क्रय प्रेरणाएं उपभोक्ताओं की आय, आदत, रुचि, फैशन, समय व परिस्थिति आदि में परिवर्तन के साथ बदलती रहती हैं अर्थात कल जिस प्रेरणा से प्रेरित होकर किसी वस्तु का क्रय किया था आाज वह प्रेरणा बदल जाती है। अतः कम्पनियों की क्रय–प्रेरणाओं का निरंतर अध्ययन करते रहना चाहिए।

(4) उपभोक्ताओं का व्यक्तित्व (Consumer Personality)— सभी उपभोक्ताओं का व्यक्तित्व एक जैसा नहीं होता है। ऐसी दशा में प्रत्येक व्यक्ति का क्रेता व्यवहार अलग–अलग ज्ञात नहीं किया जा सकता, क्योंकि इससे व्यय भी अधिक होगा और यह अव्यावहारिक भी है। अतः क्रेता व्यवहार का ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रायः निदर्शन (Sampling Method) विधि का प्रयोग किया जाता है।

(5) परस्पर विरोधी प्रेरणाओं की उपस्थिति (Existence of Contradictory Motives)— बहुत सी क्रय प्रेरणाएं परस्पर एक–दूसरे की विरोधी होती हैं। जिस वजह से यह जानना कठिन हो जाता है कि वास्तव में किस प्रेरणा ने क्रय को प्रभावित किया है। उदाहरण के लिए–कोई स्त्री फैशन के लिए लिपस्टिक का क्रय करती है, जबकि वह समाज में स्वयं को फैशन विरोधी के रूप में प्रस्तुत करती है।

(6) अपूर्ण तकनीकें (Imperfect Techniques)— क्रेता व्यवहार के अध्ययन के लिए विक्रेता को तकनीकी कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ता है, क्योंकि इस अध्ययन के लिए जिन तकनीकों का प्रयोग होता है वे पूर्णरूप से विकसित नहीं हो पाई हैं, ऐसे में उनके माध्यम से सही व्यवहार का अध्ययन करना कठिन हो जाता है।

III. सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक क्रय व्यवहार
(Social v/s Psychological Motives)

(1) सामाजिक क्रय–व्यवहार (Social Motives)— ग्राहक एक सामजिक प्राणी है और वह किसी न किसी रूप में समाज से संबंधित है। अतः वह न तो अपने को समाज से पृथक रख सकता है, और न ही समाज की मान्यताओं के विरुद्ध क्रय कर सकता है, क्योंकि ऐसा करने से समाज उसे पृथक कर देगा और व्यक्ति समाज में पृथक नहीं रह सकता। अर्थात क्रय का कोई भी निर्णय लेते समय वह इस बात का ध्यान अवश्य रखता है कि उसके क्रय की समाज में क्या प्रतिक्रिया होगी? अतः विपणन प्रबंधक को समाज के रीति–रिवाजों, आदतों आदि का ध्यान रखना चाहिए।

(2) मनोवैज्ञानिक क्रय व्यवहार (Psychological Motives)— ग्राहकों के क्रय व्यवहार को मनोविज्ञान भी प्रभावित करता है। इसके मुख्य दो तत्व हैं – क्रेता का क्रय व्यवहार एवं उत्पाद की विशेषताएं–

(i) **उपभोक्ता क्रय व्यवहार** (Consumer Behaviour)— इसके अनुसार हम उपभोक्ताओं के निम्न वर्ग बना सकते हैं–

टिप्पणी

(क) आदत नियंत्रित वर्ग– यह वह वर्ग है जिसे किसी ब्रांड विशेष को क्रय करने की आदत बन गई है, क्योंकि वे उस ब्रांड के लाभों से पूर्ण संतुष्ट हैं।

(ख) मननशील वर्ग– कुछ उपभोक्ता मननशील होते हैं और उनका क्रय व्यवहार मूल्य, बचत तथा कम व्यय पर आधारित होता है।

(ग) नया वर्ग– इस वर्ग के सदस्यों में वे लोग आते हैं, जिन्होंने अभी तक कोई मनोवैज्ञानिक निर्णय नहीं किया है।

(घ) संवेगी वर्ग– इस वर्ग के लोग भौतिक गुणों के आधार पर व्यवहार करते हैं और ब्रांड का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

(ङ) प्रज्ञाशील वर्ग– यह वर्ग विवेकपूर्ण मूल्यों से प्रभावित होता है और इस वर्ग के लोगों का क्रय व्यवहार भी उन मूल्यों से प्रभावित होता है।

(ii) **उत्पाद विशेषताएं** (Product Characteristics)– उत्पाद के विशेष गुणों का भी क्रय व्यवहारों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। मनोविज्ञान के आधार पर वस्तुओं को निम्नांकित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

(क) प्रतिष्ठा उत्पाद– कुछ वस्तुएं ऐसी होती हैं जिनका क्रय प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाता है, जैसे–सुंदर कोठी, कार आदि।

(ख) वयस्कता उत्पाद– वे वस्तुएं जिन्हें सामाजिक प्रतिबंध के कारण उपभोक्ता के वयस्क होने पर ही उपयोग के लिए वांछित माना जाता है और यह सामाजिक प्रतिबंधों के कारण होता है। जैसे–बीड़ी, सिगरेट, शराब, श्रृंगार सामग्री आदि का उपयोग बच्चों के लिए अनुचित माना जाता है।

(ग) उद्वेग उत्पाद– ये वे वस्तुएं हैं, जिन्हें क्रय करने की आकुलता होती है और इनका चयन व्यक्तिगत व सामाजिक कारणों से होता है। जैसे–ब्लेड, साबुन आदि।

(घ) कार्यात्मक उत्पाद– कुछ वस्तुएं ऐसी होती हैं, जिनका सामाजिक या सांस्कृतिक महत्व कम होता है, जैसे–फल, सब्जियां, मुख्य अनाज आदि।

(ङ) सुखदायी उत्पाद– कुछ वस्तुएं सुख देने वाली होती हैं, जिनके क्रय के लिए इंद्रियां अपील करती हैं तथा संवेगी क्रय को जन्म देती हैं, जैसे – नाश्ते की मदें, वस्त्र, मिठाइयां आदि।

उपभोक्ता व्यवहार का ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्षेपी तकनीकों का उपयोग एवं प्रक्षेपी तकनीकों के उपयोग के कारण

वर्तमान युग के उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन करने के लिए प्रक्षेपी तकनीकों (Projective Techniques) का उपयोग बढ़ता जा रहा है। इसका प्रमुख कारण यह है कि अभिप्रेरण अनुसंधान की जो प्रश्नावली एवं साक्षात्कार विधि की कमियां हैं, उनसे उपभोक्ताओं की वास्तविक मनोवैज्ञानिक अभिकृतियों एवं विचारों की जानकारी प्राप्त

टिप्पणी

नहीं हो पाती है। जैसे– ग्राहक प्रश्नों को समझ नहीं पाते और उनके उत्तर गलत भेज देते हैं। लोग सूचना लिखकर देने में घबराते हैं, आदि। अतः प्रक्षेपी तकनीकों के उपयोग से उपभोक्ता के मन में छिपे हुए विचारों का शीघ्रता से पता लगाया जा सकता है और उनसे अप्रत्यक्ष रूप से जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार प्रक्षेपी तकनीक एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक तरीका है जिससे उपभोक्ता जाने–अनजाने में ही अपनी सभी भावनाओं को प्रकट कर देता है। वर्तमान में भारत में अनेक कम्पनियां उपभोक्ता व्यवहार का ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्षेपी तकनीकों का उपयोग कर रही हैं।

क्रय बनाम उपभोक्ता एवं उपभोक्ता क्रय प्रक्रिया

किसी भी वस्तु अथवा उत्पाद को खरीदने की क्रिया क्रय कहलाती है। क्रय के अंतर्गत क्रेता तथा उपभोक्ता दो अलग–अलग व्यक्ति होते हैं। क्रय की धारणा के अनुसार क्रेता एवं उपभोक्ता को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जाता है–

क्रेता

क्रेता एक ग्राहक है– यह कोई व्यक्ति अथवा व्यापारी होता है जिसने विक्रेता से क्रय किया हो। स्थिति चाहे जो हो क्रेता ऐसा पक्ष होता है जो उत्पाद सुरक्षित कर लेने के लिये विक्रेता को धनराशि हस्तान्तरित करता है। मॉल पर दुकान से पॅरेण्टिंग सॉफ़्टवेयर क्रय कर रहा दम्पति वह क्रेता है जिसके लिये डिस्ट्रीब्यूशन कम्पनी ने क्रेडिट पर निर्माता से कच्चे मालों का क्रय किया था।

उपभोक्ता

दूसरी ओर उपभोक्ता ऐसा व्यक्ति है जो उत्पाद अथवा सेवा का प्रयोग करता है। उपभोक्ता को बहुधा 'अंत्य प्रयोक्ता' कहा जाता है क्योंकि यह उत्पाद/सेवा का अंतिम पड़ाव होता है एवं इसका हस्तान्तरण अथवा विक्रय प्रायः किसी और को नहीं करता। क्रेता कोई उपभोक्ता हो सकता है (यदि वह अपने प्रयोग के लिये क्रय कर रहा हो) परन्तु उपभोक्ता एक क्रेता हो यह आवश्यक नहीं, उदाहरणार्थ माता के द्वारा यदि सत्तू अथवा दलिया क्रय किया जाता है तो घर के सभी सदस्य उस उत्पाद में उपभोक्ता कहलायेंगे।

व्यक्ति अपनी सेवा/उत्पाद का क्रय या तो अपनी यथास्थिति बनाये रखने के लिये अथवा वर्तमान स्थिति को बदलने के लिये करता है। इस प्रकार व्यक्ति को अपना उपभोक्ता बनाने से पहले उसके दृष्टिकोण से देखना होगा।

B2C **बनाम** B2B

क्रेता व उपभोक्ता में अन्तर कम्पनी के लिये तब महत्वपूर्ण हो जाता है जब उसके द्वारा अपनी सम्पूर्ण व्यापारिक योजना का मूल्यांकन किया जा रहा हो। कम्पनी प्रायः दो में से किसी एक अथवा दोनों वर्गों की होती हैः B2B (business to business) अथवा B2C (business to consumer)। business to business में दो वाणिज्यिक संस्थाओं द्वारा क्रय–करार किया जाता है। इसमें क्रय के पश्चात् क्रेता द्वारा उपभोक्ता नहीं बना जाता है व उत्पाद का पुनर्विक्रय कर दिया जाता है। Business to Consumer में वाणिज्यिक संस्था व अंत्य प्रयोक्ता के मध्य सम्पर्क किया जाता है।

टिप्पणी

ध्यानाकर्षण

किसी उत्पाद/सेवा का विपणन कर रही कम्पनी क्रेता व उपभोक्ता दोनों की इच्छाओं की पहचान करना चाह सकती है। उदाहरणार्थ पाठ्यपुस्तकों का विक्रय करने वाले प्रकाशक को दो पक्षों के लिये विपणन करना होगा– वितरक पक्ष के लिये जो पाठ्यपुस्तकों का विक्रय करेगा एवं प्राध्यापक पक्ष के लिये जो कक्षा के लिये पुस्तकों का ऑर्डर देगा। क्रेता की इच्छाएं उपभोक्ताओं की इच्छाओं से भिन्न हो सकती हैं यदि ये दोनों वास्तव में दो पक्ष हुए तो परन्तु अधिकांश प्रकरणों में क्रेता का निर्णय उपभोक्ताओं की इच्छा से अत्यधिक प्रभावित रहता ही है।

उपभोक्ता ऐसा व्यक्ति होता है जो उत्पाद का प्रयोग अथवा अनुभव करता है; क्रेता वह व्यक्ति है जो उस हेतु भुगतान करता है।

उदाहरण

- खिलौनों के प्रकरण में अभिभावक क्रेता हैं जबकि बच्चे उपभोक्ता;
- अपने ऑफ़िस डेस्कटॉप/लैपटॉप में किसी सॉफ़्टवेयर एवं पर्सनल कम्प्यूटर्स के प्रकरण में आप उपभोक्ता हुए तबकि आपका सूचना–प्रौद्योगिकी विभाग क्रेता;
- फ़्री यूट्यूब वीडियोज़ के प्रकरण में आप उपभोक्ता हुए जबकि विज्ञापनदाता क्रेता हैं।

क्रेता: वह व्यक्ति अथवा कम्पनी जिसके द्वारा विक्रेता से उत्पाद/सेवा का क्रय किया जाता है अर्थात् उस हेतु भुगतान किया जाता है।

उपभोक्ता: वह व्यक्ति जो वास्तव में उस उत्पाद/सेवा का उपभोग/प्रयोग करेगा।

उपभोक्ता क्रय प्रक्रिया

सरल शब्दों में बोलें तो उपभोक्ता क्रय कार्यविधि को क्रमिक पदों की उस शृंखला के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका अनुकरण करते हुए उपभोक्ता अन्तिम क्रय–निर्णय तक पहुंचता है। अधिकांशतया उपभोक्ता एक प्रारूपिक क्रय कार्यविधि का अनुकरण करते हैं। विपणनकर्त्ता को जान लेना होगा कि उत्पाद को क्रय करने के लिये उपभोक्ता अन्तिम निर्णय तक कैसे आयेंगे। Philip Kotler के अनुसार प्रबन्धक चार विधियों के माध्यम से क्रय कार्यविधि में अवस्थाओं के बारे में सीख सकता है; प्रत्येक विधि में उपभोक्ता क्रय कार्यविधि में पदों के बारे में संकेत मिलता है।

Philip Kotler के अनुसार प्रारूपिक क्रय कार्यविधि में निम्नांकित पांच अवस्थाओं से होकर उपभोक्ता निम्नानुसार गुजरते हैं–

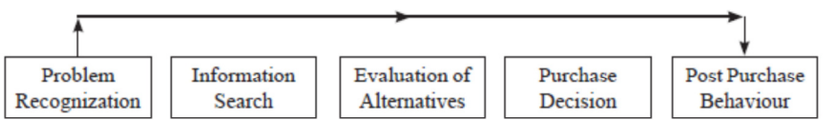

1. समस्या–पहचान

इस पद को अपूर्ण आवश्यकता को पहचानना भी कहा जाता है। आवश्यकता अथवा इच्छा 'क्रय–व्यवहार का स्रोत अथवा बल' है। क्रय समस्या तभी उपजती है जब अपूर्ण

आवश्यकता अथवा समस्या पहचान में आती है। आवश्यकता अथवा समस्या अथवा इच्छा से व्यक्ति उत्पाद/सेवा का क्रय करने को अग्रसर हो जाता है।

टिप्पणी

क्रेता अपनी वास्तविक अवस्था (शारीरिक व मानसिक) एवं वांछित अवस्था के मध्य अन्तर अनुभव करता है। यह इच्छा आन्तरिक अथवा बाह्य उद्दीपकों द्वारा प्रेरित की जा सकती है। आन्तरिक उद्दीपकों में मूलभूत अथवा सामान्य आवश्यकताएं सम्मिलित हैं: क्षुधा (भूख), तृशा (प्यास)। बाह्य उद्दीपकों में बाह्य बल व इच्छाएं सम्मिलित हैं, जैसे कि व्यक्ति तथाकथित सामाजिक अवस्था की चाहत में नवीन ब्रांडेड कार ले जाना चाहता है इत्यादि।

2. जानकारियों की खोज

इच्छुक उपभोक्ता जानकारियां जुटाने का जतन करेगा। अब यह समाचार–पत्रों व पत्रिकाओं को पढ़ेगा, दूरदर्शन देखेगा व आकाशवाणी सुनेगा तथा शोरूम में अथवा डीलर के पास जायेगा अथवा सेल्समेन से सम्पर्क साध सकता है अथवा अपने परिचितों से भी पूछताछ कर सकता है ताकि सूचनाओं के समस्त उपलब्ध स्रोतों से अवगत हो सके।

अधिकांशतया उपभोक्ता सूचनाओं के निम्नांकित एक अथवा अनेक सूत्रों तक पहुंचने का प्रयास कर सकता है–

1. **व्यक्तिगत सूत्र**– इनमें परिजन, संगी–साथी, पैकेज, सहकर्मी–सहपाठी एवं परिचित सम्मिलित हो सकते हैं।
2. **वाणिज्यिक सूत्र**– विज्ञापन, सेल्समेन, डीलर्स, पैकेज, ट्रेड–षो, डिस्प्ले एवं प्रदर्शनियां प्रचलित वाणिज्यिक सूत्र हैं।
3. **जन सूत्र**– जनसंचार (आकाशवाणी, दूरदर्शन, पत्रिकाएं, समाचार–पत्र इत्यादि), कन्ज़्यूमर–रेटिंग एजेन्सी इत्यादि प्रमुख जन सूत्र हैं।
4. **प्रयोगात्मक सूत्र**– इनमें उत्पाद की साजो–संभाल, जांच–परख अथवा प्रयोग सम्मिलित है। सूत्रों का चयन व्यक्तिगत अभिलक्षणों, उत्पादों के प्रकारों, सूत्रों की क्षमता व विश्वसनीयता पर निर्भर होता है। क्रय–निर्णय को प्रभावित करने में प्रत्येक सूचना–सूत्र द्वारा भिन्न कार्य किये जाते हैं। प्रासंगिक सूत्रों से सूचनाएं समेटते हुए उपभोक्ता बाज़ार में उपलब्ध विभिन्न उत्पादों व ब्रांड्स का पता कर सकता है।

उल्लेखनीय है कि उपभोक्ता बाज़ार में उपलब्ध समस्त ब्रांड्स की विस्तृत सूचनाएं नहीं जुटाने वाला। यह क्रम में सभी ब्रांड्स की छंटनी कर देगा– जैसे कि कुल ब्रांड्स (संख्या) जिन्हें यह अपनी चाहत की परास में मान रहा है एवं अपनी क्रय–क्षमता की सीमा के उत्पाद। उपभोक्ता सीमित ब्रांड्स की सूचनाएं एकत्र करने का ही इच्छुक होगा।

विपणनकर्त्ता सम्भावित ग्राहकों में अपने ब्रांड को जानकारी में लायेगा ताकि वे उसे चुन लें। कम्पनी को सूत्रों व इनकी तत्सम्बन्धित महत्ता की पहचान कर लेनी चाहिए। कम्पनी सूत्रों के उन प्रकारों की पूछताछ उपभोक्ताओं से करे जिन्हें वे प्रयोग में लाते हैं। इस आधार पर प्रभावी संवाद के माध्यम से लक्ष्य बाज़ार पर नज़रें जमायी जा सकती हैं।

टिप्पणी

3. विकल्पों का मूल्यांकन

पूर्ववर्ती अवस्था में उपभोक्ता ने कुछ ब्रांड्स की जानकारी जुटायी। अब यह ब्रांड्स का मूल्यांकन करने लगता है। यह सभी ब्रांड्स को नहीं ख़रीदने वाला। साधारणतया यह श्रेष्ठ लग रहे ब्रांड को ले जाना चाहेगा जिसमें इसे अधिकतम संतोष मिल रहा हो। यहां यह सर्वाधिक आकर्षक ब्रांड की ओर झुकेगा। मूल्यांकन के दौरान वह अपनी पसन्द की कसौटियों के अनुरूप विभिन्न विकल्पों को देखेगा।

विकल्पों का मूल्यांकन करते समय निम्नांकित कसौटियों का विचार किया जाता है–

- ब्रांड्स द्वारा उपलब्ध लाभ
- गुण, लक्षण अथवा विशेषताएं एवं निष्पादन
- विभिन्न ब्रांड्स द्वारा कीमत–परिवर्तन
- ब्रांड्स का अतीत
- ब्रांड्स की लोकप्रियता, छवि अथवा प्रतिष्ठा
- ब्रांड्स द्वारा प्रदान की जाने वाली उत्पाद–सम्बन्धी सेवाएं, जैसे कि 'विक्रयोपरान्त सेवाएं' (आफ़्टर–सेल्स सर्विसेज़), वॉरण्टी एवं निःशुल्क अभिस्थापन
- ब्रांड्स व डीलर रेटिंग की उपलब्धता

विभिन्न उत्पादों के लिये विभिन्न कसौटियां प्रयोग में लायी जा सकती हैं। उदाहरणार्थ बाइक/स्कूटी क्रय करने से पहले सम्भव है कि व्यक्ति निम्नांकित कसौटियों पर सबको परख लेना चाहे–

i. कीमत
ii. पिक–अप एवं निष्पादन (performance)
iii. सुविधाएं व सहजता
iv. Gear-transmission system
v. Get-up/appearance
vi. चाल प्रतिघण्टा
vii. औसत प्रतिलीटर
viii. अनुरक्षण–लागतें
ix. छवि, अवस्था (स्टेटस) एवं नवीनता
x. सुरक्षा
xi. पुनर्विक्रय–मूल्य
xii. सेवाएं, गारण्टी, वॉरण्टी इत्यादि।

उपरोक्त में से अधिकांश कसौटियों पर व्यक्ति की मानसिकता के अनुरूप खरे उतर रहे ब्रांड को पसन्द किया जायेगा ऐसी सम्भावना सर्वाधिक है। विपणनकर्त्ता अपने ब्रांड की

अद्वितीय विशेषताओं को सामने लाने को प्रयासरत् रहता है। कुछ कम्पनियां विभिन्न ब्रांड्स के मूल्यांकन में उपभोक्ताओं की सहायता हेतु तुलनात्मक सारणी उपलब्ध कराकर उसका विज्ञापन भी करती हैं। उदाहरणार्थ यामाहा, मारुति एवं ह्युण्डइ

द्वारा समाचार–पत्रों में तुलनात्मक सारणी प्रकाशित की जाती है जिसमें दर्शाया जाता है कि अन्य ब्रांड्स से इनकी बाइक/कार श्रेष्ठ क्यों है।

टिप्पणी

4. क्रय–निर्णय

यह वह अवस्था है जब उपभोक्ता अनेक ब्रांड्स/उत्पादों में से स्वयं के अनुकूल लग रहे एक उत्पाद/ब्रांड का चयन कर लेता है। पूर्ववर्ती अवस्था में उपभोक्ताओं ने चयन–परिधि में विभिन्न ब्रांड्स का मूल्यांकन किया। सर्वाधिक लाभ/संतोष प्रदान करते प्रतीत हो रहे ब्रांड को चुन लिया जाता है।

क्रय–इच्छा को क्रय–निर्णय में परिणत करने की ओर तीन और कारक प्रभावी होंगे–

(क) **दूसरों के दृष्टिकोण** : व्यक्ति द्वारा चयनित ब्रांड के प्रति आसपास के लोगों के दृष्टिकोणों से व्यक्ति अपने जीवन के अधिकांश निर्णय बहुत अधिक प्रभावित होने देता है। दूसरों की नकारात्मक अथवा पक्षपातपूर्ण दृष्टियों को भी यह अपनी दिनचर्या पर हावी होने देता है।

(ख) **अप्रत्याशित परिस्थितिजन्य कारक** : क्रय–निर्णय करने, न करने, बाद में करने, रूपान्तरण करने पर कई परिस्थितिजन्य कारकों का प्रभाव पड़ता है: कीमतवृद्धि, नौकरी चली जाना, पारिवारिक आय, मुख्य चिकित्सात्मक परिव्यय, वरीय ब्रांड की अनुपलब्धता अथवा ऐसे अन्य कारक।

(ग) **उपभोक्ता को अनुभव हो रहा जोख़िम** : यह जोख़िम–अनुभव कीमत, लाक्षणिक अनिष्चितता, नवीन श्रेष्ठ लग रहे ब्रांड का आगमन व स्वयं के विषय में आत्मविश्वास पर निर्भर है।

क्रय–निर्णय में उप–निर्णय

उपभोक्ता के क्रय–निर्णय में निम्नांकित उप–निर्णय सम्मिलित हैं–

i. **ब्रांड–निर्णय**– उदाहरणार्थ हीरो होण्डा की CBZ (model) मोटरबाइक।

ii. **विक्रेता–निर्णय**– उदाहरणार्थ XYZ Hero Honda Showroom.

iii. **परिमाण–निर्णय**– उदाहरणार्थ एक मोटरबाइक।

iv. **समयमान–निर्णय**– उदाहरणार्थ 1 दिसम्बर–2007

v. **भुगतान–निर्णय**– उदाहरणार्थ नगदी द्वारा।

5. क्रयोपरान्त निर्णय

उपभोक्ता किन्हीं अपेक्षाओं से उत्पाद का क्रय करता है। भले ही यह अत्यन्त क्रमबद्धता से निर्णय करे फिर भी पूर्ण संतोष का आश्वासन् नहीं होता। संतोष के अपेक्षित स्तर व वास्तविक संतोष–स्तर के मध्य भिन्नता की सम्भावना सदैव बनी रहेगी। इसके बाद के व्यवहार पर संतोष/असंतोष के स्तर का प्रभाव पड़ेगा।

विपणनकर्त्ता को क्रेताओं के क्रयोपरान्त अनुभव की निगरानी करनी चाहिए जिसमें निम्नांकित बिन्दु सम्मिलित होंगे–

(अ) क्रयोपरान्त संतोष

(आ) क्रयोपरान्त कार्य

(इ) क्रयोपरान्त प्रयोग व निपटान।

टिप्पणी

क्रयोपरान्त संतोष

सम्भव है कि वास्तविक संतोष का स्तर प्रत्याशित संतोष के स्तर के समकक्ष न हो। इसे प्रयोग के दौरान उत्पाद में कोई समस्या अथवा विकार आ सकते हैं। यह जानना विपणनकर्त्ता का काम है कि उपभोक्ता का संतोषस्तर कितना है। उपभोक्ता का संतोष प्रत्याशित/अनुभूत निष्पादन (अपेक्षाओं) एवं वास्तविक निष्पादन के मध्य सम्बन्ध की क्रिया है।

अपेक्षाओं व निष्पादन के मध्य का अन्तराल अधिक होने से उपभोक्ता के असंतोष का स्तर भी अधिक होगा। उपभोक्ता तब पूर्ण संतुष्ट कहा जा सकता है यदि उत्पाद के प्रति उसकी इच्छाएं उसके पूर्वानुमान अनुसार अथवा उससे भी अधिक तृप्त हो रही हों। यदि यह संतुष्ट हुआ तो उत्पाद को पुनः क्रय कर सकता है अथवा दूसरों से ऐसा करने को कहेगा। अपेक्षा व निष्पादन के मध्य के अन्तराल को न्यूनतम करने के लिये विक्रेता उत्पाद के लाभों को अतिशय रूप में प्रस्तुत न करे; उत्पाद के सम्भावित निष्पादन के विषय में वास्तविक वर्णन ही करे।

क्रयोपरान्त कार्य

स्पष्ट है कि उत्पाद से उपभोक्ता के संतोष का स्तर उसके बाद के व्यवहार/कार्य को प्रभावित करेगा। यदि यह पर्याप्ततया संतुष्ट हुआ तो उत्पाद का पुनर्क्रय करेगा व अन्यों को सूचित करेगा। इसी कारण विपणनकर्त्ता द्वारा कहा जाता है– "हमारा बेहतर विज्ञापन होगाः संतुष्ट ग्राहक"। इसके विपरीत असंतुष्ट ग्राहक भिन्न प्रकार से प्रतिक्रिया करेगा। यह उस उत्पाद को छोड़ सकता है, उसका प्रयोग रोक सकता है अथवा क्षतिपूर्ति के लिये कम्पनी में शिकायत कर सकता है अथवा सम्बन्धित सुनवाई केन्द्रों में जा सकता है तथा उस उत्पाद/ब्रांड से दूर रहने का परामर्श अपने परिचितों को प्रदान कर सकता है। विपणनकर्त्ता का कार्य उपभोक्ता के क्रयोपरान्त असंतोष को अल्पतम करने की ओर कदम बढ़ाना है।

असंतोष को निम्नांकित प्रकारेण घटाया जा सकता है–

1. अपने/उसके निर्णय को तर्कसंगत बताने के लिये उपयुक्त चयन की दिशा में उपभोक्ता को बधाई देना
2. उत्पाद के प्रभावी प्रयोग हेतु पथप्रदर्शन के लिये प्रपुस्तिका प्रेषित करना
3. उपभोक्ताओं से सुझाव आमंत्रित करना
4. प्रभावी परामर्शण एवं विक्रयोपरान्त सेवाओं द्वारा शिकायतों का प्रबन्धन
5. उत्पाद में किये गये परिवर्तनों के बारे में सूचित करना
6. राशि लौटाना अथवा उत्पाद–विनिमय करने देना इत्यादि।

छानबीन करनी चाहिए कि उत्पाद में क्या–क्या कमियां हैं। उपभोक्ताओं से गहन अनौपचारिक सम्बन्धों द्वारा मूल्यवान् सूचनाएं सुलभ हो सकती हैं। स्मरण रखना कि संतुष्ट ग्राहक की अपेक्षा असंतुष्ट ग्राहक अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे मिली हर जानकारी उत्पाद की समस्या को उजागर करके परामर्श सामने ले आयेगी। विपणनकर्त्ता को शिकायतों का स्वागत करना चाहिए व उजले भविष्य हेतु उनका निवारण सतर्कता से करना चाहिए।

क्रयोपरान्त प्रयोग एवं निपटान

टिप्पणी

विपणनकर्त्ता को निगरानी करनी होगी कि उपभोक्ता द्वारा उत्पाद का प्रयोग व निपटान किस प्रकार किया जा रहा है। ऐसी सूचनाओं से विपणनकर्त्ता के आगे का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। विपणनकर्त्ता सम्भावित समस्याओं से अवगत हो सकता है व उत्पाद–सम्बन्धी अवसरों को देख सकता है।

साधारण परिस्थिति में उपभोक्ता द्वारा उत्पाद का प्रयोग अथवा निपटान निम्नांकित रीतियों में किया जाता हैं–

1. सम्भव है कि वह उत्पाद का उपभोग तत्काल न करे, भविष्य–प्रयोग के लिये भण्डारित रख ले;
2. क्रय के पश्चात् उत्पाद का पूर्ण उपयोग तुरंत कर ले;
3. उसका पुनर्विक्रय अथवा व्यापार कर दे;
4. उत्पाद का प्रयोग उस प्रकार कर ले जिसके लिये उसे बनाया ही नहीं गया हो। उत्पाद का प्रयोग नवीन प्रकारों से कर रहा हो;
5. उपहार के रूप में किसी को उत्पाद सौंप चुका हो;
6. मन बदल लिया हो जिससे उत्पाद को निरुपयोगी समझ दूर कर दिया हो।

विपणनकर्त्ता इस अध्ययन–आधार पर विपणन–कार्यक्रम में परिवर्तन अथवा रूपान्तरण कर सकता है कि उत्पाद का प्रयोग व निपटान कैसे किया गया है। यदि उपभोक्ता अधिक रचनात्मक है तो यह खोजबीन करनी अधिक महत्तापूर्ण हो जाती है कि उसने उत्पाद का उपभोग अथवा निपटान कैसे किया।

इस प्रकार 'क्रय–कार्यविधि' वास्तव में समस्या–पहचान से लेकर क्रेताओं की प्रतिक्रिया तक की यात्रा है। यह समूची कार्यविधि विक्रेता के लिये बहुत उपयोगी है। इस कार्यविधि में वे अधिकांश कारक सामने आ जाते हैं जिनसे उपभोक्ता प्रभावित हो रहे हों। इसीलिये विपणनकर्त्ता को उपभोक्ताओं के दृष्टिकोण से क्रय–कार्यविधि का अध्ययन करना चाहिए। कम्पनी को उपभोक्ता द्वारा उत्पाद के क्रय की प्रत्येक अवस्था में उसके सहयोग की ओर कदम उठाने चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए

9. "प्रबंधन औपचारिक रूप से संगठित दलों में व्यक्तियों के साथ मिल कर कार्य करने की कला है"– किसका कथन है?

   (क) स्टेनले वेंस (ख) कंडिफ एवं स्टिल

   (ग) प्रो. पाइल (घ) कुंट्ज तथा ओ'डोनेल

10. "विपणन विज्ञान नहीं है, जबकि इसे विज्ञान होना चाहिए"– यह कथन किसका है?

    (क) एम.जे. बेकर (ख) लेविड

    (ग) रॉबर्ट फर्बर (घ) अल्फ्रेड वेबर

टिप्पणी

2.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (घ)
3. (क)
4. (ग)
5. (ख)
6. (घ)
7. (ग)
8. (ख)
9. (घ)
10. (क)

2.8 सारांश

संगठन की सफलता पूरी तरह से उचित प्रकार की परियोजना के चुनाव पर ही निर्भर करती है। परियोजना की पहचान आर्थिक आंकड़ों को एकत्र करने, जोड़ने तथा विश्लेषण करके निवेश के सम्भावित अवसरों को खोजने से जुड़ी होती है। परियोजना के विचार विभिन्न स्रोतों या विभिन्न कारणों जैसे–रिश्तेदारों की सफलता की कहानियों, विशेष उत्पादों की मांग, मित्रों की व्यावसायिक सफलता, दूसरों के उत्पादन एवं बिक्री से सम्बन्धित अनुभव, किसी आयात किये जाने वाले उत्पादन का विकल्प बनाने का अवसर या फिर वह उत्पाद जिसकी मांग अधिक से तथा अधिक प्रेरणा, पृष्ठभूमि एवं उद्यमी तथा उसके सहयोगियों की क्षमता से उत्पन्न होते हैं।

परियोजना की सही पहचान करने से उद्यमी की सफलता सुनिश्चित होती है। यद्यपि परियोजना की पहचान करने के लिए कोई स्पष्ट नियम एवं नियमन नहीं है, फिर भी अधिकांश उद्यमी परियोजना की पहचान करने के लिए अपने अनुभव एवं मस्तिष्क का ही सहारा लेते हैं। यदि कुछ उद्यमी उत्पादन/निर्णय के किसी विशिष्ट क्षेत्र में प्रवेश कर गये हैं और उसमें सफल रहे हैं, तो सामान्य उद्यमी भी उसी का अनुकरण करते हैं। धीरे–धीरे उक्त परियोजना में प्रवेश करने वाले उद्यमियों की संख्या इतनी अधिक हो जाती है कि वह लाभ प्रदान करने वाली परियोजना हानि देने वाली परियोजना में बदल जाती है।

किसी भी परियोजना का प्रारंभ उसमें उपलब्ध अवसरों के विश्लेषण से होता है। अवसरों के विश्लेषण से तात्पर्य परियोजना के गुण, दोषों, जोखिमों, बाधाओं, कमियों आदि का व्यापक रूप से मूल्यांकन करना है। यह जांचना होता है कि कौन–कौन से घटक अवसरों की वृद्धि में सहायक सिद्ध होते हैं और कौन–कौन से बाधक होते हैं।

परियोजना प्रबंधन योजना बनाने, संगइन करने, जांच करने, एवं एक परियेाजना पर नियंत्रण करने एवं एक परियोजना में विशिष्ट समय, लागत एवं प्रदर्शन के अन्तर्गत परियोजना उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संलिप्त सभी को अभिप्रेरित करने की एक प्रक्रिया है। अच्छी परियोजना योजित करना वृहदतर लाभप्रदत्ता एवं वृहदतर ग्राहक

संतुष्टि में परिणत होती है। इसलिए उद्यमिता विकास के लिए एक परियोजना को अच्छी तरह स्थापित करना आवश्यक है।

टिप्पणी

परियोजना के सूत्रीकरण से तात्पर्य परियोजना के विचार की कदम–कदम पर जांच पड़ताल से है। परियोजना के सूत्रीकरण को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं कि यह एक उद्यमी की परियोजना के विचार पर ध्यानपूर्वक दी गई नजर है, जिससे वह (उद्यमी) विभिन्न चीजों का आकलन कर एक पूर्ण रूप से लाभप्रद परियोजना का निर्माण कर सके। परियोजना का सूत्रीकरण उद्यमी को प्रत्यक्ष तथ्यों पर आधारित पक्का निश्चय लेने में सहायता करता है। परियोजना के सूत्रीकरण का प्रमुख उद्देश्य पर्याप्त संसाधनों तथा मितव्ययितापूर्वक परियोजना के लक्ष्यों को प्राप्त करना होता है।

किसी भी परियोजना में विनियोजित किये जाने वाले संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग होना अत्यंत आवश्यक है और यह तब ही सम्भव है, जब उद्यमी की परियोजना सुदृढ़ एवं लाभप्रद हो। एक सुदृढ़ परियोजना जहां एक ओर उद्यमी को निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता प्रदान करती है, वही दूसरी और विनियोजन पर सुस्थिर आय प्रदान करती है। अतः किसी भी प्रस्तावित परियोजना का मूल्यांकन होना अतिआवश्यक है। किसी भी उद्योग के लिये तैयार की गई परियोजना रिपोर्ट की सफलता उसकी विश्वसनीयता, सत्यता तथा यथार्थता पर निर्भर करती है। किसी परियोजना की सामाजिक, आर्थिक, वित्तीय एवं तकनीकी योग्यता को ज्ञात करने के उद्देश्य से ही परियोजना का आकलन किया जाता है। परियोजना आकलन के आधार पर ही वित्तीय संस्थान अथवा सरकारी विभागों से ऋण की स्वीकृति प्राप्त होती है।

संगठन से आशय औद्योगिक फर्म अथवा व्यावसायिक फर्म से है। यह एक तकनीकी इकाई होती है, जिसका संगठन लाभ अर्जन के उद्देश्य से किसी वस्तु के उत्पादन अथवा किसी सेवा की पूर्ति के लिए किया जाता है। संगठन का संचालन किसी एक व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह द्वारा किया जाता है। यदि उद्योगों का स्थानीकरण विवेकपूर्ण भौगोलिक विशिष्टीकरण के अनुसार किया जाता है, तो प्रत्येक प्रदेश स्थानीय, मानवीय और भौतिक साधनों के अनुरूप उत्पादन कार्य में विशिष्टता प्राप्त करता है, और साधनों का सबसे उत्तम उपयोग करके, कम लागतों पर वस्तुओं का उत्पादन करके उस प्रदेश की प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि करता है।

वित्त का प्रबंधन व्यापारिक वित्त का एक और महत्वपूर्ण क्षेत्र है। वित्त का प्रबंधन फर्म की परिसंपत्तियों तथा परिसंपत्तियों की संरचना के मिश्रण से संबंधित है। एक फर्म को हमेशा अपनी परिसंपत्तियों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। मुख्य निवेश के समय फर्म को ऋण तथा इक्विटी पूंजी के अनुपात का समुचित मिश्रण करना चाहिए, क्योंकि पूंजी संरचना ऋण व इक्विटी पूंजी का अनुपात है। ऋण व इक्विटी के समुचित अनुपात से युक्त पूंजी संरचना को सर्वोत्कृष्ट पूंजी संरचना कहा जाता है। इस तरह, वित्त प्रबंधक को सर्वोत्कृष्ट पूंजी संरचना तथा शेयरधारकों के प्रतिलाभ बढ़ाने के लिए निर्मित किए जाने वाले फंड के अनुपात के संदर्भ में कोई निर्णय करना चाहिए।

विपणन एक विस्तृत धारणा है जिसमें उन सभी साधनों तथा क्रियाओं को शामिल किया जाता है जो वस्तुओं और सेवाओं को उत्पादक से उपभोक्ता तक पहुंचाने के लिए आवश्यक होती हैं। विपणन का मुख्य उद्देश्य सही उत्पाद को, सही समय पर, सही स्थान पर तथा सही कीमत पर, सही मात्रा में सही उपभोक्ता तक पहुंचाना होता है। विपणन से ही उत्पादन वृद्धि की प्रेरणा मिलती है। विपणन किसी भी संस्था की सफलता का आधार होता है। यही कारण है कि वर्तमान समय में विपणन का कार्य, उत्पादन

(Production), क्रय (Purchase), वित्त (Finance), अनुसंधान (Research), मानव संसाधन (Human Resource) आदि सभी कार्यों से अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है।

टिप्पणी

2.9 मुख्य शब्दावली

- **मितव्ययी** : कम खर्चीला।
- **पूर्वज्ञान** : पहले से ज्ञात सूचना।
- **विनियोक्ता** : नियुक्ति करने वाला।
- **प्रवर्तक** : प्रारंभकर्ता।
- **अधिकीकरण** : अधिक करने की क्रिया।

2.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. परियोजना प्रस्ताव का अर्थ एवं उद्देश्य बताइये।
2. संगठन कितने प्रकार के हो सकते हैं? प्रकाश डालिए।
3. उत्पादन प्रबंधन से क्या आशय है?
4. वित्तीय प्रबंधन के अंतर्गत कौन–कौन से विषय आते हैं?
5. विपणन का अर्थ एवं उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
6. उपभोक्ता प्रबंधन क्या है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. किसी उद्यम के लिये परियोजना प्रस्ताव तैयार करने की आवश्यकता एवं उद्देश्य का विस्तार सहित परिचय दीजिए।
2. संगठन के स्वरूप, गुण–दोषों, प्रकारों एवं उनकी विशिष्टताओं को स्पष्ट कीजिये।
4. उत्पादन प्रबंधन एवं वित्तीय प्रबंधन का स्वरूप बताते हुए उनका अंतर स्पष्ट कीजिये।
5. विपणन एवं उपभोक्ता प्रबंधन क्या है? इनके प्रमुख सिद्धांतों का परिचय दीजिये।

2.11 सहायक पाठ्य सामग्री

जी.एस. सुधा, *उद्यमिता की अवधारणा*, रमेश बुक डिपो, 1995
एम.एल. झिंगन, *आर्थिक विकास में उद्यम वृत्ति*, कोणर्क पब्लिशर्स प्रा. लि. 1972
एस.सी. सक्सेना, *व्यवसाय प्रशासन एवं प्रबंध*, साहित्य भवन, आगरा, 2002
एस.के. गुप्ता, *उत्पादन की विधियां*, विशाल प्रकाशन मन्दिर, मेरठ, 1996
पाण्डेय एवं सिंह, *उत्पादन प्रबंध*, एपसाइलन पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., कानपुर, 1995
अंजनि कुमार मालवीय, *मानव संसाधन प्रबंध*, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2009
डॉ. आर.एस. कुलश्रेष्ठ, *औद्योगिक अर्थशास्त्र*, साहित्य भवन, आगरा, 1992

इकाई 3 उद्यमिता हेतु नियामक संस्थाओं की भूमिका

टिप्पणी

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 नियामक संस्थाओं की भूमिका
  3.2.1 केन्द्रीय स्तर के संगठन
  3.2.2 राज्य स्तर के संगठन
  3.2.3 अनुसंधान परीक्षण एवं मानक संगठन
3.3 विकासात्मक संस्थाओं की भूमिका
3.4 स्वरोजगार मूलक योजनाएं
3.5 विभिन्न अनुदान योजनाएं
3.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

एक उद्यमी को अपने व्यवसाय के लाभ और उत्पादकता की स्थिरता सुनिश्चित करने के लिये देश की बुनियादी नियामक आवश्यकताओं को ध्यान में रखना पड़ता है। सबसे महत्वपूर्ण विनियमन पर्यावरण से संबंधित है। पर्यावरण नियामक आवश्यकताएं पर्यावरण संरक्षण के हर पहलू को ध्यान में रखते हुए एक व्यापक विधायी ढांचे की परिकल्पना करती हैं। मोटे तौर पर, इसमें हवा, शोर, पानी आदि के लिये उत्सर्जन मानक शामिल हैं, साथ ही खतरनाक कचरे के उत्सर्जन के लिये भी अलग से कानून बनाये गये हैं। हर उद्योग के लिये पर्यावरण संरक्षण के इन दिशानिर्देशों और मापदंडों का पालन करना अनिवार्य होता है।

सुचारु और प्रभावी कामकाज के लिये एक संगठन को अपने कर्मचारियों के स्वास्थ्य और सुरक्षा को सुनिश्चित करना चाहिए। भारत में व्यावसायिक स्वास्थ्य और सुरक्षा से संबंधित प्रमुख विधान हैं– कारखाना अधिनियम, 1948; खान अधिनियम, 1952 और डॉक कार्मिक (सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण) अधिनियम, 1986। खान सुरक्षा महानिदेशालय (DGM) तथा कारखाना परामर्श सेवा एवं श्रम संस्थानों का महानिदेशालय (DGFASLI) ये दो क्षेत्रीय संगठन हैं, जो खानों, कारखानों और बंदरगाहों में व्यावसायिक सुरक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में श्रम और रोजगार मंत्रालय के अधीन काम करते हैं। इसके अलावा, भारत सरकार ने बाजार अर्थव्यवस्था में स्वस्थ और निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा सुनिश्चित करने के लिये एक प्रतिस्पर्धा नीति की घोषणा करते हुए, प्रतियोगिता अधिनियम, 2002 को लागू करने और भारत के प्रतिस्पर्धा आयोग की स्थापना करने जैसे कदम उठाये हैं। इनका उद्देश्य प्रतिस्पर्धा–विरोधी व्यापार प्रथाओं को रोकना, किसी उद्यमी द्वारा प्रभुत्व के दुरुपयोग और साथ ही विलय एवं अधिग्रहण जैसे विभिन्न व्यावसायिक संयोजनों को विनियमित करना है।

टिप्पणी

वस्तुओं और सेवाओं के निर्यात एवं आयात के नियमन के लिये एक उद्यमी को विदेश व्यापार (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1992 और समय–समय पर सरकार द्वारा घोषित EXIM नीतियों का पालन करना होता है। वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय भारत में विदेशी व्यापार के प्रचार और नियमन से संबंधित सबसे महत्वपूर्ण अंग है। मंत्रालय के पास व्यापार के विभिन्न पहलुओं की देखभाल के लिये एक विस्तृत संगठन है। मंत्रालय के भीतर, वाणिज्य विभाग विदेश व्यापार नीति तैयार करने और उसे लागू करने के लिये जिम्मेदार है।

इस इकाई में भारत में उद्यमिता विकास में नियामक एवं विकासात्मक संस्थाओं की भूमिका का विश्लेषण करते हुए सरकार की स्वरोजगारमूलक एवं विभिन्न अनुदान योजनाओं का भी विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- उद्यमिता विकास के क्षेत्र में नियामक एवं विकासात्मक संस्थाओं की भूमिका से अवगत हो पाएंगे;
- उद्यमिता के विकास के लिये भारत सरकार की स्वरोजगारमूलक योजनाओं से सम्बंधित जानकारी प्राप्त करेंगे;
- उद्यमिता को प्रोत्साहित करने के लिये सरकार की विभिन्न अनुदान योजनाओं का परिचय प्राप्त करेंगे।

3.2 नियामक संस्थाओं की भूमिका

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व औद्योगिक विकास कुछ शहरों तथा कुछ घरानों तक ही सीमित था। सरकार ने क्षेत्रीय विकास के उद्देश्य से औद्योगिक रूप से पिछड़े व ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न सुविधाएं देकर विकास को बढ़ावा देने का निर्णय लिया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा विभिन्न संस्थानों का गठन किया गया। इन संस्थानों ने भारत में औद्योगिक विकास एवं उद्यमिता विकास कार्यक्रमों के संचालन एवं संगठन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इनमें प्रमुख संस्थान निम्नलिखित हैं–

3.2.1 केन्द्रीय स्तर के संगठन

उद्यमिता विकास कार्यक्रम के लिए अनेक केन्द्रीय स्तर के संगठन की स्थापना की गई है। ये अग्रांकित हैं–

1. **लघु उद्योग विकास संगठन** (SIDO) : लघु उद्योग विकास संगठन की स्थापना 1954 में की गई थी। इसके अंतर्गत 27 लघु उद्योग सेवा संस्थान, 31 शाखा संस्थान, 37 विस्तार केन्द्र, 3 क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्र, 20 स्थानीय प्रशिक्षण केन्द्र, 4 उत्पाद प्रक्रिया केन्द्र एवं 4 उत्पादन केन्द्र सम्पूर्ण देश में अपनी सेवाएं प्रदान करते हैं। इस संस्थान के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–
   (i) केन्द्रीय सरकार एवं राज्य सरकार, योजना आयोग (वर्तमान में नीति आयोग) एवं अन्य संस्थाओं के बीच समन्वय रखना।

टिप्पणी

(ii) लघु उद्योगों के लिये नीतियां एवं कार्यक्रमों का निर्धारण करना।

(iii) लघु उद्योगों के विस्तार एवं उत्पादिता बढ़ाने हेतु तकनीकी, आर्थिक एवं प्रबंधकीय सलाह प्रदान करना, विपणन में सहायता प्रदान करना तथा सरकारी क्रय–कार्यक्रमों में भाग लेने के सम्बन्ध में मार्गदर्शन की व्यवस्था करना।

(iv) पिछड़े क्षेत्रों तथा ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिये प्रशिक्षण कार्यक्रमों के लिए योजनाएं बनाना व लागू करना।

(v) पूरे देश में औद्योगिक एस्टेटों तथा सहायक उद्योगों के विकास कार्यक्रमों में समन्वय स्थापित करना (vi) आयातित कच्चे माल की व्यवस्था करना।

(vii) लघु उद्योगों को कच्चा माल, प्रबंध, विपणन, आधुनिकीकरण, नियति एवं तकनीकी सेवाओं के सम्बन्ध में सहायता प्रदान करना।

(viii) लघु उद्योग क्षेत्रों के लिये कुछ उत्पादों को आरक्षित करना।

यह संस्थान/संगठन संपूर्ण देश के लघु उद्योग सेवा संस्थानों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से उद्यमी तैयार करने के कार्यक्रम संचालित करता है। इस संस्थान ने महिला उद्यमियों की समस्याओं को हल करने के लिए महिला प्रकोष्ठ की स्थापना कर रखी है। सीडो लघु उद्योगों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति को उच्च प्राथमिकता देता है यह कच्चे माल के आपूर्तिकर्त्ताओं, उत्पादकों, पथ प्रदर्शकों, एजेन्सियों एवं राज्य उद्योग निदेशकों से निकट सम्पर्क रखता है।

लघु उद्योग विकास संगठन (सीडो) लघु इकाइयों को विपणन परामर्श एवं सहायता भी उपलब्ध कराता है। उसके विपणन कार्यक्रम के अधीन निम्न दो योजनाएं संचालित हैं–

(अ) **श्रेष्ठ उत्पादों के लिए पुरस्कार** : इस योजना के अधीन उत्कृष्ट माल के उत्पादन हेतु लघु इकाइयों को पुरस्कार दिये जाते हैं। इसमें ट्रॉफी और सम्मान पत्र के साथ प्रथम पुरस्कार के लिए 15,000 रुपये तथा द्वितीय पुरस्कार के लिये 10,000 रुपये नकद दिये जाते हैं।

(ब) **केन्द्र सरकार भण्डार खरीद कार्यक्रम** : इस योजना के अधीन लघु क्षेत्र से सरकार द्वारा की जाने वाली खरीद में वृद्धि करने के लिए डी. जी. एस. एण्ड डी. द्वारा केन्द्र सरकार खरीद कार्यक्रम शुरू किया गया है वर्तमान में लघु उद्योगों से क्रय हेतु 409 मदें आरक्षित हैं।

2. **राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम लिमिटेड** (NSIC) : राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम की स्थापना केन्द्रीय सरकार द्वारा सन् 1955 में की गई थी। इस संस्था की स्थापना का मुख्य उद्देश्य लघु उद्योगों का सरकारी खरीद के कार्यक्रम में भाग लेने में सहायता करना था। यह निगम अपने विपणन सहायता कार्यक्रमों के अंतर्गत लघु उद्योगों के उत्पादों के लिए वृहत बाजार की व्यवस्था करता है। यह निगम स्वदेशी विपणन कार्यक्रम के अंतर्गत एक ही वस्तु का उत्पादन करने वाले लघु उद्योगों को एक सहायता संघ के रूप में संगठित करता है। यह बाजारों की खोज करता है। तत्पश्चात् लघु उद्योगों को उनकी उत्पादन क्षमता के आधार पर आदेश बांटे जाते हैं। निगम एजेन्सी आधार पर लघु इकाइयों द्वारा उत्पादित

टिप्पणी

मशीनों का भी विपणन करता है। यह लघु इकाइयों के उत्पादों के निर्यात की व्यवस्था भी करता है। राष्ट्रीय उद्योग निगम के प्रमुख कार्य एवं उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

(i) सरकारी खरीद कार्यक्रम के अंतर्गत लघु उद्योग इकाइयों से आदेश प्राप्त करना।

(ii) लघु उद्योगों को आयात व निर्यात में सहायता प्रदान करना।

(iii) कर्मचारियों व निरीक्षकों के लिये प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाना।

(iv) किराया क्रय पद्धति के आधार पर लघु उद्योगों को मशीनें उपलब्ध कराना।

(v) अभावग्रस्त कच्चे माल एवं कल–पुर्जों का वितरण करना।

(vi) तकनीकी परामर्श एवं अन्य सुविधाएं प्रदान करना।

लघु इकाइयों को निगम के पास पंजीकरण कराने हेतु संबंधित राज्य के लघु उद्योग सेवा संस्थान के पास फर्म भरकर जमा कराना होता है। इस संस्थान की सिफारिश पर ही निगम लघु इकाई को पंजीकरण संख्या जारी करता है। पंजीकृत होने पर लघु इकाइयों को कई लाभ प्राप्त होते हैं उनमें से कुछ लाभ निम्न प्रकार से हैं–

(i) इन्हें जमानत की राशि जमा कराने से छूट मिलती है।

(ii) इन्हें सरकारी क्रय में 15 प्रतिशत की मूल्य वरीयता दी जाती है।

(iii) ये इकाइयां राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम के कार्यालयों से निःशुल्क टेण्डर प्राप्त कर सकती है।

(iv) इन्हें निगम की सिफारिश पर किसी ऑर्डर को पूरा करने के लिए भारतीय स्टेट बैंक से 80,000 रुपये तक का ऋण आसानी से मिल जाता है।

राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम लघु उद्योगों को किराया क्रय पद्धति के आधार पर मशीनों की आपूर्ति के लिए औद्योगिक वित्त भी प्रदान करता है। निगम ने नई दिल्ली, राजकोट, चेन्नई, हावड़ा तथा हैदराबाद में प्रोटोटाइप उत्पाद एवं प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किए हैं। केन्द्र निगम कार्यों का सम्पादन करते हैं–(1) लघु उद्योगों को उत्पादन तकनीकों तथा प्रक्रियाओं के विषय में सामान्य सुविधाएं तथा तकनीकी सुविधाएं प्रदान करना। (2) लघु उद्योगों में कार्यरत कुशल श्रमिकों तथा सुपरवाइजरों को विभिन्न प्रकार का आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान करना। (3) लघु उद्योगों हेतु मशीनों के डिजाइन तैयार करना तथा उनके प्रोटोटाइप तैयार करना।

3. **अखिल भारतीय लघु उद्योग बोर्ड** : अखिल भारतीय लघु उद्योग बोर्ड की स्थापना 1954 में एक सलाहकार समिति के रूप में की गई है। यह बोर्ड लघु उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए तथा उनके विकास के लिये नीतियों एवं कार्यक्रमों का निर्धारण करता है इस बोर्ड का अध्यक्ष केन्द्रीय मंत्री होता है। इसके अतिरिक्त केन्द्र एवं राज्य सरकारों के प्रतिनिधि, रिजर्व बैंक व स्टेट बैंक

के प्रतिनिधि, विभिन्न संस्थाओं के प्रतिनिधि जैसे राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम, राज्य वित्त निगम, राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम, राज्यों के लघु उद्योग बोर्ड, लोक सेवा सदस्य, व्यापार, एवं उद्योग के प्रतिनिधि भी इसके सदस्य होते हैं।

टिप्पणी

4. **प्रबंधकीय विकास संस्थान :** प्रबंधकीय विकास संस्थान (MDI) की स्थापना 1973 में गुड़गांव में की गई है। इसका उद्देश्य दिन–प्रतिदिन के प्रबंधकीय कार्यों में गुणवत्ता लाना है। इसके अंतर्गत मुख्य रूप से औद्योगिक एवं बैंकिंग क्षेत्र में प्रबंधकीय कार्यों की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिये कार्य किये जाते हैं। यह संस्थान Indian Economic Service (IES), Indian Administrative Service (IAS) Oil and Natural Gas Commission (ONGC), Bharat Heavy Electricals Ltd. (BHEL) आदि के पदाधिकारियों के लिए कार्यक्रम आयोजित करता है।

5. **भारतीय उद्यमिता विकास संस्थान :** भारतीय उद्यमिता विकास संस्थान देश में उद्यमिता विकास के लिए विशिष्ट दायित्व से युक्त एक प्रमुख संस्थान है। यह संस्थान भावी उद्यमियों को प्रशिक्षण प्रदान करता है। यह संस्थान विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों की प्रगति व स्त्रियों में उद्यमिता विकास के लिये कार्यरत है। संस्थान ने महिलाओं के लिए विशिष्ट उद्यमिता विकास कार्यक्रम बनाया है। जिसका प्रथम कार्यक्रम 1983 में आयोजित किया गया आजकल यह संस्थान ग्रामीण क्षेत्रों की प्रगति के लिये कार्य कर रहा है।

6. **लघु उद्योग सेवा संस्थान :** नई दिल्ली सहित प्रत्येक राज्य में एक–एक लघु उद्योग सेवा संस्थान कार्यरत है। लघु उद्योग विकास संगठन (SIDO) लघु उद्योग सेवा संस्थानों (SISI) के माध्यम से औद्योगिक विस्तार सेवा का संचालन करता है। इसके अंतर्गत लघु उद्योगों को आर्थिक, तकनीकी एवं प्रबंधकीय विधियों के संबंध में जानकारी एवं परामर्श प्रदान किया जाता है। यह संस्थान प्रबंधकीय प्रशिक्षण के कार्यक्रम भी संचालित करता है। इस संस्थान के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

   (i) विशेष उद्योगों के लिए सर्वेक्षण करना।

   (ii) नये उद्यमियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाना।

   (iii) लघु इकाइयों को औद्योगिक संबंध, कच्चे माल विपणन आदि के बारे में परामर्श देना।

   (iv) आर्थिक अनुसंधान पर परामर्श देना।

   (v) कच्चे माल के उपयोग, मशीन–संयंत्रों तथा उन्नत डिजाइनों आदि के बारे में अनुसंधान करना।

   (vi) तकनीकी परामर्श प्रदान करना।

   (vii) प्रौद्योगिकी, वाणिज्यिक तथा आर्थिक मामलों में सूचना केन्द्र के रूप में कार्य करना।

   (viii) नई प्रौद्योगिकी तथा आधुनिक मशीनों के विषय में परामर्श देना।

   (ix) मोबाइल द्वारा तकनीकी प्रक्रियाओं का प्रदर्शन करना।

टिप्पणी

7. **राष्ट्रीय लघु उद्योग विस्तार प्रशिक्षण संस्थान** : इस संस्थान की स्थापना 1960 में की गई थी। इसका प्रधान कार्यालय हैदराबाद के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों का संचालन करना है। यह संस्थान प्रबंध सहायता एवं तकनीकी परामर्श भी प्रदान करता है। यह लघु उद्यमियों एवं कामगारों के लिए सेमिनार आयोजित करता है। यह संस्थान केन्द्र तथा राज्य स्तर पर विभिन्न संगठनों को प्रशिक्षण, अनुसंधान, परामर्श तथा प्रलेख सम्बन्धी सेवाएं प्रदान करता है। यह संस्थान अपने 6 विभागों–परामर्श, प्रलेख, औद्योगिक विकास, औद्योगिक प्रबंध, व्यावहारिक विज्ञान तथा संचार के माध्यम से कार्य करता है। इस संस्थान को अनेक क्षेत्रों में विशेषज्ञता हासिल है। इस संस्थान का एक केन्द्र 1977 में गुवाहाटी में खोला गया है।

8. **राष्ट्रीय उद्यमिता एवं लघु व्यवसाय संस्थान** : उद्योग मंत्रालय के अंतर्गत गठित इस संस्थान की स्थापना 1983 में हुई थी। इसका केन्द्रीय कार्यालय नई दिल्ली में है। इस संस्थान के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

   (i) उद्यमिता एवं लघु व्यवसाय के विकास में संलग्न संस्थाओं का मार्गदर्शन करना।

   (ii) आदर्श उद्यमिता पाठ्यक्रम तैयार करना एवं परीक्षाएं आयोजित करना।

   (iii) लघु उद्यमियों के लिये सम्मेलन एवं विचार गोष्ठियां आयोजित करना।

   (iv) विभिन्न एजेन्सियों के कार्यक्रमों में समन्वय बनाना तथा उनकी क्रियाओं का निरीक्षण करना।

   (v) प्रेरकों, प्रशिक्षणार्थियों एवं लघु उद्यमियों के लिए प्रशिक्षण पाठ्यक्रम चलाना।

   (vi) उद्यमिता विकास हेतु अनुसंधान करवाना।

9. **राष्ट्रीय अनुसंधान एवं विकास निगम** : भारत सरकार के विज्ञान एवं औद्योगिक अनुसंधान विभाग के अंतर्गत इस निगम की स्थापना 1953 में की गई थी। इसका प्रमुख कार्य प्रौद्योगिकी विकास में सहायता प्रदान करना है। यह प्रौद्योगिकी हस्तांतरण का कार्य भी करता है। यह निगम प्रौद्योगिकी विकास संस्थाओं से संबंध स्थापित करता है तथा विभिन्न अनुसंधान एवं विकास संस्थाओं द्वारा उत्पादित स्वदेशी प्रौद्योगिकी का विशाल भण्डार तैयार करता है। यह निगम अन्य अनुसंधान संस्थानों तथा विभिन्न अनुसंधान व विकास निगमों व परिषदों के सहयोग से कार्य करता है। इसमें मुख्य विज्ञान एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् तथा भारतीय औषध अनुसंधान परिषद् शामिल हैं।

   वर्तमान समय में निगम के 29 ग्रामीण प्रौद्योगिकी प्रदर्शन एवं प्रशिक्षण केन्द्र कार्यरत हैं। इस निगम ने नेपाल, केन्या, बर्मा, श्रीलंका, फिलीपीन्स, मलेशिया, अमेरिका तथा जर्मनी आदि देशों को प्रौद्योगिकी का हस्तांतरण करके अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है।

10. **भारतीय राज्य व्यापार निगम लिमिटेड** : भारतीय राज्य व्यापार निगम लिमिटेड की स्थापना 1956 में की गई थी। इस निगम का मुख्य उद्देश्य निर्यात

टिप्पणी

में वृद्धि करना तथा ऐसी वस्तुओं का आयात करना है जिनके लिए सरकार समय–समय पर निर्देश दे। यह निगम उद्योगों को आयातित कच्चा माल उचित मूल्य पर उचित समय पर उपलब्ध करवाता है। भारतीय राज्य व्यापार निगम कच्चे तथा पक्के माल का आयात करने वाला सबसे बड़ा अभिकरण है। निगम द्वारा आयात की जाने वाली कुछ मदें आरक्षित हैं जिनके लिए उपभोक्ताओं को प्रत्यक्ष रूप से अलग लाइसेंस नहीं दिये जाते हैं। निगम विभिन्न वस्तुओं की सूची बनाकर विदेशी सप्लायर्स को थोक मात्रा में आदेश देकर सस्ती दरों पर माल क्रय करता है। यह आयातित माल को छोटे उद्योगों तथा वास्तविक उपभोक्ताओं को उनकी पंजीकृत मांग के अनुसार वितरित करता है। निगम आयात के क्षेत्र में निम्न कार्य करता है–

(i) ऐसी वस्तुओं का आयात करना जिनके लिए निगम को संपूर्ण अधिकार प्राप्त है जैसे पारा, कच्चा रेशम, उर्वरक व कास्टिक सोडा।

(ii) उपभोक्ताओं को नकद मूल्य पर देने हेतु कच्चे माल का आयात कर उनकी आवश्यकता की पूर्ति करना।

(iii) ऐसी वस्तुओं का आयात करना जिनसे देश में मूल्य स्तर को स्थिर रखने में मदद मिले।

राज्य व्यापार निगम उद्योगों के निर्यात में भी सहायता प्रदान करता है। निगम द्वारा लघु उद्योगों के निर्यात में सहायता देने के लिए ''लघु उद्योग निर्यात सहायता'' नामक योजना संचालित की गई है। इस योजना का लाभ उठाने के लिए लघु उद्योगों को अपने क्षेत्र से संबंधित लघु उद्योग संस्थान के माध्यम से इस निगम के पास पंजीयन करवाना होता है। निगम निर्यात संबंधी निम्न कार्य सम्पन्न करता है–

(i) निजी उद्यमियों तथा लघु उद्योगों के निर्यात प्रयासों में सहायता पहुंचाना।

(ii) ऐसी वस्तुओं का निर्यात करना जिनके लिये निर्यात का अधिकांश भाग निगम के लिए आरक्षित हो जैसे कच्चा मैंगनीज।

(iii) ऐसी वस्तुओं का निर्यात करना जिनके लिए निगम को संपूर्ण अधिकार प्राप्त हो जैसे कच्चा लोहा, सीमेण्ट, नमक आदि।

भारतीय राज्य व्यापार निगम लिमिटेड का मुख्य कार्यालय 36 जनपथ नई दिल्ली में है इसके प्रादेशिक कार्यालय मुम्बई, विशाखापट्टनम, चेन्नई व कोलकाता में हैं। इसके कई उपशाखा कार्यालय भी हैं।

11. **राष्ट्रीय उद्यमिता विकास मण्डल** : यह मण्डल देश में उद्यमिता विकास के लिए नीति निर्धारण करने वाली शीर्ष संस्था है। इसका मुख्य कार्य नीति निर्देशन एवं मार्गदर्शन करना है यह उद्यम विकास हेतु सिफारिश एवं सुझाव देता है और क्रियान्वित करने का कार्य राष्ट्रीय सहायक एवं लघु व्यापार विकास संस्थान द्वारा किया जाता है।

12. **जोखिम पूंजी एवं प्रौद्योगिकी वित्त निगम लिमिटेड** : इस निगम की स्थापना 12 जनवरी, 1988 को हुई। इसकी अधिकृत अंशपूंजी 15 करोड़ रुपये

टिप्पणी

है। निगम का मुख्य उद्देश्य उद्यमिता विकास आधार के विस्तार हेतु जोखिम पूंजी प्रदान करना है। इसके अतिरिक्त यह निगम प्रौद्योगिकी संवर्द्धन एवं विकास के लिए उच्च तकनीक वाली परियोजनाओं को उद्यम पूंजी के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान करता है। प्रौद्योगिकी वित्त में निम्न कार्यकलापों के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करता है–

(i) उत्पादन प्रक्रिया, प्रौद्योगिकी सुधार और नवीनता के लिए राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय परामर्शदाताओं व संस्थाओं का खर्च उठाना।

(ii) नई प्रौद्योगिकी, उत्पादन प्रक्रियाओं, बाजारों, सेवाओं, ऊर्जा संरक्षण, प्रौद्योगिकी विकास, पर्यावरण संरक्षण नियंत्रण हेतु मान्यता प्राप्त अनुसंधान प्रयोगशालाओं एवं उच्च अध्ययन केन्द्रों को वित्तीय सहायता देना।

(iii) वाणिज्यिक अनुसंधान व विकास कार्यक्रम चलाना।

(iv) व्यवहार्य परियोजनाओं के लिए प्रौद्योगिकी वित्त देना।

13. **भारतीय उद्यमिता विकास संस्थान, अहमदाबाद** : उद्यमिता विकास के लिए संस्थागत मूल ढांचा तैयार करने के लिए विकास बैंक ने अन्य संस्थानों के सहयोग से इस संस्थान की स्थापना अहमदाबाद में की। यह संस्थान भारत के अतिरिक्त घाना एवं नाइजीरिया सहित कई अन्य देशों में अपनी सेवाएं प्रदान करता है। इस संस्थान के प्रमुख कार्य अग्रलिखित हैं–

(i) पिछड़े व कम विकसित राज्यों में विकास कार्यक्रम चलाना।

(ii) पारस्परिक विनिमय एवं नवीन ज्ञान को प्रोत्साहित करने के लिए संगोष्ठियों का आयोजन करना।

(iii) उद्यमिता विकास कार्यक्रम चलाने के लिए पाठ्य सामग्री तैयार करना।

(iv) उद्यम विकास से संबंधित व्यावसायिक अध्ययन संस्थानों के लिए पाठ्यक्रम तैयार करना।

(v) कार्य योजनाएं तैयार करना आदि।

14. **भारतीय लघु उद्योग मण्डल संघ** : प्रत्येक राज्य में लघु उद्यमियों के अपने संघ स्थापित हैं। केन्द्रीय सरकार की पहल पर 1969 में इन स्तरीय संघों के एक शीर्ष संस्थान की स्थापना की गई है। संघ का मुख्य कार्यालय दिल्ली में तथा प्रादेशिक कार्यालय मुम्बई, कोलकाता व चेन्नई में स्थित हैं। संघ के प्रमुख उद्देश्य एवं कार्य निम्न हैं–

(i) सभी सदस्य संघों को विभिन्न सुविधाएं प्रदान करना।

(ii) उद्योगों के संबंध में अनुसंधान करवाना।

(iii) लघु उद्योगों की समस्याओं के समाधान हेतु विभिन्न सरकारी व गैर–सरकारी संस्थाओं के माध्यम से प्रत्यन करना।

(iv) सूचनाओं का एकत्रीकरण एवं परस्पर विनिमय करना।

(v) पेशेवर प्रबंधकीय एवं तकनीकी परामर्श देना।

(vi) लघु उद्योगों के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार तथा अन्य संस्थाओं से वार्ता करना।

टिप्पणी

15. **आविष्कार संवर्द्धन बोर्ड** : इस बोर्ड की स्थापना 1960 में भारत सरकार द्वारा की गई थी। इसका उद्देश्य कारीगरों, शिल्पियों तथा तकनीशियनों को नये–नये आविष्कारों के लिए प्रोत्साहित करना है। उल्लेखनीय आविष्कारों के लिए बोर्ड 500 रु. से 25,000 रुपये तक की पुरस्कार राशि एवं प्रमाण पत्र प्रदान करता है। उपयोगी सुझावों को विकसित करने के लिए बोर्ड से वित्तीय सहायता की मांग जा सकती है। ऐसे उपयोगों–सुझावों को बोर्ड के पास भिजवाया जा सकता है। बोर्ड सुझावों की तकनीकी एवं व्यावहारिक उपयोगिता की जांच करने के बाद उचित पाये जाने पर सहायता प्रदान करता है। आविष्कारों को प्रोत्साहित करने के लिए राज्य स्तर पर उद्योग निदेशक की अध्यक्षता में स्थायी समितियां बनायी गई हैं।

16. **राष्ट्रीयकृत वाणिज्यिक तथा सहकारी बैंक** : उद्यमिता विकास हेतु राष्ट्रीयकृत वाणिज्यिक एवं सहकारी बैंक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। ये बैंक उद्यमियों को भूमि की खरीद, भवन व कार्यशाला निर्माण, संयंत्र आधुनिकीकरण–नवीनीकरण, मशीनरी एवं उपकरणों की खरीद, विद्यमान उपक्रमों का विस्तार तथा कार्यशील पूंजी की आवश्यकता हेतु मध्यम व दीर्घअवधि के ऋण उपलब्ध कराते हैं। ब्याज की दर ऋण की मात्रा पर निर्भर करती है जो भारतीय रिजर्व बैंक के दिशा–निर्देशों के अनुसार बदलती रहती है।

17. **भारतीय खनिज व धातु व्यापार निगम** : इस निगम की स्थापना 1956 में खनिजों के निर्यात तथा धातुओं के आयात के लिये की गई थी। इस निगम की स्थापना से पूर्व यह कार्य भारतीय राज्य व्यापार निगम द्वारा किया जाता था। निगम का प्रमुख कार्य खनिजों व धातुओं के संबंध में नियोजन, विकास तथा निर्यात की व्यवस्था करना है। लौह–अलौह धातुओं का आयात भी इसी निगम के माध्यम से किया जाता है। निगम का मुख्य कार्यालय दिल्ली में तथा प्रादेशिक कार्यालय मुम्बई, कोलकाता, चेन्नई, विशाखापट्टनम तथा गोवा में है।

18. **निर्यात संवर्द्धन परिषद्** : किसी भी विकासशील अर्थव्यवस्था में निर्यातों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है विभिन्न उद्योगों के निर्यातों को बढ़ाने के लिए भारत सरकार ने निर्यात संवर्द्धन परिषद् की स्थापना की है। इस परिषद् के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

    (i) विदेशी बाजारों में उत्पादों की मांग के संबंध में सर्वेक्षण करना।

    (ii) विदेशी क्रेताओं के विषय में माल की मांग, किस्म व मात्रा आदि की सूचना सभी पंजीकृत आपूर्तिकर्त्ताओं को भेजना।

    (iii) निर्यात विचार–विमर्श हेतु अपने प्रतिनिधि या शिष्टमण्डल को विदेशों में भेजना तथा आमंत्रित करना।

    (iv) लघु उद्योगों को विदेशी बाजार में मूल्य दरों, क्रय की शर्तों तथा गत वर्षों के आंकड़ों की जानकारी प्रदान करना।

    (v) सरकार द्वारा समय–समय पर निर्यात नीति में परिवर्तन की जानकारी उद्यमियों को देना।

टिप्पणी

(vi) छोटे–छोटे निर्यात कर्त्ताओं के उत्पादों को विदेशी बाजारों में स्थापित करने तथा विक्रय में सहायता प्रदान करना।

(vii) विशिष्ट उत्पादों की निर्यात सम्भावनाओं का अनुमान लगाने के लिए अध्ययन दल को विदेशों में भिजवाना।

19. **भारतीय विनियोजन केन्द्र** : यह केन्द्र सरकार द्वारा स्थापित एवं स्वायत्तशासी संस्था है। इसका प्रमुख कार्य भारतीय उद्यमियों को विदेशी सहयोग बढ़ाने में सहायता प्रदान करना है। यह विदेशी उद्यमियों को आवश्यक संस्थान भी प्रदान करता है। भारतीय विनियोग केन्द्र ने उद्यमिता परामर्श संस्थान की भी स्थापना की है जिसका उद्देश्य उपयोगी परियोजनाओं का पता लगाना है। इसके साथ–साथ यह उद्यमियों को परियोजना तैयार करने, उपयुक्त स्थान का चयन करने तथा आवश्यक वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने में भी सहयोग प्रदान करता है।

20. **खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग** : खादी एवं ग्रामीण क्षेत्र के उद्योगों को विकास के लिए भारत सरकार ने 1956 में संसद में एक अधिनियम पास करके खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग (KVIC) की स्थापना की। विकेन्द्रीकृत क्षेत्र की यह महत्वपूर्ण संस्था है। वर्तमान में 96 उद्योग इसके कार्यक्षेत्र में आते हैं। KVIC अधिनियम में 1987 के संशोधन के परिणामस्वरूप ग्रामीण उद्योगों को सप्त वृहद् वर्गों में वर्गीकृत किया गया है–

(i) **खनिज आधारित उद्योग** : सोने, चांदी, पत्थर, सीप और कृत्रिम सामग्रियों के आभूषण, गुलाल रंगोली निर्माण, चूड़ी निर्माण, पेन्ट, वार्मिश व डिस्टेम्पर निर्माण, स्लेट व पेंसिल निर्माण, पत्थर से बनी उपयोगी वस्तुएं, पत्थरों की कटाई–नक्काशी आदि।

(ii) **वन आधारित उद्योग** : हाथ कागज उद्योग, कत्था निर्माण, फोटो जड़ना, गोंद, लाख का निर्माण, जूट उत्पादों का निर्माण, बांस व बेंत का कार्य, कागज के थेले, कागज के डिब्बों का निर्माण, दियासलाई पटाखे अगरबत्ती निर्माण आदि।

(iii) **कृषि आधारित खाद्य उद्योग** : दाल, मसाला आदि का प्रशोधन, बैकिंग व विपणन, गन्ना, गुड़, खाण्डसारी निर्माण, दोना बनाना, घाणी तेल, मधुमक्खी पालन, अचार, फल व सब्जी प्रशोधन, चटाई बुनना, जड़ी–बूटियों का संग्रह आदि।

(iv) **रसायन आधारित उद्योग** : चर्म शोधन, चर्म उद्योग, साबुन उद्योग, इत्र निर्माण, शैम्पू निर्माण, केश तेल, मोमबत्ती, कपूर, रबड़ की वस्तुएं, हाथी दांत का समान, प्लास्टिक पैकिंग, डिटर्जेट निर्माण आदि।

(v) **इंजीनियरिंग एवं परम्परागत ऊर्जा उद्योग** : बढ़ईगिरी, लुहार, एल्युमिनियम के बर्तन, कागज पिन, सेफ्टी पिन, स्टोव पिन, सजावटी बल्बों, बोतलों का निर्माण, छाता उत्पादन, पीतल व तांबे से हस्तनिर्मित बर्तन, टिन कार्य, मोटर बाइडिंग, तार की जाली बनाना, ग्रिल निर्माण आदि।

(vi) **वस्त्रोद्योग** : लोकवस्त्र निर्माण, छींटकारी, होजरी, रेडीमेड पोशाक, कशीदाकारी खिलौना व गुड़िया निर्माण, हाथ से सूती व नाइलोन की जाली बनाना, धागे की लच्छी व गोला निर्माण, दरी बनाना आदि।

(vii) **सेवा उद्योग** : धुलाई, बुनाई, नलसाजी, साईकिल मरम्मत, बैटरी बनाना, कीटनाशक, पम्प सेटों के लिए कृषि सेवा कार्य आदि।

टिप्पणी

आयोग में एक मुख्य अध्यक्ष होता है इसके अतिरिक्त 3 सदस्य होते हैं। जिनका कार्यकाल 3–5 वर्ष होता है। आयोग का मुख्य कार्यालय मुम्बई में हैं तथा प्रत्येक राज्य में इसके कार्यालय हैं जिनका सर्वोच्च अधिकारी निदेशक होता है। प्रत्येक राज्य सरकार ने खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्ड का गठन किया हुआ है। आयोग इन्हीं बोर्डों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्र के उद्यमियों एवं सहकारी समितियों की समस्याओं को हल करता है।

इस आयोग को खादी एवं ग्रामोद्योग विकास एवं विस्तार हेतु केन्द्रीय सरकार तथा राष्ट्रीयकृत बैंकों से वित्तीय सुविधा प्राप्त होती है। प्रत्येक राज्य में स्थापित खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्ड तथा अन्य एजेन्सियां अपने–अपने क्षेत्रों में खादी एवं ग्रामोद्योग विकास के लिए योजनाएं तैयार करके आयोग को भेजते हैं। आयोग वित्तीय संसाधनों को ध्यान में रखकर इन योजनाओं का अनुमोदन करता है। उनके लिये उचित बाजार उपलब्ध करवाता है।

खादी तथा ग्रामोद्योग महिला उद्यमियों के लिये विशेष उपयोगी है। इन उद्योगों में महिलाओं की भागीदारी लगभग 46 प्रतिशत है जबकि अन्य आर्थिक क्रियाओं में महिलाओं की भागीदारी केवल 14 प्रतिशत है। 1987 में खादी ग्रामोद्योग अधिनियम ने संशोधन के बाद से महिलाएं अनेक उद्योगों में बढ़ गई है और इनके लिए रोजगार के अवसरों में भी वृद्धि हुई है।

खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग के उद्देश्य : खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग की स्थापना निम्न उद्देश्यों के साथ की गई थी–

1. ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार उपलब्ध कराने का सामाजिक दायित्व।
2. विक्रय योग्य वस्तुओं को उत्पादित करने का आर्थिक दायित्व।
3. ग्रामीण व्यक्तियों को आत्मनिर्भर बनाने एवं एक सुदृढ़ ग्रामीण सामुदायिक भावना उत्पन्न करने का एक विस्तृत दायित्व।

उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये आयोग खादी एवं ग्रामोद्योगों के विकास के लिए कार्यक्रमों को बनाता है तथा उन्हें क्रियान्वित करने में सहायता प्रदान करता है। इस दायित्व को पूरा करने के लिए आयोग विभिन्न कार्यों को सम्पन्न करता है।

खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग के कार्य : उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिये आयोग निम्न कार्य करता है–

1. अर्ह संस्थाओं एवं उद्यमियों को वित्त सुविधाएं प्रदान करना।
2. खादी एवं ग्रामोद्योगों में कार्यरत एवं रोजगार प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्तियों को प्रशिक्षण प्रदान करना ये प्रशिक्षण कार्यक्रम 21 विभागीय प्रशिक्षण केन्द्रों द्वारा तथा 21 संस्थागत प्रशिक्षण केन्द्रों में चलाये जाते हैं।

टिप्पणी

3. खादी एवं ग्रामोद्योग क्षेत्र में शोध एवं विकास ;त्–क्द्ध को प्रोत्साहित करना।
4. खादी एवं ग्रामोद्योग वस्तुओं की बिक्री एवं विपणन के लिये आकर्षक योजनाएं लागू करना।

आयोग द्वारा उपर्युक्त कार्य कृषि एवं ग्रामीण उद्योग मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन सम्पादित किये जाते हैं।

खादी तथा ग्रामोद्योग उत्पादों का वितरण : बिक्री हेतु खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग का देश भर में एक पूर्ण विकसित विपणन नेटवर्क है। विपणन ढांचे में आयोग द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चलाये जा रहे 10 खादी ग्रामोद्योग भवन, राज्य खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्डों द्वारा चलाये जा रहे 14,113 खादी ग्रामोद्योग भंडार तथा बिक्री डिपो. पंजीकृत संस्थान एवं सहकारी समितियां हैं। इन विपणन कार्यक्रमों के अतिरिक्त आयोग प्रदर्शनियों का आयोजन करता है, महत्वपूर्ण मेलों में भागीदारी करता है। यह ग्रामोद्योग बिक्री डिपो, ग्रामशिल्पों, भंडारों को स्थापित करने के लिये सहायता प्रदान करता है।

खादी तथा ग्रामोद्योग उत्पाद की विपणन सम्बन्धी नीतियों में सुधार करने हेतु महत्वपूर्ण उपाय निम्न हैं–

- राष्ट्रीय डिजाइन संस्थान, अहमदाबाद को खादी तथा सिले–सिलाये वस्त्रों में नए आकर्षक डिजाइन बनाने संबंधी परियोजना को सौंपना।
- युवा पीढ़ी को खादी वस्त्रों की ओर आकृष्ट करने के उद्देश्य से फैशन शो की व्यवस्था करना।
- सभी ग्रामोद्योग उत्पादों के लिए ''कुटीर'' ब्रांड अपनाने के लिए कदम उठाना।
- खादी तथा ग्रामोद्योग उत्पादों की बिक्री के लिए 140 चलती–फिरती वैनों की स्वीकृति आदि।

खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग की प्रगति : 1955–56 में केवल 2 राज्य खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड, 242 पंजीकृत संस्थाएं एवं 60 सहकारी समितियां KVIC के क्षेत्र में कार्यरत थी वर्तमान में यह संस्था एक ऊंचे स्तर पर पहुंच चुकी है 2010 के अन्त में देश के 36 राज्यों/केन्द्रशासित प्रदेशों में खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड एवं 2.70 लाख गांव KVIC के क्षेत्र में लाये जा चुके हैं। उत्पादन की दृष्टि से भी खादी एवं ग्रामोद्योग क्षेत्र में आशातीत वृद्धि हुई है। 1955–56 में इस क्षेत्र का उत्पादन 16.67 करोड़ (खादी 5.54 करोड़ एवं ग्रामीण उद्योग 10.93 करोड़) के स्तर पर था जो 2006–07 के अंत में बढ़कर 14,531.69 करोड़ (खादी 465.26 करोड़ एवं ग्रामोद्योग 11,951.19 करोड़) पर पहुंच गया जो 2012–13 में 24024.24 करोड़ रिकार्ड किया गया जिसमें खादी 763.93 करोड़ तथा ग्रामोद्योग 23262.31 करोड़ था। इस प्रकार इस अवधि में रोजगार स्तर 9.64 लाख व्यक्ति (खादी = 6.57 लाख व्यक्ति एवं ग्रामोद्योग में 3.07 लाख व्यक्ति) था जो 2006–07 में बढ़कर 88.52 लाख व्यक्ति पर पहुंच गया। 2012–13 में रोजगार स्तर 124.76 लाख पर पहुंच

टिप्पणी

गया। जिसमें से खादी के क्षेत्र में 10.71 लाख व्यक्ति तथा ग्रामोद्योग में 114. 05 लाख व्यक्ति रोजगार प्राप्त थे। 31 मार्च, 2015 को खादी उद्योग में 10. 25 लाख से अधिक लोगों को रोजगार मिला है इस क्षेत्र में 2013–14 के दौरान 140.29 लाख रोजगार के अवसर पैदा किए गए।

21. **अखिल भारतीय हस्तशिल्प बोर्ड** : हस्तशिल्प के उद्योगों का विकास करने के लिए तथा शिल्पकारों को सहयेाग प्रदान करने के लिए भारत सरकार द्वारा वस्त्र मंत्रालय के अधीन अखिल भारतीय हस्तशिल्प की स्थापना की गई है। इस बोर्ड के कार्यालय सभी राज्यों में स्थित हैं। बोर्ड का मुख्य कार्य हस्तशिल्पियों को प्रशिक्षण देना, उनके उत्पादों का विपणन करना तथा अंतर्राष्ट्रीय एवं विदेशों में प्रदर्शनियों का आयोजन करना है। बोर्ड के कार्यों का संक्षिप्त विवरण निम्न है–

प्रशिक्षण योजनाएं : बोर्ड के अधीन दो स्तरों पर प्रशिक्षण दिया जाता है– (1) विभागीय स्तर पर प्रशिक्षण (2) अन्य संगठनों द्वारा प्रशिक्षण

1. **विभागीय स्तर पर प्रशिक्षण** : विकास आयुक्त (हस्तशिल्प) कार्यालय द्वारा विभागीय स्तर पर प्रशिक्षण की दो योजनाएं हैं–

   (अ) कालीन बुनाई : अंतर्राष्ट्रीय बाजार में हाथ से बुने कालीनों की बढ़ती मांग को पूरा करने के उद्देश्यों से कालीन बुनाई के उत्पादन आधार में वृद्धि करना तथा कालीन बुनाई के क्षेत्र में कारीगरों में रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना है।

   कालीन बुनाई के लिये बुनियादी प्रशिक्षण तथा उच्च प्रशिक्षण की योजना है। कालीन बुनाई में बुनियादी पाठ्यक्रम के लिए उप–निदेशक/क्षेत्र प्रशासनिक कक्ष/क्षेत्रीय निदेशक द्वारा विधिवत् अनुमोदित एक समिति द्वारा 14 वर्ष की आयु से नीचे के अभ्यार्थियों में से 30 प्रशिक्षाणार्थी चुने जाते हैं। बुनियादी पाठ्यक्रम पूरा करने के बाद उन प्रशिक्षणार्थियों में से उच्च प्रशिक्षण केन्द्र में भर्ती के लिये योग्यता के आधार पर 20 प्रशिक्षणार्थी चुने जाते हैं। प्राथमिक व उच्च प्रशिक्षण के लिए प्रत्येक की अवधि जम्मू तथा कश्मीर के लिये 18 माह तथा शेष भारत में 12 माह है। बुनियादी पाठ्यक्रम के लिये छात्रवृत्ति की दर प्रति माह प्रति प्रशिक्षणार्थी 250 रुपये तथा उच्च पाठ्यक्रम के लिये 350 रुपये प्रति माह है। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम पूरा होने के बाद प्रत्येक प्रशिक्षणार्थी को 500 रुपये से अनधिक लागत का औजार बॉक्स देने का प्रावधान है ताकि वह स्वतंत्रतापूर्वक कार्य कर सके।

   (ब) बेंत एवं बांस, धातु, वस्त्र एवं काष्ठ शिल्प : विकास आयुक्त हस्तशिल्प कार्यालय द्वारा कालीनों के अतिरिक्त शिल्पों विभाग द्वारा चलाये जा रहे प्रशिक्षण कार्यक्रम निम्न हैं–

   - बेंत एवं बांस
   - कलात्मक धातु पात्र

टिप्पणी

- हाथ से छपे वस्त्र
- काष्ठ शिल्प।

इन योजनाओं का उद्देश्य उपरोक्त शिल्पों का उत्पादन आधार बढ़ाना वर्तमान शिल्पकारों की कुशलता में वृद्धि करना तथा कारीगरों के लिए रोजगार के अवसरों का सृजन करना है। इसमें प्रत्येक पाठ्यक्रम की अवधि 12 माह है प्रत्येक पाठ्यक्रम में प्रशिक्षाणार्थियों की संख्या 25 होती है तथा छात्रवृत्ति की दर 250 रुपये प्रतिमाह है। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम पूरा होने पर प्रत्येक प्रशिक्षणार्थी को 500 रुपये तक की लागत का औजार बाक्स देने का प्रावधान है।

2. **अन्य संगठनों द्वारा प्रशिक्षण** : इसके अंतर्गत प्रशिक्षणार्थी का चयन क्षेत्रीय कार्यालय/क्षेत्र प्रशासनिक कक्ष के प्रतिनिधि अथवा सहायक निदेशक, विपणन एवं सेवा विस्तार केन्द्र की उपस्थिति में लिये गये साक्षात्कार के आधार पर किया जाता है। इसके अंतर्गत परम्परागत शिल्पकारों के परिवारों के प्रशिक्षणार्थियों को प्राथमिकता दी जाती है।

संगठन प्रशिक्षण के दौरान प्रशिक्षणार्थियों को प्रयोग के लिए प्रति प्रशिक्षणार्थी को 500 रुपये की राशि तक के औजार बॉक्स खरीदेगा और इन औजार बॉक्सों को सत्र के अंत में प्रशिक्षणार्थी को दे दिया जाता है ताकि प्रशिक्षण के तुरंत बाद वह अपना शिल्पकार्य प्रारंभ कर सके।

संगठन योजना में निर्धारित किये गये प्रशिक्षक को मानदेय के रूप में 1500 रुपये तथा प्रशिक्षणार्थी को छात्रवृत्ति के रूप में 250 रुपये से कम का भुगतान नहीं कर सकता है।

विपणन कार्यक्रम : शिल्पकारों की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए देश भर में 47 विपणन एवं सेवा विस्तार केन्द्र स्थापित किए गए हैं। ये विपणन केन्द्र ऋण, कच्चा माल, तथा डिजाइन विकास में सहायता प्रदान करते हैं। ये केन्द्र मुख्य रूप से चार प्रकार के बाजार कार्यक्रम आयोजित करते हैं–

(i) उत्पाद संवर्द्धन बाजार

(ii) शिल्प बाजार

(iii) बाजार बैठक

(iv) मेले तथा उत्सव।

हस्तशिल्प प्रदर्शनी योजना : इस योजना के अंतर्गत हस्तशिल्प के विकास/विपणन में संलग्न संगठनों को देश/विदेश में आयोजित हस्तशिल्प संबंधी प्रदर्शनियों में भाग लेने के लिए सहायता प्रदान की जाती है। इससे हस्तशिल्प के उत्पादों की बिक्री तथा प्रचार में काफी वृद्धि होती है।

22. **निर्यात ऋण गारण्टी निगम** : व्यवसाय में निरंतर बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा के कारण निर्यातक को विदेशी बाजार में खरीददार की शर्तों के अनुसार माल की दरें, आपूर्ति व भुगतान संबंधी शर्तें स्वीकारनी होती हैं। अनेक बार ग्राहकों को उधार की शर्तों पर माल बेचना पड़ता है किन्तु उद्यमी प्रत्येक खरीददार की

टिप्पणी

साख से परिचित नहीं होता है। अतः छोटे निर्यातकों को साख संबंधी गारण्टी की आवश्यकता होती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए सरकार ने निर्यात ऋण गारण्टी निगम की स्थापना की है। यह निगम निर्यातक द्वारा उधार दिये गये माल के मूल्य की वसूली की गारण्टी प्रदान करता है। निगम विदेशी क्रेता फर्म की साख की जानकारी स्वयं एकत्र करता है। यह निगम बेचे गये माल का बीमा कर देता है जिससे उद्यमी की रकम डूबने का भय दूर हो जाता है।

कोई भी लघु उद्यमी निर्यातक बीमे की पॉलिसी के लिए निर्यात ऋण गारण्टी निगम को आवेदन–पत्र दे सकता है। यह पॉलिसी 1 से 3 वर्ष की अवधि के लिए होती है। भेजे गये माल का भुगतान एक निश्चित अवधि में प्राप्त न होने पर बीमाधारक निर्यातक को निगम द्वारा माल की कीमत का 85 प्रतिशत भुगतान कर दिया जाता है। निगम की इन पॉलिसियों को बैंक के पास गिरवी रखकर ऋण प्राप्त किया जा सकता है। निगम का प्रधान कार्यालय मुम्बई में तथा शाखा कार्यालय कोलकाता एवं चेन्नई में हैं।

23. **मुख्य नियंत्रक आयात व निर्यात** : भारत सरकार की आयात–निर्यात नीति को लागू करने का उत्तरदायित्व मुख्य नियंत्रक आयात–निर्यात कार्यालय पर होता है। इनके शाखा कार्यालय निम्न स्थानों पर है–

    (i) **उपमुख्य नियंत्रक** : अहमदाबाद, कानपुर, एर्नाकुलम, पंजाब एवं हैदराबाद में हैं।

    (ii) **संयुक्त मुख्य नियंत्रक** : नई दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई, कोलकाता।

    (iii) **नियंत्रक** : आयात–निर्यात, अमृतसर, राजकोट, विशाखापट्टनम, बैंगलौर, श्रीनगर, पांडुचेरी, शिलांग आदि में हैं।

    1 अप्रैल, 1969 के लोहे तथा इस्पात के लाइसेंस देने वाले अधिकारी की मुख्य नियंत्रक आयात–निर्यात, नई दिल्ली के अधीन कर दिये गये हैं।

24. **अन्य संस्थाएं** : उद्यमियों की सहायतार्थ निम्न संस्थान भी कार्यरत हैं–

    (i) **केन्द्रीय रेशम बोर्ड** : इस बोर्ड की स्थापना 1949 में की गई थी। यह रेशम तथा रेशम कीट पालन उद्योग के विकास की देखरेख करता है और इनसे संबंधित अनुसंधान कार्य करता है। देश में सभी प्रकार के प्राकृतिक रेशम का उत्पादन 35 लाख किलोग्राम होता है जिसका मूल्य लगभग 60 करोड़ रुपये है। देश में लगभग 1.35 लाख हथकरघे और 4200 बिजली से चलने वाले करघे प्राकृतिक रेशम की बुनाई करते हैं। यह बोर्ड रेशम उद्योग की समस्याओं को सरकार के समक्ष रखकर उन्हें हल करता है। इस बोर्ड का मुख्य दायित्व शुद्ध रेशम वस्त्र तथा सेरीकलचर उद्योग का विकास करना है।

    (ii) **भारतीय जूट निगम** : भारतीय जूट निगम की स्थापना 1971 में हुई थी। निगम का प्रमुख कार्य कच्चे जूट आयात–निर्यात आंतरिक बाजारों में जूट का विक्रय तथा जूट उत्पादों के न्यूनतम मूल्य सुनिश्चित करना है।

टिप्पणी

(iii) **रबड़ बोर्ड** : रबड़ बोर्ड का गठन 1947 में किया गया था। देश में रबड़ उद्योग के विकास का दायित्व रबड़ बोर्ड पर है। यह बोर्ड रबड़ सम्पत्ति के रोपण एवं पुर्नरोपण के लिए लाइसेंस जारी करता है। इसके द्वारा रबड़ अनुसंधान के लिए पर्याप्त रूप से सुसज्जित प्रयोगशालाओं का गठन किया गया हैं। यह रबड़ उद्योग के विकास से संबंधित साहित्य का भी प्रकाशन करता है।

(iv) **नारियल जटा उद्योग बोर्ड** : नारियल जटा उद्योग एक निर्यातोन्मुख एवं अत्यधिक श्रम प्रधान उद्योग है जो 5 लाख से अधिक लोगों को रोजगार प्रदान कर रहा है। कॉयर उद्योग अधिनियम के तहत 1953 में भारत सरकार द्वारा नारियल जटा उद्योग बोर्ड का गठन किया गया था जिसका उद्देश्य नारियल जटा उद्योग का विकास करना तथा इसके उत्पादों के निर्यात में वृद्धि करना है। यह बोर्ड कॉयर उत्पाद के मानकों व किस्मों का निर्धारण करता है। इसके द्वारा एक नेशनल कॉयर ट्रेनिंग एण्ड डिजाइन सेंटर तथा कॉयर अनुसंधान संस्थान का संचालन भी किया जाता है। यह मेले एवं प्रदर्शनियों द्वारा कॉयर उत्पाद का प्रचार एवं प्रसार करता है।

(v) **भारतीय काजू निगम** : इसकी स्थापना अगस्त 1970 में की गई थी। इस निगम द्वारा खुली सामान्य लाइसेंस योजना के अंतर्गत कच्चे काजुओं का निर्यात किया जाता है।

इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार ने चाय अधिनियम 1955 के अंतर्गत चाय मण्डल की स्थापना की है। यह मण्डल चाय के उत्पादन एवं निर्यात संवर्द्धन के लिये कार्य करता है। इसके कार्यालय भारत एवं विदेशों में स्थित है।

इलायची मण्डल की स्थापना 1965 में इलायची निर्यात संवर्द्धन के उद्देश्य से की गई थी। यह मण्डल विदेशों में आयोजित प्रदर्शनियों में समन्वय स्थापित करता है।

3.2.2 राज्य स्तर के संगठन

राज्यों में उद्यमियों की सहायता के लिए सरकारों ने विभिन्न संगठन स्थापित किये हैं। ये संगठन राज्य की प्राकृतिक सम्पदा, संसाधनों, खनिजों एवं ऊर्जा का समुचित विदोहन करते हुए उद्योगों की स्थापना में सहयोग प्रदान करते हैं। राज्यों में उद्यमियों की सहायतार्थ निम्न संगठन कार्यरत हैं–

1. **राज्य लघु उद्योग निगम** : अधिकांश राज्यों में लघु उद्योग निगमों की स्थापना की गई है जो व्यापारिक संस्थान के रूप में कई वाणिज्यिक कार्य करते हैं। ये निगम लघु एवं कुटीर उद्योगों के लिये व्यावसायिक प्रोत्साहनात्मक एवं कल्याणकारी योजनाएं चलाते हैं। इनके प्रमुख कार्य निम्न हैं–
   (i) लघु उद्योगों को मशीनों एवं उपकरणों के क्रय में मदद करना।
   (ii) लघु उद्योगों को आर्थिक, तकनीकी एवं प्रबंधकीय योगदान प्रदान करना।
   (iii) औद्योगिक एस्टेट का निर्माण करना तथा उनका रख–रखाव करना।

टिप्पणी

(iv) हस्तशिल्पियों से माल खरीदकर एम्पोरियम के माध्यम से उनकी बिक्री की व्यवस्था करना।

(v) लघु उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुएं आर्डर सरकारी विभाग से प्राप्त करके उनकी आपूर्ति करना।

(vi) लघु उद्योगों द्वारा लिये गये ठेकों में गारण्टी प्रदान करना।

(vii) राज्य में लघु उद्योगों के विकास हेतु कम्पनियों के अंशों में निवेश करना।

(vii) मध्यम व बड़े उद्योगों में समन्वय स्थापित करना।

(ix) हस्तशिल्प उद्योगों के विपणन हेतु देश–विदेशों में एजेन्सियों की स्थापना करना।

(x) हस्तशिल्प के उत्पादन केन्द्र चलाना।

(xi) लघु उद्योगों को कच्चे माल की आपूर्ति करना।

(xii) नये–नये डिजाइनों के विकास के लिये हस्तशिल्प डिजाइन विकास, प्रशिक्षण एवं शोध केन्द्र चलाना।

2. **उद्योग निदेशालय** : भारतीय संविधान में लघु उद्योग के विकास एवं नियंत्रण का कार्य राज्यों को सौंपा गया है। राज्यों में इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए उद्योग निदेशालय की स्थाना की गई है।

उद्योग निदेशालय के प्रमुख को निदेशक तथा कुछ राज्यों में आयुक्त के नाम से जाना जाता है। उद्योग निदेशक के अधीन निम्न अधिकारी होते हैं–

- **औद्योगिक सलाहकार** : ये तकनीकी सहायता प्रदान करते हैं तथा कई विभागीय मामलों में परामर्श देते हैं।
- **अतिरिक्त निदेशक** : ये तकनीकी, ग्रामीण एवं औद्योगिक परियोजनाओं तथा औद्योगिक सहकारी समीतियों के संचालन के लिये उत्तरदायी होते हैं।
- **संयुक्त निदेशक** : ये प्रशासन, तकनीकी मामलों, औद्योगिक बस्तियों, ग्रामीण औद्योगिक परियोजनाओं, औद्योगिक सहकारी समितियों की व्यवस्था देखते हैं इनके अधीन उप–निदेशक तथा सहायक निदेशक होते हैं।
- **क्षेत्रीय संयुक्त निदेशक**: क्षेत्रीय स्तर पर क्षेत्रीय संयुक्त निदेशकों की नियुक्ति की जाती है जिनके अधीन उप–निदेशक तथा सहायक निदेशक होते हैं।

उद्योग निदेशालय के कार्य: उद्योग निदेशालय के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

(i) औद्योगिक परियोजनाओं को लागू करना।

(ii) उद्योगों का पंजीकरण करना व स्वीकृति प्रदान करना।

(iii) राज्य में औद्योगिक कानून को लागू करना।

(iv) उद्योगों को सरकारी वित्तीय सहायता उपलब्ध करवाना।

(v) उत्पादन कार्यक्रम की अनुमति प्रदान करना।

टिप्पणी

(vi) क्षेत्रीय अधिकारियों के माध्यम से आयातित कच्चे माल तथा मशीनों के दावों की वास्तविकता प्रमाणित करना।

(vii) निर्यात संवर्द्धन परिषद् के माध्यम से उत्पादों को विदेशों में विक्रय हेतु सहायता पहुंचाना।

(viii) राज्य में औद्योगिक एस्टेट विकसित करना।

(ix) लघु उद्योगों को विपणन में सहायता देने के लिए राज्य व अखिल भारतीय स्तर पर मेलों व प्रदर्शनियों का आयोजन करना।

(x) किसी भी संस्थान के उद्यमियों के प्रार्थना–पत्रों की अनुशंसा करना तथा उन्हें अग्रेषित करना।

(xi) कच्चे माल व अन्य समान का उद्योगों को वितरण करना।

(xiI) सरकारी खरीद कार्यक्रम में सहायता पहुंचाना व सप्लाई आर्डर लेने में सहायता करना।

3. **जिला उद्योग केन्द्र :** किसी भी जिले में उद्योग स्थापना से सम्बन्धित सभी क्रिया–कलापों का केन्द्र ''जिला उद्योग केन्द्र'' होता है। जिले में होने वाली समस्त औद्योगिक गतिविधियां सम्बन्धित जिला उद्योग केन्द्र के समन्वय से ही संचालित होती हैं। ये जिला औद्योगिक केन्द्र औद्योगिक गतिविधियों का समन्वयन तथा संचालन का कार्य करते हैं। जिला उद्योग केन्द्र जिले विशेष में उद्योग की स्थापना के इच्छुक व्यक्तियों का प्रभावी मार्गदर्शन करते हैं।

जिला उद्योग केन्द्र की स्थापना का प्रस्ताव 1976 में औद्योगिक विकास की सहायता के लिये फोकल बिन्दु के रूप में कार्य करने हेतु रखा गया था। इसी प्रस्ताव के क्रम में 1 मई, 1978 में जिला उद्योग केन्द्र कार्यक्रम की शुरुआत हुई। जिला उद्योग केन्द्रों पर उद्यमियों को एक ही छत के नीचे विभिन्न सहायताएं जैसे भूमि, बिजली, पानी, वित्त विपणन आदि प्रदान की जाती हैं।

यद्यपि जिला उद्योग केन्द्रों का क्रियान्वयन राज्य सरकार द्वारा किया जाता है तथापि यह जिला उद्योग केन्द्र द्वारा समर्थित कार्यक्रम है। प्रारंभ में इन केन्द्रों का संचालन करने के लिए एक महाप्रबंधक तथा विभिन्न क्षेत्रों के क्रियात्मक प्रबंधक होते थे, लेकिन जुलाई 1980 में इन केन्द्रों का पुनः संगठन किया गया। इनमें तीन क्रियात्मक प्रबंधक क्रमशः आर्थिक, अन्वेषण, साख एवं ग्रामीण उद्योग क्षेत्र से होंगे। चौथा क्रियात्मक प्रबंधक कच्चे माल विपणन प्रशिक्षण सूचना एवं साज सज्जा आदि किसी एक क्षेत्र से जिले की आवश्यकतानुसार चुनने की स्वतंत्रता राज्य सरकारों को है। इसके अतिरिक्त जिले की आवश्यकतानुसार उपरियोजना प्रबंधकों की नियुक्ति की जा सकती है। प्रत्येक जिला केन्द्र में एक जिला उद्योग अधिकारी एवं अन्य सहायकों तथा कर्मचारियों की नियुक्ति की जाती है। जिला उद्योग केन्द्र केन्द्रीय सरकार की सहायता द्वारा संचालित होते हैं। जिला उद्योग केन्द्र का संचालन उद्योग निदेशालय, वित्त निगम, विद्युत मण्डल, खनिज निगम तथा जलदाय विभाग आदि के मध्य समन्वय द्वारा होता है।

टिप्पणी

जिला उद्योग केन्द्रों के कार्य : जिला उद्योग केन्द्रों के प्रमुख कार्य एवं उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

(i) लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास करना।

(ii) औद्योगिक विकास का ढांचा तैयार करना।

(iii) उद्यमियों को प्रशिक्षण उपलब्ध कराना।

(iv) बीमार इकाइयों को पुनर्जीवित करना।

(v) नये उद्यमियों को एक ही छत के नीचे सभी सुविधाएं उपलबध कराना।

(vi) महिला उद्यमियों को आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बनाना।

(vii) उद्योगों के विभिन्न क्षेत्रों जैसे उत्पादन प्रक्रिया, डिजाइन, किस्म सुधार, तकनीकी सरलीकरण आदि में अनुसंधान करवाना।

(viii) सरकार की औद्योगिक नीति को क्रियान्वित करना।

(ix) नये उद्यमियों को अधिकाधिक विनियोजन हेतु प्रोत्साहित करना।

(x) उद्योगों के पंजीकरण कार्य में मदद करना।

(xi) जिले में औद्योगिक क्षेत्र का मास्टर प्लान तैयार करना।

(xii) कामगारों को प्रशिक्षित करवाना।

(xii) जिले का संतुलित विकास करना।

(xiv) कच्चे माल का निश्चित कोटा उपलब्ध करवाना आदि।

4. **राज्य वित्तीय निगम** : राज्य वित्तीय निगम अधिनियम 1951 के अधीन प्रत्येक राज्य में एक वित्तीय निगम स्थापित किये जाने का प्रावधान किया गया। इनका मुख्य कार्य लघु एवं मध्यम आकार वाले उद्योगों की स्थापना हेतु भूमि, भवन निर्माण, प्लांट मशीनरी आदि के लिये तथा स्थापित उद्योगों में आधुनिकीकरण के लिये ऋण प्रदान करना। अधिनियम के तहत राज्य वित्त निगमों को निम्न अधिकार प्राप्त हैं–

(i) औद्योगिक प्रतिष्ठानों को ऋण प्रदान करना, ऋण पत्र खरीदना जिनकी अवधि 20 वर्ष से अधिक न हो।

(ii) औद्योगिक प्रतिष्ठानों द्वारा जारी किए गये शेयरों, डिबेंचरों, ऋण पत्रों आदि को जारी करने की जिम्मेदारी लेना।

(iii) औद्योगिक प्रतिष्ठान से लेन–देन के सम्बन्ध में राज्य अथवा केन्द्र सरकार या औद्योगिक वित्त निगम की ओर से अभिकर्त्ता के रूप में कार्य करता है।

राज्य वित्तीय निगम के कार्य एवं उद्देश्य : राज्य वित्तीय निगम निम्न कार्यों का सम्पादन करता है–

(i) राज्य के छोटे एवं मंझोले उद्योगों की सहायता प्रदान कर औद्योगिक विकास की गति को तीव्र करना।

(ii) मशीन आपूर्तिकर्त्ता को मूल्य भुगतान की गारण्टी देना।

टिप्पणी

(iii) नये उद्यमियों को आसान शर्तों पर ऋण उपलब्ध करवाना।

(iv) राज्य में औद्योगिक विकास का आधारभूत ढांचा तैयार करना।

(v) पूंजी विनियोग अनुदान तथा बिक्री पर ऋण उत्पादन बिना ब्याज उपलब्ध कराना।

(vi) राज्य में उच्च तकनीक पर आधारित उद्योगों को बढ़ावा देना।

(vii) बीज पूंजी उपलब्ध करना।

(viii) अंशों ऋणपत्रों बॉण्डों आदि के निर्गमनों का अभिगोपन करना।

5. **राज्य विद्युत मण्डल** : भारतीय विद्युत अधिनियम 1910 के अधीन प्रत्येक राज्य में विद्युत ऊर्जा के वितरण के लिए राज्य मण्डलों का गठन किया गया है। विद्युत, उद्योगों की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। विद्युत मण्डल औद्योगिक विकास एवं विनियोजन निगम के साथ मिलकर करते हैं। लघु, मध्यम एवं वृहत् श्रेणी की औद्योगिक इकाइयों से विद्युत व्यय अलग–अलग दर से चार्ज किये जाते हैं। पावर कनेक्शन लेने के लिए उद्यमियों को निर्धारित प्रपत्र में आवश्यक औपचारिकताओं की पूर्ति करते हुए प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करने होते हैं।

6. **प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण मण्डल** : स्वच्छ पर्यावरण जीवन की मूलभूत आवश्यकता है। पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने तथा प्रदूषण नियंत्रण हेतु सरकार द्वारा कई अधिनियम बनाये गये हैं। इन अधिनियमों के अधीन केन्द्रीय एवं राज्य स्तर पर प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण मण्डल की स्थापना की गई है, उद्योगों से बहकर निकलने वाले दुर्गन्धयुक्त जलस्राव, चिमनियों से निकलते धुएं, जहरीली गैसों, अपशिष्ट पदार्थों से वातावरण विषाक्त हो जाता है। इस औद्योगिक प्रदूषण को रोकने हेतु ये मण्डल कई कार्य करते हैं।

प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण मण्डल के कार्य : प्रदूषण निवारण के संबंध में राज्य मण्डल को निम्न कार्य करने होते हैं–

(i) प्रदूषण फैलाव वाले उद्योगों की स्थापना के स्थान के बारे में राज्य सरकार को सलाह देना।

(ii) प्रदूषण एवं नियंत्रण के बारे में राज्य सरकार को परामर्श देना।

(iii) वायु तथा जल प्रदूषण निवारण हेतु ठोस योजना बनाना तथा उसे क्रियान्वित करना।

(iv) प्रदूषण निवारण कार्यक्रम के बारे में आम जनता को जानकारी प्रदान करना।

(v) जल एवं वायु की गुणवत्ता के सम्बन्ध में सरकार के परामर्श से मानक तैयार करना तथा उनमें सुधार लाना।

(vi) सीवरेज तथा औद्योगिक अवशिष्टों के निस्तारण तथा अन्य सफाई उपकरणों की व्यवस्था करना।

(vii) प्रदूषण निवारण के उपायों के सम्बन्ध में तकनीकी सहायता तथा मार्गदर्शन प्रदान करना।

टिप्पणी

(viii) प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण सम्बन्धी अनुसंधान करवाना।

(ix) बेकार जल उपचार संयंत्रों, प्रदूषण नियंत्रण उपकरणों, प्रदूषण निवारण प्रशिक्षण आदि के सम्बन्ध में प्रभावी उपाय करना।

(x) सीवरेज, औद्योगिक उच्छिष्ठष्टों के उपचार, वायु प्रदूषण उपकरणों हेतु उपयुक्त विधियों का विकास करना।

(xi) वायु प्रदूषण निवारण व नियंत्रण अधिनियम 1981 के अनुसार राज्य में प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्रों का निर्धारण करना।

3.2.3 अनुसंधान परीक्षण एवं मानक संगठन

उद्यमियों को उत्पादों की गुणवत्ता, प्रयुक्त माला की किस्म, लागत, स्वरूप, अनुसंधान आदि में सहायता देने के लिए सरकार ने कुछ महत्वपूर्ण संस्थानों की स्थापना की है। इनमें कुछ निम्न हैं–

1. **राष्ट्रीय अनुसंधान प्रयोगशालाएं एवं संस्थान :** विज्ञान तथा औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन देने के लिए मंत्रालय के अधीन एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् का गठन किया गया। इस परिषद् का उद्देश्य देश में औद्योगिक अनुसंधान को बढ़ावा देना, उद्योगों की समस्याओं को हल करना, अनुसंधान हेतु प्रयोगशालाओं की स्थापना करना तथा अनुसंधान परिणामों व सूचनाओं का संकलन करना। इस संस्थान के प्रमुख कार्य निम्न हैं–
   (i) प्राकृतिक संसाधनों के विभिन्न उपयोग ढूंढना।
   (ii) विकसित औद्योगिक तकनीकों का प्रदर्शन करना।
   (iii) नये उत्पादों, नई तकनीकों, नई प्रक्रियाओं व गुणवत्ता के संबंध में अनुसंधान करना।
   (iv) उत्पादन तकनीकों में सुधार।
   (v) कच्ची सामग्रियों के उपयोग के संबंध में अनुसंधान करना।
   (vi) लघु एवं बड़े उद्योगों की समस्याओं का समाधान कर उन्हें सहयोग प्रदान करना।
   (vii) आयातित वस्तुओं का उत्पादन देश में ही करने के बारे में अनुसंधान।
2. **भारतीय मानक संस्थान :** भारत सरकार द्वारा इस संस्थान की स्थापना विभिन्न प्रकार के कच्चे व तैयार माल की गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए की गई है। इस संस्थान द्वारा विभिन्न वस्तुओं की आदर्श किस्म व गुण तथा उनके परीक्षण के लिए आवश्यक उपकरण परीक्षण विधि व प्रमाप आदि के विषय में भारतीय मानक प्रकाशित किये जाते हैं इसके द्वारा प्रकाशित अधिकांश मानक लघु उद्योग के लिए ही हैं। भारतीय मानक संस्थान द्वारा प्रमाणन योजना चलाई गई है। यह योजना भारतीय मानक ब्यूरो अधिनियम, 1986 द्वारा प्रदत्त अधिकारों के अधीन चलाई जाती है। इस प्रमाणन योजना से निर्माताओं की उत्पादन विधियों में सुधार होता है, उत्पादों का मानकीकरण संभव होता है, माल पर उपभोक्ताओं का विश्वास जम जाता है और ग्राहक धोखाधड़ी से बच जाते हैं।

टिप्पणी

3. **राष्ट्रीय परीक्षण गृह** : यह केन्द्रीय सरकार का उपक्रम है जिसमें उद्योगों में प्रयुक्त कच्चे माल, मध्यवर्ती उत्पादों, तैयार माल, रसायन आदि के परीक्षण का कार्य किया जाता है। लघु उद्योग इकाइयों से लिये गये नमूनों के परीक्षण शुल्क में पर्याप्त छूट दी जाती है। परीक्षण के बाद परिणामों का प्रमाण पत्र उद्यमी को दिया जाता है जो वैधानिक दस्तावेज होता है।

4. **हैण्ड टूल्स केन्द्रीय संस्थान** : इस संस्थान की स्थापना एक केन्द्रीय संस्थान के रूप में भारत सरकार एवं पंजाब सरकार द्वारा संयुक्त रूप से की गई है। इसकी स्थापना के मुख्य उद्देश्य निम्न हैं–

   (i) उद्योगों द्वारा उत्पादित न किये जाने वाले यंत्रों के लिए नवीन डिजाइन्स तैयार करना।

   (ii) यंत्रों की डिजाइन में सुधार हेतु तकनीकी परामर्श देना।

   (iii) उपयुक्त निर्माणकारी प्रक्रिया का निर्धारण करना।

   (iv) परीक्षण एवं किस्म नियंत्रण सुविधा प्रदान करना।

   (v) उत्पादन विधि, किस्म नियंत्रण, पैकिंग एवं उत्पादन विकास के लिए कर्मियों को प्रशिक्षित करना।

   (vi) उचित सामग्री की पहचान करना तथा हैण्ड टूल्स के मानक तैयार करना।

5. **भारतीय पैकेजिंग संस्थान** : भारतीय सरकार ने उद्योगों की सहायता के लिए भारतीय पैकेजिंग संस्थान की स्थापना की। यह संस्थान पैकिंग के क्षेत्र में प्रदर्शन, परीक्षण आदि कार्य करता है। यह पैकेजिंग इण्डिया नामक एक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन करता है जिसमें पैकिंग प्रौद्योगिकी की नवीनतम तकनीकों का उल्लेख होता है। यह संस्थान पैकिंग के क्षेत्र में हो रहे अनुसंधानों एवं विकास के बारे में नवीन जानकारी उपलब्ध कराता है। यह संस्थान पैकिंग प्रशिक्षण कार्यक्रम भी चलाता है।

6. **क्षेत्रीय परीक्षण केन्द्र** : लघु उद्योगों के उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार के लिए 4 क्षेत्रीय परीक्षण केन्द्र तथा 18 फील्ड केन्द्रों की स्थापना की गई है। 6 फील्ड केन्द्रों का प्रशासनिक नियंत्रण संबंधित राज्य के लघु उद्योग सेवा संस्थानों द्वारा किया जाता है। ये परीक्षण केन्द्र लघु उद्योगों को तकनीकी सुविधाएं प्रदान करते हैं तथा उन्हें अपने उत्पादन की किस्म सुधारने में सहायता करते हैं।

7. **केन्द्रीय टूल डिजाइन संस्थान** : यह संस्थान 1969 में भारत सरकार द्वारा ILO तथा UNDP की सहायता से स्थापित किया गया था। इसका उद्देश्य लघु उद्योगों के लिए आवश्यक यंत्रों की डिजाइन तैयार करना तथा इस क्षेत्र के तकनीकी कर्मियों को प्रशिक्षण प्रदान करना है। यह विभिन्न विधियां, आकृति के विषय में परामर्श देता है। यह यंत्रों का प्रमापीकृत करने के उपाय सुझाता है।

8. **विद्युत उपकरण डिजाइन संस्थान** : इस संस्थान की स्थापना 1969 में मुम्बई में भारत सरकार द्वारा की गई थी। इसके गठन का प्रमुख उद्देश्य लघु उद्योगों द्वारा विद्युत उपकरणों के निर्माण में विस्तृत सेवा एवं सहायता उपलब्ध

कराना है। इसके द्वारा परामर्श डिजाइन व विकास सैलीब्रेशन व परीक्षण, टूल निर्माण, प्रोटो–टाइप, फेब्रीकेशन एवं प्रशिक्षण आदि के रूप में सेवाएं उपलब्ध करायी जाती हैं।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1. लघु उद्योग विकास संगठन (SIDO) की स्थापना कब की गई थी?
   (क) 1949 (ख) 1954
   (ग) 1962 (घ) 1967
2. देश में उद्यमिता विकास के लिये नीति निर्धारण करने वाली शीर्ष संस्था का नाम क्या है?
   (क) राष्ट्रीय उद्यमिता विकास मंडल
   (ख) भारतीय उद्यमिता विकास संस्थान, अहमदाबाद
   (ग) भारतीय लघु उद्योग मण्डल संघ
   (घ) लघु उद्योग विकास संगठन

3.3 विकासात्मक संस्थाओं की भूमिका

भारत में उद्यमिता विकास कार्यक्रम को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से दो भागों में बांटकर अध्ययन किया जा सकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उद्यमिता विकास कार्यक्रम।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व : इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्राचीन काल से ही भारतीय उद्यमी अपने कला–कौशल एवं व्यावसायिक क्षमता के लिए विश्वविख्यात थे। भारत के कुछ उत्पाद ढाका की मलमल, अहमदाबाद की धोतियां व दुपट्टे, बनारस की साड़ियां, कश्मीरी शॉल, मुरादाबाद के पीतल के बर्तन आदि शुरू से ही विदेशों में चर्चा का विषय रहे हैं। भारत की विश्वकला विश्व में बेजोड़ रही है। भारत के दस्तकार, शिल्पी, कारीगर आदि अपने–अपने कला कौशल के लिये पीढ़ी दर पीढ़ी सराहे एवं पुरस्कृत किए जाते हैं। टवर्नियर ने लिखा है कि भारत की बनी वस्तुएं इतनी हल्की व सुन्दर होती हैं कि हाथ में होते हुए भी यह आभास नहीं होता है कि वे हाथ में हैं। ढाका की मलमल इसका सबसे ज्वलन्त उदाहरण है। 1850 से पूर्व भारत में सुदृढ़ औद्योगिक ढांचा न होने के कारण यहां औद्योगिक उद्यमशीलता का उदय नहीं हुआ था। विभिन्न संरचनात्मक समस्याओं के कारण व विदेशी शासकों द्वारा पहल न होने के कारण औद्योगिक विकास क्रियाओं का अभाव बना हुआ था। भारत के कई व्यापारी दूसरे–देशों में जैसे बर्मा, चीन, केन्या, सिंगापुर, मलाया, हांगकांग आदि में जाकर बसते जा रहे थे। पूंजी की कमी, राजनैतिक एकता का अभाव, असंख्य मुद्रा प्रणाली, क्षेत्रीय बाजार एवं कर नीतियां उन्हें अपने देश में उपक्रम स्थापित करने के लिए प्रेरित नहीं कर पा रहे थे अर्थात् ये तब उपक्रम स्थापना में बाधक थे।

भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आगमन के साथ ही औद्योगीकरण की प्रक्रिया का प्रारंभ हुआ। सूरत में पारसियों द्वारा प्रथम जहाज कारखाना सन् 1673 में स्थापित

टिप्पणी

किया गया। 1677 में मुम्बई में गन पाउडर मिल की स्थापना की गई। 1852 में पारसी परिमैन ने मुम्बई में एक स्टील कम्पनी स्थापित की।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में भारत में कुछ बड़े–बड़े औद्योगिक घरानों का जन्म हुआ, जिनमें जमशेद जी टाटा का नाम प्रमुख है। प्रथम दशक में उद्यमियों के प्रयासों के परिणामस्वरूप देश में स्टील, इंजीनियरिंग, विद्युत जहाजरानी उद्योगों का विकास हो गया। स्वतंत्रता से पूर्व यह विकास बहुत सीमित क्षेत्रों में हुआ और वह भी कुछ समुदाय के व्यक्तियों में हुआ। औद्योगिक उद्यमियों का विकास मूलतः मुम्बई तथा कोलकाता के बंदरगाहों के आसपास के क्षेत्रों तक ही सीमित था। 1911 से 1951 की अवधि में अधिकांश औद्योगिक कम्पनियों संचालन एवं नियंत्रण ब्रिटिश कम्पनियों से पारसी, गुजराती, मारवाड़ियों व बंगालियों के हाथ में चला गया था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद : स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में नये सिरे से व्यवस्थित व योजनाबद्ध एवं समन्वित तरीके से उद्यमिता विकास कार्यक्रमों का विकास किया गया। इसी के मद्देनजर 1948 में भारत की प्रथम औद्योगिक नीति की घोषणा की गई जिसमें औद्योगिक विकास के लिए महत्वपूर्ण घोषणाएं की गई।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951) में निजी व सार्वजनिक दोनों ही क्षेत्रों में उद्यमियों के विकास की योजनाएं प्रस्तुत की गई। दोनों ही क्षेत्रों के लिये उद्योगों का स्पष्ट क्षेत्र निर्धारित किया गया। इसके अंतर्गत आधारभूत क्षेत्र के उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्रों के लिये सुरक्षित रखा गया जबकि कुछ अन्य वस्त्र, इंजीनियरिंग, सीमेण्ट, चीनी, दवा आदि उद्योगों को निजी क्षेत्र के लिये छोड़ दिया गया। इस क्षेत्र में उद्यमियों को आर्थिक सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से कुछ वित्तीय संस्थानों की स्थापना भी की गई।

वर्ष 1956 में द्वितीय पंचवर्षीय योजना में मूलतः औद्योगिक विकास पर बल दिया गया। इस योजना काल में नई औद्योगिक नीति की घोषणा की गई तथा इसमें निजी व सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमियों के विकास को विशेष महत्व दिया गया तथा उद्यमियों को विशेष छूटें प्रदान की गई।

इसके पश्चात् विभिन्न योजना कालों में भी साहसवृत्ति के विकास के लिये निरंतर प्रयास किये गये हैं। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में उद्यमिता विकास के लिए किये गये विभिन्न प्रयासों के फलस्वरूप औद्योगिक विकास में तेजी आयी है। उद्यमिता विकास के लिये अनेक प्रयास किये गये तथा राज्य एवं केन्द्रीय स्तर पर अनेकों संस्थानों की स्थापना भी की गई। इन संस्थानों की चर्चा ऊपर उद्यमिता विकास कार्यक्रम के लिये विभिन्न संस्थान नामक शीर्षक में की गई है।

भारत में उद्यमिता विकास हेतु सरकार द्वारा उठाये गये कदम

प्राचीन काल में भारत के उद्योग काफी समृद्ध थे। इनकी ख्याति विश्व में दूर–दूर तक फैली हुई थी। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में धीरे–धीरे उद्योगों का पतन हो गया। प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण भारत के लघु एवं कुटीर उद्योगों का सम्पूर्ण नाश हो गया। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में उद्यमिता के पर्याप्त विकास के लिये सुनियोजित प्रयास किये गये। जिनके अंतर्गत देश में प्रगतिशील और व्यावहारिक औद्योगिक नीतियों का निर्माण किया गया। सरकार की नीतियां आर्थिक क्रिया को प्रोत्साहित अथवा हतोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सरकारों के रचनात्मक प्रोत्साहन के बिना देश की आर्थिक

टिप्पणी

प्रगति सम्भव नहीं है। अतः सरकार द्वारा अपने विभिन्न विभागों, संगठनों और एजेन्सियों के माध्यम से उद्योगों के लिये विभिन्न सुविधाओं और प्रेरणाओं को उपलब्ध करवाना प्रारंभ किया। उद्यमिता के विकास हेतु केन्द्र एवं राज्य सरकारों के संयुक्त प्रयासों से उद्यमियों को प्रशिक्षित एवं अभिप्रेरित किया जा रहा है। तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा का प्रसार किया जा रहा है। परिणामस्वरूप देश में एक उद्यमी संस्कृति (Entrepreneurial Culture) विकसित हो रही है। भारत में उद्यमिता विकास हेतु किये गये सरकारी प्रयासों को निम्न प्रकार वर्णित किया जा सकता है–

1. **औद्योगिक नीतियां** : स्वतंत्रता के पश्चात् उद्यमिता विकास के लिये सरकार ने औद्योगिक नीतियां तैयार की और समय–समय पर उनमें संशोधन भी किये ताकि देश में उद्यमियों को अनुकूल अवसर एवं वातावरण प्राप्त हो सके। भारत की अर्थव्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के उद्देश्य से 24 जुलाई, 1991 को केन्द्र सरकार ने अपनी नवीनतम औद्योगिक नीति की घोषणा की। यह नीति उद्यमिता विकास की दृष्टि से एक युग परिवर्तनकारी दस्तावेज के रूप में स्थापित हुई। इस नीति के प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित हैं–
   (i) सार्वजनिक क्षेत्रों के लिये आरक्षित क्षेत्रों में कटौती की गई।
   (ii) कानूनी एवं प्रशासनिक नियंत्रणों से मुक्ति।
   (iii) लाइसेंसिंग प्रक्रिया का सरलीकरण।
   (iv) सीमा शुल्कों एवं उत्पाद शुल्कों में कटौती।
   (v) व्यापारिक एवं विनिमय दर नीतियों का उदारीकरण।
   (vi) सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की अंशपूंजी का विनिवेश करना।
   (vii) स्वदेशी औद्योगिक उपक्रमों में विदेशी अंशपूंजी की भागीदारी की सीमाओं में वृद्धि।
   (viii) मोडवेट और सेनवेट प्रणाली लागू करना आदि।
2. **पंचवर्षीय योजनाएं** : सरकार ने विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में उद्यमिता के विकास को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं में औद्योगिक विकास पर किये जाने वाले व्यय में निरंतर वृद्धि की है। इससे व्यावसायिक उद्यमिता के समन्वित एवं संतुलित विकास को गति मिली है। इन योजनाओं के अंतर्गत निजी उद्यमियों के लिये विभिन्न सहायताएं, सुविधाएं व प्रेरणाएं उपलब्ध करायी गई हैं।
3. **औद्योगिक क्षेत्रों एवं बस्तियों का निर्माण** : सरकार द्वारा अनेक क्षेत्रों को औद्योगिक क्षेत्र घोषित करके औद्योगिक साहस को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से वहां औद्योगिक बस्तियों का निर्माण करवाया गया। इन बस्तियों में उद्योगों की स्थापना के लिये विभिन्न आधारभूत सुविधाएं उपलब्ध करवायी जाती हैं जैसे–बैंक, बीमा, विद्युत, परिवहन, भण्डार–गृह, प्रशिक्षण, अनुसंधान आदि। देश के विभिन्न भागों में राज्य एवं केन्द्र सरकारों द्वारा स्थापित संस्थाएं और विभाग आधारभूत सुविधाओं के विकास में संलग्न हैं। पिछड़े हुए क्षेत्रों में जिला उद्योग केन्द्र, लघु उद्योग विकास निगम और उद्योग निदेशालय भी उद्यमिता विकास के लिये महत्वपूर्ण सुविधाएं उपलब्ध करवा रहे हैं।

टिप्पणी

4. **तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा का विकास** : उसे उद्यमियों को तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने के लिये सरकार द्वारा विभिन्न तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा संस्थानों की स्थापना की गई है। इन संस्थानों में शिक्षा ग्रहण करने वाले युवकों को ऋण व अन्य सुविधाएं उपलब्ध करायी जाती हैं। स्कूलों व महाविद्यालयों में भी शिक्षा को उद्यमिता अभिमुखी बनाने के प्रयास किये जा रहे हैं।

5. **परामर्श सहायता** : लघु उद्योग सेवा संस्थान, जिला उद्योग केन्द्र तथा उद्योग निदेशालय आदि विभिन्न सरकारी संगठनों द्वारा उद्यमियों को तकनीकी, वित्तीय एवं प्रबंधकीय मामलों में विशेषज्ञों का परामर्श उपलब्ध कराया जाता है। उद्यमियों को परियोजना निर्माण, डिजाइन, उत्पादन की नवीन तकनीक, कच्चे माल एवं कलपुर्जों का एकत्रीकरण आदि के बारे में परामर्श दिया जाता है। बैंक व अन्य विभिन्न संस्थाएं भी उद्यमियों को विशेष परामर्श प्रदान करते हैं जैसे भारतीय औद्योगिक निगम उद्योग के विचार से उद्योग प्रारंभ करने तक सभी अवस्थाओं में समय–समय पर परामर्श देता है।

6. **विचारगोष्ठियों और कार्यशालाओं का आयोजन** : देश में समय–समय पर उद्यमिता के विकास के लिये और उनकी समस्याओं के निवारण के संबंध में विचार–विमर्श के लिये विचारगोष्ठियों और कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है। इस दिशा में भारतीय उद्यमिता विकास संस्थान महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। भारतीय औद्योगिक वित्त निगम उद्यमियों के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों व विचारगोष्ठियों के लिये वित्त की व्यवस्था करता है।

7. **प्रगतिशील व्यावसायिक नीतियां** : देश में समय–समय पर उद्यमियों के विकास के लिये विभिन्न व्यावसायिक नीतियों की घोषणा की जाती रही है। ये नीतियां उद्यमियों के लिए अनुकूल वातावरण निर्मित करके उन्हें अभिप्रेरित करने का प्रयास करती हैं। केन्द्र सरकार द्वारा उद्योगों की स्थापना को प्रोत्साहित करने के लिए कर नीति, विनियोग नीति, मूल्य नीति, वित्त नीति, मौद्रिक नीति, लाइसेंस नीति, आयात–निर्यात नीति आदि नीतियों का निर्माण किया गया है।

8. **परियोजना प्रतिवेदनों का शीघ्र अनुमोदन** : सरकार इस बात पर विशेष ध्यान दे रही है कि उद्यमियों द्वारा प्रस्तुत परियोजना प्रतिवेदनों को शीघ्र ही अनुमोदित किया जाए। सरकारी संस्थाएं परियोजना प्रतिवेदनों के निर्माण में तकनीकी परामर्श देती हैं। उद्यमियों को सरकारी विभागों में व्याप्त लालफीताशाही से मुक्ति दिलवाने के लिए जिला उद्योग केन्द्रों की स्थापना की गई है और एकल खिड़की प्रणाली द्वारा ऋण के लिये प्रस्तुत आवेदनों को भी निपटाने की व्यवस्था की गई है।

9. **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी उद्यमी पार्कों की स्थापना** : भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की सहायता से महाविद्यालयों व अनुसंधान द्वारा विज्ञान और प्रौद्योगिकी उद्यमी पार्क स्थापित किये गये हैं। प्रौद्योगिकी संस्थाओं एवं उद्योग के मध्य समन्वय बनाये रखने के लिये, उद्यमियों की नई श्रेणी विकसित करने, व्यावहारिक अनुसंधान में वृद्धि करने और प्रशिक्षण देने एवं उद्योगों में प्रौद्योगिकी वातावरण निर्मित करने के उद्देश्य से इन पार्कों की स्थापना की गई। मुम्बई

क्षेत्रीय इंजीनियरिंग कॉलेज; बिड़ला प्रौद्योगिकी संस्थान, रांची; राष्ट्रीय उद्यमी रसायन पार्क, त्रिची और हरकोट बटलर प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर आदि ऐसे प्रमुख पार्क हैं।

टिप्पणी

10. **प्रशिक्षण सुविधाओं का विकास** : सरकार उद्यमियों में उद्यमिता का विकास करने हेतु विभिन्न संस्थाओं, प्रबंध संस्थाओं और तकनीकी स्कूलों के माध्यम से समय–समय पर प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करती है। इन कार्यक्रमों में उद्यमियों को परियोजना विकास, उपक्रम प्रबंध तथा उत्पादन विधियों के बारे जानकारी दी जाती है। उद्यमियों को प्रशिक्षण देने के लिये अनेक संगठन है जैसे लघु उद्योग विकास संगठन (SIDO), लघु उद्योग सेवा संस्थान (SISI), राष्ट्रीय साहस और लघु व्यवसाय विकास संस्थान (NIESBD), जिला उद्योग केन्द्र (DIC) आदि प्रमुख हैं।

11. **प्रबंध विकास** : प्रबंध किसी भी उद्यम की सफलता का एक मूल घटक है। उद्यमियों में प्रबंधकीय दक्षता के विकास के लिये भी सरकार द्वारा सहायता प्रदान की जाती है। भारतीय औद्योगिक वित्त निगम द्वारा प्रबंध विकास संस्थान की स्थापना की गई है। यह निगम उद्यमियों के लिए समय–समय पर प्रबंध विकास कार्यक्रमों का आयोजन करता है। यह निगम प्रबंधकीय योग्यताओं में वृद्धि करता है और उद्यमियों की प्रबंधकीय समस्याओं का समाधान करता है।

12. **विदेशी विनियोग को प्रोत्साहन** : सरकार ने विदेशी विनियोग को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से विदेशी विनियोग संवर्द्धन बोर्ड (FIPB), विदेशी विनियोग संवर्द्धन परिषद् (FIPC) और विदेशी विनियोग कार्यान्वयन अथॉरिटी (FIIA) आदि संस्थाओं की स्थापना की है।

13. **उत्पादकता परिषद्** : भारत में उद्यमिता विकास को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादकता एवं गुणवत्ता में सुधार करने के लिये विभिन्न उद्योगों में उत्पादकता परिषदों की स्थापना की। सन् 1958 में देश में एक राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् की स्थापना की गई थी। इस परिषद् के 12 क्षेत्रीय निदेशालय, 2 क्षेत्रीय कार्यालय तथा 48 स्थानीय उत्पादकता परिषदें हैं। ये परिषदें सरकार, श्रमिक एवं उद्योगपतियों की सभाओं को आयोजित करती हैं। इन परिषदों द्वारा उत्पादकता नामक पत्रिका का प्रकाशन भी किया जाता है।

14. **महिला उद्यमियों को प्रोत्साहन** : महिलाओं में साहसिक प्रवृत्ति को जाग्रत करने के लिए सरकार द्वारा विशेष उद्यमिता कार्यक्रम चलाये गये हैं। महिलाओं के लिये विशेष अनुदानों की व्यवस्था की गई है।

15. **वस्तुओं का प्रमापीकरण** : सरकार द्वारा उद्योगों में प्रमापित माल को प्रोत्साहन हेतु भारतीय प्रमाप संस्थान की स्थापना की गई है। इस संस्थान द्वारा चिन्हित माल को प्रमापित किस्म का माना जाता है। माल पर चिन्ह लगाने से पूर्व यह संस्थान उद्योगों के उत्पादों की विस्तृत जांच पड़ताल करता है।

16. **साहस सहायता इकाई की स्थापना** : भारत सरकार के औद्योगिक विकास विभाग के अंतर्गत साहस सहायता इकाई की स्थापना की गई है। इस इकाई का कार्य विदेशी सहयोग, पूंजीगत माल के आयात के संबंध में सहायता प्रदान

टिप्पणी

करना है। यह इकाई उद्यमियों को प्रार्थना पत्रों पर की गई कार्यवाही से अवगत कराती है और उद्यमियों की समस्याओं को दूर करवाने का प्रयास भी करती है।

17. **प्रशिक्षकों के लिये प्रशिक्षण व्यवस्था** : उद्यमियों को प्रशिक्षित करने वाले प्रशिक्षकों के लिये भी सरकार द्वारा प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाये जाते हैं। आदर्श प्रशिक्षण पाठ्यक्रम तैयार करने, प्रशिक्षकों एवं अभिप्रेरकों को प्रशिक्षण देने, आवश्यक सूचना सामग्री तैयार करने तथा शोध करने का कार्य उद्यमिता विकास संस्थान द्वारा किया जाता है। इस संस्थान द्वारा प्रशिक्षकों तथा अभिप्रेरकों के लिये अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम भी आयोजित किये गये हैं।

18. **ब्याज उप–सहायता योजनाएं** : ब्याज उपसहायता योजनाओं का मुख्य लक्ष्य महिला उद्यमियों एवं बेरोजगार युवाओं को स्व–विकास एवं रोजगार के लिये प्रोत्साहन देना, गुणवत्ता नियंत्रण उपायों को अपनाने तथा उपलब्ध देशी प्रौद्योगिकी को काम में लाना इत्यादि है। 1 जुलाई, 1988 से ब्याज उप–सहायता योजनाओं में यह प्रावधान है कि यदि बेरोजगार युवा और महिला उद्यमी अपने उद्यम के लिये बैंक से सहायता प्राप्त करते हैं तो वे अपनी परियोजना पूंजी अपेक्षाओं को पूरा करने के लिये बैंक ऋणों पर भारतीय औद्योगिक वित्त निगम द्वारा प्रदत्त ब्याज उप–सहायता प्राप्त कर सकते हैं।

19. **औद्योगिक नक्शों का निर्माण** : उद्यमियों को विकसित करने का कार्य जिला उद्योग केन्द्र और निदेशालय द्वारा किया जाता है। ये विभिन्न क्षेत्रों एवं जिलों में औद्योगिक विकास की सम्भावनाओं का पता लगाते हैं और फिर सर्वेक्षण करके प्रत्येक जिले का औद्योगिक नक्शा तैयार करते हैं, विभिन्न आंकड़े एकत्रित करते हैं और उस जिले के सम्भावित उद्योगों की सूची तैयार करते हैं। इससे उद्यमियों को कच्चे माल, श्रमिक आदि की जानकारी प्राप्त होती है और उद्यमी रूचि एवं क्षमता के अनुसार उपक्रम का चुनाव कर सकते हैं।

20. **प्रेरणात्मक कर नीति** : उद्योगों के विकास एवं विस्तार के लिये सरकार ने अनेक कर रियायतों की घोषणा की हुई है। प्रेरणात्मक कर नीति द्वारा सरकार उद्योगों को कर संबंधी विभिन्न छूट प्रदान करती है। नये उद्योगों को आयकर, विक्रय कर तथा उत्पाद कर में विशेष छूट प्रदान की जाती है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. 1852 में पारसी परिमैन ने स्टील कम्पनी कहां स्थापित की थी?

   (क) दिल्ली (ख) सूरत

   (ग) मुम्बई (घ) कोलकाता

4. भारत सरकार ने अपनी नवीनतम औद्योगिक नीति की घोषणा कब की?

   (क) 12 अक्टूबर, 1990 (ख) 24 जुलाई, 1991

   (ग) 07 अगस्त, 1993 (घ) 18 अप्रैल, 1995

3.4 स्वरोजगार मूलक योजनाएं

टिप्पणी

देश में बेकारी दूर करने के लिए सरकार ने समय–समय पर कई विशेष रोजगार योजनाएं प्रारंभ कीं। एक के बाद एक नई योजनाएं प्रस्थापित की गईं और सभी प्रकार के रोजगार अवसरों के सृजन का पूरा–पूरा प्रयास किया। जिनमें अभी हाल में ही घोषित 'जवाहर रोजगार योजना' प्रमुख है। नीचे कुछ योजनाओं का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। इनमें से कुछ योजनाएं सरकार द्वारा बंद कर दी गई हैं एवं कुछ योजनाएं दूसरी योजनाओं में सम्मिलत कर दी गई हैं।

सरकार द्वारा रोजगार देने के लिए जो उपाय अपनाए गए हैं, वे निम्न हैं–

(1) जवाहर ग्राम समृद्धि योजना– 1989–90 के बजट में इस योजना को शुरू किया गया। इस योजना में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा खेतिहर मजदूर रोजगार गारंटी कार्यक्रम का विलय कर दिया गया था। इसके लिए साधन जुटाने के उद्देश्य से आयकर दाताओं पर कर निर्धारण वर्ष 1990–91 में 50,000 से अधिक आय पर 8% की दर से अधिभार (Surcharge) लगाया गया। इसके मुख्य लाभ थे–

1. इस योजना में गरीबी रेखा के नीचे के परिवारों के कम से कम एक व्यक्ति को 50 से 100 दिन तक रोजगार दिलाने की गारंटी जिनको वर्ष में 6 महीने काम मिल जाता है।
2. जो रोजगार अवसर पैदा किये गए हैं उनमें से 30% स्त्रियों के लिए आरक्षित थे।
3. जवाहर योजना का लक्ष्य प्रत्येक पंचायत तक पहुंचना है।
4. जवाहर रोजगार योजना में केंद्र का भाग 80% तथा राज्य का 20% होगा।

अप्रैल 1999 में जवाहर रोजगार योजना को पुनर्गठित किया गया और इसे 'जवाहर ग्राम समृद्धि योजना' का नाम दिया गया।

(2) स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना– यह योजना अप्रैल 1999 में समन्वित ग्राम विकास (Integrated Rural Development Programme) और दस लाख कुंओं (Million Wells Scheme) को मिलाकर एक स्वरोजगार कार्यक्रम के रूप में लागू की गई। यह ग्रामीण निर्धनों के लिए रोजगार का एकमात्रा कार्यक्रम है। इस योजना का उद्देश्य व्यष्टि–उद्योगों (Micro Enterprise) को उन्नत करना तथा स्व–सहायता समूहों (Self-help groups) की मदद करना है। स्वरोजगार में लगे लोगों को बैंकों से ऋण व सरकारी अर्थ सहायता की मदद में आय–सर्जन की परिसंपत्तियां उपलब्ध करना ही जिससे गरीबी की रेखा से ऊपर निकला जा सके। 40.40 लाख स्व–सहायता समूह बनाए जा चुके थे तथा 154.87 लाख स्वरोजगारी लोगों को 37,927 के रुपये की सहायता 31 दिसंबर 2010 तक दी जा चुकी थी।

(3) समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम– यह योजना 1978–79 में प्रारंभ की गई। इस योजना (छठी योजना) का उद्देश्य प्रमुख रूप से गरीबी उन्मूलन था। यह एक व्यापक एवं स्वरोजगार कार्यक्रम भी था। इस योजना के द्वारा प्राथमिक क्षेत्र में पशुपालन, रेशम कीटपालन तथा भूमि आधारित गतिविधियों, द्वितीयक क्षेत्र में बुनाई,

टिप्पणी

हथकरघों इत्यादि के काम तथा तृतीयक क्षेत्र में सेवा व व्यावसायिक गतिविधियों को प्रोत्साहन दिया गया। छठी योजना में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत सभी विकास खंडों में 1 करोड़ 50 लाख परिवारों को लाभ पहुंचाना प्रमुख लक्ष्य था। इससे प्रत्येक खंड को 3,000 परिवारों को सहायता प्राप्ति की आशा थी। प्रत्येक ब्लॉक में 35 लाख रुपये के समान राशि इस कार्य के लिए निवेश करने का निर्णय किया गया जिसे 50:50 के आधार पर केंद्र और राज्यों के बीच बांटा जाना था।

(4) संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना– जवाहर ग्राम समृद्धि योजना और रोजगार आश्वासन योजना को मिलाकर संपूर्ण रोजगार योजना सितंबर 2001 से प्रारंभ की गई। ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त मजदूरी रोजगार की व्यवस्था करना, इस योजना का प्रमुख उद्देश्य है, जिनसे ग्रामीण लोगों को खाद्य सुरक्षा मिल सके। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक, सामाजिक एवं आर्थिक आधारित संरचना का निर्माण करना, इसका लाभ था। यह सभी ग्रामीण गरीब व्यक्तियों के लिए बनायी गई है। इस योजना का लाभ वो व्यक्ति ले सकते हैं जो गांव के आस–पास शारीरिक रूप से स्वस्थ्य तथा कार्यकुशल हैं।

(5) स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना– यह योजना 1 दिसंबर 1997 से लागू की गई। इस योजना का उद्देश्य शहरी सहायता प्रदान करना है। इस योजना के दो भाग हैं– (1) शहरी स्वरोजगार कार्यक्रम (2) शहरी मजदूरी रोजगार कार्यक्रम। इन योजनाओं के अंतर्गत रोजगार स्थापित करने पर प्रॉजेक्ट लागत के 50% तक आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। 31 दिसंबर 2010 तक 6,80,325 लाभ भोगियों को इस योजना से लाभ मिला है।

(6) खेतिहर मजदूर रोजगार गारंटी कार्यक्रम– यह योजना 1983 में प्रारंभ हुई। इसका उद्देश्य भूमिहीन ग्रामीणों को रोजगार की सुविधाएं उपलब्ध कराना है। इसमें परिवार में एक सदस्य को कम से कम 100 दिन रोजगार प्रदान करना है। बाद में इस योजना को जवाहर रोजगार योजना में मिला दिया गया।

(7) जवाहर ग्राम समृद्धि योजना– इस योजना को जवाहर रोजगार की पुनःसंरचना करके बनाया गया है। इसे अप्रैल 1999 से प्रारंभ किया गया है। इसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगार व अल्परोजगार के साथ महिलाओं को अतिरिक्त रोजगार उपलब्ध कराना है।

(8) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम– यह अधिनियम 2005 सितंबर में पारित हुआ। यह 2 फरवरी 2006 से लागू हुआ। पहले चरण में इसे देश के 200 सबसे पिछड़े जिलों में कार्यान्वित किया गया। दूसरे चरण में 2007–08 में और 130 जिलों में इसे लागू किया गया। आरंभिक लक्ष्यों के अनुसार NREGA को पांच वर्षों की अवधि में पूरे देश में लागू करना था, परंतु संपूर्ण देश में रोजगार सुरक्षा का जाल फैलाने के लिए तथा इसकी मांग को ध्यान में रखते हुए तीसरे चरण में इसे 1 अप्रैल 2008 से बाकी के सभी बचे हुए 274 ग्रामीण जिलों में लागू कर दिया गया। इस प्रकार अब राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (National Rural Employment Gurantee Scheme) पूरे देश में लागू हो चुकी है। 2 अक्टूबर 2009 से इस योजना का नाम महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना कर दिया गया है।

टिप्पणी

इस योजना के अंतर्गत 100% मजदूरी दर रखी गई है। खाद्य पदार्थों की कीमत बढ़ने के कारण जनवरी 2011 से सरकार ने मजदूरी दर का निर्धारण, कृषि श्रमिकों के उपभोक्ता कीमत सूचकांक के आधार पर करने का निर्णय लिया। विभिन्न राज्यों में कृषि श्रमिकों का उपभोक्ता कीमत सूचकांक अलग–अलग है। इसलिए अब मजदूरी दरों में भी अंतर आ गया है। 2010–11 में महात्मा गांधी ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के लिए 40,100 करोड़ रुपये खर्च की व्यवस्था की गई जबकि वास्तविक व्यय केवल 23,000 करोड़ रुपये के आस पास रहा है, जो बजटीय व्यवस्था का मात्रा 57% है। 2011–12 के लिए MGNREGS के अधीन 40,000 करोड़ रुपये के खर्च की व्यवस्था की गई थी।

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम

भारतीय योजनाओं में गरीबी उन्मूलन का लक्ष्य प्रमुख रूप से रखा गया है। कुछ कार्यक्रम जो सरकार द्वारा गरीबी निवारण हेतु चलाए गए हैं वे निम्नलिखित हैं–

- **स्वरोजगार कार्यक्रम**

  (1) स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना– 31 मार्च 1999 से पूर्व में चल रही छः योजनाओं को समाप्त करके (1) एकीकृत ग्रामीण विकास योजना, (2) स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवाओं को प्रशिक्षण (TRYSEM), (3) ग्रामीण महिला एवं बालोत्थान योजना, (4) दस लाख कूप योजना (MWS), (5) उन्नत टूल किट योजना (SITRA), (6) गंगा कल्याण योजना, 1 अप्रैल 1999 से स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना लागू की गई तथा सभी पूर्व योजनाओं को इसके अंदर मिला दिया गया। इस योजना का उद्देश्य स्व–रोजगारियों को बैंक ऋण एवं सरकारी सब्सिडी के माध्यम से स्व–सहायता समूहों में संगठित करके गरीबी रेखा से ऊपर लाना है।

  (2) शहरी निर्धनता दूर करने के लिए कार्यक्रम– शहरी क्षेत्र में विशिष्ट निर्धनता–उन्मूलन कार्यक्रम स्वर्ण जयंती शहरी योजना के नाम से चल रहा है।

- **स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना (STSRY)**

गरीबी निवारण के लिए शहरी क्षेत्रों में 1 दिसंबर 1977 से यह लागू की गई। यह योजना पूर्व में चल रही तीन योजनाओं (1) नेहरू रोजगार योजना (NRY), (2) गरीबों के लिए शहरी बुनियादी सेवाएं (UPSP), (3) प्रधानमंत्री की समन्वित शहरी गरीबी उन्मूलन योजना (PMIU PEP) को मिलाकर बनायी गई हैं। इसका प्रमुख उद्देश्य शहरी निर्धनों को स्वरोजगार उपक्रम स्थापित करने के लिए वित्तीय सहायता देना है। इसकी दो योजनाएं हैं–

(1) शहरी स्वरोजगार कार्यक्रम– इसके दो घटक हैं–

(क) लघु उद्यम और कौशल विकास के द्वारा स्वरोजगार।

(ख) शहरी क्षेत्रों में महिलाओं और बच्चों का विकास।

(2) शहरी मजदूर रोजगार कार्यक्रम– इसका उद्देश्य शहरी स्थानीय निकायों के अधिकार क्षेत्र में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लाभार्थियों को उनके श्रम का सामाजिक और आर्थिक रूप से उपयोगी सार्वजनिक संपत्ति के निर्माण में उपयोग करके मजदूरी रोजगार उपलब्ध कराना है।

टिप्पणी

• **मजदूरी रोजगार कार्यक्रम**

निर्धनता निवारण के लिए मजदूरी रोजगार कार्यक्रम बहुत महत्वपूर्ण है। यह केवल कृषि कार्य में कमी के समय ही नहीं बल्कि सूखा, बाढ़ या अन्य प्राकृतिक विपदाओं में ही सहायता एवं रोजगार प्रदान करते हैं। 2 अक्टूबर 1993 को रोजगार आश्वासन योजना भी शुरू की गई थी जिसको संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना में मिला दिया गया है।

1. **संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना** (SGRY)– यह योजना 25 सितंबर, 2001 को प्रारंभ की गई इस योजना के तहत ग्रामीण क्षेत्र में अतिरिक्त मजदूरी दर पर रोजगार प्रदान करने का प्रावधान किया गया। इसके अलावा इस योजना के तहत प्राकृतिक विपदाओं से प्रभावित क्षेत्रों को आर्थिक सहायता प्रदान करने का भी प्रावधान किया गया।

   SGRY उन सभी ग्रामीण निर्धनों के लिए खुली है जिन्हें मजदूरी की जरूरत है और जो गांव/बस्ती में और उसके आसपास शारीरिक और अकुशल श्रम कार्य करने के इच्छुक हों।

2. **प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना** (PMGY)– यह योजना 2000–01 में शुरू की गई। ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों के जीवन–स्तर में सुधार लाने के सभी कार्यक्रम जैसे स्वास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, पेयजल, आवास एवं ग्रामीण सड़कों का विकास करने के लिए इस योजना का प्रारंभ किया गया।

• **राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम**

चालू राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम के अंतर्गत तीन योजनाएं आती हैं–

1. **राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना** : गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले 65 वर्ष से अधिक आयु वाले वृद्धों को 200/– प्रतिमाह के रूप में राष्ट्रीय न्यूनतम वृद्धावस्था पेंशन देने का प्रावधान किया गया है।
2. **राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना** : गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवार के आय अर्जक मुखिया की आकस्मिक मृत्यु होने पर परिवार को 5000/– की एकमुश्त राशि उत्तरजीवी लाभ (Survivor Benefit) के रूप में देने का प्रावधान है। दुर्घटना से मृत्यु की स्थिति में यह सहायता राशि 10,000/– होती है।
3. **राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना** : इस योजना में गरीब महिलाओं को प्रथम दो प्रसवों में 300/– देने का प्रावधान है। इस लाभ को प्राप्त करने के लिए लाभार्थी की आयु 19 वर्ष या उसके अधिक होनी चाहिए।

• **राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना**

यह योजना 2005 में शुरू की गई। इस योजना के तहत ग्रामीण क्षेत्र के प्रत्येक घर में से एक नौजवान को 100 दिन का काम उपलब्ध कराए जाने का प्रावधान किया गया। यह काम उन लोगों के लिए होगा जो काम करना चाहते हैं तथा वर्तमान दर पर काम करने के लिए तैयार भी हैं।

• **प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना**

यह योजना सन् 2000 में शुरू हुई। यह कार्यक्रम मुख्यतः गांवों को शहरों से जोड़ने के लिए था। इस कार्यक्रम के तहत 2006 तक 18,281 करोड़ रुपये खर्च किये गए।

टिप्पणी

• **इंदिरा आवास योजना**

यह योजना गरीबों को घर मुहैया कराने के लिए बनायी गई थी। इसमें बंधुवा मजदूरों व गरीब वर्गों को मुफ्त आवास देने की घोषणा की गई। इस योजना के तहत 2006 तक 153 लाख घरों का निर्माण किया गया।

• **काम के बदले अनाज संबंधी राष्ट्रीय कार्यक्रम**

यह कार्यक्रम 2004 में लागू किया गया। यह 150 पिछड़े जिलों में प्रारंभ किया गया जिसमें काम के अतिरिक्त अनाज दिलाने की भी बात की गई। जनवरी 2006 तक 17 लाख रोजगार उपलब्ध कराए गए व 11.60 लाख टन अनाज उपलब्ध कराया गया।

• **अन्य योजनाएं**

निर्धनता को दूर करने के लिए कुछ अन्य योजनाएं निम्न हैं–

1. **सार्वभौमिक स्वास्थ्य बीमा योजना**– इसका उद्देश्य गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों के लिए बेहतर चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराने हेतु बीमा सुरक्षा प्रदान करना है। इसे 28 फरवरी, 2003 को वित्त मंत्री द्वारा घोषित तथा 14 जुलाई, 2003 को प्रधानमंत्री द्वारा प्रारंभ करने की घोषणा की गई।
2. **जननी सुरक्षा योजना**– गर्भवती महिलाओं को स्वास्थ्य केंद्र ने पंजीकरण के बाद से शिशु जन्म तथा आवश्यक चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराते हुए बच्चों के जन्म पर नगद सहायता उपलब्ध करना। 8 मार्च, 2003 को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर केंद्रीय स्वास्थ्य एवं संसदीय कार्य मंत्री सुषमा स्वराज द्वारा घोषित किया गया।
3. **जयप्रकाश नारायण रोजगार गारंटी योजना**– देश के सर्वाधिक गरीबी वाले जनपदों में ग्रामीण बेरोजगारों को रोजगार प्रदान करना। वित्त मंत्री द्वारा फरवरी 2002 के बजट में इसकी घोषणा की गई।
4. **हरियाली परियोजना**– पेयजल समस्या के निवारण एवं बंजर भूमि में सिंचाई हेतु जल की व्यवस्था सुनिश्चित करना। 27 जनवरी, 2003 को प्रधानमंत्री द्वारा इस योजना की घोषणा की गई।
5. **आश्रय बीमा योजना**– उदारीकरण प्रक्रिया के फलस्वरूप विभिन्न उद्योगों से विस्थापित श्रमिकों हेतु स्वरोजगार स्थापित करने के लिए आर्थिक सहायता उपलब्ध कराना। वर्ष 2002–01 के बजट में इस योजना की घोषणा की गई।
6. **खेतिहर मजदूर बीमा योजना**– ग्रामीण खेतिहर मजदूरों को बीमा सुरक्षा प्रदान करने के साथ 100 रुपये प्रतिमाह पेंशन प्रदान करना। 1 जुलाई, 2001 से इस योजना को पूरे देश में लागू किया गया है।
7. **शिक्षा सहयोग बीमा योजना**– गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों के कक्षा 9 से 12 तक की कक्षाओं में पढ़ने वाले बच्चों को 100 रुपये प्रतिमाह शिक्षा भत्ता प्रदान करना। 1 जुलाई, 2001 से इस योजना को पूरे देश में लागू किया गया है।
8. **अंबेडकर–वाल्मीकि मलिन बस्ती आवास योजना**– शहरी क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, पिछड़े, कमजोर वर्गों के लोगों को सस्ती दरों पर मकान उपलब्ध कराना। इसकी घोषणा 15 अगस्त 2001 को की गई। इस

टिप्पणी

योजना के अंतर्गत प्रतिवर्ष शहरी विकास मंत्रालय द्वारा 2,000 करोड़ रुपये का अनुदान दिए जाने का प्रावधान किया गया है।

9. **महिला स्वाधार योजना**– स्वयं सहायता समूहों के गठन के माध्यम से महिलाओं का आर्थिक–सामाजिक सशक्तीकरण करना। इसकी योजना जुलाई 2001 में मानव संसाधन विकास मंत्री द्वारा की गई।
10. **निर्मल भारत अभियान**– इसके अंतर्गत नगरीय गंदी बस्तियों में सामुदायिक शौचालयों की सुविधा को विस्तारित करते हुए यहां के लोगों में स्वच्छता के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने पर भी ध्यान केंद्रित किया जाना। इस योजना की घोषणा प्रधानमंत्री द्वारा 15 अगस्त, 2002 को की गई।
11. **भारत निर्माण योजना**– गांवों में आधारभूत सुविधाओं के विकास हेतु अद्यः संरचना उपलब्ध कराना। इसकी घोषणा प्रधानमंत्री द्वारा 16 दिसंबर, 2005 को नई दिल्ली में की गई।
12. **राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना**– गरीबी रेखा से नीचे की श्रेणी के सभी कामगारों को स्मार्ट कार्ड जारी किया जाना। इसकी घोषणा केंद्र सरकार द्वारा 1 अक्टूबर, 2007 को की गई।

गरीबी हटाओ कार्यक्रमों की आलोचनात्मक समीक्षा

अगर किसी समाज से गरीबी हटाना चाहते हैं तो उसके लिए दो बातें और करने योग्य हैं–

(1) भूमि का स्वामित्व अधिक से अधिक जनता को मिलना।

(2) भू–धारणा अधिकार काश्तकारों वर्गों को सुरक्षा प्रदान करे।

परंतु पांचवीं योजना के प्रारंभ से ही इन दोनों बिंदुओं की उपेक्षा की गई है। गरीबी निवारण युक्ति की निम्न आधारों पर आलोचना की गई है–

(1) गरीबी निवारण कार्यक्रम का पूरा ध्यान अतिरिक्त आय सृजन पर रहता है। इस कार्यक्रम की सफलता के लिए उच्च आय वर्गों को प्राप्त अतिरिक्त लाभ समाप्त होना चाहिए क्योंकि अधिकांशः अतिरिक्त छिपे धन (Black money) से उत्पन्न होता है।

(2) दीर्घकालीन आधार पर गरीबी को दूर करने के लिए आवश्यक सामाजिक आगतों की आपूर्ति पर ध्यान नहीं दिया गया है अर्थात परिवार कल्याण, पौष्टिक आहार, सामाजिक सुरक्षा तथा न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति पर ध्यान नहीं दिया जाता है।

(3) इस कार्यक्रम में अपाहिज, बीमार तथा सामाजिक रूप से अयोग्य लोगों के लिए कुछ नहीं दिया गया है।

(4) खेतों का आकार छोटा होना तथा जनसंख्या का लगातार बढ़ना इस बात की तरफ इशारा करता है कि स्वरोजगार उद्यानों पर या मजदूरी के रोजगार कार्यक्रमों पर निर्भरता सही नहीं है।

(5) आय तथा रोजगार प्रदान करने वाले गरीबी निवारण कार्यक्रम, गरीबों को अतिरिक्त आय उपलब्ध कराते हैं जिसका उपभोग ये लोग और खाद्यान्नों की

टिप्पणी

खरीदारी के लिए कर सकते हैं, परंतु ये कार्यक्रम इस बात को निश्चित नहीं कर पाते कि गरीब लोगों को वर्ष पर्यंत खाद्यान्नों की उपयुक्त मात्रा प्राप्त हो सकेगी क्योंकि यह तो खाद्यान्नों की कीमतों, पूर्ति की सहजता तथा आय प्राप्त होने के समय पर निर्भर करता है।

(6) गरीबी निवारण कार्यक्रम कितने सफल हुए हैं इसको देखने और दिखाने के लिए यह जरूरी नहीं है कि गरीबी की रेखा से कितने लोग निकल चुके हैं, बल्कि इस तरफ ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है कि गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे विभिन्न लोगों के आय स्तरों पर क्या प्रभाव पड़ा है। इसके लिए अमर्त्य सेन का कहना है कि गरीबी रेखा से नीचे वाले आय वर्गों को अलग–अलग भार दिया जाना चाहिए।

सी. टी. कुरियन (C.T. Kurion) का कहना है कि गरीबी निवारण के लिए जो कार्यक्रम बनाए गए हैं उनके अंतर्गत चाहे राजनीतिक एवं प्रशासनिक कार्य सच्चाई के साथ करें तब भी सफलता हाथ नहीं लगेगी क्योंकि साधनों का असमान वितरण, विद्यमान संरचना में साधनों पर निजी अधिकार तथा उनका प्रयोग साधनों पर नियंत्रण पाने के लिए किया जाता है।

सी. टी. कुरियन के तर्क ऐसा संकेत देते हैं कि जब तक आधारभूत ढांचा परिवर्तित नहीं होगा तब तक धनी तथा मध्यम वर्ग, निर्धन वर्ग की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त करते रहेंगे। गरीबी निवारण कार्यक्रम बनाए तो गरीब व्यक्तियों के लिए गए परंतु लाभान्वित हो रहा है अमीर वर्ग। अतः इन कार्यक्रमों में बहुत अधिक परिवर्तन की आवश्यकता है।

पंचवर्षीय योजनाएं एवं गरीबी हटाओ कार्यक्रम

प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं में गरीबी हटाने पर बहुत जोर नहीं दिया गया और न ही प्रयास किये गए। इसी प्रकार **चौथी पंचवर्षीय** योजना में 'राष्ट्रीय न्यूनतम आय' (National Minimum Income) गरीबों को मिले यह विचार रखा गया, लेकिन प्रयासों पर जोर नहीं दिया गया। गरीबी हटाने की ओर सबसे पहले **पांचवीं योजना (1971)** में संसदीय चुनाव में 'गरीबी हटाओ' के बारे के रूप दिया गया। उस समय के अनुमान के अनुसार 22 करोड़ लोग गरीबी की रेखा के नीचे रह रहे थे। 1960–61 की कीमतों को आधार मानकर 20/– प्रतिमाह प्रति व्यक्ति अनुमान लगाया गया था। **छठी योजना** में पोषण की आवश्यकता निर्धनता की परिभाषा बनी। इसमें 2400 कैलोरी ग्रामीण लोगों के लिए तथा 2100 कैलोरी शहरी लोगों के लिए रखी गई, (प्रतिदिन प्रति व्यक्ति) कैलोरीज के आधार पर 1979–80 के निर्धनों की संख्या 31.68 करोड़ थी जो 1984–85 में कम होकर 21.52 करोड़ रह गई। इस योजना में यह विचार किया गया था कि विकास प्रक्रिया के प्रभाव के कारण जनसंख्या (निर्धनता के नीचे रहने वाली) का अनुपात 48.4% से कम होकर 28.9% हो जाएगा।

सातवीं योजना में उत्पादक रोजगार प्रदान करने पर जोर दिया गया न कि गरीबी दूर करने पर। इस योजना का लक्ष्य उत्पादक रोजगार अवसरों को बढ़ाना था जिससे गरीबी स्वतः कम हो जाए। इसमें गरीबी को 39.9% से कम करके 28.2% करने का लक्ष्य रखा गया। इस योजना में स्त्रियों को विशेष रूप से शामिल किया गया तथा

टिप्पणी

स्वरोजगार एवं मजदूरी पर रोजगार के कार्यक्रमों में बेहतर समन्वय की आवश्यकता पर जोर दिया गया।

आठवीं योजना का मुख्य उद्देश्य गरीबी उन्मूलन था। इस योजना में रोजगार के अवसरों में वृद्धि तथा बेरोजगार एवं अल्परोजगार गरीबों की आय में बढ़ोत्तरी द्वारा गरीबी निवारण मुख्य उपाय माना गया, लेकिन इस योजना के फल दीर्घकाल में ही प्राप्त हो सकते हैं। अल्पकाल में गरीबी उन्मूलन के लिए जवाहर रोजगार योजना, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम आदि को सहारा बनाया गया।

नौवीं योजना उदारीकरण की नीति पर आधारित थी। इसमें आर्थिक संवृद्धि के लिए रिसाव–प्रभाव के महत्व को महत्ता प्रदान की गई और यह माना गया कि गरीबी कम होगी। इस योजना ने गरीबी निवारण कार्यक्रमों के महत्व को स्वीकार किया है।

दसवीं योजना के लक्ष्यों में एक लक्ष्य श्रमिक बल में होने वाली वृद्धि के वास्ते लाभप्रद और उच्च कोटि के रोजगार की व्यवस्था करना था। बेरोजगारी का 9% लगभग बैकलॉग है जो 3.5 करोड़ व्यक्तियों के समक्ष है। इस योजना में 5 करोड़ रोजगार अवसरों के सृजन का लक्ष्य था। इस योजना में भी रिसाव–प्रभाव को महत्ता दी गई, परंतु राज्यवार संवृद्धि लक्ष्य निश्चित कर देने मात्रा से ही क्या गरीबी कम हो जाएगी? एक विवादास्पद प्रश्न है।

ग्यारहवीं योजना में तीव्र संवृद्धि पर जोर दिया गया, परंतु इस संवृद्धि का बेहतर संतुलन प्राप्त करना आवश्यक है। औद्योगिक एवं सेवा क्षेत्रों में तेजी से रोजगार अवसरों का सृजन किया जाए। इस योजना में यह प्रावधान रखा गया कि कृषि क्षेत्र में श्रमिक/साधनों को निकालकर गैर कृषि क्षेत्रों में भेज दिया जाए जहां पर उत्पादकता तथा प्रति व्यक्ति वास्तविक आय अच्छी होने की संभावना हो। अतः भूमि की उत्पादकता बढ़ाई जाए। इस योजना में यह अनुमान किया गया कि गरीबी का प्रतिशत जो 2004–05 में 21.8% है वह गिरकर 15% रह जाएगा।

गरीबी दूर करने के कार्यक्रमों की प्रभावशीलता इस पर निर्भर करती है कि धन का प्रयोग किस प्रकार किया जा रहा है। इन कार्यक्रमों को प्रभावशाली बनाने के लिए इन्हें पंचायती राज संस्थाओं के साथ मिलाना होगा तथा मानव संसाधन विकास के साथ जोड़कर अच्छे परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

5. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा खेतिहर मजदूर रोजगार गारंटी कार्यक्रम का विलय कर योजना को कौन–सा नया नाम दिया गया?
   (क) स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना
   (ख) सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना
   (ग) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम
   (घ) जवाहर ग्राम समृद्धि योजना
6. किस पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य गरीबी उन्मूलन था?
   (क) पांचवीं योजना (ख) सातवीं योजना
   (ग) आठवीं योजना (घ) नौवीं योजना

3.5 विभिन्न अनुदान योजनाएं

टिप्पणी

भारत सरकार द्वारा समय–समय पर उद्योगों के विकास के लिए बहुत सी योजनाओं, छूटों, सहायक सेवाओं की घोषणा की जाती है। इन घोषणाओं का एक मुख्य उद्देश्य भावी उद्योगपतियों को उद्योग स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित करना है तथा उन्हें प्रेरित करना है कि वे पिछड़े क्षेत्रों में इकाई की स्थापना करें ताकि देश का संतुलित विकास हो सके। कुछ प्रमुख सहायताएं एवं अनुदान निम्नलिखित हैं–

1. **क्रेडिट लिंक्ड पूंजी अनुदान** : भारत सरकार द्वारा चलाई गई क्रेडिट पूंजी अनुदान योजना अक्टूबर 2000 में प्रभाव में आयी। यह अनुदान चुनिंदा उत्पादों को उत्पादित करने वाली लघु इकाइयों को तकनीकी उन्नयन के लिये दिया जाता है तथा विशिष्ट क्षेत्रों में प्रतियोगिता का सामना करने के लिए शक्तिशाली बनाने के लिये दिया जाता है। इसके अतिरिक्त यह अनुदान 14 क्षेत्रों में दिया जाता है। जिसमें चमड़ा, उद्योग, चमड़े से बनी वस्तुएं, जूते–चप्पल, वस्त्रोंद्योग, फूड प्रोसेसिंग, संचार तकनीकी, औषधि, स्वचालित पुर्जों आदि शामिल हैं। भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI) इस योजना को क्रियान्वित करता है तथा अनुसूचित बैंकों तथा राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम द्वारा स्तर की इकाइयों को ऋण तथा अग्रिम पर 12 प्रतिशत पूंजी अनुदान देती है। यह योजना 30 सितम्बर, 2005 तक अथवा 6 बिलियन पूंजी अनुदान देने तक जो भी पहले आये, तक जारी रहेगी।

2. **पूंजी विनियोग अनुदान** : पूंजी विनियोग अनुदान योजना 1 जून 1998 को प्रधानमंत्री द्वारा उत्तरी पूर्वी क्षेत्र में अधिसूचित हुई थी। पूंजी अनुदान योजना के अंतर्गत अनुदान राशि पलाण्ट एवं मशीनरी में विनियोजित राशि का 15 प्रतिशत होती है अथवा 3 मिलियन इसकी अधिकतम सीमा है। यह अनुदान निम्न को दिया जाता है–
   (i) ऐसे उद्योगों को, जो विकास केन्द्रों में स्थापित हैं।
   (ii) नई औद्योगिक इकाइयों को।
   (iii) उन उद्योगों को जो पर्याप्त रूप में विस्तार रहे हैं जो उत्तरी पूर्वी क्षेत्रों के विशिष्ट क्षेत्रों में हो। पूंजी विनियोग अनुदान राशि सम्बन्धित राज्य सरकारों के माध्यम से दी जाती है।

3. **परिवहन अनुदान** : परिवहन अनुदान योजना जुलाई 1971 में पिछड़ी, दुर्गम तथा अगम्य क्षेत्रों में शुरू की गई थी। यह योजना हिमाचल प्रदेश, जम्मू–कश्मीर, उत्तरीपूर्वी राज्यों, सिक्किम, अंडमान निकोबार द्वीप, लक्षद्वीप, पश्चिम बंगाल के दार्जलिंग जिले में तथा उत्तराखण्ड आदि में लागू की गई है। इस योजना के अंतर्गत औद्योगिक इकाई से कच्चा माल तथा पक्का माल रेलवे तक अथवा स्थानों पर ले जाने तथा औद्योगिक इकाई तक लाने के लिये परिवहन लागतों का 30 से 90 प्रतिशत अनुदान प्रदान किया जाता है।

4. **चर्म शोधन के लिये पूंजी अनुदान** : देश में चर्म उद्योग इकाइयों के आधुनिकीकरण के लिये अनुदान दिया जाता है। पूंजी अनुदान मशीनों की

टिप्पणी

खरीद पर दिया जाता है। यह अनुदान मशीन की लागत का 30 प्रतिशत अथवा 2.8 मिलियन जो भी कम हो के बराबर दिया जाता है। संचार तकनीक एवं सॉफ्टवेयर के क्षेत्र में स्थापित लघु स्तर की औद्योगिक इकाइयों को ऋण सम्पत्ति को रखे बिना तीसरी पार्टी की गारण्टी के आधार पर अनुदान दिया जाता है।

5. **शक्ति अनुदान** : शक्ति अनुदान सभी राज्यों एवं केन्द्रशासित राज्यों में एक समान नहीं है अनुदान की प्रकृति, तत्व, परिमाण, एवं अवधि विभिन्न राज्यों में अलग–अलग होती है। उदाहरण के लिये–
   (i) केरल में नई इकाई को विद्युत टैक्स से छूट मिलती है तथा उत्पादन के शुरू होने से प्रथम पांच वर्षों के लिए विद्युत दर सूची बढ़ा दी जाती है।
   (ii) असम में इकाइयां जब से उत्पादन शुरू हुआ तब से 5 साल तक संबद्ध भार पर प्रतिवर्ष अनुदान दिया जाता है जो लगभग 0.5 मिलियन हो सकता है।
   (iii) बिहार में लघु इकाई को 15 पैसे प्रति यूनिट अनुदान प्राप्त होता है यह अनुदान उत्पादन शुरू होने के दिन से दिया जाता है।
   (iv) जम्मू–कश्मीर में लघु इकाई को 100 प्रतिशत अनुदान प्राप्त होता है यह अनुदान 10 kw से 1000 kw की क्षमता वाले DG Set पर प्राप्त होती है।

6. **विक्रय कर में छूट** : लघु इकाइयों को विक्रय करों में छूट प्रदान की जाती है। लघु इकाइयों द्वारा–
   (i) देश से वस्तुओं के निर्यात अथवा वस्तुओं के आयात पर राज्य विक्रय कर अधिनियम में कर का कोई दायित्व नहीं है। सरकार द्वारा विक्रय कर नहीं लगाया जाता।
   (ii) केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम 1956 के अंतर्गत निर्यात विक्रय को विक्रय कर से मुक्त रखा गया है।
   (iii) स्थायी पूंजी विनियोग पर विक्रय कर में छूट का प्रतिशत अलग–अलग राज्यों में अलग–अलग है। उदाहरण के लिये असम में लघु इकाइयों को उत्पादन प्रारंभ होने से लेकर नौ वर्षों तक विक्रय कर लाभ 150 प्रतिशत की दर से प्राप्त होता है। दूसरा जो कम्पनियां विस्तार कर रही है अथवा जिन इकाइयों में आधुनिकीकरण किया जा रहा है उनमें उत्पादन प्रारंभ होने से लेकर 7 वर्षों तक विनियोजित स्थायी पूंजी का 100 प्रतिशत अतिरिक्त विक्रय कर लाभ की प्राप्ति होती है। रुग्ण अथवा राहत प्राप्त औद्योगिक उपक्रम को जिन्होंने पुर्नस्थापना के लिए अतिरिक्त पूंजी का विनियोजन किया है, को 100 प्रतिशत की दर से विक्रय कर से छूट प्राप्त होती है।

7. **विपणन विकास के लिए सहायता** : लघु औद्योगिक इकाइयों के द्वारा प्रतिनिधियों पर किया किया व्यय, जो विदेशों में उत्पाद के लिए विपणन सम्भावनाओं को खोजने के उद्देश्य से विदेशों में भ्रमण करने जाते हैं, को भारत सरकार व्यापार मंत्रालय द्वारा वापस कर दिया जाता है। ये राहत प्रतिनिधियों

पर किये गये व्यय का 50 प्रतिशत होता है यह राहत सहायता स्वीकार्य वस्तुओं के सम्बन्ध में बढ़ा दी जाती है।

टिप्पणी

8. **लघु इकाइयों की मूल्य प्राथमिकता** : राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम ने लघु उद्योगों को दी जाने वाली निम्न सहायताओं में वृद्धि की है। यह सहायता उन इकाइयों को प्रदान की जायेगी जो (Single Point Registration Scheme) सिंगल प्वांट रजिस्ट्रेशन योजना के तहत पंजीकृत की गई है–
   (i) निविदा पत्र की मुक्त उपलब्धि।
   (ii) लघु इकाइयों को बयानों के रूप में जमा की जाने वाली धनराशि से छूट होती है अर्थात् उन्हें कोई बयाना जमा नहीं करना पड़ता।
   (iii) लघु इकाइयों को सुरक्षा जमा पर भी छूट प्राप्त है। उन्हें Security के रूप में कुछ भी जमा नहीं कराना होता है।
   (iv) वृहद उपक्रम की निम्नतम कोटेशन पर इन्हें 15 प्रतिशत मूल्य प्राथमिकता दी जाती है।

9. **औद्योगिक रियासत/भूसम्पत्ति की उपब्लधता** : केन्द्र तथा राज्य सरकार द्वार औद्योगिक रियासतें बनायी गई हैं जो लघु उद्यमियों को उपक्रम स्थापित करने के लिये औद्योगिक क्षेत्र, प्लॉट अथवा औद्योगिक शेड आबंटितकरती हैं ये औद्योगिक सुविधाएं प्रदान करते हैं, जिसमें उपक्रम स्थापना के अनुदान दिया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ और भी सहायता प्रदान की जाती है जैसे पानी और शक्ति के मूल्य में छूट, विक्रय कर में छूट, चुंगी कर में छूट आदि भी दी जाती हैं। इन औद्योगिक क्षेत्रों में सड़क, बैंक, कैंटीन, सुरक्षा गार्ड, संचार नेटवर्क की भी व्यवस्था होती है।

10. **प्रशासनिक उत्प्रेरणाएं** : ऐसे पिछड़े क्षेत्रों में जहां विकास की सम्भावनाएं हों, मध्यम तथा लघु इकाइयों की स्थापना हेतु प्रेरणा देने के लिये लाइसेंस देने की प्राथमिकता, मशीन एवं उपकरणों तथा कच्चे माल के आयात में वरीयता प्रदान की जाती है, इन क्षेत्रों में खोले जाने वाली इकाइयों को लाइसेंसिंग व्यवस्था से मुक्त किया जाना।

देश के संतुलित औद्योगिक विकास के लिये आवश्यक है कि पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक इकाइयों की स्थापना कीजिए। पिछड़े क्षेत्रों में जहां औद्योगिक सम्भावनाएं उपलब्ध हैं वहां सरकार उद्योगों को स्थापित करने हेतु उद्यमियों को प्रोत्साहित करती है तथा अनेक सुविधाएं प्रदान करती हैं। जैसे करों में छूट, पर्याप्त सस्ती पूंजी उपलब्ध कराना, औद्योगिक बस्तियों की स्थापना, शिक्षा स्वास्थ्य एवं मनोरंजन की सुविधाएं प्रदान करना, लघु इकाइयों को उत्पादन करों, आयकरों, बिक्री करों तथा चुंगी शुल्कों में अनेक रियायतें प्रदान की जाती हैं। इन उत्प्रेरणाओं का उद्देश्य पिछड़े हुए क्षेत्रों में खोली जाने वाली औद्योगिक इकाइयों की स्थिर सम्पत्तियों की लागत में कमी लाना है।

लघु स्तर उद्योगों का विकास एवं प्रोन्नति (SSIs) क्रमिक राज्य/केंद्र शासित प्रदेश (UT) सरकार प्रशासनों का प्राथमिक उत्तरदायित्व है, केंद्रीय सरकार तथापि ऋण प्रदर्शन एवं ऋण दरन, बुनियादी ढांचा विकास, प्रौद्योगिकी स्तरोन्नयन, विपणन,

उद्यमिता विकास इत्यादि से संबंधित विविध योजनाओं/कार्यक्रमों द्वारा राज्य सरकारों UT प्रशासनों के प्रयत्नों को समर्थन एवं परिपूर्ण करती है। इन्हें देश के चारों ओर क्रियान्वित किया जाता है।

टिप्पणी

सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यमों के मंत्रालय के लिए बजट आवंटन 2015–16 में 3020 करोड़ से 2016–17 में 3464 करोड़ तक बढ़ाया गया है। बजटकीय आवंटन DC (SSI), NSIC एवं M/O SSI द्वारा क्रियान्वित विविध योजना नीतियों के क्रियान्वयन के लिए उपयोग किया जाता है।

केंद्रीय सरकार देश में लघु स्तर उद्योगों के सम्मिलित करने, आर्थिकी की वृद्धि एवं विकास पर बदलते आर्थिक परिदृश्यों एवं उदारीकरण/वैश्वीकरण के प्रभाव सतत रूप से निर्धारित एवं जांच करती है। लघु स्तर उद्योगों की प्रोन्नति एवं विकास एवं उनकी प्रतिस्पृद्धात्मकता बढ़ाने के लिए समय–समय पर सरकार द्वारा उठाए गए कदम ने जैसे कि इकाइयों की संख्या के क्रम में उनकी वृद्धि से एवं राष्ट्रीय उत्पादन में योगदान, रोजगार निर्माण एवं निर्यातों से साक्ष्य है, वैश्विक एवं साथ ही घरेलू बाजार में प्रतिस्पर्द्धा के लिए इन उद्यमों की सहायता की है।

सरकार ने लघु–उद्यमों की सहायता के लिए कई उपायों को स्थान में रखा है। यह प्रौद्योगिकी उच्चस्तरन, बुनियादी ढांचा विकास, झुग्गी विकास, आधुनिक प्रबंधन प्रथाओं का अनुसरण इत्यादि के लिए सहायता योजनाओं को सम्मिलित करती हैं। SSI इकाइयों के ऋण प्रवाह वृद्धि के लिए अग्रिम कदम उठाए गए हैं, एवं उन्हें वैश्विक व्यापार उदारीकरण से संबंधित मामलों के प्रति संवेदनशील बनाया गया है एवं सूचना प्रौद्योगिकी के प्रयोग द्वारा सूचना प्रसारण को सुगम बनाने के कदम उठाए गए हैं। लागत कटौती, अभिकल्प, प्रक्रिया आंशिक परिवर्तन एवं भारतीय SSI उत्पादों को स्पर्द्धात्मक सह उत्पाद विकास केंद्रों (PPDCs) एवं औजार कक्षों का आधुनिकीकरण किया गया है। इसके अतिरिक्त लघु उद्योग विकास संगठन (SIDO) अर्थात लघु उद्योग सेवा संस्थानों (SISIs) के खुले कार्यालयों एवं वैश्विक बाजार में ताकि स्पर्द्धा की जा सके। स्वयं उच्चास्तरण के लिए SSIs को परामर्श देने एवं योग्य बनाने के लिए प्रौद्योगिकी संसाधन केंद्रों (TRCs) की स्थापना की गई है।

अपनी प्रगति जांचिए

7. क्रेडिट लिंक्ड पूंजी अनुदान योजना को क्रियान्वित करने वाली संस्था का नाम क्या है?

   (क) भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (ख) जिला उद्योग केन्द्र

   (ग) लघु उद्योग सेवा संस्थान (घ) राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम

8. परिवहन अनुदान योजना के तहत परिवहन लागतों के अधिकतम कितने प्रतिशत तक अनुदान प्रदान किया जाता है?

   (क) 60% (ख) 70%

   (ग) 80% (घ) 90%

टिप्पणी

3.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (क)
3. (ग)
4. (ख)
5. (घ)
6. (ग)
7. (क)
8. (घ)

3.7 सारांश

सरकार ने क्षेत्रीय विकास के उद्देश्य से औद्योगिक रूप से पिछड़े व ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न सुविधाएं देकर विकास को बढ़ावा देने का निर्णय लिया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा विभिन्न संस्थानों का गठन किया गया। इन संस्थानों ने भारत में औद्योगिक विकास एवं उद्यमिता विकास कार्यक्रमों के संचालन एवं संगठन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

लघु उद्योग विकास संगठन की स्थापना 1954 में की गई थी। इसके अंतर्गत 27 लघु उद्योग सेवा संस्थान, 31 शाखा संस्थान, 37 विस्तार केन्द्र, 3 क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्र, 20 स्थानीय प्रशिक्षण केन्द्र, 4 उत्पाद प्रक्रिया केन्द्र एवं 4 उत्पादन केन्द्र सम्पूर्ण देश में अपनी सेवाएं प्रदान करते हैं।

यह संस्थान/संगठन संपूर्ण देश के लघु उद्योग सेवा संस्थानों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से उद्यमी तैयार करने के कार्यक्रम संचालित करता है। इस संस्थान ने महिला उद्यमियों की समस्याओं को हल करने के लिए महिला प्रकोष्ठ की स्थापना कर रखी है। सीडो लघु उद्योगों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति को उच्च प्राथमिकता देता है यह कच्चे माल के आपूर्तिकर्त्ताओं, उत्पादकों, पथ प्रदर्शकों, एजेन्सियों एवं राज्य उद्योग निदेशकों से निकट सम्पर्क रखता है।

राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम की स्थापना केन्द्रीय सरकार द्वारा सन् 1955 में की गई थी। इस संस्था की स्थापना का मुख्य उद्देश्य लघु उद्योगों का सरकारी खरीद के कार्यक्रम में भाग लेने में सहायता करना था। यह निगम अपने विपणन सहायता कार्यक्रमों के अंतर्गत लघु उद्योगों के उत्पादों के लिए वृहत बाजार की व्यवस्था करता है। यह निगम स्वदेशी विपणन कार्यक्रम के अंतर्गत एक ही वस्तु का उत्पादन करने वाले लघु उद्योगों को एक सहायता संघ के रूप में संगठित करता है। यह बाजारों की खोज करता है। तत्पश्चात् लघु उद्योगों को उनकी उत्पादन क्षमता के आधार पर आदेश बांटे जाते हैं। निगम एजेन्सी आधार पर लघु इकाइयों द्वारा उत्पादित मशीनों का भी विपणन करता है। यह लघु इकाइयों के उत्पादों के निर्यात की व्यवस्था भी करता है।

भारत सरकार के विज्ञान एवं औद्योगिक अनुसंधान विभाग के अंतर्गत इस निगम की स्थापना 1953 में की गई थी। इसका प्रमुख कार्य प्रौद्योगिकी विकास में सहायता

टिप्पणी

प्रदान करना है। यह प्रौद्योगिकी हस्तांतरण का कार्य भी करता है। यह निगम प्रौद्योगिकी विकास संस्थाओं से संबंध स्थापित करता है तथा विभिन्न अनुसंधान एवं विकास संस्थाओं द्वारा उत्पादित स्वदेशी प्रौद्योगिकी का विशाल भण्डार तैयार करता है। यह निगम अन्य अनुसंधान संस्थानों तथा विभिन्न अनुसंधान व विकास निगमों व परिषदों के सहयोग से कार्य करता है। इसमें मुख्य विज्ञान एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् तथा भारतीय औषध अनुसंधान परिषद् शामिल हैं।

यह केन्द्र सरकार द्वारा स्थापित एवं स्वायत्तशासी संस्था है। इसका प्रमुख कार्य भारतीय उद्यमियों को विदेशी सहयोग बढ़ाने में सहायता प्रदान करना है। यह विदेशी उद्यमियों को आवश्यक संस्थान भी प्रदान करता है। भारतीय विनियोग केन्द्र ने उद्यमिता परामर्श संस्थान की भी स्थापना की है जिसका उद्देश्य उपयोगी परियोजनाओं का पता लगाना है। इसके साथ–साथ यह उद्यमियों को परियोजना तैयार करने, उपयुक्त स्थान का चयन करने तथा आवश्यक वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने में भी सहयोग प्रदान करता है।

स्वतंत्रता के पश्चात् उद्यमिता विकास के लिये सरकार ने औद्योगिक नीतियां तैयार की और समय–समय पर उनमें संशोधन भी किये ताकि देश में उद्यमियों को अनुकूल अवसर एवं वातावरण प्राप्त हो सके। भारत की अर्थव्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के उद्देश्य से 24 जुलाई, 1991 को केन्द्र सरकार ने अपनी नवीनतम औद्योगिक नीति की घोषणा की। यह नीति उद्यमिता विकास की दृष्टि से एक युग परिवर्तनकारी दस्तावेज के रूप में स्थापित हुई।

सरकार ने विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में उद्यमिता के विकास को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं में औद्योगिक विकास पर किये जाने वाले व्यय में निरंतर वृद्धि की है। इससे व्यावसायिक उद्यमिता के समन्वित एवं संतुलित विकास को गति मिली है। इन योजनाओं के अंतर्गत निजी उद्यमियों के लिये विभिन्न सहायताएं, सुविधाएं व प्रेरणाएं उपलब्ध करायी गई हैं।

सरकार उद्यमियों में उद्यमिता का विकास करने हेतु विभिन्न संस्थाओं, प्रबंध संस्थाओं और तकनीकी स्कूलों के माध्यम से समय–समय पर प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करती है। इन कार्यक्रमों में उद्यमियों को परियोजना विकास, उपक्रम प्रबंध तथा उत्पादन विधियों के बारे जानकारी दी जाती है। उद्यमियों को प्रशिक्षण देने के लिये अनेक संगठन है जैसे लघु उद्योग विकास संगठन (SIDO), लघु उद्योग सेवा संस्थान (SISI), राष्ट्रीय साहस और लघु व्यवसाय विकास संस्थान (NIESBD), जिला उद्योग केन्द्र (DIC) आदि प्रमुख हैं।

देश में बेकारी दूर करने के लिए सरकार ने समय–समय पर कई विशेष रोजगार योजनाएं प्रारंभ कीं। एक के बाद एक नई योजनाएं प्रस्थापित की गईं और सभी प्रकार के रोजगार अवसरों के सृजन का पूरा–पूरा प्रयास किया। जिनमें अभी हाल में ही घोषित 'जवाहर रोजगार योजना' प्रमुख है।

गरीबी दूर करने के कार्यक्रमों की प्रभावशीलता इस पर निर्भर करती है कि धन का प्रयोग किस प्रकार किया जा रहा है। इन कार्यक्रमों को प्रभावशाली बनाने के लिए

इन्हें पंचायती राज संस्थाओं के साथ मिलाना होगा तथा मानव संसाधन विकास के साथ जोड़कर अच्छे परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं।

भारत सरकार द्वारा समय–समय पर उद्योगों के विकास के लिए बहुत सी योजनाओं, छूटों, सहायक सेवाओं की घोषणा की जाती है। इन घोषणाओं का एक मुख्य उद्देश्य भावी उद्योगपतियों को उद्योग स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित करना है तथा उन्हें प्रेरित करना है कि वे पिछड़े क्षेत्रों में इकाई की स्थापना करें ताकि देश का संतुलित विकास हो सके।

टिप्पणी

3.8 मुख्य शब्दावली

- **संवर्द्धन** : वृद्धि, विकास।
- **परामर्श** : सलाह।
- **काष्ठशिल्प** : काठ या लकड़ी पर कलाकारी।
- **उच्छिष्ट** : अवशिष्ट, कचरा।
- **समन्वित** : मिलायी हुई, एकीकृत।

3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. लघु उद्योग विकास संगठन के मुख्य कार्य क्या हैं?
2. राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम लिमिटेड की भूमिका क्या है?
3. भारतीय राज्य व्यापार निगम लिमिटेड का कार्यक्षेत्र बताइये।
4. खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग क्या काम करता है?
5. राज्यों में उद्यमियों की सहायता के लिये कौन–कौन से संगठन कार्य करते हैं?
6. राष्ट्रीय मानक संस्थान की क्या भूमिका है?
7. गरीबी उन्मूलन के लिये भारत सरकार की कौन–सी योजनाएं चल रही हैं?
8. उद्योगों के विकास के लिये सरकार की प्रमुख अनुदान योजनाओं के नाम लिखिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. उद्यमिता विकास के क्षेत्र में कार्यरत प्रमुख नियामक संस्थाओं की भूमिका पर प्रकाश डालिये।
2. उद्यमिता के विकास के लिये कार्य करने वाली विकासात्मक संस्थाओं का विस्तृत परिचय दीजिए।
3. स्वरोजगार को प्रोत्साहित करने के लिये सरकार द्वारा चलायी जा रही योजनाओं का विवरण दीजिये।

4. उद्यमिता के विकास के लिये सरकार द्वारा दिये जाने वाले अनुदानों पर एक रिपोर्ट लिखिये।

टिप्पणी

3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

जी.एस. सुधा, *उद्यमिता की अवधारणा*, रमेश बुक डिपो, 1995
एम.एल. झिंगन, *आर्थिक विकास में उद्यम वृत्ति*, कोणर्क पब्लिशर्स प्रा. लि. 1972
एस.सी. सक्सेना, *व्यवसाय प्रशासन एवं प्रबंध*, साहित्य भवन, आगरा, 2002
एस.के. गुप्ता, *उत्पादन की विधियां*, विशाल प्रकाशन मन्दिर, मेरठ, 1996
पाण्डेय एवं सिंह, *उत्पादन प्रबंध*, एपसाइलन पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., कानपुर, 1995
अंजनि कुमार मालवीय, *मानव संसाधन प्रबंध*, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2009
डॉ. आर.एस. कुलश्रेष्ठ, *औद्योगिक अर्थशास्त्र*, साहित्य भवन, आगरा, 1992

इकाई 4 परियोजना हेतु वित्तीय प्रबंधन

टिप्पणी

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 परियोजना के लिए वित्तीय प्रबंधन
  4.2.1 दीर्घकालीन या स्थायी पूंजी
  4.2.2 कार्यशील पूंजी या अल्पकालीन पूंजी
4.3 पूंजी अनुमान एवं व्यवस्था
  4.3.1 उद्यम पूंजी का अर्थ एवं विशेषताएं
  4.3.2 उद्यम पूंजी के स्रोत
  4.3.3 उद्यम पूंजी के लिए मार्गदर्शिकाएं
4.4 लागत एवं मूल्य निर्धारण
4.5 लेखा–जोखा रखना
4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

वित्त का अध्ययन वर्णनात्मक न रहकर विश्लेषणात्मक हो गया है और परंपरागत विचारधारा के अंतर्गत जिसे 'निगम वित्त' या 'व्यावसायिक वित्त' मानकर अध्ययन करते थे, आधुनिक विचारधारा के अंतर्गत उसे 'वित्तीय प्रबंध' मानकर अध्ययन करते हैं। इस रूप में वित्तीय प्रबंध को सामान्य प्रबंध का ही एक अभिन्न अंग मानते हैं। वस्तुतः यह सामान्य प्रबंध के कार्यात्मक क्षेत्र का स्वरूप है। उत्पादन प्रबंध, विपणन प्रबंध, सेविवर्गीय प्रबंध की भांति ही वित्तीय प्रबंध भी कार्यात्मक प्रबंध की श्रेणी में आता है। सामान्यतः वित्तीय प्रबंध का अर्थ वित्तीय नियोजन, वित्त प्राप्ति, संपत्ति प्रबंध तथा विभिन्न वित्तीय स्रोतों में संतुलन स्थापित करना है। हावर्ड एवं उप्टन के शब्दों में, 'वित्तीय प्रबंध से आशय वित्त क्रियाओं पर नियोजन व नियंत्रण की क्रिया को लागू करने से होता है।' वेस्टन तथा ब्रीघम के अनुसार, 'वित्तीय प्रबंध वित्तीय निर्णय लेने का वह क्षेत्र है जो व्यक्तिगत उद्देश्यों एवं उपक्रम के लक्ष्यों में एकरूपता संबंध, पूंजी के न्यायपूर्ण प्रयोग एवं पूंजी के साधनों के सतर्कतापूर्ण चयन से सम्बंधित है, ताकि खर्च करने वाली इकाई को इसके उद्देश्यों की पूर्ति की दिशा में निर्देशित किया जा सके।' इन सभी परिभाषाओं से स्पष्ट हो रहा है कि वित्तीय प्रबंधन में संस्था को आवश्यकतानुसार वित्त उपलब्ध कराना, वित्तीय नियोजन, वित्तीय नियंत्रण, संपत्तियों का प्रबंधन आदि शामिल हैं। जे. एल. मैसी के अनुसार, 'वित्तीय प्रबंध एक व्यवसाय की वह संचालनात्मक क्रिया है, जो कुशल संचालन के लिए आवश्यक वित्त को प्राप्त करने तथा उसका प्रभावशाली प्रयोग करने के लिए उत्तरदायी होती है।

इस इकाई में परियोजना के सफल संचालन के हेतु वित्तीय प्रबंधन, लागत एवं मूल्य निर्धारण आदि का विस्तृत विवरण दिया गया है।

टिप्पणी

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- परियोजना के लिये वित्तीय प्रबंधन की आवश्यकता, वित्तीय पूंजी के प्रकारों, उनके स्रोतों आदि के बारे में विस्तार से जान पायेंगे;
- उद्यम पूंजी के अर्थ, उद्‌गम, अवस्थाओं, स्रोतों और विशेषताओं से अवगत हो पायेंगे;
- लागत के वर्गीकरण एवं मूल्य निर्धारण की विभिन्न विधियों की जानकारी प्राप्त कर पायेंगे;
- लागत के लेखांकन की आवश्यकता एवं महत्व से परिचित हो पाएंगे।

4.2 परियोजना के लिए वित्तीय प्रबंधन

वित्त प्रत्येक व्यावसायिक क्रिया का मूलाधार है। आधुनिक युग में किसी भी उद्यम की स्थापना, संचालन एवं विकास के लिए पर्याप्त मात्रा में वित्त की आवश्यकता होती है। 'डॉ. पी. सी. श्रीवास्तव' के अनुसार, ''वित्त उद्योग एवं वाणिज्य के लिए तेल, हड्डियों का सार, नाड़ियों का रक्त एवं व्यवसायों की आत्मा है।'' वास्तव में वित्त समस्त व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योग की आत्मा है।

हूगटी पैद्रक के शब्दों में, ''देश में उपलब्ध वित्तीय पर्यावरण ही सृजनात्मक साहसिक क्रियाओं को उत्प्रेरित करता है।''

वर्तमान प्रतियोगी अर्थव्यवस्था में हम बिना पर्याप्त वित्त के किसी नवीन उपक्रम की स्थापना की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं।

कोषों से आशय

सामान्य अर्थ में कोषों से आशय उस धनराशि अथवा पूंजी से है जो कि किसी उद्यम की स्थापना तथा उसके संचालन के लिए आवश्यक है। पूंजी किसी उद्यम का जीवन–रक्त होती है। जिस प्रकार बिना पर्याप्त भोजन के मानव शरीर न तो जीवित रह सकता है और न कार्य कर सकता है, ठीक इसी प्रकार एक उद्यम चाहे वह छोटा हो अथवा बड़ा, बिना पर्याप्त वित्त–कोषों के न जीवित रह सकता है और न संचालित हो सकता है।

एक उद्यम के संदर्भ में कोषों को जुटाने से आशय किसी उद्यम की स्थापना, संचालन एवं विकास के लिए पर्याप्त मात्रा में कोष धनराशि पूंजी एवं ऋण–पूंजी एकत्रित किये जाने से है।

कोषों की आवश्यकताओं का अनुमान लगाने की आवश्यकता

एक उद्यम अथवा व्यावसायिक उपक्रम को अपनी वित्तीय योजना बनाते समय दीर्घकालीन कोष (स्थायी पूंजी) तथा अल्पकालीन कोष (अल्पकालीन पूंजी) दोनों की आवश्यकता होती है। इसका अनुमान लगाते समय अपनी कुल वित्तीय आवश्यकताओं तथा लाभोपार्जन क्षमता दोनों पर उचित ध्यान देना आवश्यक है।

इस संबंध में अति–पूंजीकरण तथा अल्प–पूंजीकरण, दोनों ही स्थितियों से बचना चाहिए। इसके लिए उद्यमों को सबसे पहले कोषों की आवश्यकताओं की व्यापक रूप में जांच–पड़ताल करनी चाहिए। इस दिशा में निम्न की ओर ध्यान देना चाहिए–

टिप्पणी

1. स्थायी सम्पत्तियां अर्थात् स्थायी पूंजी, जैसे–भूमि, भवन, प्लाण्ट एवं यंत्र फर्नीचर तथा फिटिंग आदि का क्रय।
2. चालू सम्पत्तियां अर्थात् कार्यशील पूंजी, जैसे–कच्चा माल एवं अन्य स्टॉक, उधार बिक्री, प्रात्य बिलों के लिए, दिन–प्रतिदिन के व्ययों का भुगतान करना।
3. प्रवर्तन सम्बन्धी व्यय, जैसे–व्यावसायिक विचार की वाणिज्यिक में वैधानिक औपचारिकताओं को पूरा करने के व्यय आदि।
4. कम्पनी संगठन की स्थापना के व्यय, जैसे–प्रबंधकों तथा विशेषज्ञों आदि की सेवाएं प्राप्त करने के लिए किए जाने वाले व्यय।
5. व्यवसाय को सुदृढ़ करने संबंधी व्यय–जैसे ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए व्यापक विज्ञापन तथा विक्रय सम्वर्धन आदि।
6. व्यावसायिक वित्त प्राप्त करने के लागत व्यय–जैसे अभिगोपन कमीशन तथा दलाली आदि।
7. अवास्तविक सम्पत्तियां, जैसे–पेटेण्ट, ख्याति का क्रय इत्यादि।

कोषों की आवश्यकताओं के प्रकार

सामान्यतः किसी भी उद्यम की वित्तीय आवश्यकताओं को निम्न तीन भागों में विभाजित किया जाता है–(1) दीर्घकालीन पूंजी (2) मध्यकालीन पूंजी तथा (3) अल्पकालीन पूंजी। किंतु आधुनिक वित्त शास्त्री अब व्यवसाय अथवा उद्योग की वित्तीय आवश्यकताओं को निम्न दो भागों में विभक्त करते हैं–

1. दीर्घकालीन या स्थायी वित्त अथवा पूंजी एवं
2. कार्यशील एवं अल्पकालीन वित्त अथवा पूंजी।

4.2.1 दीर्घकालीन या स्थायी पूंजी

वह पूंजी जो स्थायी सम्पत्ति पर विनियोजन करने के लिए ली जाती है, उसे दीर्घकालीन या स्थायी पूंजी कहते हैं। स्थायी प्रकृति की सम्पत्तियां पुनः विक्रय करने के उद्देश्य से क्रय नहीं की जाती, फलतः इस प्रकार की पूंजी व्यवसाय के जीवन–काल तक बनी रहती है तथा एक बार विनियोजित करने के पश्चात् इसे सरलता से व्यवसाय के जीवन–काल से वापस प्राप्त नहीं किया जा सकता, इसलिए इसको अचल पूंजी भी कहते हैं। ऐसी पूंजी का प्रयोग व्यवसाय की स्थायी सम्पत्तियों जैसे–भूमि, भवन तथा मशीन इत्यादि को क्रय करने के लिए किया जाता है। इसके अतिरिक्त अमूर्त्त सम्पत्तियों जैसे–साख, प्रारंभिक व्यय, स्थापना व्यय तथा पेटेण्ट इत्यादि पर किया गया व्यय भी स्थायी प्रकृति का होता है। यह पूंजी स्थायी इसलिए नहीं कहलाती, क्योंकि इसका मूल्य स्थिर रहता है बल्कि इसलिए कहलाती है कि इसका प्रयोग दीर्घकालीन उपयोग की सम्पत्तियों को क्रय करने में तथा व्यवसाय के अर्जन–क्षमता में वृद्धि करने के उद्देश्य से किया जाता है। कोई भी व्यवसाय बिना इस पूंजी के प्रारंभ नहीं किया

टिप्पणी

जा सकता है। साधारणतः कम्पनी के मुकाबले में साझेदारी में कम स्थायी पूंजी की आवश्यकता होती है।

स्थायी पूंजी की विशेषताएं

स्थायी पूंजी की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं–

1. स्थायी पूंजी दीर्घकाल तक व्यवसाय में रहती है।
2. यह स्थायी सम्पत्तियों; जैसे–भवन, भूमि, मशीनरी एवं प्लाण्ट, पेटेण्ट आदि में विनियोजित होती है।
3. यह व्यवसाय की स्थायी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है।
4. स्थायी सम्पत्तियों में किया गया विनियोजन पूर्णतः गैर–तरल प्रकृति का होता है।
5. स्थायी पूंजी को व्यवसाय के समापन पर ही वापस किया जाता है।
6. स्थायी पूंजी की मात्रा व्यवसाय की प्रकृति पर निर्भर करती है।
7. समय के अनुसार स्थायी पूंजी के मूल्य में घट–बढ़ होती रहती है।

स्थायी पूंजी का महत्व

स्थायी पूंजी के प्रमुख महत्व (लाभ) निम्न हैं–

1. स्थायी पूंजी के बिना व्यवसाय उद्योग की स्थापना संभव नहीं है।
2. व्यवसाय के विस्तार में स्थायी पूंजी सहायक है।
3. यह व्यवसाय की ख्याति की वृद्धि में सहायक है।
4. व्यवसाय में समुचित स्थायी पूंजी विनियोजित होने से लेनदारों में विश्वास बना रहता है।
5. व्यवसाय की शोधन–क्षमता में वृद्धि होती है।
6. ऋण आदि मिलने में सुविधा रहती है।

स्थायी पूंजी के निर्णायक घटक

दीर्घकालीन या स्थायी पूंजी की आवश्यकता अथवा मात्रा को प्रभावित करने वाले घटक अथवा स्थायी पूंजी के निर्णायक घटक निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत उद्धृत हैं–

1. **व्यवसाय की प्रकृति** : विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में दीर्घकालीन या स्थायी पूंजी की आवश्यकता अलग–अलग होती है। वस्तुओं का विक्रय करने वाली संस्थाओं की तुलना में वस्तुओं का उत्पादन करने वाली संस्थाओं में अधिक दीर्घकालीन या स्थायी पूंजी की आवश्यकता होती है।
2. **व्यवसाय का आकार** : व्यवसाय जितने अधिक बड़े पैमाने पर किया जायेगा, उसमें उतनी अधिक मात्रा में दीर्घकालीन या स्थायी पूंजी की आवश्यकता होती है।
3. **व्यवसाय का क्षेत्र** : व्यवसाय का कार्यक्षेत्र जितना अधिक व्यापक होगा, उसमें उतनी ही अधिक मात्रा में दीर्घकालीन या स्थायी पूंजी की आवश्यकता होती है।

टिप्पणी

4. **उत्पादित वस्तुओं का प्रकार** : उत्पादित वस्तुओं का प्रकार भी दीर्घकालीन या स्थायी पूंजी की आवश्यकता को प्रभावित करती है। उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन की अपेक्षा औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादन के लिए अपेक्षाकृत अधिक दीर्घकालीन या स्थायी पूंजी की आवश्यकता होती है।
5. **यंत्रीकरण की मात्रा** : यह भी दीर्घकालीन या स्थायी पूंजी की आवश्यकता को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए, यंत्र–प्रधान उद्योगों में श्रम–प्रधान उद्योगों की तुलना से अधिक दीर्घकालीन या स्थायी पूंजी की आवश्यकता होती है।
6. **स्थायी संपत्तियों की मात्रा एवं प्राप्त करने की विधि** : स्थायी संपत्तियों की मात्रा एवं प्राप्त करने की विधि भी दीर्घकालीन या स्थायी पूंजी की आवश्यकता को प्रभावित करती है। यदि बड़ी मात्रा में भूमि क्रय की जाती है, बड़े–बड़े भवन बनाये जाते हैं तथा बड़े–बड़े यंत्र स्थापित किये जाते हैं तो अपेक्षाकृत बड़ी मात्रा में दीर्घकालीन या स्थायी पूंजी की आवश्यकता होती है।
7. **प्रारंभिक व्यय** : प्रारंभिक व्यय से आशय कम्पनी के प्रवर्तन में किये गये व्ययों से है। यदि प्रवर्तकों ने अधिक प्रारंभिक व्यय जैसे– प्रारंभिक जांच–पड़ताल संबंधी व्यय किये हों तो अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में स्थायी पूंजी की आवश्यकता होती है।
8. **प्रबंधकीय नीतियां** : प्रबंधकीय नीतियां भी स्थायी पूंजी की मात्रा को प्रभावित करती हैं। इस संबंध में तीन प्रकार की नीतियां विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं– (i) पट्टा या क्रय की नीति, (ii) स्वयं बनाओ या दूसरों से खरीदो की नीति तथा (iii) इक्विटी व्यापार। प्रथम स्थिति में प्रबंधक स्थायी सम्पत्तियों को स्वयं खरीदकर कारखाने में लगाते हैं अथवा दूसरों से पट्टे पर लेकर कारखाने में लगा सकते हैं। दूसरी स्थिति में प्रबंधक कारखाने में बनायी जाने वाली 'सारी वस्तु स्वयं नहीं बनाते अपितु उसके कुछ हिस्से स्वयं बना लेते हैं और कुछ दूसरों से बनवा लेते हैं। जहां तक ईक्विटी व्यापार का प्रश्न है, यह प्रबंधकों की कुशलता एवं चतुरता पर निर्भर करता है।

दीर्घकालीन या स्थायी पूंजी को प्राप्त करने के स्रोत : यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि स्थायी पूंजी की आवश्यकता केवल स्थायी संपत्तियों के क्रय करने के लिए ही पड़ती है। एकाकी व्यापारी तथा साझेदारी की दशा में यह पूंजी संस्था के स्वामी अपने निजी साधनों, मित्रों एवं संबंधियों से ऋण लेकर उपलब्ध करते हैं किन्तु कम्पनी की दशा में स्थायी पूंजी निम्न साधनों से एकत्रित की जाती है– (अ) अंश–पत्रों का निर्गमन करके (ब) ऋण–पत्रों का निर्गमन करके, (स) विशिष्ट अर्थ–प्रबंध संस्थाओं से ऋण लेकर।

4.2.2 कार्यशील पूंजी या अल्पकालीन पूंजी

वह पूंजी जोकि उद्योग के साधारण कार्यों में लगाई जाती है, कार्यशील पूंजी कहलाती है। इसका प्रयोग कार्यरत कर्मचारियों की मजदूरी तथा वेतन, विज्ञापन, चल–सम्पत्ति के क्रय, उत्पादन–व्यय, विक्रय–व्यय तथा अन्य सामान्य खर्चों के भुगतान में किया जाता है। कार्यशील पूंजी का कार्यकाल स्थायी पूंजी की अपेक्षा कम होता है, अतः इसको 'अल्पकालीन' अथवा 'अस्थायी' पूंजी भी कहते हैं। कार्यशील पूंजी की परिभाषा के संबंध

टिप्पणी

में दो विभिन्न विचारधाराएं विद्यमान हैं–प्रथम विचारधारा के अनुसार कार्यशील पूंजी का आशय चालू सम्पत्ति और चालू देनदारियों से है और इसका समर्थन लिंकन, स्टेंविन्स तथा सलियर्स जैसे अर्थ–प्रबंधन विशेषज्ञों ने किया है। इसके विपरीत, दूसरी विचारधारा के अनुसार कार्यशील पूंजी का अभिप्राय केवल चालू सम्पत्ति से है और इस विचारधारा के समर्थक फील्ड, मैलोट, भीड तथा बेकर हैं।

कार्यशील पूंजी की परिभाषाएं

1. भीड, मैलट तथा फील्ड के अनुसार, ''कार्यशील पूंजी से आशय चालू संपत्तियों के योग से है।''
2. जे.एस. मिल के अनुसार, ''चालू संपत्तियों का योग ही व्यवसाय की कार्यशील पूंजी है।''

कार्यशील पूंजी की विशेषताएं

कार्यशील पूंजी की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं–

1. कार्यशील पूंजी अल्प अवधि के लिए होती है।
2. कार्यशील पूंजी की आवश्यकता संस्था के कार्य–चालन–व्ययों अथवा चालू–व्ययों के लिए होती है, जैसे– दैनिक–व्यय, कच्चा–माल आदि।
3. कार्यशील पूंजी निरंतर चलायमान रहती है अर्थात् इसका आवागमन होता रहता है।
4. कार्यशील पूंजी चालू संपत्तियों का चालू–दायित्वों के आधिक्य के रूप में होती है।

कार्यशील पूंजी का महत्व

कार्यशील पूंजी के प्रमुख महत्व निम्न हैं–

1. यह ख्याति का निर्माण बनाये रखने में सहायक है।
2. यह व्यवसाय के स्वस्थ संचालन व शोधन क्षमता बनाये रखने में सहायक है।
3. बैंक आदि से ऋण मिलने में सरलता रहती है।
4. क्रय का नकद भुगतान करने पर नकद छूट आदि की प्राप्ति होती है।
5. उत्पादन प्रक्रिया को निरंतर चालू रखने में सहायक है।
6. सुरक्षा एवं आत्मविश्वास की भावना का सृजन होता है।
7. कर्मचारियों को मजदूरी एवं वेतन का नियमित भुगतान करने में सहायक है।
8. अमौसमी क्रय में सुविधा रहती है।
9. कच्चे माल आदि की निरंतर पूर्ति बनी रहती है।
10. विनियोजकों को नियमित आय होती है।
11. संकट की स्थिति का सामना करने में सहायक होती है।

कार्यशील पूंजी के निर्णायक घटक

टिप्पणी

कार्यशल या अल्पकालीन पूंजी के निर्णायक घटक निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत उद्धृत हैं–

1. **व्यवसाय की प्रकृति** : नियमित एवं निश्चित मांग वाले व्यवसायों में अनियमित एवं अनिश्चित मांग वाले व्यवसायों की तुलना में कम कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है क्योंकि नियमित एवं निश्चित मांग होने से नकदी का प्रवाह बना रहता है तथा निश्चितता होने से स्टॉक आदि में अधिक विनियोजन नहीं करना पड़ता है। इसी तरह जनोपयोगी संस्थाओं में कम मात्रा में कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है।
2. **व्यवसाय का आकार** : यह स्वाभाविक ही है कि व्यवसाय का आकार जितना अधिक बड़ा होगा, उसमें उतना ही अधिक मात्रा में कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी।
3. **उत्पादन प्रक्रिया** : यदि उत्पादन की सामान्य अवधि लम्बी है अथवा उत्पादन प्रक्रिया जटिल है तो स्वाभाविक रूप से उसमें अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी।
4. **क्रय–विक्रय की शर्तें** : क्रय–विक्रय की शर्तें भी कार्यशील पूंजी की आवश्यकता की मात्रा को प्रभावित करती है। यदि कोई संस्था नकद खरीदती है और उधार बेचती है तो उसे अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी। इससे विपरीत, यदि कोई संस्था उधार खरीदती है और नकद बेचती है तो उसे कम मात्रा में कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी।
5. **उत्पादन लागत में कच्चे माल का स्थान** : जिन उद्योगों में उत्पादन लागत में कच्चे माल का महत्वपूर्ण स्थान होता है, उनमें अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए चीनी मिलों में कुल उत्पादन व्यय में गन्ने की लागत लगभग दो–तिहाई होती है जिसके फलस्वरूप चीनी मिलों में कार्यशील पूंजी की अधिक आवश्यकता होती है।
6. **मौसमी उतार–चढ़ाव** : मौसमी उतार–चढ़ाव भी कार्यशील पूंजी की आवश्यकता को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए, ऊनी मिलों को गर्मी के मौसम में अपेक्षाकृत अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है।
7. **व्यापार चक्र** : व्यापार चक्र भी कार्यशील पूंजी की आवश्यकता को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, मंदी काल में विक्रय घटने तथा ग्राहकों से वसूली कम होने के कारण चल–संपत्तियां बढ़ जाती है जिसके फलस्वरूप अधिक मात्रा में कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत तेजी काल में विक्रय बढ़ने तथा वसूली अधिक होने से अपेक्षाकृत कम मात्रा में कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है।
8. **यंत्रीकरण की मात्रा** : जिन औद्योगिक संस्थाओं में उत्पादन श्रम–प्रधान है, उनमें अधिक मात्रा में कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है।
9. **जोखिम की मात्रा** : जिन व्यवसायों में जोखिम की मात्रा अधिक है उनमें अधिक मात्रा में कार्यशील पूंजी एवं यंत्रीकरण की आवश्यकता ज्यादा है।

टिप्पणी

10. **बैंकिग संबंध** : जिन संस्थाओं को पर्याप्त बैंकिंग सुविधाएं प्राप्त है तथा उनकी साख अच्छी होने के कारण आवश्यकता पड़ने पर तुरंत पर्याप्त मात्रा में कार्यशील वित्त प्राप्त हो जाता है।
11. **व्यवसाय के विकास की दर** : व्यवसाय के विकास की दर भी कार्यशील पूंजी की आवश्यकता को प्रभावित करती है। व्यवसाय का विकास धीमी गति से होने पर अतिरिक्त कार्यशील पूंजी की कम आवश्यकता होगी। इसके विपरीत, विकास की गति तेज होने पर अतिरिक्त कार्यशील पूंजी की आवश्यकता अधिक होगी।
12. **रोकड़ की आवश्यकता** : रोकड़ शेष चालू संपत्तियों का एक भाग होता है, अतः रोकड़ की आवश्यकता कार्यशील पूंजी की मात्रा को प्रभावित करती है। रोकड़ की आवश्यकता प्रायः मजदूरी, वेतन, कर, किराया तथा लेनदार इत्यादि के भुगतान में पड़ती है।
13. **लाभांश नीतियां** : लाभांश नीति तथा कार्यशील पूंजी का घनिष्ठ संबंध है। यदि लाभांश नकद में वितरित किया जाता है तो अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है लेकिन यदि लाभांश अभिलाभांश अंशों में वितरित किया जाता है तो कम कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी।
14. **अन्य घटक** : उपरोक्त के अतिरिक्त उपक्रम की उत्पादन एवं वितरण रीतियों में समन्वय, परिवहन एवं संवादवहन, सरकारी नीतियां इत्यादि का भी कार्यशील पूंजी पर प्रभाव पड़ता है।

कार्यशील पूंजी प्राप्त करने के स्रोत

1. व्यापारिक बैंक
2. हुण्डी
3. जन–निक्षेप
4. रोके गये लाभ
5. वित निगम तथा
6. देशी बैंकर, संचय आदि।

कोषों को जुटाना (उगाहना अथवा एकत्रित करना) से आशय

किसी नवीन उद्यम की स्थापना का निर्णय लेने के पश्चात् उसके लिए आवश्यक कोषों अर्थात् वित्त की आवश्यकता होती है। कितनी मात्रा में कोषों की आवश्यकता होगी तथा इसका ढांचा कैसा होगा, इसके बारे में निर्णय लेने एवं उन्हें जुटाने की क्रिया को ही कोषों का जुटाना कहते हैं।

कोषों को जुटाने के स्रोत : कोषों का निर्णय लेने के पश्चात् एक उद्यमी कोषों को जुटाने की क्रिया की ओर अग्रसर होता है। यह कार्य वह विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों का निर्गमन करके करता है। उद्यमी विनियोक्ताओं को आकर्षित करने के लिए विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों का निर्गमन करता है। कोषों के जुटाने के प्रमुख स्रोत अग्रलिखित हैं–

I अंशों के निर्गमन द्वारा

टिप्पणी

भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 के अनुसार केवल दो प्रकार के अंश हो सकते हैं–

(अ) पूर्वाधिकार अंश तथा

(ब) समता अंश, साधारण अंश अथवा सामान्य अंश।

(अ) पूर्वाधिकार अंश

अर्थ : समता अंशों की तुलना में ऐसे अंशों पर अंशधारी को कुछ विशेष अधिकार मिलते हैं जिसे पूर्वाधिकार अंश कहते हैं। धारा 85 के अनुसार पूर्वाधिकार अंश से अभिप्राय उस अंश से है जिसके संबंध में निम्न दो पूर्वाधिकार प्राप्त हों–

1. **लाभांश संबंधी पूर्वाधिकार** : ऐसे अंशों पर अंशधारी को कंपनी के लाभ में पूर्व–निश्चित दर से लाभांश पाने का पूर्वाधिकार होता है। इन्हें लाभांश देने के पश्चात् ही समता अंशों पर लाभांश दिया जा सकता है।
2. **पूंजी के पुनर्भुगतान संबंधी पूर्वाधिकार** : कंपनी के समापन की अवस्था में जब कंपनी की पूंजी लौटाई जाती है तो ऐसे अंशधारियों को अपनी प्रदत्त पूंजी को वापस पाने का भी पूर्वाधिकार होता है। इनकी पूंजी लौटाने के पश्चात् ही समता अंशधारियों को पूंजी लौटाई जा सकती है।

लाभ : पूर्वाधिकारी अंशों से प्राप्त पूंजी के निम्नलिखित लाभ हैं–

1. कंपनी की दृष्टि से

(i) इनके निर्गमन में कंपनी की पूंजी संरचना में लोच बनी रहती है। आवश्यकता के समय इनका निर्गमन किया जा सकता है और अधिक पूंजी होने की दशा में इनका शोधन किया जा सकता है।

(ii) शोध्य पूर्वाधिकार अंशों के निर्गमन में कंपनी को अति–पूंजीकरण के कुप्रभावों से बचाया जा सकता है।

(iii) इनके निर्गमन द्वारा कम्पनी ऐसे विनियोक्ताओं को अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ होती है जो आप की निश्चितता एवं नियमितता को विशेष रूप में पसंद करते हैं।

(iv) इस प्रकार अंशधारी कंपनी के प्रबंध में अधिक हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं।

(v) इनके द्वारा पूंजी प्राप्त करने पर कंपनी की संपत्तियों पर कोई प्रभार उत्पन्न नहीं होता है।

(vi) इस प्रकार के अंशों को बोनस के रूप में निर्गमित करके कंपनी बंधों तथा सामान्य स्कंधों का विपणन मूल्य बनाया जा सकता है।

(vii) पूर्वाधिकार अंशों द्वारा प्राप्त पूंजी को जब तक यह शोध्य पूर्वाधिकार अंश निर्गमित करके एकत्रित न की जाये कंपनी के जीवन काल में वापस नहीं की जा सकती। इस प्रकार यह भी दीर्घकालीन पूंजी प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण स्रोत माना जाता है।

(viii) इन अंशों द्वारा धन प्राप्त करने के लिए कंपनी को अपनी संपत्ति बंधक नहीं रखनी पड़ती है।

टिप्पणी

(ix) चूंकि इनके निर्गमन से प्राप्त होने वाली पूंजी भी स्वामित्व पूंजी जितनी अधिक होती है, बाजार में उसकी ख्याति भी उतनी ही अधिक होती है।

2. विनियोक्ताओं की दृष्टि से :

(i) कंपनी के समापन की दशा में पूर्वाधिकार अंशधारियों की पूंजी का भुगतान सामान्य अंशधारियों की तुलना में पहले होता है।

(ii) अन्य अंशधारियों की तुलना में लाभांश का भुगतान सबसे पहले पूर्वाधिकार अंशधारियों को होता है।

(iii) अधिकांश पूर्वाधिकार अंश संचयी प्रकृति के होते हैं।

(iv) पूर्वाधिकार अंशधारियों को कंपनी में थोड़ा लाभ होने पर भी लाभांश प्राप्त हो जाता है।

दोष : पूर्वाधिकारी अंशों से प्राप्त पूंजी के निम्नलिखित दोष हैं–

1. कंपनी की दृष्टि से–

(i) इनके निर्गमन से कंपनी पर निश्चित दर से लाभांश देने का स्थायी भार पड़ जाता है।

(ii) मंदी काल अथवा कम लाभ होने पर इनको निश्चित दर से लाभांश देने के पश्चात् साधारण अंशों पर लाभांश देना संभव नहीं हो पाता जिसका कंपनी की ख्याति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(iii) एक कंपनी जितने पूर्वाधिकार अंश चाहे, उतने निर्गमित नहीं कर सकती क्योंकि साधारण अंश और इनके बीच एक निश्चित अनुपात कायम रहना आवश्यक होता है।

(iv) कुछ कंपनियां, जैसे–बैंक या बीमा कंपनी पूर्वाधिकार अंश निर्गमित नहीं कर सकती हैं।

(v) शोध्य पूर्वाधिकार अंशों को कंपनी की समृद्धि के लाभों से वंचित रखा जाता है।

2. विनियोक्ताओं की दृष्टि से–

(i) पूर्वाधिकार अंशधारियों को मतदान का अधिकार बहुत ही सीमित मात्रा में प्राप्त होता है।

(ii) इन्हें सामान्य रूप में कंपनी से आधिक्य लाभों में भाग लेने का अधिकार नहीं होता है क्योंकि इनको मिलने वाले लाभांश की दर निश्चित होती है।

(iii) जब कंपनी चाहती है, तब शोध्य पूर्वाधिकार अंशों का भुगतान करके उन्हें अलग कर सकती है।

(iv) पूर्वाधिकारी अंशधारी कंपनी के प्रबंध में भाग नहीं ले सकते क्योंकि इन्हें मत देने का अधिकार नहीं होता है।

(v) कंपनी के समापन की दशा में इन्हें पूंजी का केवल विनियोजित मूल्य ही प्राप्त होता है।

उपयुक्तता : पूर्वाधिकार अंश कंपनी के लिए दीर्घकालीन तथा मध्यकालीन वित्त प्राप्त करने का एक अत्यंत सरल एवं श्रेष्ठ साधन है। यह साधन उस समय अत्यंत लाभकारी

सिद्ध होता है जबकि कंपनी न तो साधारण अंश निर्गमित कर सकती है और न ही ऋण लेना चाहती है। कंपनी की पूंजी–संरचना में उचित मिलान रखने में भी इसका अच्छा महत्व है।

टिप्पणी

पूर्वाधिकार अंशों के प्रकार

अपने अधिकारों के अनुसार पूर्वाधिकार अंश निम्न प्रकार के होते हैं–

(अ) **संचयी और असंचयी पूर्वाधिकार अंश** : कंपनी को लाभ न होने पर भी यदि लाभांश संचय होता है और लाभ होने वाले वर्ष में पिछले वर्षों का लाभांश भी दिया जाये तो ऐसे अंशों को संचयी पूर्वाधिकार अंश कहते हैं। इसके विपरीत, यदि लाभ होने वाले वर्ष में ही लाभांश मिले और हानि वाले वर्षों का लाभांश न दिया जाये तो उनको असंचयी पूर्वाधिकार अंश कहते हैं।

(ब) **शोध्य एवं अशोध्य पूर्वाधिकार अंश** : शोध्य पूर्वाधिकार अंश वे होते हैं जिनका भुगतान एक निश्चित समय के बाद अथवा एक निश्चित समयावधि का नोटिस देने के बाद कंपनी को करना पड़ता है। इसके विपरीत, अशोध्य पूर्वाधिकार अंशों का भुगतान कंपनी के कार्यकाल में नहीं किया जाता।

(स) **परिवर्तनीय पूर्वाधिकार अंश** : ये वे अंश होते हैं जिनको एक निश्चित अवधि के पश्चात् साधारण अंशों में बदलने की स्वेच्छा दी जाती है।

(द) **भागयुक्त पूर्वाधिकार अंश** : इस प्रकार के पूर्वाधिकार अंशों पर एक निश्चित दर से लाभांश मिल जाने पर तथा एक निश्चित दर से साधारण अंशों पर लाभांश दिये जाने पर, यदि उद्योग में अधिक लाभ बचे रहते हैं तो इनको अतिरिक्त लाभ में भी लाभांश प्राप्त करने का अधिकार होता है।

(ब) समता अंश

समता अंश किसी भी (उद्यम) के वित्तीय ढांचे का आधार–स्तंभ होते हैं। साधारणतया कंपनियां अपनी पूंजी का एक बड़ा भाग इस प्रकार के अंशों के निर्गमन के द्वारा प्राप्त करती है। इस प्रकार के अंशों के धारकों को पूर्वाधिकार अंशधारियों को लाभांश का भुगतान करने के बाद किया जाता है। कंपनी के समापन की दशा में समता अंशधारियों को पूंजी की वापसी भी पूर्वाधिकारी अंशधारियों के दावों को चुकाने के पश्चात् उत्पन्न होता है। इसी कारण कहा जाता है कि समता अंश अधिक जोखिमपूर्ण होते हैं किन्तु व्यवसाय को नियंत्रित करने का सामान्य अंशधारियों का अधिकार कंपनी में उनकी स्थिति को महत्वपूर्ण बना देता है। इन अंशधारियों को कंपनी के संचालकों को नियुक्त करने तथा उन्हें हटाने का पूरा अधिकार होता है।

लाभ : साधारण अंशों के निर्गमन से निम्नलिखित लाभ हैं–

1. कंपनी की दृष्टि से लाभ

(i) कंपनी को अपनी संपत्ति पर बिना किसी प्रकार के झंझट के स्थायी पूंजी प्राप्त हो जाती है यही नहीं, वह आवश्यकतानुसार भविष्य में अपनी संपत्ति पर अतिरिक्त ऋण भी ले सकती है।

टिप्पणी

(ii) उपरोक्त अंशों पर लाभांश का वितरण उसी समय किया जाता है जबकि पर्याप्त लाभ होता है अतः लाभांश देना अनिवार्य नहीं।

(iii) अंश–पूंजी का भुगतान करने के लिए कंपनी अपने जीवन–काल में बाध्य नहीं होती।

(iv) अंश–निगर्मन से पूंजी संग्रह करने में सबसे अधिक मितव्ययिता रहती है।

(v) इस साधन से कंपनी को सरलता से पूंजी प्राप्त हो जाती है।

(vi) कंपनी को अधिक लाभ होने की दशा में अंशों को अधिक मूल्य पर भी निर्गमित किया जा सकता है।

(vii) अंशों की छोटी–छोटी इकाइयां विशाल पूंजी का रूप धारण कर लेती है।

(viii) इस साधन से प्राप्त पूंजी सबसे अधिक विश्वसनीय मानी जाती है क्योंकि यह व्यवसाय के बुरे तथा अच्छे सभी दिनों में कंपनी में बनी रहती है।

(ix) सामान्य परिस्थितियों में कंपनी की साधारण अंश–पूंजी जितनी अधिक होगी, बाजार में उसकी साख उतनी ही अधिक होगी।

2. विनियोक्ताओं की दृष्टि से लाभ

(i) अंशधारियों को मताधिकार प्राप्त होने से वे कंपनी की व्यवस्था में भाग ले सकते हैं।

(ii) अंशधारियों को लाभांश के रूप में अधिक आय होती है।

(iii) कम पूंजी वाले व्यक्ति भी कंपनी के अंश क्रय करके देश के औद्योगिक विकास में अपना सक्रिय सहयोग प्रदान कर सकते हैं।

(iv) ये कंपनी के वास्तविक स्वामी होते हैं।

दोष : साधारण अंशों के निर्गमन के निम्नलिखित दोष भी हैं–

1. कंपनी की दृष्टि से

(i) अंशधारियों का अधिकार कंपनी पर हो जाता है जिसके कारण वे अपने हित के लिए कंपनी का शोषण करने लगते हैं।

(ii) साधारण अंशों पर आनुपातिक अधिक लाभांश देना पड़ता है।

(iii) अधिक अंश निर्गमन का प्रभाव अति–पूंजीकरण हो सकता है।

(iv) अंशधारी बदलते रहते हैं और नये अंशधारी कंपनी की स्थिति स्थायी नीति को बदलने अथवा प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं और किसी सीमा तक इस प्रयास में सफल भी हो जाते हैं।

(v) यदि कंपनी को पूंजी बढ़ाने की आवश्यकता होती है तो अंशधारियों से भी स्वीकृति लेनी पड़ती है और किसी विशेष अधिकार वाले अंशों का निर्गमन नहीं कर सकती और यह सम्मति मिलना कोई आसान कार्य नहीं होता, अतः बहुत कठिनाई के साथ कंपनी अपने इस कार्य में सफल होती है।

(vi) अंशों की सट्टेबाजी को प्रोत्साहन मिलता है।

(vii) अंशों के मूल्यों में इस प्रकार के उतार–चढ़ाव का कंपनी की ख्याति पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

टिप्पणी

2. विनियोक्ताओं की दृष्टि से

(i) इन्हें पूर्वाधिकार अंशों के बाद ही लाभ मिलता है।

(ii) अंशों में विनियोक्ता राशि कंपनी के समापन की दशा में डूब जाने की संभावना होती है।

(iii) अंशों के मूल्यों में घट–बढ़ होती है।

उपयुक्तता : साधारण अथवा समता अंश निर्गमन कंपनी की अधिकांश स्थायी अथवा दीर्घकालीन पूंजी प्राप्त करने का सबसे उत्तम स्रोत है। कंपनी की प्रारंभिक पूंजी तो प्रायः इसी स्रोत से प्राप्त की जाती है। यही नहीं, स्थायी संपत्तियों के क्रय करने के लिए यह एक आदर्श साधन है। व्यवसाय के आधुनिकीकरण के लिए भी इसी स्रोत का सहारा लिया जाता है।

समता अंश तथा पूर्वाधिकार अंश में अंतर

सामान्य अंश तथा पूर्वाधिकारी अंश दोनों का निर्गमन भारतीय कंपनी अधिनियम के अंतर्गत किया जाता है। इन दोनों में पर्याप्त अंतर है जोकि निम्नलिखित तालिका से पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है–

अंतर का आधार	पूर्वाधिकार अंश	समता या सामान्य अंश
1. अधिमान	ये अपेक्षाकृत ऊंचे अधिमान के होते हैं।	ये सामान्यतः पूर्वाधिकार अंश की तुलना में नीचे अधिमान के होते हैं।
2. संचालकों को नियुक्त करना	इनके धारकों को संचालकों की नियुक्ति करने का सामान्यतः अधिकार नहीं होता है।	इन्हें संचालकों को नियुक्त करने का अधिकार होता है।
3. लाभांश की दर	इन पर लाभांश की दर प्रायः अंतर्नियमों द्वारा निश्चित रहती है।	इन पर लाभांश की दर होने वाले लाभों के अनुसार घटती–बढ़ती रहती है।
4. पूंजी की वापसी	कंपनी के समापन पर सामान्य अंशधारियों की तुलना में इन्हें पहले पूंजी की वापसी होती है।	कंपनी का समापन होने पर सामान्य अंशधारियों को सबसे अंत में पूंजी वापस की जाती है।
5. विमोचन	इसके पूर्णदत्त होने पर निर्गमन की शर्तों के अनुसार इनका विमोचन किया जा सकता है	इनके विमोचन का प्रश्न ही नहीं उठता इनका भुगतान कंपनी के समापन पर ही होता है।
6. लाभांश का अधिकार	अन्य अंशधारियों की तुलना में पूर्वाधिकारी अंशधारियों को पहले लाभांश मिलता है।	इन्हें पूर्वाधिकारी अंशधारियों के बाद ही लाभांश पाने का अधिकार होता है।
7. मत देने का अधिकार	सामान्यतः इन्हें मत देने का अधिकार नहीं होता है। केवल अपने हित के मामलों में ही ऐसा अधिकार प्राप्त है।	सामान्यतः अंशधारियों को सभी प्रकार के मामलों में मत देने का अधिकार प्राप्त है।
8. विनियोक्तागण	पूर्वाधिकारी अंश प्रायः ऐसे विनियोक्तागणों द्वारा क्रय किये जाते हैं जो नियत दर से आय निरंतर प्राप्त करते रहना चाहते हैं	इनमें प्रायः ऐसे लोग धन का विनियोजन करते हैं जो आय प्राप्त करने के साथ–साथ अंशों के मूल्यों में उतार–चढ़ाव में अधिक दिलचस्पी रखते है; जैसे–सटोरिये।
9. जोखिम	इन्हें क्रय करने में जोखिम कम रहती है।	इन्हें खरीदने में जोखिम अधिक रहती है।

टिप्पणी

II. ऋण–पत्रों के निर्गमन द्वारा

अर्थ एवं परिभाषा : अंशों के अतिरिक्त औद्योगिक पूंजी प्राप्त करने का दूसरा महत्वपूर्ण साधन ऋण–पत्रों/बन्धों का निर्गमन है। ऋण–पत्र रक्षित तथा अरक्षित दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं। अमेरिका में अरक्षित बंधों को ही ऋण–पत्र कहते हैं किन्तु भारत में इस प्रकार का कोई भेद नहीं किया जा सकता है। अंग्रेजी भाषा के शब्द 'Debenture' की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द 'Debere' से हुई जिसका अर्थ है–ऋणी होना।

'कंपनी अधिनियम', 1956 की धारा के अनुसार, ''ऋण–पत्र में ऋण–पत्र स्कंध, बॉण्ड तथा कंपनी की अन्य प्रतिभूतियां सम्मिलित हैं, चाहे वे कंपनी की संपत्तियों पर प्रभाव उत्पन्न करती हों या नहीं।''

सरल शब्दों में, ''ऋण–पत्र कंपनी द्वारा प्राप्त ऋण का एक स्वीकृति–पत्र है जो कंपनी की मुहर अथवा सार्वमुद्रा के अंतर्गत निर्गमित किया जाता है। इस पर उन शर्तों का उल्लेख रहता है जिसके अधीन कंपनी ऋण लेती है।''

ऋण–पत्र के लक्षण : ऋण–पत्र के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं–

1. ऋण–पत्र एक प्रलेख है जो कंपनी द्वारा लिये गये ऋण की स्वीकृति को प्रकट करती है।
2. यह कंपनी की सार्वमुद्रा के अंतर्गत निर्गमित किया जाता है।
3. इस पर उन शर्तों का उल्लेख रहता है जिनके अधीन यह निर्गमित किया जाता है; जैसे–देय ब्याज, पूंजी की वापसी।
4. सभी ऋण–पत्र बराबर राशि के होते हैं एवं निश्चित श्रेणी के होते हैं।
5. कंपनी अधिनियम के अनुसार ऋण–पत्र के अंतर्गत ऋण–पत्र स्टॉक, बॉण्ड आदि को सम्मिलित किया जाता है।
6. ऋण–पत्र कंपनी तथा ऋण दाता के बीच एक अनुबंध होता है।
7. ऋण–पत्र धारियों को मत देने का अधिकार नहीं होता है।

ऋण–पत्रों के प्रकार

1. **रजिस्टर्ड ऋण–पत्र :** ऐसे ऋण–पत्रों का पूरा विवरण कम्पनियों की पुस्तकों में रहता है, इसका हस्तांतरण बिना कंपनी की अनुमति के नहीं हो सकता है।
2. **विमोचनशील ऋण–पत्र :** वे ऋण–पत्र जिनका भुगतान एक निश्चित अवधि में अथवा सूचना देने के पश्चात् कंपनी द्वारा हो सकता है, विमोचशील ऋण–पत्र कहलाते हैं। प्रायः कंपनी ऐसे ऋण–पत्रों का भुगतान लाभ अथवा संचित कोष से या नवीन ऋण–पत्र निर्गमित करती है। भारत में अप्रैल, 1987 से ऐसे ऋण–पत्रों का विमोचन 5 वर्ष पश्चात् होता है। इन पर अधिकतम 15 प्रतिशत वार्षिक दर से ब्याज देय है।
3. **अविमोचनशील ऋण–पत्र :** ऐसे ऋण–पत्र जो स्थायी होते हैं और जिनका भुगतान कंपनी के जीवन काल में नहीं हो सकता अविमोचनशील या स्थायी ऋण–पत्र कहलाते हैं।
4. **बंधकयुक्त ऋण–पत्र :** ऐसे ऋण–पत्र जिनका निर्गमन करते समय कुछ सम्पत्तियों को जमानत के रूप में रखा जाता है, बंधकयुक्त ऋण–पत्र कहलाते

हैं। कंपनी के समापन की दशा में जमानत के युग में रखी गई संपत्तियों पर बंधकयुक्त ऋण–पत्रधारियों का प्रमुख अधिकार होगा।

5. **परिवर्तनीय ऋण–पत्र** : इसमें ऋण–पत्रधारियों को यह विकल्प दिया जाता है कि वे अपने ऋण–पत्रों को एक निश्चित समय के अंदर स्कंध या अंश में बदल सकते हैं। इस प्रकार के ऋण–पत्रों को परिवर्तनीय ऋण–पत्र कहते हैं।
6. **अपरिवर्तनीय ऋण–पत्र** : ऐसे ऋण–पत्र जिनका अंशों में परिवर्तन का अधिकार प्रदान नहीं किया जाता है, अपरिवर्तनीय ऋण–पत्र कहलाते हैं।
7. **वाहक ऋण–पत्र** : वे ऋण–पत्र जिनका हस्तांतरण केवल सुपुर्दगी द्वारा ही हो जाता है, 'वाहक ऋण–पत्र' कहलाते हैं। इनके धारक का नाम कंपनी के रजिस्टर में नहीं लिखा रहता है जिस व्यक्ति के पास वाहक ऋण–पत्र हो वही उसका स्वामी माना जाता है।

टिप्पणी

भारत में विमोचनशील ऋण–पत्र, बंधकयुक्त ऋण–पत्र तथा वाहक ऋण–पत्रों का चलन है।

ऋण–पत्रों से लाभ : ऋण–पत्रों से पूंजी प्राप्त करने में निम्नलिखित लाभ हैं–

1. कंपनी की दृष्टि से लाभ

1. **निश्चित समय के लिए ऋण का मिलना** : ऋण–पत्रों के निर्गमन से कंपनी को निश्चित समय एवं निश्चित रूप से ऋण प्राप्त हो जाता है और वह निश्चितता से अपना कार्य सुचारू रूप से चला सकती है।
2. **मितव्ययिता** : यह साधन अत्यंत मितव्ययी है क्योंकि इस प्रकार का ऋण यदि अन्य रीति से लिया जाए तो अधिक ब्याज देना पड़ता है किन्तु ऋण–पत्रों पर निश्चित रूप से कम ब्याज चुकाया जाता है।
3. **कंपनी अर्थव्यवस्था में लोच** : कुछ ऋण–पत्र ऐसे होते हैं जिनके भुगतान का अधिकार कंपनी अपने हाथ में रखती है। इस प्रकार कंपनी की अर्थव्यवस्था में लोच रहती है क्योंकि आवश्यकता पड़ने पर विमोचनशील ऋण–पत्रों का निर्गमन किया जा सकता है।
4. **अंशधारियों को अधिक लाभांश** : यदि कंपनी ने ऋण–पत्रों का निर्गमन पर्याप्त मात्रा में किया है और पूंजी कम मात्रा में है तो अंशधारियों को लाभांश अधिक मिल सकता है क्योंकि ऋण–पत्रधारियों को ब्याज एक निश्चित दर से दिया जाता है तथा शेष लाभ अंशधारियों में वितरित हो जाता है।

2. विनियोक्ताओं को लाभ

1. अंशधारियों को मताधिकार प्राप्त होने से वे कंपनी की व्यवस्था में भाग ले सकते हैं।
2. अंशधारियों को लाभांश के रूप में अधिक आय होती है।
3. ये कंपनी के वास्तविक स्वामी होते हैं।
4. कम पूंजी वाले व्यक्ति भी कंपनी के अंश क्रय करके देश के औद्योगिक विकास में अपना सक्रिय सहयोग प्रदान कर सकते हैं।

टिप्पणी

ऋण–पत्रों के दोष

ऋण–पत्रों से पूंजी प्राप्त करने में निम्नांकित दोष हैं–

1. कम्पनी की दृष्टि से दोष

(i) **कंपनी पर भार** : चाहे कंपनी को लाभ हो अथवा हानि परंतु ऋण–पत्र पर तो ब्याज का भुगतान करना ही होगा। इस प्रकार यह विशेषतः आर्थिक मंदी के समय भार–स्वरूप प्रतीत होने लगते हैं।

(ii) **कंपनी की साख में कमी** : ऋण–पत्रों के निर्गमन के लिए कंपनी की संपत्ति बंधक हो जाती है जिसके कारण कंपनी की साख कम हो जाती है।

(iii) **संकट के समय ऋण–पत्र निर्गमित करना असंभव** : कंपनी के संकटग्रस्त होने पर अथवा अप्रगतिशील होने पर अथवा अप्रगतिशील होने पर ऋण–पत्रों को अच्छे दिनों का दोस्त और बुरे दिनों का दुश्मन कहा जाता है।

(iv) **कंपनी का अस्तित्व खतरे में** : ब्याज का भुगतान न होने की दशा में ये न्यायालय में आवेदन–पत्र देकर कंपनी का समापन कर सकते हैं जिससे कंपनी का अस्तित्व भी खतरे में पड़ सकता है।

2. विनियोक्ताओं की दृष्टि से दोष

(i) **मत देने तथा कंपनी की व्यवस्था में भाग लेने का अधिकार नहीं** : अंशधारियों की भांति ऋण–पत्रधारी न तो कंपनी की सभाओं में भाग लेकर अपना मत दे सकते हैं और न कंपनी की व्यवस्था में भाग ले सकते हैं।

(ii) **लाभांश से वंचित होना** : ऋण–पत्रधारियों को केवल एक निश्चित दर से ब्याज मिलता है जोकि साधारणतः कम होता है। वे अंशधारियों की भांति लाभांश पाने के अधिकारी नहीं होते।

अंश तथा ऋण–पत्र में अंतर

अंतर का आधार	अंश	ऋण–पत्र
1. स्वामित्व पूंजी	अंश–पूंजी स्वामित्व पूंजी होती है।	ऋण–पत्र पूंजी होती है।
2. प्रतिफल	अंशों के प्रतिफल के रूप में लाभांश दिया जाता है।	ऋण–पत्रों के प्रतिफल के रूप में ब्याज दिया जाता है।
3. प्रकार	अंश निम्न दो प्रकार के होते हैं– (i) साधारण अंश तथा (ii) पूर्वाधिकारी अंश।	ऋण–पत्र अनेक प्रकार के होते हैं।
4. कंपनी से संबंध	अंशधारी कंपनी के स्वामी होते हैं।	ऋण–पत्रधारी कंपनी के ऋणदाता होते हैं।
5. प्रबंध में हिस्सा	अंशधारी कंपनी के प्रबंध में भाग लेते हैं।	ऋण–पत्रधारी कंपनी के प्रबंध में भाग नहीं ले सकते हैं।
6. आय की निश्चितता	अंशों पर आय की निश्चितता नहीं होती है।	इनके धारकों की आय की निश्चितता रहती है।

टिप्पणी

7. लोच	अंशों के निर्गमन से पूंजी ढांचे में लोच का अभाव रहता है।	ऋण–पत्रों के निर्गमन से पूंजी ढांचे में पर्याप्त लोच रहती है।
8. जोखिम	अंशों में धन विनियोजित करने में जोखिम रहती है।	ऋण–पत्रों में धन विनियोजित करने में अपेक्षाकृत कम जोखिम रहती है।
9. निर्गमन की आवश्यकता	प्रत्येक अंश–पूंजी वाली कंपनी के लिए अंशों का निर्गमन करना आवश्यक होता है।	ऋण–पत्रों का निर्गमन पूर्णतः ऐच्छिक होता है।
10. बंधक	अंशों में कंपनी की संपत्ति को कभी भी बंधक नहीं रखा जाता है।	ऋण–पत्रों में कंपनी की संपत्ति को बंधक रखा जा सकता है।

III. केन्द्र स्तरीय वित्तीय संस्थानों से ऋण लेकर

उद्यम के लिए निम्नांकित केन्द्र स्तरीय वित्तीय संस्थानों से ऋण लेकर पूंजी की व्यवस्था करता है–

1. भारतीय औद्योगिक वित्त निगम
2. भारतीय औद्योगिक ऋण एवं निवेश निगम
3. भारतीय औद्योगिक विकास बैंक
4. भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक
5. भारतीय औद्योगिक पुनः निर्माण बैंक
6. भारतीय निर्यात आयात बैंक
7. राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड)
8. राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम की वित्तीय योजनाएं
9. अन्य अखिल भारतीय संस्थाएं।

IV. विदेशी संस्थाएं से ऋण लेकर

कोषों को जुटाने के लिए निम्नांकित विदेशी संस्थाएं भी ऋण प्रदान करती हैं–

1. अंतर्राष्ट्रीय वित्त निगम
2. तेल निर्यातक विकासशील देशों द्वारा निवेश
3. एशियन विकास बैंक।

V. राज्य स्तरीय वित्तीय संस्थाओं से ऋण लेकर

राज्य स्तरीय निम्नांकित वित्तीय संस्थाओं से ऋण लेकर भी कोषों को जुटाया जाता है–

1. राज्य वित्त निगम द्वारा ऋण
2. राज्य औद्योगिक विकास एवं निवेश निगम लिमिटेड द्वारा ऋण
3. बैंकों द्वारा ऋण
4. खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग द्वारा ऋण।

टिप्पणी

VI. व्यापारिक बैंकों से ऋण लेकर

व्यापारिक बैंकों से आशय उन बैंकिंग संस्थानों से है जो उद्यमों की लघु एवं मध्यम श्रेणी की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। कई राष्ट्रीयकृत बैंक, निजी क्षेत्र की बैंक और यहां तक विदेशी व्यापारिक बैंक भी भारतीय उद्यमियों के लघु एवं मध्यम श्रेणी के उद्योगों के लिए पर्याप्त मात्रा में वित्तीय सहायता प्रदान कर रहे हैं। व्यापारिक बैंक सामान्यतः निम्न प्रारूपों में वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं–

1. अधिविकर्ष
2. नकद साख
3. ऋण एवं अग्रिम
4. विपत्रों, हुण्डी तथा अन्य व्यापारिक प्रलेखों को भुनाना एवं क्रम करना
5. माल के बंधक पर ऋण।

VII. जन निक्षेप द्वारा वित्तीयन

भारतीय कम्पनियों के अर्थ–प्रबंध के लिए सार्वजनिक निक्षेप स्वीकार करना इस देश के औद्योगिक विकास में एक अद्वितीय घटना है। प्रारंभ में बैंकों में जनता का विश्वास था जिसके कारण कम्पनियों को पर्याप्त मात्रा में सार्वजनिक निक्षेप प्राप्त हो जाते थे। मुम्बई, अहमदाबाद तथा कुछ हद तक शोलापुर की सूती वस्त्र मिलों तथा बंगाल और असम के चाय के बागानों ने सार्वजनिक निक्षेप द्वारा ही अपनी स्थायी पूंजी का संचय किया है अर्थात् उन्होंने सीधे जनसाधारण से निर्धारित अवधि के लिए निश्चित ब्याज दर पर निक्षेप स्वीकार किया है। सार्वजनिक निक्षेप छः महीने से लेकर बारह–पन्द्रह साल के लिए जाते रहे हैं।

VIII. अर्जित आय का पुनः विनियोग अथवा लाभों का पुनर्विनियोजन

प्रत्येक प्रगतिशील उद्योग के भावी विकास के लिए पर्याप्त मात्रा में पूंजी चाहिए। यदि वह पूंजी बाहरी लोगों से ली जाए तो उसमें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, अतः लाभ के हिस्से का पुनः विनियोग करना विस्तार एवं उन्नति की सर्वश्रेष्ठ विधि है। इस पद्धति के अनुसार कंपनी अपनी संपूर्ण आय का वितरण लाभांश के रूप में न करती हुई उसका एक भाग बचाकर संचय कोष में रख लेती है और इस संचय कोष का प्रयोग कंपनी की भावी विकास योजनाओं में करती है।

कंपनी के इस प्रकार के अर्थ–प्रबंध को 'अर्जित आय का पुनः विनियोग' अथवा 'आंतरिक अर्थव्यवस्था' कहते हैं। यह पद्धति कंपनी की आर्थिक दृढ़ता के लिए अधिक लाभकर है क्योंकि ऋण से विकास योजनाओं की पूर्ति करने से कंपनी पर ब्याज के भुगतान का बोझ बढ़ता है और यदि इन ऋणों का भुगतान अचानक एक साथ मांग लिया जाए तो कंपनी की आर्थिक स्थिति शिथिल पड़ जाती है। अतः जो देश औद्योगिक उन्नति कर रहे हैं, उनमें पूंजी बढ़ाने के लिए यह पद्धति बड़ी व्यापकता से अपनाई गई है। पाश्चात्य देशों के औद्योगिक विकास में इस पद्धति का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रहा है, उस दशा में, जबकि पूंजी का प्राप्त करना कठिन हो, यह पद्धति अत्यंत लाभदायक सिद्ध हो सकती है।

लाभों के पुनर्विनियोजन का लाभ : लाभों के पुनर्विनियोजन का निम्नलिखित लाभ हैं–

टिप्पणी

1. इस कोष के होने से कंपनी मौसमी तथा व्यापारिक अवसरों का सामना करने के लिए सुदृढ़ हो जाती है।
2. इस साधन से पर्याप्त पूंजी प्राप्त होने की दशा में उपक्रम को अन्य बाहरी लोगों से पूंजी कम मांगनी पड़ती है।
3. उपक्रम की बाजार में ख्याति बढ़ जाती है।
4. उपक्रम की मंदी काल में भी सुरक्षा हो जाती है।
5. देश में पूंजी निर्माण की गति तेज हो जाती है।
6. अंशधारियों एवं विनियोक्ताओं के विनियोग सुरक्षित बने रहते हैं।
7. उपक्रम की कुशलता में वृद्धि होती है।
8. कंपनी संतुलित लाभांश नीति अपना सकती है।
9. विवेकीकरण तथा भावी उन्नति की योजनाओं को सुविधापूर्वक कार्यान्वित किया जा सकता है।
10. अंशधारियों के अंशों का मूल्य बाजार में बढ़ जाता है।
11. देश में तेजी से औद्योगिकरण होने लगता है जिससे समाज में आर्थिक संपन्नता आती है।

लाभों के पुनर्विनियोजन के दोष : लाभों के पुनर्विनियोजन के निम्न दोष हैं–

1. इससे एकाधिकार स्थापित करने की मनोवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है।
2. अति–पूंजीकरण का भय निरंतर बना रहता है।
3. कंपनी के संचित लाभों का दुरुपयोग किए जाने का भय बना रहता है।
4. अर्जित आय का विनियोजन करने से उपक्रम के आकार में वृद्धि होती है, जिससे डर बना रहता है कि कहीं उपक्रम का आकार अनुकूलतम आकार से अधिक न हो जाए।
5. अर्जित उपाय का विनियोजन करने से कंपनी के अंशों के मूल्य में गड़बड़ी होने की संभावना रहती है।
6. प्रो. पीगू के अनुसार, ''आर्थिक लाभों का संचय करने से समाज की हानि होती है क्योंकि उन उद्योगों को पूंजी उपलब्ध नहीं हो पाती जो समाज कल्याण हेतु उक्त पूंजी का अधिक उपयोग कर सकते हैं।''

IX. कोषों को जुटाने के अन्य स्रोत

कोषों को जुटाने के अन्य स्रोत निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत उल्लेखित हैं–

1. **देशी बैंकर्स से ऋण** : यद्यपि देशी बैंकरों का औद्योगिक अर्थ–प्रबंधन में बहुत कम हाथ रहता है किंतु इन्होंने देश के आंतरिक व्यापार को महत्वपूर्ण साख–सुविधाएं प्रदान की है। ये गत कुछ वर्षों से अहमदाबाद तथा मुंबई में सूती

टिप्पणी

मिलों, असम तथा बंगाल के चाय उद्योग में, तेल, चमड़े और चावल आदि मिलों में साख–सुविधाएं प्रदान कर रहे हैं किंतु इनकी अत्यधिक ब्याज दर (जोकि 16 प्रतिशत से 24 प्रतिशत तक होती है); रूढ़िवादी नीति; सीमित आर्थिक साधन तथा व्यापारिक बैंकों की प्रतियोगिताओं के कारण धीरे–धीरे इनका लोप होता जा रहा है। इतना होते हुए भी देशी बैंकर उन उद्योगों के लिए अत्यंत लाभदायक है जो अपनी पूंजी साधारण जनता से प्राप्त नहीं कर सकते जिनके यहां सार्वजनिक निक्षेप उपलब्ध नहीं है, जहां पर आधुनिक बैंकिंग का विकास नहीं हुआ है तथा जो जमानत के नियमों का कठोरता से पालन नहीं करते हैं। यदि देखा जाए तो भारत में देशी बैंकर ही एकमात्र ऐसी संस्था है जोकि व्यक्तिगत जमानत पर ऋण देने को तत्पर हैं। छोटे–छोटे उद्योगों में देशी बैंक पर्याप्त मात्रा में आर्थिक सहायता देते हैं। सहकारी साख समितियों की स्थापना से इनके व्यवसाय को भारी क्षति पहुंचती है।

2. **ह्रास कोष** : मशीनों और यंत्रों की मरम्मत तथा उनका पुनर्स्थापन करने के लिए ह्रास कोष की व्यवस्था की जाती है। इससे कंपनी कार्य सुचारू रूप से चलता रहता है। मशीनों की कार्यक्षमता में वृद्धि हो जाती है। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की खोज के अनुसार भारत में पिछले कुछ वर्षों से ह्रास कोष द्वारा अर्थ–प्रबंधन का महत्व निरंतर बढ़ता रहा है।

3. **व्यापारिक उधार** : व्यापारिक उधार कार्यशील पूंजी प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। इसके अंतर्गत विक्रेता फर्म क्रेता फर्म को कच्चा माल, अर्द्ध–निर्मित माल एवं निर्मित माल उधार देती है और एक निश्चित अवधि (30 दिन–45 दिन तक) के पश्चात् अथवा विक्रय हो जाने पर भुगतान स्थिति और ख्याति पर निर्भर करता है। व्यापारिक उधार की उपलब्धि विक्रेता फर्म के आर्थिक साधन, माल के स्टॉक, शीघ्र बेचने की क्षमता और मुद्रा बाजार की स्थिति पर निर्भर करती है।

4. **सरकारी सहायता एवं ऋण** : आजकल केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारें भी औद्योगिक व्यावसायिक इकाइयों को वित्तीय सुविधाएं उपलब्ध कराती हैं। ये वित्तीय सुविधाएं निम्न प्रकार से उपलब्ध कराई जाती हैं– (1) प्रत्यक्ष अनुदान देकर, (2) ऋण देकर, (3) अंशों तथा ऋण–पत्रों का क्रय करके और (4) गारण्टी देकर।

5. **ग्राहक अग्रिम** : कुछ व्यावसायिक एवं औद्योगिक कंपनियां अपनी अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति अपने उत्पादों के आदेश के साथ ही ग्राहकों एवं वितरकों से अग्रिम राशि के रूप में करोड़ों रुपए एकत्रित कर लेती हैं। यह कार्यशील पूंजी प्राप्त करने का आजकल महत्वपूर्ण स्रोत बन गया है किंतु इस स्रोत का उपयोग प्रायः ऐसी व्यावसायिक एवं औद्योगिक इकाइयां करती हैं जिनके उत्पाद की बाजार में भारी मांग होती है अथवा लगभग एकाधिकार की स्थिति होती है, जैसे–मारुति कार उद्योग, बजाज ऑटो, रसोई गैस कंपनियां (भारत पेट्रोलियम) आदि।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1. निम्न में से कौन–सी पूंजी स्थायी पूंजी के अंतर्गत नहीं आती?
   (क) पेटेण्ट (ख) भूमि
   (ग) भवन (घ) प्लांट
2. ''चालू सम्पत्तियों का योग ही व्यवसाय की कार्यशील पूंजी है–'' यह कथन किसका है।
   (क) मैलट तथा फील्ड (ख) जे.एस. मिल
   (ग) डा. पी.सी. श्रीवास्तव (घ) शुम्पीटर

4.3 पूंजी अनुमान एवं व्यवस्था

''उद्यम पूंजी से आशय अधिक जोखिम, साहसिक एवं लाभ देने वाले उपक्रमों के लिए प्रारंभिक पूंजी को उपलब्ध कराने से है।''

कुछ लोगों के पास बड़े उत्पाद विचार होते हैं, बड़ी आकर्षक उत्पाद परियोजनाएं होती हैं, तकनीकी ज्ञान होता है किन्तु अधिक जोखिम तथा आवश्यक वित्तीय संसाधनों का अभाव होने के कारण वे अपने विचारों को क्रियान्वित नहीं कर पाते हैं। फलतः अच्छी से अच्छी उत्पाद परियोजना फाइलों में बंद होकर ही रह जाती है। उद्यम पूंजी की अवधारणा का उद्‌गम ऐसे ही उद्यमियों को सहायता प्रदान करने के लिए हुआ है।

4.3.1 उद्यम पूंजी का अर्थ एवं विशेषताएं

उद्यम पूंजी से आशय ऐसे व्यावसायिक उपक्रम में धन का विनियोजन करने से है जिनमें एक तरफ तो अनिश्चितताओं एवं जोखिम की भरमार रहती है और दूसरी तरफ अधिक लाभों का आकर्षण रहता है। उद्यम पूंजी शब्द निम्न दो शब्दों उद्यम एवं पूंजी के योग से बना है। ऑक्सफोर्ड लर्नर शब्दकोश के अनुसार, "उद्यम से आशय ऐसे उपक्रम से है जिसमें अनिश्चितता, जोखिम, खतरा एवं हानि निहित है। पूंजी से आशय ऐसे उपक्रम के लिए प्रारंभिक पूंजी उपलब्ध कराने से है जिसमें एक तरफ तो अनिश्चितता एवं अत्यधिक जोखिम है और दूसरी ओर, अत्यधिक लाभों का आकर्षण है।"

डेविड एच. हाल्ट के अनुसार, ''उद्यम पूंजी से आशय निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र से प्राप्त विनियोजित कोषों को उच्च जोखिम एवं उच्च क्षमता वाले उपक्रमों की ओर निर्देशित करना है।''

डोलिंगर के अनुसार, ''उद्यम पूंजी बाह्य पूंजी है जो निवेशकों के पेशेवर ढंग से प्रबंधित कोष से प्राप्त होती है।''

वित्तीय ख्याति प्राप्त पत्र 'इकोनोमिक टाइम्स' के अनुसार, ''उद्यम पूंजी वह पूंजी है जो पेशेवर लोगों की फर्मों के द्वारा उन कम्पनियों में प्रबंधकीय भागीदारी के साथ निवेश की जाती है, जो तीव्रगति से विकास एवं परिवर्तन कर रही है तथा जिनके विकास की उच्च क्षमता होती है।''

टिप्पणी

निष्कर्ष–उपयुक्त परिभाषा : ''उद्यम पूंजी से आशय ऐसी दीर्घकालीन पूंजी से है जो आधुनिक, अनिश्चितता, जोखिमयुक्त, नवाचारी तथा तीव्रगति से विकास करने वाले उद्योगों में पेशेवर उद्यम पूंजीपत्तियों द्वारा उन नवीन उपक्रमों में लगायी जाती है जिनके शीघ्र विकास की अधिकतम संभावनाएं होती है। यह पूंजी केवल नवीन उपक्रमों के लिए प्रदान की जाती है।''

उद्यम पूंजी लघु उपक्रमों, तकनीकी उपक्रमों तथा अत्यधिक जोखिम वाले उपक्रमों के लिए प्रारंभिक एवं विकास वित्त उपलब्ध कराने का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है।

उद्यम पूंजी अवधारणा का उद्‌गम एवं विकास

उद्यम पूंजी अवधारणा का उद्‌गम सबसे पहले अमेरिका में हुआ। इस प्रकार उद्यम पूंजी अवधारणा का जन्म स्थान अमेरिका है। वहां इस समय लगभग 600 उद्यम पूंजी प्रदान करने वाली फर्म है। तत्पश्चात् उद्यम पूंजी अवधारणा का विकास इंग्लैण्ड तथा जापान में हुआ। वर्तमान में तो लगभग सभी विकसित पूंजीपति देशों ने उद्यम पूंजी अवधारणा को अपनाया है। इन देशों में बड़ी तेजी से प्रौद्योगिकी आधारित उद्योगों की स्थापना एवं विकास हो रहा है। भारत में उद्यम पूंजी अवधारणा का उद्‌गम करने का श्रेय भारतीय प्रौद्योगिक वित्त निगम को है जिसने सबसे पहले 1975 में जोखिम पूंजी न्यास की भारत में स्थापना की। जनवरी 1988 में इसे कंपनी में परिणित कर दिया गया। इसका नाम बदलकर 'जोखिम पूंजी एवं प्रौद्योगिकी निगम लिमिटेड' रख दिया गया। तत्पश्चात् अन्य भारतीय वित्तीय संसधानों ने भी अपने यहां उद्यम–पूंजी कोष योजना की स्थापना की। इसी प्रकार प्रौद्योगिकी विकास बैंक ने सन् 1986 में अपने यहां भारतीय प्रौद्योगिकी विकास इन्फ्रास्ट्रक्चर निगम की स्थापना की। यह ₹20 करोड़ तक की उद्यम पूंजी का भी प्रबंध करता है। इसकी स्थापना इसने भारतीय यूनिट ट्रस्ट के सहयोग से की है।

उपरोक्त के अतिरिक्त अनेक अखिल भारतीय सार्वजनिक वित्तीय संस्थानों तथा निजी क्षेत्र की वाणिज्यिक बैंकों ने भी उद्यम पूंजी के क्षेत्र में प्रवेश किया है। उदाहरण के लिए, ट्रस्ट बैंक पूंजी मार्केट, केन वित्तीय सेवा संस्थान आदि ने भी उद्यम पूंजी कोषों की सहायता की है। निजी क्षेत्र में भारतीय साख पूंजी निगम ने एशियन विकास बैंक तथा कामनवैल्थ कोष के सहयोग से साख पूंजी उद्यम कोष इण्डिया लिमिटेड की स्थापना की है। भारत में आधुनिक तकनीकी उद्योगों की स्थापना एवं विकास में बड़ी तीव्र गति से उद्यम पूंजी कोषों की स्थापना की जा रही है। उदाहरण के लिए–टाटा समूह के विनियोग निगम ऑफ इण्डिया ने अनेक उपक्रमों की सफलतापूर्वक प्रवर्तन किया है, जैसे–Associated Bearing.

उद्यम पूंजी के लक्षण अथवा विशेषताएं

1. उद्यम पूंजी अत्यधिक जोखिम लिए होती है।
2. उद्यम पूंजी प्रारंभिक पूंजी के प्रारूप में होती है जोकि उद्यम पूंजीपतियों द्वारा प्रदान की जाती है।
3. विनियोजन सामान्यतः समता प्रलेखों में होता है जिनमें प्रत्याय पर पूंजीगत लाभों के रूप में कर लगता है, न कि सामान्य आय के रूप में।
4. उद्यम पूंजी में तरलता का अभाव होता है।

टिप्पणी

5. उद्यम पूंजी विनियोक्ता यद्यपि उपक्रम के प्रबंध में संलग्न होते हैं किंतु उन्हें उसके दैनिक कार्यों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होता है किंतु वे प्रवर्तकों के संपर्क में निरंतर बने रहते हैं तथा अपने वित्तीय हितों पर नजदीकी निगाह रखते हैं।
6. उद्यम पूंजीपतियों का दृष्टिकोण स्कंध बाजार विनियोक्ता तथा बैंकर से बिल्कुल भिन्न होता है।
7. उद्यम पूंजी दीर्घकालीन प्रकृति की होती है जैसे–5 वर्ष से 10 वर्ष की अवधि।
8. उद्यम पूंजी का उपयोग नवीन प्रौद्योगिकी द्वारा अत्यधिक लाभ कमाने की इच्छा से नवीन उत्पादों का निर्माण करने के लिए किया जाता है।
9. उद्यम पूंजी तकनीकी ज्ञान पर आधारित होती है।
10. उद्यम पूंजी का प्रतिफल ब्याज के रूप में नहीं होता है अपितु लाभांश तथा पूंजी में वृद्धि के रूप में होता है।

अंतर का आधार	परंपरागत पूंजी	उद्यम पूंजी
1. पूंजी स्रोत	परंपरागत पूंजी के विभिन्न स्रोत होते हैं, जैसे–अंश, ऋण–पत्र, जननिक्षेप	उद्यम पूंजी के स्रोत केवल दो हैं– (1) उद्यमी की स्वयं की पूंजी और (2) उद्यम पूंजी कोष
2. उद्यमों की प्रकृति	परंपरागत पूंजी सामान्यतः परंपरागत उद्यमों को ही प्राप्त होती है।	उद्यमी पूंजी नये आधुनिक नवाचारी उद्योगों को प्राप्त होती है जो आधुनिक प्रौद्योगिकी पर आधारित होते हैं।
3. निवेश का आधार	परंपरागत पूंजी का मूलाधार परियोजना की व्यावहारिका होती है।	उद्यम पूंजी का मूलाधार परियोजना का शीघ्र, तीव्रगति से विकास एवं विस्तार होता है।
4. प्रतिफल	परंपरागत पूंजी की मूलाधार परियोजना की व्यावहारिकता होती है तो पूंजी का प्रतिफल सामान्यतः ब्याज होती है।	उद्यम पूंजी का प्रतिफल लाभांश तथा पूंजीगत लाभ होता है।
5. जोखिम	परंपरागत पूंजी सामान्यतः कम एवं सीमित जोखिम वाले उद्योगों में लगी होती है।	उद्यम पूंजी अधिक एवं असीमित जोखिम वाले उद्योगों में लगी होती है।
6. उपलब्धता	परंपरागत पूंजी निजी व्यक्तियों तथा संस्थाओं द्वारा उपलब्ध करायी जाती है।	उद्यम पूंजी केवल पेशेवर उद्यम पूंजी कोषों द्वारा उपलब्ध करायी जाती है।
7. जमानत	परंपरागत पूंजी का प्रदाता निवेश की जाने वाली पूंजी के लिए सामान्यतः जमानत की मांग करता है।	उद्यम पूंजी प्रदाता किसी सामानान्तर जमानत की मांग नहीं करता है।
8. अवधि	अल्पकाल तथा दीर्घकाल के लिए।	उद्यम पूंजी केवल दीर्घकाल के लिए ही प्राप्त की जाती है।

उद्यम पूंजी वित्तीयन की अवस्थाएं

परंपरागत रूप में यह धारणा विद्यमान रही है कि उद्यम पूंजी की आवश्यकता किसी लघु उपक्रम की स्थापना के लिए होती है। यह ऐसी अवस्था होती है जबकि आम

टिप्पणी

विनियोक्ता ऐसे उपक्रमों में धन का विनियोजन करने से कतराते हैं इसका कारण है कि ऐसे उपक्रमों की स्थापना के समय भी जोखिम विद्यमान रहती है जिसे आम विनियोक्ता सरलता से वहन करने को तत्पर नहीं होता है। इस प्रकार उद्यम पूंजी की आवश्यकता प्रत्येक स्तर पर होती है।

उद्यम पूंजी वित्तीयन की प्रमुख अवस्थाएं निम्नलिखित हैं–

1. **बीज पूंजी** : बीज पूंजी से आशय प्रारंभिक पूंजी से है जिसकी आवश्यकता किसी उपक्रम की स्थापना अथवा किसी परियोजिना की व्यवहार्यता के ज्ञात करने के समय पर होती है। बीज पूंजी का उद्देश्य उन उद्यमियों को वित्तीय सहायता प्रदान करना है जिनके पास किसी नवीन उपक्रम परियोजना की स्थापना के लिए अपने निजी वित्तीय संसाधनों का अभाव होता है। बीज पूंजी को निम्न तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–

   (अ) **विशिष्ट बीज पूंजी सहायता योजना** : इस योजना के अंतर्गत विशेष रूप में लघु इकाइयों को उनकी स्थापना के लिए बीज पूंजी सहायता उपलब्ध करायी जाती है। इसके अंतर्गत वित्तीय सहायता की मात्रा 0.2 मिलियन रुपये अथवा परियोजना की लागत राशि का 20 प्रतिशत इन दोनों में से जो भी कम हो, प्रदान की जाती है।

   (ब) **बीज पूंजी सहायता योजना** : बीज पूंजी सहायता योजना के अंतर्गत ऐसी प्रौद्योगिक इकाइयों अथवा परियोजनाओं के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है जिनका लागत मूल्य 20 मिलियन ₹ से अधिक न हो। वित्तीय सहायता की अधिकतम राशि 15 मिलियन रुपया इकाई अथवा परियोजना की लागत तक सीमित होती है। वित्तीय सहायता की राशि भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के द्वारा राज्य स्तर के वित्तीय संस्थानों के माध्यम से प्रदान की जाती है।

   (स) **जोखिम पूंजी न्यास योजना** : इस योजना के अंतर्गत स्वायत्तशासी न्यास की स्थापना की जाती है। उसे धन भारतीय औद्योगिक वित्त निगम द्वारा उपलब्ध कराया जाता है। यह न्यास 20 मिलियन रुपये से लेकर 150 मिलियन रुपये की लागत वाली परियोजनाओं के प्रवर्तकों को आर्थिक सहायता प्रदान करता है। आर्थिक सहायता की सीमा प्रति इकाई 1.5 मिलियन रुपये से लेकर 4 मिलियन रुपये तक की होती है जो कि आवेदकों की संख्या पर निर्भर करती है।

2. **प्रारंभ करने पर वित्त अवस्था** : यह उद्यम पूंजी वित्तीयन की वह अवस्था होती है जबकि उद्यम की स्थापना की परियोजना की जांच–पड़ताल के पश्चात् ज्ञात हो जाता है कि उद्यम की स्थापना की जा सकती है और परियोजना को क्रियान्वित किया जा सकता है। इस अवस्था को उद्यम पूंजी का सार कहा जाता है। इस अवस्था में यह निश्चित हो जाता है कि उद्यम की स्थापना, उत्पाद के विकास, प्रारंभिक विपणन तथा उत्पाद सुविधाओं आदि को प्रदान करने के लिए कुल कितने वित्त आवश्यकता होगी। इस अवस्था में धन विनियोजन की

अवधि सामान्यतः 5 वर्ष से लेकर 10 वर्ष तक की जाती है। इस अवस्था में जोखिम की मात्रा सबसे अधिक होती है।

टिप्पणी

3. **प्रथम अवस्था वित्त** : यह उद्यम पूंजी वित्तीयन की तीसरी अवस्था होती है। इस अवस्था में निर्माण कार्य तथा विक्रय कार्य दोनों को सम्पन्न करने के लिए उद्यम पूंजी की व्यवस्था की जाती है। इस अवस्था में धन विनियोजन की अवधि सामान्यतः 4 वर्ष से लेकर 6 वर्ष तक की होती है। इस अवस्था में जोखिम की मात्रा अधिक होती है। किंतु उद्यम प्रारंभ की तुलना में कम।

4. **द्वितीय अवस्था वित्त** : द्वितीय अवस्था वित्त में प्रदान करने के लिए उद्यम पूंजीपति अधिक आकर्षित होते हैं। प्रथम अवस्था वित्त में उद्यमों की स्थापना का कार्य पूरा हो जाता है तथा निर्माण कार्य भी प्रारंभ हो जाता है किंतु अभी तक उनमें लाभ होना प्रारंभ नहीं होता है। अधिकांश उद्यमों में प्रारंभ में घाटा होता है। इसके लिए उत्तरदायी विभिन्न आंतरिक तथा बाहरी घटक हो सकते हैं; जैसे–पूर्ण क्षमता का उपयोग नहीं कर पाना। जिसके कारण प्रति इकाई लागत अधिक होती है। इसी प्रकार सुदृढ़ विपणन व्यवस्था की स्थापना नहीं हो पाना। यदि उद्यम पूंजीपतियों को इसके सही कारणों का पता लग जाता है तो वे अधिक उत्साह के साथ पूंजी का विनियोजन करते हैं। इस अवस्था में सामान्यतः जहां एक ओर पुराने उद्यम पूंजीपति अपनी विनियोजित पूंजी को घटा देते हैं, वही दूसरी ओर, नये उद्यम पूंजीपति पूंजी विनियोजन के लिये आकर्षित होते हैं। इस अवस्था में जोखिम की मात्रा अधिक रहती है तथा पूंजी विनियोजन अवधि उसे 7 वर्ष तक रहती है।

5. **विकास तथा विस्तार अवस्था** : किसी उद्यम की स्थापना होने, निर्माण कार्य प्रारंभ होने तथा उत्पाद विक्रय का कार्य प्रारंभ होने के पश्चात् उसके विकास तथा विस्तार का कार्य प्रारंभ होता है। इस अवस्था में जोखिम की मात्रा कम होती है। इस अस्था में विनियोजित पूंजी की अवधि सामान्यतः घटकर 1 वर्ष से लेकर 3 वर्ष के लिए रह जाती है।

6. **प्रतिस्थापन पूंजी अवस्था** : प्रतिस्थापन पूंजी से आशय पुराने उद्यम पूंजीपतियों के हटने तथा उनके स्थान पर नये उद्यम पूंजीपतियों के आगमन से है। इस प्रकार इस अवस्था में नवीन पूंजी की उत्पत्ति नहीं होती है अपितु पूंजी की प्रतिस्थापना होती है। इस अवस्था में भी जोखिम की मात्रा घट जाती है तथा विनियोजित पूंजी की अवधि सामान्यतः 2 वर्ष से लेकर 4 वर्ष तक ही रह जाती है।

7. **वित्त वसूली अवस्था** : इस अवस्था में उद्यमी अपनी पूर्ण क्षमता का उपयोग करते हुए उत्पादन करना प्रारंभ कर देता है जिसके परिणामस्वरूप हानि के स्थान पर लाभ होने लगता है। उद्यम का आधुनिकीकरण होने लगता है। उद्यमी की विनियोजित पूंजी में हुई क्षति की वसूली होना प्रारंभ हो जाता है। अतएव उद्यमी पूंजी में हुई क्षति की वसूली करते हैं। इस अवस्था में जोखिम में उतार–चढ़ाव आने लगते हैं। इस अवस्था में विनियोजित उद्यम पूंजी की अवधि सामान्यतः 3 वर्ष से 5 वर्ष तक की होती है।

टिप्पणी

उद्यम पूंजी कोष

सेबी अथवा भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय मण्डल के अनुसार उद्यम पूंजी कोष से आशय किसी ऐसे कोष से हैं जिसका सेबी के नियमों के अधीन कंपनी अथवा निगम अथवा प्रन्यास के रूप में पंजीयन किया गया हो तथा

(अ) जिसके पास पूंजी का समर्पित कोष हो;

(ब) जिसने सेबी के नियमों में निर्धारित रीति के अनुसार इन कोषों को एकत्रित किया हो।

(स) जो इन कोषों का सेबी के नियमों का अनुसार निवेश करती हो।

उद्यम पूंजी कोष न तो प्रबंधक के नियंत्रण में होता है और न कंपनी के दैनिक कार्यों में हस्तक्षेप करता है। कोष अपनी निवेशित कंपनियों में आर्थिक सहयोग प्रदान करता है तथा उनके विकास के अवसरों की खोज करता है।

4.3.2 उद्यम पूंजी के स्रोत

उद्यम पूंजी का उद्‌गम सबसे पहले संयुक्त राज्य अमरीका में हुआ था। वहां इस समय में लगभग 600 ऐसे संस्थान है जोकि उद्यम पूंजी उपलब्ध कराते हैं। अमेरिका के पश्चात् इंग्लैण्ड तथा पश्चिम के अन्य देशों जैसे–फ्रान्स, इटली, जर्मनी आदि में उद्यम पूंजी का उद्‌गम एवं विकास हुआ। भारत में पहले से ही उद्यम पूंजी का अभाव रहा है। इसके अलावा भारत में पूंजी के अत्यधिक शर्मीली होने के कारण अधिकांश यह तालों में बंद रह जाती है।

भारत में उद्यम पूंजी के स्रोतों को निम्न तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. अखिल भारतीय स्तरीय उद्यम पूंजी कोष/कंपनियां
2. राज्य स्तरीय उद्यम पूंजी कोष
3. विशिष्ट उद्यम पूंजी कोष

I. **अखिल भारतीय स्तरीय उद्यम पूंजी कोष/कंपनियां** : भारत में अखिल भारतीय स्तर पर उद्यम पूंजी उपलब्ध कराने के लिए कई उद्यम पूंजी कोष कंपनियों की स्थापना की गई है। उनमें से प्रमुख उद्यम पूंजी कोष कंपनियां निम्न हैं–

1. **भारतीय औद्योगिक वित्त निगम कोष लिमिटेड** : भारत में सर्वप्रथम उद्यम पूंजी उपलब्ध का श्रेय भारतीय औद्योगिक वित्त निगम को है जिसने इसका शुभारम्भ सन् 1975 में जोखिम पूंजी न्यास की स्थापना करके किया। बाद में सन् 1988 में यह न्यास जोखिम–पूंजी एवं प्रौद्योगिकी वित्त निगम लिमिटेड में समाहित हो गया। यह निगम उन्नयन, सम्वर्द्धन एवं अंतरण के उद्देश्य से कार्य करता है। यह नवीन प्रौद्योगिकी को अपनाने में एवं उसे बाजार में लाने के लिए भी कार्य करता है। यह वित्तीय सहायता प्रमुख रूप में बिजली, इंजीनियरिंग उद्योग, मत्स्यपालन, कम्प्यूटर एवं हार्डवेयर आदि उद्योगों को दी जाती है। बाद में इसका नाम बदलकर भारतीय औद्योगिक वित्त निगम उद्यम पूंजी कोष लिमिटेड कर दिया गया। यह भारतीय औद्योगिक वित्त निगम की सहायक कंपनी के रूप में कार्यरत है।

टिप्पणी

2. **आई.सी.आई.सी.आई. उद्यम कोष प्रबंध कंपनी लिमिटेड** : सन् 1988 में ICICI ने भारतीय प्रौद्योगिकी विकास एवं इंफ्रास्ट्रक्चर निगम की स्थापना की। बाद में इसका नाम बदलकर आई.सी.आई.सी.आई. (ICICI) उद्यम कोष प्रबंध कंपनी लिमिटेड कर दिया गया। बाद में सन् 2002 में ICICI की एक दूसरी सहायक कंपनी ICICI इकोनेट लि. का विलयन ICICI उद्यम कोष प्रबंध कंपनी लि. में हो गया जिसके परिणामस्वरूप इसने वित्तीय दृष्टि से सुदृढ़ कंपनी का रूप धारण कर लिया। आज यह कंपनी निजी क्षेत्र की उद्यमियों को उद्यम पूंजी उपलब्ध कराने का एक प्रमुख स्रोत बन गई है। गत 13 वर्षों में आई.सी.आई.सी.आई. उद्यम कोष प्रबंध कंपनी लि. ने 11 उद्यम पूंजी कोषों की स्थापना एवं प्रबंध किया है। इन्होंने सबसे पहले साफ्टवेयर तथा औषधि निर्माण कंपनियों तथा फुटकर क्षेत्र में साहसियों को उद्यम पूंजी उपलब्ध करायी है।

3. **आई.डी.बी.आई. उद्यम पूंजी कोष** : भारतीय औद्योगिक विकास बैंक ने सन् 1986 में उद्यम पूंजी कोष की स्थापना की। इसका उद्देश्य विशेषतः लघु एवं मध्यम कोष श्रेणी के उपक्रमों को उद्यम पूंजी उपलब्ध कराना था किंतु यह कोष आवश्यक प्रगति नहीं कर सका। अतएव दिसम्बर, 1993 में भारतीय औद्योगिक विकास बैंक ने IDBI पूंजी बाजार सेवाएं लि. की स्थापना की। यह भी पूर्णतः सहायक कंपनी है और व्यापक स्तर पर वित्तीय सेवाएं प्रदान कर रही है। इसे मुंबई स्कंध विपणि (BSE) तथा राष्ट्रीय स्कंध विपणि (NSE) की सदस्यता प्राप्त है। यह सरकारी प्रतिभूतियों में भी कारोबार करती है।

4. **केनबैंक उद्यम पूंजी कोष लिमिटेड** : इसकी स्थापना केनबैंक द्वारा सन् 1989 में की गई थी। यह इसकी सहायक कंपनी है। वर्तमान में ऐसे तीन उद्यम पूंजी कोष प्रचलन में है जिनके कोष क्रमशः ₹16.4 करोड़ व ₹10.5 करोड़ है। तीनों उद्यम पूंजी कोषों की प्रगति से प्रभावित होकर केनबैंक शीघ्र ही चौथे केनबैंक पूंजी कोष लि. की स्थापना करने जा रहा है। इसकी प्रस्तावित उद्यम पूंजी उपरोक्त चारों के अतिरिक्त स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया (SBI) ने भी उद्यम पूंजी कोष की भी स्थापना की है।

II. **राज्य स्तरीय उद्यम पूंजी कोष** : राज्य स्तर पर छोटे एवं मध्यम आकार वाले उद्यमियों को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए राज्य स्तरीय उद्यम पूंजी कोषों की स्थापना की गई है। ये विशेष रूप में निजी क्षेत्र के नये तथा अधिक जोखिम वाले उद्यमों के लिए प्रारंभिक पूंजी उपलब्ध कराते हैं।

1. **गुजरात उद्यम पूंजी कोष** : इसकी स्थापना गुजरात सरकार द्वारा की गई है। इसका उद्देश्य गुजरात राज्य में छोटे एवं मध्यम श्रेणी के उद्योगों को स्थापित करने वाले उद्यमियों को वित्तीय सहायता प्रदान करना है।

2. **तमिलनाडु उद्यम पूंजी कोष** : इसकी स्थापना तमिलनाडु सरकार ने तमिलनाडु राज्य में स्थित लघु एवं मध्यम स्तर की व्यावसायिक इकाइयों के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए की है। उपरोक्त दोनों राज्यों के अतिरिक्त शेष राज्य भी अपने यहां यथा–शीघ्र उद्यम पूंजी कोषों की स्थापना करने जा रहे हैं।

टिप्पणी

III. **विशिष्ट उद्यम पूंजी कोष** : सार्वजनिक क्षेत्रों के बैंकों के अतिरिक्त निजी क्षेत्र के बैंकों एवे वित्तीय संस्थानों ने भी उद्यम पूंजी कोषों की स्थापना की है। इनका उद्देश्य निजी क्षेत्र के साहसियों को ऐसे उद्यमों की स्थापना के लिए पूंजी उपलब्ध कराना है जिनमें अपेक्षाकृत अधिक जोखिम है तथा जिन्हें आधुनिक तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता है। निजी क्षेत्र के द्वारा स्थापित कुछ प्रमुख उद्यम पूंजी कोष निम्नलिखित हैं–

1. **भारत विनियोग कोष** : इसकी स्थापना ग्रिण्डले बैंक द्वारा की गई थी। बाद में ग्रिण्डले बैंक का विलयन स्टेण्डर्ड चाटर्ड बैंक में हो गया। यह मुख्य रूप में अनिवासी भारतीयों द्वारा स्थापित उद्यमों को वित्तीय सहायता प्रदान करता है।
2. **साख पूंजी उद्यम कोष लिमिटेड** : साख पूंजी उद्यम कोष की स्थापना निजी क्षेत्र की कंपनी 'साख–पूंजी निगम' ने की है। यह लघु एवं मध्यम आकार वाले निजी क्षेत्र के उपक्रमों की स्थापना के लिये, जिनमें अधिक जोखिम होती है बीज पूंजी उपलब्ध कराता है।
3. **औद्योगिक विकास एवं सूचना कंपनी लिमिटेड** : इस कंपनी की स्थापना निजी क्षेत्र की कंपनी के द्वारा जुलाई 1988 में तकनीक ज्ञान, व्यावहारिक विकास एवं प्रसार के उद्देश्य से की गई थी। यह कंपनी तकनीकि उद्यमियों को लघु एवं मध्यम आकार वाली व्यावसायिक इकाइयें की परियोजनाओं के लिए ऋण एवं इक्विटी में प्रत्यक्ष अभिदान तथा सशर्त ऋण आदि के रूप में सहायता करती है। यह मुख्य रूप से बिजली, इंजीनियरिंग, मत्स्यपालन, कम्प्यूटर आदि के लिए उद्यम पूंजी उपलब्ध कराती है।

4.3.3 उद्यम पूंजी के लिए मार्गदर्शिकाएं

भारत में उद्यम पूंजी कोष कंपनियों की स्थापना एवं संचालन के लिए 18 नवंबर, 1998 को भारत सरकार ने मार्गदर्शिकाओं का निर्गमन किया है ये निम्नलिखित हैं–

1. **स्थापना** : अखिल भारतीय लोक वित्तीय संस्थान, अनुसूचित बैंक तथा भारत में कार्यरत विदेशी बैंक एवं उनके सहायक रिजर्व बैंक/भारत सरकार की पूर्व अनुमति से उद्यम पूंजी कोष/कंपनियों की स्थापना कर सकते हैं।
2. **आकार** : उद्यम पूंजी कोष/कंपनियों का न्यूनतम आकार 10 करोड़ ₹ होगा। यदि वह जनता से कोषों को उगाहना चाहती है तो उसके प्रति प्रवर्तकों को कम से कम 40 प्रतिशत अनुदान करना होगा।
3. **ऋण–समता अनुपात** : न्यूनतम ऋण–समता अनुपात 1.15 होगा।
4. **विदेशी समता** : उद्यम पूंजी कोषों/क म्पनियों में अधिकतम विदेशी समता कुल समता की 25 प्रतिशत तक होगी। अनिवासी भारतीय को 74 प्रतिशत तक अनुदान करने की अनुमति होगी।
5. **सहायता** : इन उद्यम पूंजी कोषों/कम्पनियों द्वारा वित्तीय सहायता मुख्य रूप में उन नवीन उद्यमों के उद्यमियों को दी जायेगी जिनमें आधुनिक प्रौद्योगिकी के अपनाये जाने के कारण अधिक जोखिम विद्यमान है।

6. **विनियोग की सीमा** : प्रति इकाई अधिकतम विनियोजन की सीमा ₹10 करोड़ निर्धारित की गई है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

3. उद्यम पूंजी अवधारणा का उद्‌गम किस देश में हुआ था?
   (क) जर्मनी (ख) फ्रांस
   (ग) नार्वे (घ) अमेरिका
4. भारत में उद्यम पूंजी कोष कम्पनियों की स्थापना एवं संचालन के लिये मार्गदर्शिकाओं का निर्गमन किस वर्ष किया गया?
   (क) 1991 (ख) 1968
   (ग) 1998 (घ) 1994

4.4 लागत एवं मूल्य निर्धारण

'लागत' व्यय की वह राशि है जो एक निर्दिष्ट वस्तु पर किया गया हो अथवा आरोपित हो। लागत एक विस्तृत धारणा वाला शब्द है, जिसका प्रयोग इसके उद्देश्यों एवं दशाओं के संदर्भ में किया जाता है। साधारणतया लागत शब्द का अर्थ किसी वस्तु पर किए गए समस्त व्ययों के योग से होता है। किसी निर्दिष्ट वस्तु पर किया गया व्यय अथवा आरोपित व्यय (वास्तविक अथवा वैचारिक) लागत कहलाता है। "वैचारिक व्यय वह व्यय है जो किया गया माना जाता है परंतु वास्तव में भुगतान नहीं किया जाता है; जैसे स्वामित्व युक्त कारखाना भवन का किराया तथा स्वयं की पूंजी पर ब्याज। इस प्रकार किसी वस्तु को पाने के लिए किया गया त्याग जिसको मुद्रा में मापा जाता है और जो किसी विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया गया है, लागत कहलाता है।"

लागतों का उनकी विशेषताओं के अनुसार समूहीकरण करने की प्रक्रिया को लागत वर्गीकरण कहा जाता है।

लागत वर्गीकरण निम्नलिखित आधार पर किया जाता है–

कार्यों के आधार पर (On the Basis of Functions)

कार्यों के आधार पर लागत वर्गीकरण निम्न तरह से किया जाता है–

1. **उत्पादन लागत या कारखाना लागत** (Production Cost or Factory Cost)– सामग्री, श्रम व सेवाओं की आपूर्ति से लेकर उत्पाद की प्राथमिक पैकिंग तक की लागत *उत्पादन लागत* या *निर्माणी लागत* कहलाती है। दूसरे शब्दों में, मूल लागत में कारखाने के समस्त खर्चों (कारखाने का किराया, मशीन का ह्रास व मरम्मत, गैस, बिजली, पानी, ईंधन, शक्ति, स्टोर में खर्च, स्टेशनरी, यंत्रों की सफाई व तेल का व्यय, अप्रत्यक्ष सामग्री तथा अप्रत्यक्ष श्रम पर किया गया व्यय आदि) को जोड़ने से जो लागत प्राप्त होती है, उसे *कारखाना लागत* कहा जाता है। कारखाना लागत में यदि चालू कार्य का प्रारंभिक शेष हो तो उसको जोड़ दिया जाता है और चालू कार्य के अंतिम शेष तथा स्क्रेप (अवशेष) के मूल्य को घटा दिया जाता है।

टिप्पणी

2. **प्रशासनिक लागत** (Administrative Cost)—एक व्यवसाय की नीति–निर्धारण, संगठन, निर्देशन तथा संक्रियाओं के नियंत्रण की लागत (जैसे कार्यालय का किराया, मरम्मत, बीमा, प्रबंधक का वेतन, लिपिकों का वेतन, कार्यालय में प्रयुक्त बिजली, पानी, टेलीफोन व स्टेशनरी व्यय, अंकेक्षण शुल्क इत्यादि) *प्रशासनिक/कार्यालय लागत* कहलाती है। इसमें कार्यालय तथा प्रशासन से संबंधित सभी व्यय शामिल होते हैं।

   प्रशासनिक लागत = कारखाना लागत + प्रशासनिक/कार्यालय व्यय

3. **बिक्री लागत** (Selling Cost)—उत्पाद के लिए मांग बढ़ाने अथवा बेचने के लिए बाजार तलाश करने की कोशिश करने तथा आदेश प्राप्त करने की लागत *बिक्री लागत* कहलाती है।

   बिक्री लागत = प्रशासनिक लागत + बिक्री व्यय

4. **वितरण लागत** (Distribution Cost)—इसमें बिक्री के बाद ग्राहक तक माल पहुंचाने के समस्त व्यय– जैसे ट्रक/रेलवे किराया, गोदाम का किराया तथा ग्राहकों द्वारा वापस किए गए खाली डिब्बों/पैकेज को पुनः इस्तेमाल करने योग्य बनाने के खर्चे शामिल होते हैं। यह संवेष्ठित माल को प्रेषण योग्य बनाने की लागत है।

प्रकृति के आधार पर (On the Basis of Nature)

प्रकृति के आधार पर लागत वर्गीकरण निम्न तरह से किया गया है–

1. **स्थायी लागत** (Fixed Cost)—यह वह लागत है जिस पर उत्पादन की मात्रा में कमी या वृद्धि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इसका संबंध अवधि के व्यतीत होने से होता है। इसलिए इसको अवधि लागत भी कहते हैं; जैसे कारखाने का किराया, कार्यालय कर्मचारियों का वेतन, प्रबंधकों का वेतन, भवन का किराया, यंत्र या भवन का बीमा आदि। स्थायी लागत प्रति इकाई उत्पादन के बढ़ने या घटने पर परिवर्तित होती है; जैसे उत्पादन के बढ़ने पर प्रति इकाई स्थायी लागत कम हो जाती है तथा उत्पादन घटने पर प्रति इकाई स्थायी लागत अधिक हो जाती है।

2. **परिवर्तनशील लागत** (Variable Cost)—वह लागत जो उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन के साथ–साथ परिवर्तित होती रहती है, परिवर्तनशील लागत कहलाती है; जैसे कोयला, ईंधन, पानी, उत्पादन कर, यंत्र का ह्रास व मरम्मत, विक्रेताओं का कमीशन, पैकिंग व्यय आदि। इन लागतों को प्रत्यक्ष लागत माना जाता है। इसमें उत्पादन के घटने या बढ़ने पर प्रति इकाई परिवर्तनशील लागत में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

3. **अर्द्ध–परिवर्तनशील लागत** (Semi-Variable Cost)—ऐसी लागतें जिनका कुछ भाग परिवर्तनशील तथा कुछ भाग स्थिर रहता है अर्थात उत्पादन में परिवर्तन होने पर लागत में कमी या वृद्धि तो होती है लेकिन यह कमी या वृद्धि उत्पादन के परिवर्तन के अनुपात में नहीं होती है, *अर्द्ध–परिवर्तनशील लागतें* कहलाती हैं। उदाहरण के लिए टेलीफोन का व्यय, यात्रा संबंधी व्यय, स्टेशनरी या बिजली का व्यय, मरम्मत व अनुरक्षण का व्यय तथा पर्यवेक्षकों का वेतन आदि।

टिप्पणी

सामान्यता के आधार पर (On the Basis of Normality)

सामान्यता के आधार पर लागत वर्गीकरण निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत उद्धृत हैं–

1. **सामान्य लागत** (Normal Cost)–किसी वस्तु के उत्पादन में *सामान्य अवस्था* में आने/होने वाली लागत *सामान्य लागत* कहलाती है।
2. **असामान्य लागत** (Abnormal Cost)–किसी वस्तु के उत्पादन पर सामान्यतः जो लागत आती है, यदि उससे अधिक लागत आई है तो इसको *असामान्य लागत* कहा जाएगा। किसी वस्तु के उत्पादन पर आई वास्तविक लागत में से सामान्य लागत घटाने पर असामान्य लागत निकल आती है।

तत्वों के आधार पर (On the Basis of Elements)

तत्वों के आधार पर लागत का वर्गीकरण निम्नवत हैं–

1. **प्रत्यक्ष लागत** (Direct Cost)–वह लागत जो किसी वस्तु के उत्पादन या सेवा से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित होती है, *प्रत्यक्ष लागत* कहलाती है; जैसे प्रत्यक्ष सामग्री, प्रत्यक्ष श्रम, प्रत्यक्ष व्यय आदि। इस लागत को मूल लागत के नाम से भी जाना जाता है।
2. **अप्रत्यक्ष लागत** (Indirect Cost)–वह लागत जो किसी वस्तु विशेष या सेवा से संबंधित न होकर कई वस्तुओं या सेवाओं से संबंधित होती है, *अप्रत्यक्ष लागत* कहलाती है। इस लागत का किसी वस्तु के उत्पादन से सीधा संबंध नहीं होता है।

नियंत्रण के आधार पर (On the Basis of Controllability)

नियंत्रण के आधार पर लागत को निम्न तरह से वर्गीकृत किया गया है–

1. **नियंत्रणीय लागत** (Controllable Cost)–वह लागतें जिन पर नियंत्रण किया जा सकता है अर्थात जिनको कम किया जा सकता है, *नियंत्रणीय लागत* कहलाती हैं; जैसे सामग्री, श्रम तथा बिजली आदि पर होने वाले व्यय। ये लागतें अधिकांशतया परिवर्तनशील प्रकृति की होती हैं तथा विभागीय प्रबंधकों के निर्णयों/कार्यों द्वारा कम की जा सकती हैं।
2. **अनियंत्रणीय लागत** (Uncontrollable Cost)–अनियंत्रणीय लागतें वे लागतें हैं जिनको विभागीय प्रबंधकों के निर्णयों या कार्यों द्वारा प्रभावित नहीं किया जा सकता है। ये लागतें स्थायी प्रकृति की होती हैं जिनके नियंत्रण का क्षेत्र उच्च प्रबंधकों तक सीमित होता है।

प्रबंधकीय महत्व के आधार पर (On the Basis of Managerial Importance)

प्रबंधकीय महत्व के आधार पर लागत को निम्न रूप वर्गीकृत किया गया है–

1. **अवसर लागत** (Opportunity Cost)–किसी संपत्ति का वैकल्पिक उपयोग करने पर उससे पहले होने वाली आय को त्यागना ही *अवसर लागत* कहलाती है। यदि व्यवसाय के एक हजार रुपए प्रति माह किराया प्राप्त होने वाले किसी भवन में कोई मशीन या प्लांट लगा दिया जाए, तो एक हजार रुपए प्रतिमाह की आय को त्यागना पड़ेगा। इस आय का ध्यान मशीन या प्लांट से होने वाले लाभ

टिप्पणी

की गणना करते समय रखा जाएगा। अतः आय या लाभ के त्याग की लागत ही *अवसर लागत* कहलाती है।

2. **प्रतिस्थापन लागत** (Replacement Cost)—पहले क्रय की गई किसी वस्तु या संपत्ति को यदि बदला जाता है तो जिस लागत पर वह बाजार में उपलब्ध है, वह उस संपत्ति की *प्रतिस्थापन लागत* कहलाती है। यदि एक मशीन जो पहले ₹ 5000 में क्रय की गई थी, उसको अब बाजार से क्रय करके प्रतिस्थापित करना है लेकिन उस मशीन का वर्तमान बाजार मूल्य ₹ 6500 है तो प्रतिस्थापन लागत ₹ 6500 मानी जाएगी।

3. **अनुसंधान लागत** (Research Cost)—नवीनतम एवं उन्नत किस्म के उत्पादों को खोजने, सामग्री का नवीनतम प्रयोग करने या नवीनतम तकनीक एवं पद्धतियों का अविष्कार करने की लागत ही *अनुसंधान लागत* कहलाती है।

4. **विकास लागत** (Development Cost)—नवीनतम पद्धतियों/उत्पादों/तकनीकों के निर्णयों को कार्यान्वित करने से लेकर वास्तविक उत्पादन की शुरुआत करने तक की लागत *विकास लागत* कहलाती है। यह लागत अनुसंधान तथा वास्तविक उत्पादन के बीच की कड़ी है।

5. **सीमांत लागत** (Marginal Cost)—उत्पादन की एक इकाई के बढ़ने पर कुल उत्पादित इकाइयों की लागत में जो परिवर्तन होता है, वह *सीमांत लागत* कहलाता है। सीमांत लागत केवल परिवर्तनशील लागत होती है। स्थायी लागत को इसमें शामिल नहीं किया जाता है। यदि 500 उत्पादित इकाइयों की लागत ₹ 5000 है और एक इकाई की वृद्धि होने से अर्थात 501 इकाइयों की लागत ₹ 5050 हो जाती है तो 5050–5000 = ₹ 50 सीमांत लागत कहलाएगी।

6. **मानक या प्रमापित लागत** (Standard Cost)—मानक लागत या प्रमापित लागत पूर्व निर्धारित लागत है जो वैज्ञानिक व तकनीकी ढंग से निर्धारित की जाती है। कार्य संपन्न हो जाने पर वास्तविक लागत की मानक लागत से तुलना की जाती है और अंतर का विश्लेषण कर लागत पर नियंत्रण किया जाता है। इस प्रकार इसे विचरण–विश्लेषण द्वारा मूल्यों के निर्धारण एवं परिव्यय के नियंत्रण हेतु एक आधार के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

7. **भेदात्मक लागत** (Differential Cost)—उत्पादन की पद्धतियों, तकनीकों एवं क्रियाओं के स्तर में परिवर्तन के कारण लागतों में होने वाले परिवर्तन को *भेदात्मक लागत* कहा जाता है। यह लागत दो विकल्पों की लागत का अंतर होती है। परिवर्तन होने के कारण यदि लागत बढ़ती है, तो इसे *वृद्धिशील लागत* (Incremental Cost) और यदि लागत घटती है तो इसे *ह्रासशील लागत* (Decremental Cost) कहते हैं। इंग्लैंड में इस लागत को *भेदात्मक लागत* तथा अमेरिका में इसे *वृद्धिशील लागत* कहा जाता है।

8. **जेब से बाहर की लागत** (Out of Pocket Cost)—वह लागत जिसका भविष्य में भुगतान तो किया जाता है लेकिन बाहर वालों को इसका भुगतान नहीं किया जाता है, *जेब से बाहर की लागत* कहलाती है; जैसे प्लांट या मशीनरी पर ह्रास। यह लागत व्यावसायिक मंदी के समय बिक्री मूल्य के निर्धारण में सहायक होती है।

टिप्पणी

9. **कामबंद लागत** (Shutdown Cost)—जब कुछ कारणों (जैसे कच्ची सामग्री समाप्त होने या श्रमिकों की हड़ताल) से प्लांट को अल्प काल के लिए बंद कर दिया जाता है, तो कुछ लागतें ऐसी होती हैं जिन पर प्लांट के बंद होने से कोई प्रभाव नहीं पड़ता है; जैसे—भवन का किराया, दर, ह्रास व अनुरक्षण व्यय आदि। ऐसी लागतें *कामबंद लागतें* कहलाती हैं।

10. **डूबत लागत** (Sunk Cost)—प्लांट के पूर्ण रूप से अप्रचलित हो जाने के कारण वसूल न होने वाली राशि को *डूबत लागत* कहते हैं। यदि एक प्लांट 3 वर्ष पहले ₹ 60,000 में क्रय किया गया हो और इस समय उसका अपलिखित पुस्तक मूल्य ₹ 30,000 हो। लेकिन यह प्लांट पूर्ण रूप से अप्रचलित हो जाए और इसको ₹ 5000 में बेच दिया जाए तो 30,000—5000 = ₹ 25000 *डूबत लागत होगी।*

11. **प्रासंगिक लागत** (Relevant Cost)—वे लागतें जिनका निर्णय लेने से संबंध होता है तथा निर्णय पर अपना प्रभाव रखती हैं, *प्रासंगिक लागतें* कहलाती हैं। निर्णय लेते समय प्रबंध विभिन्न विकल्पों पर विचार करता है तथा अप्रासंगिक लागतों या डूबी लागतों पर ध्यान नहीं देता है। केवल प्रासंगिक लागतों पर ही ध्यान दिया जाता है।

12. **आरोपित लागत** (Imputed Cost)—वह परिकल्पित लागत जिसका उपयोग लागत की तुलना एवं विश्लेषण करने में होता है तथा जो अदा नहीं की जाती है, *आरोपित लागत* कहलाती है। यदि कोई व्यवसायी अपने भवन का किराया अपने उत्पाद की लागत में इसलिए शामिल करता है कि वह अपने उत्पाद की लागत की अन्य किराए पर चल रहे करखानों की उत्पादन लागतों से तुलना कर सके तो उसके द्वारा लागत में शामिल किराया *आरोपित लागत* है। स्वयं की पूंजी पर ब्याज को भी अगर लागत में शामिल किया जाता है, तो यह भी आरोपित लागत कहलाएगी। इस प्रकार की लागतें निर्णय लेने में बहुत उपयोगी सिद्ध होती हैं।

विभिन्न प्रकार के उद्योगों में कुल लागत ज्ञात करने के लिए विभिन्न पद्धतियां प्रयोग में लायी जाती हैं क्योंकि एक उद्योग में यदि वस्तु का उत्पादन अनेक क्रियाओं में होता है, तो दूसरे उद्योग में एक ही प्रकार की वस्तु का उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है। किसी उद्योग में सेवा का उत्पादन होता है, तो किसी में वस्तुओं का निर्माण होता है। इस प्रकार लागत को जानने के लिए विभिन्न उद्योगों में भिन्न—भिन्न पद्धतियां अपनायी जाती हैं जो इस प्रकार हो सकती हैं—

1. **एकांकी अथवा उत्पादन लागत पद्धति** (Single/Output Costing Method)—इसको इकाई लागत पद्धति (Unit Costing Method) भी कहा जाता है। जिन उद्योगों में एक विशेष प्रकार की वस्तु की समान इकाइयों का बड़े पैमाने पर निरंतर उत्पादन होता रहता है, वहां उस वस्तु की कुल लागत या प्रति इकाई लागत जानने के लिए इकाई लागत पद्धति का प्रयोग किया जाता है; जैसे कोयला खान, सीमेंट, इस्पात, वस्त्र उद्योग (प्रति मीटर इकाई लागत), शराब की भट्टियां (प्रति बैरल), रसायन उद्योग (तरल द्रव्य—प्रति लीटर लागत इकाई), ईंट उद्योग तथा कागज उद्योग आदि। किसी कारखाने में यदि ऐसी वस्तु का निर्माण होता है जिनकी बिक्री संख्या में हो, तो वहां लागत की इकाई प्रति सैकड़ा, प्रति हजार, प्रति ग्रुस, प्रति दर्जन होती है।

टिप्पणी

2. **ठेका/उपकार्य लागत पद्धति** (Contract/Job Costing Method)—ठेका पद्धति का प्रयोग उन उद्योगों में किया जाता है, जहां कोई कार्य लंबे समय तक चलता रहता है; जैसे भवन निर्माण, सड़क निर्माण, पुल निर्माण, बांध निर्माण, जलयान निर्माण, प्लांट निर्माण आदि के कार्य ठेके पर कार्यस्थल पर ही संपन्न किए जाते हैं। यदि कोई कार्य एक निश्चित मूल्य के बदले कारखाने के अंदर ही किया जाए, तो यह पद्धति उपकार्य/उपक्रम लागत (Job Costing) पद्धति कहलाती है। जैसे—मुद्रण करने वाले व्यक्ति का एक निश्चित मूल्य पर छपाई करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना। ठेका तथा उपकार्य लागत को सावधि लागत (Terminal Costing) पद्धति के नाम से भी पुकारा जाता है, क्योंकि इसमें कार्य को एक निश्चित समय में पूरा करने का वचन दिया जाता है।

3. **परिचालन लागत पद्धति** (Operating Costing Method)—जनोपयोगी सेवाएं प्रदान करने वाले उद्योग सेवाओं की लागत ज्ञात करने के लिए इस पद्धति का प्रयोग करते हैं; जैसे रेलवे, मोटर यातायात, हवाई जहाज सेवा, विद्युत गैस, जलापूर्ती, अस्पताल, लाइब्रेरी, केंटीन आदि। लागत की इकाई प्रति टन किलोमीटर, प्रति यात्री किलोमीटर, प्रति यूनिट बिजली तथा प्रति हजार लीटर पानी हो सकती है।

4. **प्रक्रिया लागत पद्धति** (Process Costing Method)—जिन उद्योगों में किसी वस्तु का निर्माण करने के लिए कई प्रक्रियाओं से गुजरना होता है, वहां प्रक्रिया लागत पद्धति अपनाई जाती है। एक प्रक्रिया द्वारा निर्मित माल दूसरी प्रक्रिया के लिए कच्चा माल होता है। वस्तु का विक्रय निर्माण कार्य पूर्ण होने पर होता है लेकिन निर्माणाधीन अवस्था में भी एक प्रक्रिया से प्राप्त उत्पादित वस्तु को बेचा जा सकता है। साबुन, तेल, घी, कपड़ा तथा रसायन उद्योग आदि में इस पद्धति का प्रयोग किया जाता है।

5. **विभागीय लागत पद्धति** (Departmental Costing Method)—जब किसी उद्योग में कई वस्तुओं का निर्माण होता है तो प्रत्येक विभाग को अपनी अलग–अलग लागत निकालनी होती है। इसके लिए व्यवसाय के कुल खर्चों को उचित आधार पर विभिन्न विभागों में बांट दिया जाता है तथा प्रत्येक विभाग में वस्तु की प्रति इकाई लागत निकाल ली जाती है; जैसे फर्नीचर के कारखाने में मेज, कुर्सी, पलंग, अलमारी आदि की लागत निकालना।

6. **समूह लागत पद्धति** (Batch Costing Method)—जिन उद्योगों में किसी कार्य को कराने के लिए विभिन्न श्रमिकों को समूहों में बांट दिया जाता है तथा प्रत्येक समूह की अलग–अलग लागत ज्ञात की जाती है, वहां *समूह लागत पद्धति* का प्रयोग किया जाता है; जैसे दवाई उद्योग, चॉकलेट, टॉफी, बिस्कुट उद्योग आदि। यह पद्धति विभागीय लागत पद्धति के समान है।

7. **लागत योग पद्धति** (Cost Plus Method)—जिन कार्यों में लागत का अनुमान पहले से करना कठिन होता है, वहां कार्य के संबंध में ठेकेदार से यह तय कर लिया जाता है कि उनको उत्पादन की लागत के अतिरिक्त उत्पादन का एक निश्चित प्रतिशत लाभ के रूप में दिया जाएगा। इस पद्धति का दोष यह है कि

इसमें ठेकेदार अधिक लाभ कमाने के लिए उत्पादन लागत में वृद्धि दिखा सकता है।

टिप्पणी

8. **समान लागत पद्धति** (Uniform Costing Method)—एक जैसा उद्योग चलाने वाले विभिन्न उत्पादक/व्यवसायी जब यह तय कर लेते हैं कि वे सभी लागत ज्ञात करने के लिए किसी एक ही विधि या रीति का प्रयोग करेंगे, तो यह समान लागत पद्धति कहलाती है। ऐसा करके उत्पादक/व्यवसायी आपस में मिलकर अपने अनुभवों का लाभ उठाते हैं।
9. **लक्ष्य लागत पद्धति** (Target Costing Method)—इस पद्धति के अंतर्गत बड़े–बड़े, महत्वपूर्ण कार्यों की लागतों के लक्ष्य निर्धारित कर उनमें कुछ लाभ जोड़कर ठेकेदार को कार्य करने के लिए दिया जाता है। लक्ष्य लागत से कम लागत पर कार्य पूरा करने वाले ठेकेदार को बचाई गई धनराशि का एक भाग बोनस के रूप में दिया जाता है।
10. **बहुसंख्यक लागत पद्धति** (Multiple Costing Method)—जहां अनेक पुर्जों का निर्माण करके कोई एक वस्तु तैयार की जाती है, वहां इस पद्धति का प्रयोग किया जाता है। इस पद्धति के अंतर्गत प्रत्येक पुर्जों की अलग–अलग लागत ज्ञात की जाती है, और वस्तु की कुल लागत ज्ञात करने के लिए सभी को जोड़ दिया जाता है। मोटर कार, स्कूटर, साइकिल, रेडियो, टाइपराइटर, बिजली का पंखा आदि के निर्माण में इस पद्धति का प्रयोग किया जाता है।

लागत ज्ञात करने की तकनीकें (Techniques of Finding Cost)

एक उत्पादित/निर्मित वस्तु या सेवा की लागत ज्ञात करने के लिए प्रायः निम्नलिखित महत्वपूर्ण तकनीकों का प्रयोग किया जाता है–

1. **ऐतिहासिक लागत तकनीक** (Historical Cost Technique)—इस तकनीक द्वारा किसी वस्तु के उत्पादन पर वास्तव में कुल कितना खर्च हुआ, इसका पता लगाया जाता है तथा इन वास्तविक खर्चों के आधार पर ही लागत को निकाला जाता है। यदि किसी वस्तु का निविदा मूल्य निर्धारित करना है, तो पिछले वर्षों की वास्तविक लागतों को ही आधार बनाकर निविदा मूल्य का निर्धारण किया जाता है। यह रीति प्राचीनकाल से चली आ रही है। इसलिए इसको परंपरागत लागत रीति के नाम से भी जाना जाता है।
2. **प्रमाप लागत तकनीक** (Standard Costing Technique)—इस तकनीक द्वारा किसी वस्तु का उत्पादन करने से पूर्व अथवा सेवा प्रदान करने से पूर्व उस वस्तु अथवा सेवा की लागत का पूर्वानुमान लगाया जाता है। इसके बाद वस्तु या सेवा की वास्तविक लागतों को रिकॉर्ड किया जाता है। फिर वास्तविक लागतों की तुलना प्रमापित लागतों से की जाती है तथा अंतर की मात्रा एवं कारणों का पता लगाया जाता है। भविष्य में इन कारणों को दूर करके (समायोजनों के आधार पर) प्रमाप लागतें निर्धारित की जाती हैं, जिससे व्यावसायिक कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।
3. **सीमांत लागत तकनीक** (Marginal Costing Technique)—इस तकनीक के अंतर्गत केवल उत्पादन कार्य के लिए किए गए खर्चे ही जोड़े जाते हैं। ये खर्चे

टिप्पणी

उत्पादन से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित होते हैं तथा वस्तु की मात्रा के अनुपात में परिवर्तित होते रहते हैं; जैसे–कच्चा माल, मजदूरी तथा अन्य व्यय। स्थिर/स्थायी खर्चों पर इस पद्धति में कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। इस प्रकार, समस्त परिवर्तनशील व्ययों के आधार पर जो लागत ज्ञात की जाती है, वह सीमांत लागत कहलाती है। उत्पादन की इकाइयों में अस्थिरता के कारण इस पद्धति का प्रयोग किया जाता है।

4. **निरंतर लागत तकनीक** (Continuous Costing Technique)–इस तकनीक को उस समय प्रयोग किया जाता है, जब उत्पादन कार्य प्रगति पर होता है और वस्तु या सेवा के उत्पादन में होने वाले व्ययों का लेखांकन भी कार्य की प्रगति के दौरान चलता रहता है। इस तकनीक द्वारा उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर लागत की जानकारी होती रहती है। इस तकनीक में अपव्यय होता ही नहीं और यदि होता भी है, तो उसी समय उसका निदान कर दिया जाता है। लागत निर्धारण की यह तकनीक सर्वोत्तम मानी जाती है।

सामग्री मुद्दों के मूल्य निर्धारण की विधियां

स्टोर में मौजूद सामग्री को जब निर्गमित किया जाता है तो पहले उसका मूल्यांकन किया जाता है। मूल्यांकन के लिए निम्नलिखित विधियां प्रयोग में लाई जाती हैं–

1. **पहले आना पहले जाना पद्धति** (First in First Out Method)–इस विधि के अंतर्गत जो सामग्री पहले क्रय की जाती है, उसको उसी क्रय मूल्य पर पहले निर्गमित किया जाता है, तथा जो सामग्री बाद में खरीदी जाती है उसे बाद में उसी मूल्य पर निर्गमित किया जाता है। यह विधि बहुत आसान है तथा कम समय के लिए स्टोर में रखी जाने वाली वस्तुओं के लिए अत्यंत उपयोगी है। यह विधि वहां पर अपनाई जाती है जहां सामग्री का मूल्य निरंतर कम होता रहता है।

उदाहरण (Illustration) : 1

एक Manufacturing Company की अप्रैल 2006 से संबंधित सूचनाएं इस प्रकार हैं–

2006				**₹**
Ist April	Stock	400	units @ ₹ 70	28000
April 05	Sales/issue	200	units	
April 08	Purchase	1100	units @ ₹ 80	88000
April 14	Sales	800	units	
April 20	Purchase	300	units @ ₹ 90	27000
April 24	Sales	600	units	
April 29	Purchase	200	units @ ₹ 100	20000

Compute the– (i) Units and Value of closing stock
(ii) Cost of Goods Sold; and
(iii) Profit or Loss if Total Sales are ₹ 1,60,000.

टिप्पणी

हल (Solution) :

Store Ledger A/c – FIFO METHOD

Date	Purchase			Sales/Issue			Balance		
2006	Units	Rate	Amount	Units	Rate	Amount	Units	Rate ₹	Amount ₹
April 01	—	—	—	—	—	—	400	70	28000
April 05				200	70.00	14000	200	70	14000
April 08	1100	80	88000	—	—	—	1100	80	88000
April 14	—	—	—	200 } 800	70	14000			
			600	80	48000	500	80	40000	
April 20	300	90	27000	—	—	—	300	90	27000
April 24	—	—	—	500 } 600	80	40000			
			100	90		9000	200	90	18000
April 29	200	100	20000	—	—	—	200	100	20000
					400		38000		

(i) Units and Value of Closing Stock–

200 units @ ₹ 190	₹ 18,000
200 units @ ₹ 100	₹ 20,000
400 units	₹ 38,000

(ii) Cost of Goods Sold

Opening Stock of 400 units @ Rs. 70			28,000
Add– Purchase			
1100 units @ ₹ 80	=	88,000	
300 units @ ₹ 90	=	27,000	
200 units @ ₹ 100	=	20,000	1,35,000
Less– Closing Stock			1,63,000
200 units @ ₹ 90	=	18,000	
200 units @ ₹ 100	=	20,000	38,000
Cost of goods Sold	=		1,25,000

(iii) Project–

Sales	=	₹ 1,60,000
(–) Cost of goods sold	=	₹ 1,25,000
Amount of profit	=	₹ 35,000

2. **बाद में आना पहले जाना** (Last in First Out Method) : इस विधि के अंतर्गत जो सामग्री बाद में खरीदी जाती है, उसे पहले (बाद वाले मूल्य पर) निर्गमित किया जाता है। इस विधि में सामग्री की लागत को चालू मूल्य पर आंका जाता है। इसलिए यह विधि बढ़ती हुई कीमतों के लिए अत्यंत उपयोगी होती है। लेकिन चूंकि इस विधि में अंतिम स्टॉक का मूल्यांकन चालू मूल्यों पर नहीं होता है, इसलिए इसमें शुद्ध लाभ या हानि का पता नहीं चल पाता है।

टिप्पणी

उदाहरण (Illustration) : 2

निम्नलिखित सूचनाओं के आधार पर अंतिम रहतिये की गणना कीजिए–

2007				₹
Jan. 01	Stock	1000	units @ ₹ 7.00	7000
Jan. 05	Sales	500	units	
Jan. 10	Purchases	5500	units @ ₹ 8.00	44000
Jan. 12	Sales	1000	units	
Jan. 15	Sales	2000	units	
Jan. 20	Purchases	1500	units @ ₹ 9.00	13500
Jan. 25	Sales	2500	units	
Jan. 31	Purchases	2000	units @ ₹ 10.00	20000

हल (Solution) :

Under Perpetual Inventory System: Store Ledger A/c

Date	**Purchase**			**Sales**			**Balance**		
2007	**Units**	**Rate**	**Amount**	**Units**	**Rate**	**Amount**	**Units**	**Rate**	**Amount**
Jan. 01	—	—	—	—	—	—	1000	7.00	7000
Jan. 05				500	7.00	3500	500	7.00	3500
Jan. 10	5500	8.00	44000	—	—	—	5500	8.00	44000
Jan. 12	—	—	—	1000	8.00	8000	500	7.00	3500
							4500	8	36000
Jan. 15	—	—	—	2000	8.00	16000	500	7.00	3500
							2500	8.00	20000
Jan. 20	1500	9.00	13500	—	—	—	500	7.00	3500
							2500	8.00	20000
							1500	9.00	13500
Jan. 25	—	—	—	1500 } 2500	9.00	13500	500	7.00	3500
				1000 }	8.00	8000	1500	8.00	12000
Jan. 31	2000	10	20000	—	—	—	500	7.00	3500
							1500	8.00	12000
							2000	10	20000
							4000		35500

Under Periodic System

Closing Stock = Opening Stock + Purchases – Sales

= 1000 + 5500 + 1500 + 2000 – (500 + 1100 + 2000 + 2500)

= 10000 – 6000

= 4000 Units

Valuation of Closing Inventory–

1000 units @ ₹ 7.00 from opening stock	=	7000
3000 units @ ₹ 8.00 from the date of Jan 10	=	24000
Stock on Jan 31st, 2007	=	31000

टिप्पणी

नोट : दोनों पद्धतियों में अंतिम रहतिये का मूल्य एक समान आना आवश्यक नहीं है।

3. **महंगा आना पहले जाना पद्धति** (Highest in First out Method)–इस विधि के अंतर्गत उस सामग्री का निर्गमन पहले किया जाता है जो सबसे महंगी क्रय की गई होती है। यह विधि अधिक कठिन सिद्ध होती है, इसलिए इसका प्रचलन सिर्फ नाम मात्रा के लिए है।

उदाहरण (Illustration) : 3

निम्न सूचनाओं की सहायता से स्वंफध का मूल्यांकन कीजिए

2007	Units Purchases	2007	Units Sold
Jan 01	600 @ ₹ 15	Jan. 15	1200
Jan. 10	2400 @ ₹ 13	Jan. 25	3000
Jan 20	1800 @ ₹ 16	Jan. 31	1200
Jan. 30	1200 @ ₹ 18		

हल (Solution) :

Under Periodic System—

Closing Balance of Units = Purchases – Sales
= 600 + 2400+1800 + 1200 – (1200 + 3000 + 1200)
= 6000 – 5400
= 600 units

Value of Closing Inventory = 600 units @ ₹ 13
= ₹ 7800

Under Perpetual Inventory System
Store Ledger A/c–HIFO Method

Date	Purchase			Sales			Balance		
2007	Units	Rate	Amount	Units	Rate	Amount	Units	Rate	Amount
Jan. 01	600	15.00	9000	—	—	—	600	15.00	9000
Jan. 10	2400	13.00	31200	—	—	—	600	15.00	9000
							2400	13.00	31200
Jan. 15	—	—	—	600	15.00	9000	1800		
				600 } 1200	13.00	7800		13.00	23400
Jan. 20	1800	16.00	28800	—	—	—	1800	13.00	23400
							1800	16.00	28800
Jan. 25	—	—	—	1800	16.00	28800			
				1200 } 3000	13.00	15600	600	13.00	7800
Jan. 30	1200	18.00	21600	—	—	—	600	13.00	7800
							1200	18.00	21600
Jan. 31	—	—	—	1200	18.00	21600	600	13.00	7800
									600 units @ ₹ 13.00 = 7800

टिप्पणी

4. आधार स्टॉक मूल्य विधि (Base Stock Price Method)– इस विधि के अंतर्गत हमेशा एक न्यूनतम स्टॉक रखा जाता है, और इसका मूल्यांकन प्रारंभ में प्राप्त सामग्री के मूल्य पर किया जाता है। इसके अतिरिक्त जो भी सामग्री प्राप्त होती है, उसका मूल्यांकन LIFO पद्धति के आधार पर किया जाता है।

उदाहरण (Illustration) : 4

एक कंपनी के स्टोर से निम्नलिखित सूचनाएं उपलब्ध हैं–

2007

Purchases		**Issues (Sales)**	
April 01	Balance 100 units @ ₹ 5	April 10	140 units
April 06	Purchase 80 units @ ₹ 4	April 12	20 units
April 08	60 units @ ₹ 5	April 23	40 units
April 15	40 units @ ₹ 6	April 24	20 units
April 27	80 units @ ₹ 4		

April 30 को 15 इकाइयां कम पाई गईं। माह के आखिर में रहतिये का मूल्यांकन कीजिए, यदि आधार स्टॉक (Base Stock) 80 इकाइयां हैं।

हल (Solution) : Under Perpetual System

Store Ledger A/c

Base Stock = 80 units

Date	**Purchase**			**Sales**			**Balance**		
2007	**Units**	**Rate**	**Amount**	**Units**	**Rate**	**Amount**	**Units**	**Rate**	**Amount**
April 01	—	—	—	—	—	—	100	5	500
April 06	80	4	320	—	—	—	100	5	500
							80	4	320
April 08	60	5	300	—	—	—	100	5	500
							80	4	320
							60	5	300
April 10	—	—	—	60 } 140	5	300			
				80	4	320	100	5	500
April 12	—	—	—	20	5	100	80	5	400
April 15	40	6	240	—	—	—	80	5	400
							40	6	240
April 23	—	—	—	40	6	240	80	5	400
April 24	—	—	—	—	—	—	80	5	400
April 27	80	4	320	20	4	80	80	5	400
April 30	—	—	—	Shortage of 15 Units			60	4	240
							80	5	400
							60-15	4	240-60
							=45		180
	Balance						125		580

टिप्पणी

नोट : चूंकि ठेंम Stock को निर्गमित नहीं किया जा सकता है, इसलिए 20 इकाइयों का निर्गमन इयी इकाइयां आने पर 27 अप्रैल को हुआ है।

Closing Inventory =

		₹
80 units @ ₹ 5 (Base Stock)	=	400
45 units @ ₹ 4	=	180
Total 125 units		580

Under Periodic System

Closing Inventory

= Open. Balance + Purchases – Sales – Shortage of Units

= 100 + 80 + 60 + 40 + 80 – (140+ 20 + 40 + 20 + 15)

= 360 – 235 = 115 units

Valuation of Inventory

= 80 units @ ₹ 5	=	₹ 400
20 units @ ₹ 5	=	₹ 100
15 units @ ₹ 4	=	₹ 60
		₹ 560

5. **साधारण औसत लागत विधि** (Simple Average Cost Method)– इस विधि के अंतर्गत सामग्री का मूल्यांकन औसत लागत के आधार पर किया जाता है। इस विधि का प्रयोग उस दशा में किया जाता है, जबकि सामग्री के मूल्यों में अधिक परिवर्तन हो रहा हो तथा सामग्री को आसानी से नहीं पहचाना जा सकता हो। यह विधि बहुत सरल है तथा इसमें बाजार मूल्य व लागत मूल्य दोनों के गुण शामिल होते हैं।

उदाहरण (Illustration) : 5

निम्नलिखित सूचनाओं की सहायता से स्टोर खाता बनाइए तथा अंतिम स्कंध व लाभ–हानि की गणना कीजिए–

Purchase		**Sale**	
2007		**2007**	
Jan. 01	400 units @ ₹ 6.00 per unit	Jan. 05	200 units
Jan. 10	600 units @ ₹ 7.00 per unit	Jan. 15	400 units
Jan. 20	200 units @ ₹ 9.00 per unit	Jan. 30	600 units

Store Ledger A/c

Date	Purchase			Sales			Balance		
2007	Units	Rate	Amount	Units	Rate	Amount	Units	Rate	Amount
Jan. 01	400	6.00	2400				400	6.00	2400
Jan. 05	—	—	—	200	6.00	1200	200	6.00	1200
Jan. 10	600	7.00	4200	—	—	—	200	6.5	1300
							600	6.5	3900
Jan. 15	—	—	—	400	6.5	2600	400	6.5	2600
Jan. 20	200	9.00	1800	—	—	—	400+200		
							=600	8.00	4800
Jan. 30	—	—	—	600	8.00	4800	—	—	—
Project	—	—	200	—	—	—	—	—	—
Total	1200		8600	1200		8600			

Calculation of Average Price

Average price in Jan 05 = ₹ 6.00

Average price in Jan 15 $= \frac{6+7}{2} = \frac{13}{2} = ₹ 6.5$

Average price in Jan 30 $= \frac{7+9}{2} = \frac{16}{2} = ₹ 8.0$

6. भारित औसत लागत विधि (Weighted Average Cost Method)– इस विधि के अंतर्गत खरीदी गई सामग्री तथा शेष सामग्री की मात्रा से क्रय मूल्य को विभाजित कर दिया जाता है तथा इसी मूल्य पर सामग्री का निर्गमन किया जाता है। जैसे यदि कोई सामग्री 1 जनवरी 2007 को 100 किलो 10 रुपये प्रति किलो के हिसाब से खरीदी गई तथा 05 जनवरी, 2007 को 50 किलो निर्गमित की गई तो यह निर्गमन 10 रुपए प्रति किग्रा. के हिसाब से होगा। लेकिन अगर 08 जनवरी को 500 किलो सामग्री 12 रुपए प्रति किलो के हिसाब से खरीदी जाती है और फिर 10 जनवरी को 200 किलो सामग्री का निर्गमन होता है तो भारित औसत लागत निम्न प्रकार निकाली जाएगी–

शेष सामग्री = 100 – 50 = 50 किलो @ ₹ 10 प्रति किलो

प्राप्त सामग्री = 500 किलो ₹ 12 प्रति किलो

भारित औसत लागत $= \frac{50 \times 10 + 500 \times 12}{50 + 500} = \frac{500 + 6000}{550}$

$= \frac{6500}{550} = ₹ 11.81$

उदाहरण (Illustration) : 6

एक निर्माणी संस्था के कच्चे माल की खरीद और बिक्री का विवरण इस प्रकार है–

टिप्पणी

Purchase		**Sales/Issues**	
2007		**2007**	
Jan. 01	200 units @ ₹ 10	Jan. 05	100 units
Jan. 10	600 units @ ₹ 12	Jan. 15	200 units
Jan. 20	200 units @ ₹ 16	Jan. 25	300 units
		Jan. 31	200 units

आप स्टोर खाता तैयार कीजिए।

हल (Solution) :

Store Ledger A/c – Weighted Average Cost Method

Date	Purchases			Sales			Balance		
2007	Units	Rate	Amount	Units	Rate	Amount	Units	Rate	Amount
Jan. 01	200	10	2000	—	—	—	200	10.00	2000
Jan. 05	—	—	—	100	10	1000	100	10	1000
Jan. 10	600	12	7200	—	—	—	100+600 = 700	11.714	8200
Jan. 15	—	—	—	200	11.714	2343	500	11.714	5857
Jan. 20	200	16	3200	—	—	—	500+200 =700	12.938	9057
Jan. 25	—	—	—	300	12.938	3882	400	12.938	5176
Jan. 31	—	—	—	200	12.938	2588	200		2588

Calculation of weighted average cost–

Jan 05 = ₹ 10

$$\text{Jan. 15} = \frac{100 \times 10 + 600 \times 12}{100 + 600} = \frac{1000 + 200}{700}$$

$$= \frac{8200}{700} = \text{Rs } 11.714$$

$$\text{Jan. 25} = \frac{500 \times 11.714 + 200 \times 16}{500 + 200} = \frac{5857 + 3200}{700}$$

$$= \frac{9057}{700} = ₹\ 12.938$$

7. **प्रमाप लागत विधि** (Standard Price Method)–यह मूल्य भविष्य की एक निश्चित अवधि के लिए निर्धारित किया जाता है। इसी मूल्य पर स्टोर से सामग्री का निर्गमन किया जाता है। यह विधि वहां पर उपयुक्त होती है, जहां पर मूल्यों में कम से कम परिवर्तन होता है।

टिप्पणी

उदाहरण (Illustration) : 7

निम्न सूचनाओं से प्रमाप मूल्य विधि द्वारा स्टोर खाता तैयार कीजिए–

Purchase		**Sales/Issues**	
2007		**2007**	
	Standard Price = Rs. 4.00 per unit		
Jan. 01	150 units @ ₹ 4 per unit	Jan. 08	170 units
Jan. 06	160 units @ ₹ 3 per unit	Jan. 20	115 units
Jan. 10	150 units @ ₹ 5 per unit	Jan. 31	120 units
Jan. 28	120 units @ ₹ 3 per unit		

हल (Solution) : **Store Ledger A/c**

Date	Purchase			Sales			Balance		
2007	Units	Rate	Amount	Units	Rate	Amount	Units	Rate	Amount
Jan. 01	150	4.00	600	—	—	—	150	—	600
Jan. 06	160	3.00	480	—	—	—	160+150 = 310	—	1080
Jan. 8	—	—	—	170	4.00	680	140	—	400
Jan. 10	150	5	750	—	—	—	290	—	1150
Jan. 20	—	—	—	115	4	460	175	—	690
Jan. 28	120	3	360	—	—	—	295	—	1050
Jan. 31	—	—	—	120	4	480	175	—	570

Balance of units = 175
Stock at standard price = 175 × 4 = 700
Stock as per book price 570
Standard price पर 700 – 570 = ₹ 130 का लाभ होगा।

अपनी प्रगति जांचिए

5. निम्नलिखित में से कौन–सी लागत उत्पादन लागत के अंतर्गत नहीं आती?
   (क) बिजली (ख) पानी
   (ग) स्टेशनरी (घ) ट्रक का किराया
6. अमेरिका में जिसे वृद्धिशील लागत कहा जाता है, उसे इंग्लैंड में क्या कहा जाता है?
   (क) प्रासंगिक लागत (ख) भेदात्मक लागत
   (ग) डूबत लागत (घ) सीमित लागत

4.5 लेखा–जोखा रखना

लागत लेखांकन, लेखांकन की एक विशिष्ट शाखा है जो लागतों के वर्गीकरण, निर्धारण तथा नियंत्रण से संबंधित है। यह विज्ञान एवं कला दोनों है। विज्ञान इसलिए कि इसके अपने नियम एवं सिद्धांत हैं और कला इसलिए कि इसके सिद्धांत एवं तकनीक लागत

टिप्पणी

समंकों के आधार पर व्यावसायिक समस्याओं को हल करने में सहायक होते हैं। सांख्यिकीय समंकों की सहायता से लागत पत्र, लागत वितरण तथा विभिन्न लागत लेखे तैयार किए जाते हैं और लागतों की तुलना की जा सकती है। इसमें पूर्ण उत्पाद की कुल लागत एवं प्रति इकाई लागत के अतिरिक्त अपूर्ण उत्पाद/कार्य की लागत भी ज्ञात की जा सकती है। लागत लेखांकन एक पृथक पेशे के रूप में भी मान्यता रखता है। ICWAI (इंस्टीट्यूट ऑफ कॉस्ट एंड वर्क्स एकाउंटेंट्स ऑफ इंडिया) लागत लेखांकन के संबंध में पेशेवर सहायता प्रदान करता है। प्रबंध के विभिन्न स्तरों पर निर्णय एवं नियंत्रण के लिए भी लागत लेखांकन महत्वपूर्ण सूचनाएं प्रदान करता है।

लागत लेखांकन का क्षेत्र

जब व्यापार का क्षेत्र सीमित था तथा उद्योग–धंधों का अभाव था, तो लागत लेखांकन का क्षेत्र भी सीमित था। परंतु जैसे–जैसे उद्योग–धंधों का विकास हुआ, व्यवसाय का कार्यक्षेत्र बढ़ता चला गया, लागत लेखांकन का उपयोग भी अत्यंत व्यापक हो गया।

लागत लेखांकन पद्धति आजकल निर्माणी संस्थाओं की आवश्यकता बन गई है। चूंकि यह युग प्रतियोगिता का युग है और प्रत्येक व्यवसायी यही चाहता है कि कम–से–कम कीमत पर अधिक–से–अधिक लाभ कमा सके। इसलिए यह जरूरी है कि वह कम–से–कम लागत पर अपने ग्राहकों को अच्छे उत्पाद या सेवाएं उपलब्ध कराए जिससे कि ग्राहक उसकी सेवाओं से संतुष्ट हों और उत्पाद या सेवा का बाजार क्षेत्र बढ़ सके। इसलिए आज के युग में लागत लेखांकन का कार्यक्षेत्र बहुत अधिक व्यापक हो गया है। बहुत–सी परिवहन कंपनियां, धार्मिक व शिक्षण संस्थाएं, अस्पताल, बैंक और बहुत–से व्यापारी भी इस पद्धति का कुशलापूर्वक उपयोग कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त लागत लेखांकन पद्धति प्रबंध को भी व्यवसाय के नीति निर्धारण के लिए अन्य महत्वपूर्ण सूचनाएं प्रदान करती है।

आधुनिक युग में लागत लेखांकन औद्योगिक धंधों की एक अनिवार्य आवश्यकता बन गई है। इसके बगैर कोई भी उद्योग–धंधा सुचारू रूप से नहीं चलाया जा सकता है। प्रतियोगिता के इस युग में वस्तु का मूल्य निर्धारित करना तथा टेंडर मूल्य की गणना करना अत्यंत आवश्यक हो गया है। इसके अतिरिक्त लागत लेखे उत्पादकों को अन्य महत्वपूर्ण सूचनाएं भी प्रदान करते हैं; जैसे किसी वस्तु का निर्माण किया जाए या खरीद कर बेचा जाए, लाभदायक तथा अलाभदायक वस्तुओं के विषय में जानकारी, प्रमाप लागत का निर्धारण, लाभ में कमी या वृद्धि के कारणों की जानकारी तथा सामग्री व श्रम पर नियंत्रण के उपाय आदि।

लागत लेखों से जहां एक तरफ उत्पादकों को महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त होती हैं, वहीं दूसरी तरफ लेनदारों, कर्मचारियों, उपभोक्ताओं तथा सरकार को भी इनसे लाभ होता है। लेनदारों को व्यवसाय की आर्थिक स्थिति का सही पता चल जाता है। कर्मचारियों की योग्यता व कुशलता का पता भी लागत लेखों के माध्यम से लगाया जा सकता है। अधिक मेहनती श्रमिकों को उचित पुरस्कार व उन्नति के अवसर प्रदान किए जाते हैं। उपभोक्ताओं को कम मूल्य पर वस्तुएं प्राप्त हो जाती हैं क्योंकि इस पद्धति का उद्देश्य ही कम लागत पर उचित लाभ कमाना होता है। यह पद्धति सरकार के लिए आयकर व उत्पादन कर निर्धारित करने में भी सहायक होती है। वित्तीय लेखों के लिए भी यह पद्धति सहायक होती है तथा इससे विभिन्न विभागों की कार्यक्षमता का ज्ञान भी आसानी से हो जाता है।

टिप्पणी

लागत लेखांकन को ठीक प्रकार से समझने के लिए पहले कुछ विद्वानों द्वारा की गई टिप्पणियों को समझना आवश्यक है, जो इस प्रकार हैं–

आर.एन. कार्टर : "किसी वस्तु के निर्माण या उपकार्य में लगी सामग्री और श्रम का खातों में लेखा करने की प्रणाली को *लागत लेखांकन* कहते हैं।"

एच.जे. हेल्डन : "उत्पादों या सेवाओं की लागतों को निर्धारित करने के लिए खर्चों का वर्गीकरण करना, लेखा करना तथा उनका ठीक–ठीक वितरण करना ही *लागत लेखांकन* है।"

वाल्टर डब्ल्यू बिग : "खर्चों का ऐसा विश्लेषण और वर्गीकरण जिससे किसी विशेष इकाई की कुल लागत शुद्धता से ज्ञात हो सके तथा जिससे यह भी पता लगाया जा सके कि कुल लागत किस प्रकार आई है, *लागत लेखांकन* कहलाता है।"

एल.बी. डिक्सी : "लागत लेखे वित्तीय लेखों के पूरक अथवा सहायक लेखे हैं जो किसी संस्था या किसी विशेष विभाग की क्रिया की विस्तृत लागत से संबंधित अतिरिक्त सूचनाएं प्रदान करने के लिए तैयार किए जाते हैं।"

उपरोक्त टिप्पणियों के आधार पर हम कह सकते हैं कि 'लागत लेखांकन' एक ऐसी विधि है जो–

1. खर्चों का ठीक–ठीक वर्गीकरण, लेखांकन तथा आबंटन करती है,
2. उत्पादित वस्तुओं या सेवाओं की प्रति इकाई लागत शुद्धता के साथ निकालती है, तथा
3. व्यवसाय के लिए भावी नीतियां तैयार करती है जिससे कि व्यवसाय पर उचित नियंत्रण रखा जा सके।

लागत लेखांकन की आवश्यकता

"आवश्यकता आविष्कार की जननी है।" यह कथन प्रचलित है। अतः लागत लेखों की आवश्यकता के कारण ही लागत लेखांकन का उदय हुआ है। प्रत्येक व्यवसायी एवं उद्योग का स्वामी यह जानने का प्रयत्न करता है कि उसे व्यवसाय अथवा उद्योग के संचालन से क्या लाभ अथवा हानि हो रही है। वह उन कारणों को भी जानने का प्रयास करता है जिनके फलस्वरूप लाभ या हानि हो रही है। प्रत्येक व्यवसायी व्यावसायिक लेन–देनों का लेखा करने के लिए वित्तीय लेखा प्रणाली अपनाता है और वर्ष के अंत में समस्त व्यवहारों का संक्षिप्त ब्यौरा बनाकर लाभ–हानि खाते द्वारा संस्था का लाभ–हानि ज्ञात करता है। व्यापारी तथा निर्माता दोनों ही इस प्रणाली से अपने समस्त लेन–देनों तथा व्यवहारों का लेखा करते हैं और संस्था का लाभ–हानि एवं उसकी वित्तीय स्थिति ज्ञात करते हैं। ये वित्तीय लेखे लागत से संबंधित बहुत–सी सूचनाएं प्रकट नहीं करते; जैसे लागत क्या होनी चाहिए? उस पर नियंत्रण कैसे किया जाए? उत्तरदायित्व बिंदु कहां है इत्यादि। वित्तीय लेखांकन की इन्हीं कमियों को दूर करने के लिए लागत लेखांकन प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। लागत लेखे निम्न कारणों से आवश्यक हैं–

1. ये लेखे उत्पादन लागत के संबंध में उचित जानकारी प्रदान करते हैं जिससे वस्तु या उत्पाद का सही मूल्य निर्धारित करने में आसानी हो जाती है।

टिप्पणी

2. लागत लेखों द्वारा उन खर्चों पर आसानी से नियंत्रण किया जा सकता है जो कि व्यवसाय से संबंधित नहीं हैं। इस प्रकार वास्तविक लाभ या हानि की जानकारी प्राप्त हो सकती है।
3. निविदा मूल्य ज्ञात करने के लिए भी लागत लेखों की आवश्यकता होती है।
4. प्रत्येक विभाग में श्रम पर कितना खर्च हुआ अर्थात उत्पादक व गैर–उत्पादक मजदूरी की अलग–अलग जानकारी लागत लेखों के द्वारा ही होती है।
5. लागत लेखों के द्वारा सामग्री पर पूर्ण नियंत्रण करके उत्पादन लागत को कम किया जा सकता है।
6. लागत लेखों से प्रत्येक विभाग की अलग–अलग उत्पादन लागत तथा कार्यक्षमता की जानकारी प्राप्त की जा सकती है और विभिन्न विभागों व संयंत्रों की लाभदायकता का पता लगाया जा सकता है।
7. लागत लेखों से तुलनात्मक लागत विवरण (Comparative Statement of Costs) तैयार करके गत वर्ष की तुलना में लागत परिवर्तन के कारणों की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।
8. लागत लेखे लागत के संबंध में प्रबंध को महत्वपूर्ण समंक (Data) प्रदान करते हैं जो प्रबंधकों को भावी योजनाएं बनाने तथा नीतियों के निर्धारण में सहायता प्रदान करते हैं।

भारत में लागत लेखांकन का विकास

भारत में लागत लेखांकन का विकास औद्योगिक क्रांति के कारण संभव हुआ। जैसे–जैसे औद्योगिक इकाइयों की शुरुआत होती गई, लागत लेखांकन के प्रचलन में वृद्धि होती चली गई जिसके कारण लागत एकाउंटेंट की आवश्यकता महसूस होने लगी। सन् 1944 में 'Indian Institute of Costs and Works' का जन्म एक गारंटी द्वारा सीमित कंपनी के रूप में हुआ। सन् 1959 में भारत में Costs and Works Accountant Act पारित हुआ तथा ICWAI की स्थापना की गई जिसका मुख्य उद्देश्य छात्रों को लागत लेखांकन के क्षेत्र में विशेष प्रशिक्षण प्रदान करना तथा भारत में लागत लेखांकन को एक नई दिशा प्रदान करना है। इसका मुख्य कार्यालय कोलकाता में स्थित है।

अपनी प्रगति जांचिए

7. ''किसी वस्तु के निर्माण या उपकार्य में लगी सामग्री और श्रम का खातों में लेखा करने की प्रणाली को लागत लेखांकन कहते हैं''–यह परिभाषा किसने दी है?

   (क) आर.एन. कार्टर (ख) एच.जे. हेल्डन

   (ग) वाल्टर डब्ल्यू, बिंग (घ) एल.बी. डिक्सी

8. 'इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ कॉस्ट्स एण्ड वर्क्स' की स्थापना कब हुई?

   (क) 1948 में (ख) 1945 में

   (ग) 1944 में (घ) 1951 में

टिप्पणी

4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ख)
3. (घ)
4. (ग)
5. (घ)
6. (ख)
7. (क)
8. (ग)

4.7 सारांश

वित्त प्रत्येक व्यावसायिक क्रिया का मूलाधार है। आधुनिक युग में किसी भी उद्यम की स्थापना, संचालन एवं विकास के लिए पर्याप्त मात्रा में वित्त की आवश्यकता होती है। 'डॉ. पी. सी. श्रीवास्तव' के अनुसार, ''वित्त उद्योग एवं वाणिज्य के लिए तेल, हड्डियों का सार, नाड़ियों का रक्त एवं व्यवसायों की आत्मा है।'' वास्तव में वित्त समस्त व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योग की आत्मा है।

सामान्य अर्थ में कोषों से आशय उस धनराशि अथवा पूंजी से है जो कि किसी उद्यम की स्थापना तथा उसके संचालन के लिए आवश्यक है। पूंजी किसी उद्यम का जीवन–रक्त होती है।

वह पूंजी जो स्थायी सम्पत्ति पर विनियोजन करने के लिए ली जाती है, उसे दीर्घकालीन या स्थायी पूंजी कहते हैं। स्थायी प्रकृति की सम्पत्तियां पुनः विक्रय करने के उद्देश्य से क्रय नहीं की जाती, फलतः इस प्रकार की पूंजी व्यवसाय के जीवन–काल तक बनी रहती है तथा एक बार विनियोजित करने के पश्चात् इसे सरलता से व्यवसाय के जीवन–काल से वापस प्राप्त नहीं किया जा सकता, इसलिए इसको अचल पूंजी भी कहते हैं। ऐसी पूंजी का प्रयोग व्यवसाय की स्थायी सम्पत्तियों जैसे–भूमि, भवन तथा मशीन इत्यादि को क्रय करने के लिए किया जाता है।,

स्थायी पूंजी की आवश्यकता केवल स्थायी संपत्तियों के क्रय करने के लिए ही पड़ती है। एकाकी व्यापारी तथा साझेदारी की दशा में यह पूंजी संस्था के स्वामी अपने निजी साधनों, मित्रों एवं संबंधियों से ऋण लेकर उपलब्ध करते हैं किन्तु कम्पनी की दशा में स्थायी पूंजी निम्न साधनों से एकत्रित की जाती है– (अ) अंश–पत्रों का निर्गमन करके (ब) ऋण–पत्रों का निर्गमन करके, (स) विशिष्ट अर्थ–प्रबंध संस्थाओं से ऋण लेकर।

वह पूंजी जोकि उद्योग के साधारण कार्यों में लगाई जाती है, कार्यशील पूंजी कहलाती है। इसका प्रयोग कार्यरत कर्मचारियों की मजदूरी तथा वेतन, विज्ञापन, चल–सम्पत्ति के क्रय, उत्पादन–व्यय, विक्रय–व्यय तथा अन्य सामान्य खर्चों के भुगतान में किया जाता है। कार्यशील पूंजी का कार्यकाल स्थायी पूंजी की अपेक्षा कम होता है, अतः इसको 'अल्पकालीन' अथवा 'अस्थायी' पूंजी भी कहते हैं। कार्यशील पूंजी की परिभाषा के संबंध में दो विभिन्न विचारधाराएं विद्यमान हैं–प्रथम विचारधारा के अनुसार

टिप्पणी

कार्यशील पूंजी का आशय चालू सम्पत्ति और चालू देनदारियों से है और इसका समर्थन लिंकन, स्टेंविन्स तथा सलियर्स जैसे अर्थ–प्रबंधन विशेषज्ञों ने किया है। इसके विपरीत, दूसरी विचारधारा के अनुसार कार्यशील पूंजी का अभिप्राय केवल चालू सम्पत्ति से है और इस विचारधारा के समर्थक फील्ड, मैलोट, भीड तथा बेकर हैं।

उद्यम पूंजी से आशय ऐसे व्यावसायिक उपक्रम में धन का विनियोजन करने से है जिनमें एक तरफ तो अनिश्चितताओं एवं जोखिम की भरमार रहती है और दूसरी तरफ अधिक लाभों का आकर्षण रहता है। उद्यम पूंजी शब्द निम्न दो शब्दों उद्यम एवं पूंजी के योग से बना है। ऑक्सफोर्ड लर्नर शब्दकोश के अनुसार, "उद्यम से आशय ऐसे उपक्रम से है जिसमें अनिश्चितता, जोखिम, खतरा एवं हानि निहित है। पूंजी से आशय ऐसे उपक्रम के लिए प्रारंभिक पूंजी उपलब्ध कराने से है जिसमें एक तरफ तो अनिश्चितता एवं अत्यधिक जोखिम है और दूसरी ओर, अत्यधिक लाभों का आकर्षण है।"

परंपरागत रूप में यह धारणा विद्यमान रही है कि उद्यम पूंजी की आवश्यकता किसी लघु उपक्रम की स्थापना के लिए होती है। यह ऐसी अवस्था होती है जबकि आम विनियोक्ता ऐसे उपक्रमों में धन का विनियोजन करने से कतराते हैं इसका कारण है कि ऐसे उपक्रमों की स्थापना के समय भी जोखिम विद्यमान रहती है जिसे आम विनियोक्ता सरलता से वहन करने को तत्पर नहीं होता है। इस प्रकार उद्यम पूंजी की आवश्यकता प्रत्येक स्तर पर होती है।

'लागत' व्यय की वह राशि है जो एक निर्दिष्ट वस्तु पर किया गया हो अथवा आरोपित हो। लागत एक विस्तृत धारणा वाला शब्द है, जिसका प्रयोग इसके उद्देश्यों एवं दशाओं के संदर्भ में किया जाता है। साधारणतया लागत शब्द का अर्थ किसी वस्तु पर किए गए समस्त व्ययों के योग से होता है। किसी निर्दिष्ट वस्तु पर किया गया व्यय अथवा आरोपित व्यय (वास्तविक अथवा वैचारिक) लागत कहलाता है। "वैचारिक व्यय वह व्यय है जो किया गया माना जाता है परंतु वास्तव में भुगतान नहीं किया जाता है; जैसे स्वामित्व युक्त कारखाना भवन का किराया तथा स्वयं की पूंजी पर ब्याज। इस प्रकार किसी वस्तु को पाने के लिए किया गया त्याग जिसको मुद्रा में मापा जाता है और जो किसी विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया गया है, लागत कहलाता है।"

विभिन्न प्रकार के उद्योगों में कुल लागत ज्ञात करने के लिए विभिन्न पद्धतियां प्रयोग में लायी जाती हैं क्योंकि एक उद्योग में यदि वस्तु का उत्पादन अनेक क्रियाओं में होता है, तो दूसरे उद्योग में एक ही प्रकार की वस्तु का उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है। किसी उद्योग में सेवा का उत्पादन होता है, तो किसी में वस्तुओं का निर्माण होता है। इस प्रकार लागत को जानने के लिए विभिन्न उद्योगों में भिन्न–भिन्न पद्धतियां अपनायी जाती हैं।

आधुनिक युग में लागत लेखांकन औद्योगिक धंधों की एक अनिवार्य आवश्यकता बन गई है। इसके बगैर कोई भी उद्योग–धंधा सुचारू रूप से नहीं चलाया जा सकता है। प्रतियोगिता के इस युग में वस्तु का मूल्य निर्धारित करना तथा टेंडर मूल्य की गणना करना अत्यंत आवश्यक हो गया है। इसके अतिरिक्त लागत लेखे उत्पादकों को अन्य महत्वपूर्ण सूचनाएं भी प्रदान करते हैं; जैसे किसी वस्तु का निर्माण किया जाए या खरीद कर बेचा जाए, लाभदायक तथा अलाभदायक वस्तुओं के विषय में जानकारी, प्रमाप लागत का निर्धारण, लाभ में कमी या वृद्धि के कारणों की जानकारी तथा सामग्री व श्रम पर नियंत्रण के उपाय आदि।

टिप्पणी

4.8 मुख्य शब्दावली

- **घटक** : कारक, अवयव।
- **चलायमान** : गतिशील।
- **रोकड़** : नकद।
- **विमोचन** : खोलना, मुक्त करना।

4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. दीर्घकालीन या स्थायी पूंजी किसे कहा जाता है?
2. कार्यशील पूंजी की मुख्य विशेषताएं क्या हैं?
3. समता अंश का क्या अर्थ है?
4. समता अंश तथा पूर्वाधिकार अंश में क्या अंतर है?
5. उद्यम पूंजी के लक्षण एवं विशेषताएं बताइये।
6. लागत का वर्गीकरण प्रमुखतः किन–किन आधारों पर किया जाता है?
7. लागत लेखांकन की आवश्यकता क्यों पड़ती है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

8. परियोजना के लिये वित्तीय प्रबंधन की आवश्यकता दर्शाते हुए वित्तीय पूंजी के प्रकारों एवं स्रोतों का उल्लेख कीजिये।
9. उद्यम पूंजी का अर्थ स्पष्ट कीजिये तथा उसकी प्रमुख अवस्थाओं, स्रोतों एवं विशेषताओं का परिचय दीजिये।
10. लागत के वर्गीकरण का महत्व बताते हुए उसके प्रमुख आधारों पर प्रकाश डालिये।
11. मूल्य निर्धारण की आवश्यकता दर्शाते हुए उसकी प्रमुख विधियों का उल्लेख कीजिये।
12. लागत लेखांकन की आवश्यकता एवं महत्व का विश्लेषण कीजिए।

4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

जी.एस. सुधा, *उद्यमिता की अवधारणा*, रमेश बुक डिपो, 1995
एम.एल. झिंगन, *आर्थिक विकास में उद्यम वृत्ति*, कोणर्क पब्लिशर्स प्रा. लि. 1972
एस.सी. सक्सेना, *व्यवसाय प्रशासन एवं प्रबंध*, साहित्य भवन, आगरा, 2002
एस.के. गुप्ता, *उत्पादन की विधियां*, विशाल प्रकाशन मन्दिर, मेरठ, 1996
पाण्डेय एवं सिंह, *उत्पादन प्रबंध*, एपसाइलन पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., कानपुर, 1995
अंजनि कुमार मालवीय, *मानव संसाधन प्रबंध*, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2009
डॉ. आर.एस. कुलश्रेष्ठ, *औद्योगिक अर्थशास्त्र*, साहित्य भवन, आगरा, 1992

इकाई 5 उद्यमिता संबंधी समस्याएं एवं उनके समाधान

टिप्पणी

संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 पूंजी विषयक समस्याएं एवं समाधान
5.3 पंजीकरण संबंधी समस्याएं एवं समाधान
5.3.1 लघु उद्योग इकाइयों की पंजीकरण प्रक्रिया
5.3.2 पंजीकरण में आने वाली समस्याएं
5.3.3 समाधान
5.4 प्रशासकीय समस्याएं एवं समाधान
5.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.6 सारांश
5.7 मुख्य शब्दावली
5.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.9 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय

आज, इंटरनेट के इस धूम–धड़ाके में, उद्यमी अर्थव्यवस्था की सर्वाधिक सक्रिय शक्तियों में से एक का स्थान ले चुके हैं। उद्यमी आज इस तकनीकी के विकास को बढ़ावा दे रहे हैं, जो स्वयं विश्व की आर्थिक प्रगति में बढ़–चढ़ कर सहयोग कर रही है। इसके फलस्वरूप एक स्थूल आर्थिक दृष्टि से उद्यमियों का महत्व बहुत बढ़ गया है। आर्थिक क्षेत्र में उनका स्थान अपेक्षाकृत अधिक अहम हो चुका है, जिसका अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ा है। व्यवसाय–व्यापार के वैश्वीकरण का विस्तार जितना अधिक होता जाएगा, लोग इस परिणाम को उतनी ही गंभीरता से महसूस करेंगे। उद्यमी विकासशील देशों में और समस्त विश्व की अर्थव्यवस्था में पहले से ही एक मुख्य शक्ति की भूमिका निभा रहे हैं।

विश्व निरंतर बदलता और विकास करता रहता है, इसलिए उद्यमिता की सीमा में भी बदलाव और विकास होना स्वाभाविक है, फिर भी इस समाज में कुछ आम समस्याएं ऐसी हैं, जिन्हें हम साझा कर सकते हैं और एक दूसरे से सीख ले सकते हैं, जैसे कोई व्यवसाय शुरू कैसे किया जाये, व्यवसाय में धन कैसे लगाया जाये, व्यवसाय का संचालन कैसे किया जाये आदि। हालांकि आज भी नायकों और गाथाओं के कई उदाहरण मिल जाएंगे, किंतु उद्यमिता एक स्थापित क्षेत्र है, जिसमें उद्यम के सभी चरणों के अनेकानेक मुद्दे आते हैं।

कोई व्यवसाय शुरू करने की चुनौती सभी उद्यमियों का एक आम कारक है, वह चाहे किसी चीज का अनुसंधान हो, किसी व्यवसाय में किसी नई योजना पर विचार हो, कोई नया व्यवसाय शुरू करने के सही अवसर की तलाश हो अथवा कोई अधिकार

टिप्पणी

(फ्रैंचाइज) खरीदना हो। और ये सब समय साध्य हैं– सभी पहलुओं का आयोजन आवश्यक है, ताकि उद्यमी अपने लक्ष्यों को हासिल कर सके। सभी उद्यमियों को अपने उद्यम में धन लगाने की समस्या का सामना भी करना पड़ता है। उद्यमियों को आम तौर पर कॉर्पोरेट नियमों के भीतर वित्तीय बाधाओं का भी सामना करना पड़ता है। इसलिए यदि उद्यम किसी के निजी धन से शुरू न हो, तो धन प्राप्त करना एक चुनौती होता है, जिसके लिए निधीयन प्रस्ताव तैयार करना अथवा ऋण, जोखिम पूंजी, एंजेल निवेशक के लिये या फिर आइपीओ (इनीशियल पब्लिक ऑफरिंग/शेयर की पहली सार्वजनिक बिक्री अथवा निर्गम/शेयरों का पहली बार निर्गम) के लिए भी आवेदन लिखना और/या प्रस्तुत करना पड़ता है। किसी उद्यम को इन चरणों के प्रति इतनी सूचनाएं दी जाती हैं कि इनमें से सही अथवा गलत सूचनाओं का चयन एक अति जटिल कार्य होता है।

किंतु, इन सब चुनौतियों से गुजर जाने के बाद किसी को लग सकता है कि सफर आसान होगा। व्यवसाय की एक सुंदर परिकल्पना के मद्देनजर, छोटी–मोटी रुकावटों के साथ समस्त कारोबार को आगे बढ़ना चाहिए। किंतु, क्रियान्वयन का चरण किसी उद्यम के बनने या बिगड़ने का वास्तविक चरण प्रतीत होता है। ऐसे कई मत या सिद्धांत हैं, जिनके अनुसार समस्या यह है कि सलाहकार (प्रवर्तक) और क्रियान्वयक अलग–अलग प्रकार के लोग होते हैं, किंतु इस नियम के कई अपवाद हैं और इस स्थिति का बचाव करना कठिन है। संभवतः अपेक्षाकृत अधिक यथार्थवादी मत यह है कि क्रियान्वयन के चरण में इतने कौशलों की आवश्यकता होती है, कि किसी एक व्यक्ति में सभी कार्यों का समुचित प्रबंध करने के सारे कौशल नहीं हो सकते। उद्यमियों में यह गुण होना चाहिए कि वे जो कुछ भी करें उसे अच्छी तरह से सोच–समझ कर करें, और तब ऐसे कर्मचारियों अथवा उपकारिंदों का पता लगाएं जो इस कमी को दूर कर सकें।

इस क्रियान्वयन चरण पर विचार करने का एक रास्ता यह देखना है कि किसी व्यवसाय या कंपनी के संचालन में कौन से अलग–अलग कौशल सहयोग कर रहे हैं। किसी व्यवसाय के संचालन में कर्मचारीगण, विपणन, प्रचार, बिक्री, संचार, जन–संपर्क,

टिप्पणी

कानूनी जरूरतें, सरकारी नियम–विनियम, कार्यालय की साज–सज्जा, जोखिम प्रबंधन, आपदा नियोजन, संकट प्रबंधन, बीमा, तकनीकी, कंप्यूटर आदि की सामग्री (धातु सामग्री/हार्डवेयर), सॉफ्टवेयर (क्रमानुदेश), इंटरनेट और कंपनी के वित्तीय पक्ष– हिसाब–किताब, ऋण प्रबंधन, कर और वस्तुविनिमय– आदि का योगदान होता है।

एक ठोस तकनीकी आधार के बिना कोई व्यवसाय नहीं चल सकता। किंतु, प्रबंधन का संकल्पना पक्ष सबसे ऊपर है : आचार नीति, नेतृत्व, विकास विचार और कंपनी की योजनाबद्ध ढंग से निवेश अथवा कोई उत्पाद बंद करने की नीति भी। ये सब गौण हो सकते हैं, फिर भी व्यवसाय के लिए आवश्यक समग्र विचार–विषय तथा दिशा का निर्धारण करते हैं।

उद्यमिता के समक्ष प्रमुख बाधाएं

1. **व्यक्तिगत प्रेरणा का अभाव**– उद्यमिता में प्रेरणा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और वर्तमान स्थिति के साथ संतुष्ट होने की भावना उद्यमिता में बाधा के रूप में कार्य करती है। कई शोधकर्ताओं ने दिखाया है कि प्रेरणा उद्यमिता के लिए महत्वपूर्ण है।
2. **वित्त तक पहुंच का अभाव**– उद्यमशीलता के रूपों की स्थापना और वृद्धि के लिए वित्त एक महत्वपूर्ण कारक है।
3. **व्यावसायिक संपर्कों का अभाव**– उद्यमी भावनात्मक समर्थन, सामाजिक प्रभाव और अनुभव के लिए नेटवर्क पर निर्भर करते हैं, जो किसी व्यक्ति के उद्यमी होने और न होने– दोनों ही स्थितियों में सफलता प्राप्त करने के लिए जरूरी है।
4. **आदर्श की कमी**– आदर्श ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो किसी विशेष कार्यभार को पूरा करने में अपनी रुचि, दक्षता और ईमानदारी से दूसरों को प्रभावित करते हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि एक व्यक्ति उसी श्रेणी के किसी अन्य व्यक्ति से प्रभावित होता है, क्योंकि किसी व्यक्ति की आकांक्षाएं और विकल्प उसी श्रेणी के व्यक्तियों से अधिक प्रभावित होते हैं।
5. **नौकरशाही बाधा**– ऑस्ट्रेलिया और अमेरिका जैसे देशों में एक नया व्यवसाय शुरू करने के लिए क्रमशः 2 दिन और 5 दिन लगते हैं, जबकि भारत में लगभग 89 दिन लगते हैं। यह भारत में नौकरशाही नियमों और विनियमों के कारण कठिन है, जिसके परिणामस्वरूप अधिक समय और लागत लगती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में आवश्यक प्रति व्यक्ति सकल आय के मामले में भारत में नये व्यवसाय खोलने की लागत 100 गुना अधिक है।
6. **अनुभव की कमी**– नये व्यवसाय स्थापित करने, अवसरों का पता लगाने और लाभ लेने की किसी व्यक्ति की क्षमता पर कार्य अनुभव का प्रभाव पड़ता है।
7. **शिक्षा का अभाव**– अध्ययन में पाया गया है कि अधिक शिक्षित व्यक्ति उद्यमी बनने की अधिक संभावना रखते हैं। शिक्षा का व्यावसायिक प्रदर्शन पर प्रभाव पड़ता है, क्योंकि यह निर्णय लेने के कौशल को बढ़ाता है और इस प्रकार उद्यमिता की संभावनाओं को बढ़ाता है।

टिप्पणी

उद्यमियों के समक्ष कुछ गंभीर चुनौतियां

1. **धन :** हालांकि कुछ ऐसे व्यवसाय हैं, जो छोटे बजट से शुरू किए जा सकते हैं, किंतु व्यवसाय के वित्त पोषण के लिए पूंजी की आवश्यकता होती है। यह धन पारिवारिक आय के अन्य स्रोत से आये अथवा किसी ऋण से, आरंभिक लागतों के प्रति सोच का यथार्थवादी होना आवश्यक होता है। नये उद्यमी किसी व्यवसाय के लाभ की स्थिति तक पहुंचने में लगने वाले समय और उसके इस स्थिति में पहुंचने से पहले उसके लिये आवश्यक निवेश की धनराशि का यथा आवश्यक आकलन अक्सर नहीं करते। एक सम्यक् और ईमानदार वित्तीय योजना इस गलती से बचने में सहायक होगी।

2. **कौशल एवं ज्ञान :** कर्मचारियों के कार्य कार्यों के एक परिमित लिखित विवरण तक सीमित होते हैं। किंतु, कोई व्यवसाय आरंभ करते समय, कोई कर्मचारी शोध एवं विकास से, माल वितरण से हिसाब–किताब तक प्रत्येक वस्तु के प्रति जवाबदेह होता है। इसका अर्थ यह है कि कुछ कार्य ऐसे अवश्य होंगे जो स्वामी की जानकारी में नहीं होंगे। हो सकता है कि व्यवसाय की मांग के अनुरूप, विभिन्न कार्यों को पूरा करने के लिए स्वामी के पास कर्मचारी हों अथवा नहीं हों। आपको अपनी सीमाओं का पूरा ज्ञान होना चाहिए और किसी विशेषज्ञ की सलाह तथा आवश्यकता पड़ने पर ज्ञानी अनुभवी व्यक्तियों की सहायता लेनी चाहिए।

3. **प्रतिक्रिया (मूल्यांकन) :** एक उद्यमी के रूप में कार्य करते हुए, विशेष कर यदि आपका कारोबार बहुत छोटा हो या आप घर से कारोबार करते हों, आप कई बार स्वयं को अकेला महसूस करेंगे और ऐसे में आपको अपने निर्णयों पर संदेह होगा। चूंकि किसी नये व्यवसाय को लाभ की स्थिति में आने में समय लगता है, इसलिए व्यवसाय के विकास के आकलन के लिये नवीनतम बिक्री के आंकड़ों की सीमा से बढ़ कर मूल्यांकन के अन्य स्रोत बहुत सहायक होंगे। अन्य उद्यमियों से संपर्क साधने और उनके साथ बैठक करने से उनके व्यवसाय को समझने और विकास का आकलन करने के लिये आवश्यक जानकारी प्राप्त करने में सहायता मिल सकती है।

4. **समय :** जब आप कोई उद्यम शुरू कर रहे हों, तो आपने कभी किसी कंपनी के स्वामी के लिए जितना कार्य किया होगा उससे अधिक कड़ी मेहनत अपने लिए करनी होगी। हालांकि स्वरोजगार से आपके व्यवसाय के कार्यक्रम में लचीलापन आयेगा, किंतु व्यवसाय को सफल बनाने के लिये आपको उसमें अपना अधिकांश समय देना होगा। कार्य के निर्दिष्ट समय का निर्धारण और यदि आवश्यक हो, तो उसका नवजात शिशु की तरह पालन करना जरूरी है। दौड़ में बने रहने के लिए लक्ष्य तय करना भी सहायक हो सकता है।

इन समस्याओं पर विजय पाने के लिये, किसी कंपनी के स्वामी को बिक्री के एक विशिष्ट चरण का निर्धारण और उपभोक्ताओं को उस लाभ से अवगत कराने का कोई उपाय करना चाहिए। ब्रांड के नाम और लोगों से कंपनी के प्रचार तक प्रत्येक वस्तु में उपभोक्ताओं का हित और ध्यान निहित होना चाहिए। यह स्मरण रखना आवश्यक है

टिप्पणी

कि उपभोक्ताओं की रुचि उत्पाद अथवा सेवा की विशेषताओं के विपरीत लाभों में होती है, जैसा कि किसी लेखक ने लिखा– इसमें मेरे लिए क्या है?– बने रहने और आगे बढ़ने के लिये किसी नई कंपनी में यह क्षमता अवश्य होनी चाहिए कि वह इस प्रश्न का सही उत्तर दे सके।

इस इकाई के अंतर्गत किसी उद्यम के प्रारंभ और संचालन से जुड़ी पूंजीगत, पंजीकरण संबंधी एवं प्रशासकीय समस्याओं तथा उनके समाधान के विकल्पों का अध्ययन किया गया है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- उद्यमिता से जुड़ी बाधाओं एवं चुनौतियों से अवगत हो पाएंगे;
- उद्यमिता की पूंजी विषयक समस्याओं एवं उनके समाधान से परिचित हो पाएंगे;
- उद्यमिता की पंजीकरण संबंधी समस्याओं और समाधान की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- उद्यमिता की प्रशासकीय समस्याओं एवं उनके समाधान को जान पाएंगे।

5.2 पूंजी विषयक समस्याएं एवं समाधान

हर वर्ष असफल रहने वाले अनेकानेक उद्यमियों में से, लगभग आधे उद्यमी धन या फिर कार्यशील पूंजी के अभाव को अपनी असफलता का कारण बताते हैं। अधिकांश उदाहरणों में, किसी व्यवसाय के स्वामी को यह पता होता है कि दैनिक आधार पर वेतन भुगतान के लिये धन, नियत और विविध प्रकार के ऊपरी व्ययों, जैसे किराया एवं व्यावहारिक व्यय के भुगतान और बाहरी व्यापारियों को समय पर भुगतान, समेत कंपनियों को चालू रखने के लिये कितने धन की जरूरत होती है। किंतु, असफल कंपनियों के स्वामी इस बात पर वांछित ध्यान नहीं देते कि उत्पादों अथवा सेवाओं की बिक्री से कितने राजस्व का सृजन हुआ। इसके फलस्वरूप धन में कमी आती है और कोई छोटा–मोटा व्यवसाय शीघ्र ही बंद हो जाता है।

कार्यशील पूंजी और ऊपरी व्यय की जरूरतों के लिये धन जुटाने के अतिरिक्त, कंपनी के स्वामी अक्सर उत्पादों और सेवाओं के मूल्य निर्धारण में असफल रह जाते हैं। उद्योगों से भरे प्रतिस्पर्धी बाजार में बने रहने हेतु, संभव है कि ग्राहकों को आकर्षित करने के लिये कंपनियां अपने किसी उत्पाद अथवा सेवा का मूल्य उसी प्रकार के उपलब्ध अन्य उत्पादों या सेवाओं के मूल्य से बहुत कम रखती हों। हालांकि कुछ मामलों में यह कार्यनीति सफल होती है, किंतु उन कंपनियों के दरवाजे बंद हो जाते हैं, जो किसी उत्पाद का मूल्य या तो बहुत अधिक रखती हैं या फिर बहुत कम। यदि उत्पाद, विपणन और वितरण पर आने वाला व्यय नई बिक्री से प्राप्त राजस्व से अधिक हो, तो कंपनियों के लिये अपना व्यवसाय समेट लेने के अलावा कोई चारा प्रायः नहीं रह जाता।

टिप्पणी

आरंभिक (स्टार्टअप) चरण में छोटी कंपनियों को किसी नये उत्पाद को बाजार में उतारने के लिये धन जुटाने, कंपनी के विस्तार में धन लगाने या फिर विपणन पर हो रहे व्ययों का भुगतान करने में भी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। हालांकि छोटी–छोटी कंपनियों के लिए उपलब्ध वित्तीयन के हजारों स्रोतों में एंजेल निवेशक (किसी स्टार्टअप व्यवसाय के आरंभिक चरण में व्यक्तिगत रूप से पूंजी मुहैया कराने वाले निवेशक / (एंजेल इन्वेस्टर्स अथवा एंजेल्स), उद्यम पूंजी निवेशक (वेंचर कैपिटलिस्ट) और परंपरागत बैंक ऋण आते हैं, पर प्रत्येक कंपनी के पास इन स्रोतों से मुख्य वित्त सुनिश्चित करने हेतु आवश्यक आय का कोई स्रोत अथवा उनके विकास की कोई दिशा नहीं होती। बृहत परियोजनाओं अथवा चालू कार्यशील पूंजी की जरूरतों के लिए एक अंतःप्रवाह के बिना, छोटी–छोटी कंपनियों को अपना व्यवसाय मजबूरन बंद कर देना पड़ता है।

वित्त पोषण की सामान्य बाधाओं से किसी छोटी कंपनी की रक्षा के लिये, कंपनी के स्वामियों को सबसे पहले कंपनी के कार्य संचालन हेतु एक समुचित बजट तैयार करना और आरंभिक (स्टार्टअप) अथवा विस्तार चरण में अपनी तिजोरी से कुछ पूंजी उपलब्ध कराने को तत्पर रहना चाहिए। कुछ समय पश्चात, जब वित्तीय सहायता देनी ही हो, तो उसके पहले विभिन्न बिक्री केंद्रों से शोध व सहायता के विकल्प सुनिश्चित कराने चाहिए। जब धन जुटाने का समय आये, तो कंपनी के स्वामियों के पास विभिन्न प्रकार के स्रोत होने चाहिए जिनसे वे पूंजी की मांग कर सकें।

कार्यशील पूंजी के अभाव से उत्पन्न समस्याएं

किसी छोटे व्यवसाय में कार्यशील पूंजी किसी कंपनी की चालू देनदारियों को छोड़ कर चालू परिसंपत्तियों को दर्शाती है। चालू परिसंपत्तियां वे संसाधन होते हैं, जिन्हें कंपनी एक वर्ष के भीतर आसानी से नकद में परिवर्तित कर सकती है। चालू देनदारियां ऋण की वे देयताएं होती हैं, जिन्हें कंपनी को एक वर्ष के भीतर अनिवार्य रूप से चुकता करना चाहिए। कार्यशील पूंजी किसी कंपनी की कार्यक्षमता और लघु आवधिक वित्तीय स्वास्थ्य का मूल्यांकन करती है। व्यवसाय का सफलतापूर्वक संचालन करने के लिये छोटे व्यवसाय के स्वामियों के पास पर्याप्त सुनिश्चित कार्यशील पूंजी होनी चाहिए। कार्यशील पूंजी के अभाव में छोटी कंपनियों को कई हानियों से दो–चार होना पड़ता है।

निवेशकों को आकर्षित करने में कठिनाई

कार्यशील पूंजी के अभाव में किसी छोटी कंपनी के लिये निवेशकों और साहूकारों का मिलना कठिन हो सकता है। कार्यशील पूंजी से निवेशकों और महाजनों को पता चलता है कि किसी कंपनी के पास ऋण वापस करने की क्षमता है अथवा वह पर्याप्त लाभ अर्जन कर सकती है, जिससे निवेशकों को उनके निवेशों का प्रतिलाभ मिल सके। कुछ महाजन किसी कंपनी से उसकी परिसंपत्तियों का उपयोग सहायक के रूप में करने की मांग कर सकते हैं। जिस कंपनी की कोई कार्यशील पूंजी नहीं हो, उसे महाजन जोखिमपूर्ण मान सकते हैं। यदि कोई कंपनी निवेशकों और साहूकारों को आकर्षित करने में असफल रह जाये, तो इसका प्रतिकूल प्रभाव उसकी आवश्यक संसाधनों की क्रय क्षमता पर पड़ सकता है।

टिप्पणी

दैनिक व्यवसाय

कार्यशील पूंजी के आधार पर किसी कंपनी की अल्पकालिक परिसंपत्तियों को नकद में परिवर्तित करने की उसकी क्षमता का मूल्यांकन किया जाता है। कार्यशील पूंजी के अभाव में किसी कंपनी की दैनिक कार्यकलाप की आय–व्यय की क्षमता संकट में पड़ सकती है। किसी छोटे व्यवसाय के दैनिक कार्यकलाप में विशेष रूप से वेतन, वस्तुओं के क्रय और उपकरण की जरूरतें आती हैं। कार्यशील पूंजी के अभाव में किसी कंपनी के लिए आपात स्थितियों का सामना करने हेतु तत्पर रहना कठिन होता है। उदाहरण के लिये, यदि अप्रत्याशित परिस्थितियों के चलते किसी कंपनी का अधिकांश माल नष्ट हो जाये और उसके पास कार्यशील पूंजी न हो, तो उस स्थिति में व्यवसाय के लिये नया माल जुटाना उसके लिये कठिन हो जाता है।

व्यवसाय के विस्तार में कठिनाई

कार्यशील पूंजी सुनिश्चित हो, तो छोटी कंपनी के स्वामियों को भविष्य में व्यवसाय को आगे बढ़ाने का अवसर मिलता है। यदि कोई कंपनी आगे बढ़ना चाहे या फिर ग्राहकों की मांगों को पूरा करने का प्रयास कर रही हो, तो वह अक्सर तेजी से और बड़े पैमाने पर माल का उत्पादन करने अथवा सेवाएं देने के लिये आवश्यक अतिरिक्त परिसंपत्तियों का क्रय करती है। कार्यशील पूंजी के अभाव में कोई कंपनी अपने विस्तार के लिये जरूरी वस्तुओं का क्रय नहीं कर पाती। यदि किसी कंपनी के विकास में समस्याएं निरंतर आती रहें, तो उसके ग्राहक उससे टूट कर उसके प्रतिद्वंद्वियों के पास जा सकते हैं।

कार्यशील पूंजी में सुधार लाना

एक ठोस कार्यशील कंपनी को बनाये रखने तथा संघर्षरत छोटे व्यवसायियों को जीवनक्षम बने रहने के लिये स्थिति बेहतर बनाने के प्रयास करने चाहिए। भुगतान नकद रूप में लेना उपलब्ध कार्यशील पूंजी की राशि में सुधार लाने का एक तरीका है। नकद भुगतान पर ध्यान देने के क्रम में ग्राहकों को उनके बिल का समय रहते भुगतान करने को प्रोत्साहित करने हेतु आपके खातों में उपलब्ध वस्तुओं की नीतियों में बदलाव भी होना चाहिए।

सामाजिक पूंजी

इसकी व्याख्या भारत में पहचान और चीन में गुआंग्झी के रूप में की जाती है, जो गलत है। सामाजिक पूंजी की व्याख्या वास्तविक संसाधनों (जिन संसाधनों की मात्रा ज्ञात हो) या फिर संभाव्य संसाधनों (जिनकी मात्रा ज्ञात न हो) के समुच्चय के रूप में की गई है, जिनका संबंध परस्पर परिचय और पहचान से होता है (बोर्दियू 1983)। इसे संपर्क अथवा संबंध भी कहा जा सकता है। पूंजी के अन्य रूपों के विपरीत, सामाजिक पूंजी को उसका उपयोग करने वाला पूरी तरह से व्यय नहीं करता; बल्कि यदि इसका उपयोग न हो तो यह समाप्त हो जाती है।

लोग उन्हीं लोगों के साथ व्यवसाय करना चाहते हैं, जिन्हें वे जानते हैं। इसके विपरीत, यदि आप सही लोगों को जानते हैं, तो उनके साथ व्यवसाय करना अपेक्षाकृत आसान होता है। वे या तो उद्योग जगत के लोग हो सकते हैं या फिर दफ्तरशाही के।

टिप्पणी

जब संबंध ईमानदारी के सिद्धांतों और नियमों से ऊपर हो जाते हैं, तो इससे पक्षपात और भाई–भतीजावाद का जन्म होता है। कभी–कभी इन संबंधों में आपके सामाजिक समूह अथवा जाति के अन्य लोगों तथा आपके नाते–रिश्तेदारों के प्रति विशेष अनुग्रह का भाव निहित होता है।

पोर्टेस (1998) ने सामाजिक पूंजी के दुरुपयोग के नकारात्मक परिणामों की पहचान इस प्रकार की है :

1. बाहरी गुणी व्यक्तियों का बहिष्करण
2. समूह के लोगों पर अत्यधिक अधिकार जताना
3. निजी स्वतंत्रता पर प्रतिबंध तथा
4. नियमों में बराबरी के स्तर तक ढील।

सामाजिक पूंजी का मूल्यांकन जोखिम भरा हो सकता है, किंतु यह इस पर निर्भर करता है कि आप कितने लोगों को जानते हैं, वे लोग कितने शक्तिशाली हैं, और आपके लिये वे क्या करना चाहते हैं। ऐसे अनेकानेक उद्यमी देखे गए हैं, जिन्हें सही लोगों से जान–पहचान और उनके हित में इस जान–पहचान के उपयोग से लाभ मिला है।

इसी प्रकार, ऐसे कई मामले मिल जायेंगे, जहां कुछ महत्वपूर्ण लोगों के साथ संबंध घनिष्ठ नहीं होने के कारण व्यवसाय असफल हो गये हों। व्यवसाय के प्रयोजन से सामाजिक पूंजी का उपयोग सही है या गलत, इस पर लंबी चर्चा हो सकती है, किंतु इसका अस्तित्व एक यथार्थ है जिसे प्रत्येक उद्यमी को संभाल कर रखना चाहिए।

पूंजीगत समस्याओं के समाधान

समुचित नियोजन और बजट निर्धारण से समुचित नकद प्रवाह सुनिश्चित करने में बहुत सहायता मिल सकती है। किंतु, ये बिलों के दबाव के आगे हमेशा आपकी रक्षा नहीं कर सकते। दी गई सेवाओं और उत्पादों के लिए तत्काल भुगतान की मांग कर उद्यमी अपने नकदी प्रवाह में सुधार कर सकते हैं।

तत्काल भुगतान से लाभ की गारंटी होने के साथ–साथ सभी संबद्ध व्यय पूरे होने चाहिए। बिल भुगतान प्रक्रिया की गति तेज करने से भी नकद प्रवाह में सुधार आ सकता है।

समय प्रबंधन से संबद्ध समस्या का हल वार्षिक, मासिक और साप्ताहिक लक्ष्यों में विभाजित लक्ष्य सूची तैयार कर किया जा सकता है। जो कार्य आपके लक्ष्यों में न हों, उन्हें हटा देना चाहिए और जिनके लिए उद्यमी का हस्तक्षेप आवश्यक न हो उनकी जिम्मेदारी का बंटवारा कर देना चाहिए।

मानव पूंजी से संबद्ध चुनौतियां और समाधान

मानव पूंजी की चुनौती दूर करने के लिए उद्यमी सटीक विज्ञापनों के दृष्टिकोण से पूर्ण स्पष्टता रखें ताकि उम्मीदवारों की चयन–पूर्व योग्यता सुनिश्चित करने में सहायता मिल सके। कार्मिक खोज अभियान का संचालन किसी ग्राहक–केंद्रित विपणन अभियान की तरह किया जाना चाहिए।

टिप्पणी

अभ्यर्थियों को कार्य के परिवेश से अवगत कराने हेतु एक ''तत्काल साक्षात्कार'' (वाक–इन–इंटर्व्यू) किया जा सकता है। जांच प्रक्रिया के दौरान अभ्यर्थियों के अनुभवों, अपेक्षाओं, समर्पण की भावनाओं और दीर्घकालिक लक्ष्यों की जांच की जा सकती है। जो लोग अभ्यर्थियों की क्षमता और कार्य के प्रति उनकी निष्ठा की पुष्टि करें उनसे प्राप्त उनकी वास्तविक जानकारियों पर भी विचार किया जाना चाहिए।

यदि उद्यमी एक अनुकूल कार्यस्थिति तैयार करने के प्रति आश्वस्त न हों, तो वे यह कार्य किसी ऐसे व्यक्ति को सौंप सकते हैं, जिसे इसका पर्याप्त ज्ञान हो। वह सेवा उद्योग हो, या खुदरा ई–व्यवसाय अथवा प्रकाषन, एक संपूर्ण एसडब्ल्यूओटी विश्लेषण के लिए समुचित बाजार शोध का संचालन किया जाना चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए

1. लगभग आधे उद्यमी अपनी असफलता के लिये किसके अभाव को जिम्मेदार मानते हैं?

   (क) कार्यशील पूंजी (ख) व्यक्तिगत प्रेरणा

   (ग) शिक्षा (घ) अनुभव

2. सामाजिक पूंजी का मूल्यांकन कैसा हो सकता है?

   (क) सरल (ख) कठिन

   (ग) जोखिम से भरा (घ) हानिकारक

5.3 पंजीकरण संबंधी समस्याएं एवं समाधान

किसी उपक्रम को स्थापित करने की प्रक्रिया में विभिन्न स्तर शामिल होते हैं। अपने स्वयं के वातावरण और बाजार के विश्लेषण से शुरू होकर एक उपक्रम के लिये महसूस करने और चयन करने से लेकर यह प्रक्रिया उत्पादों और सेवाओं के उत्पादन और विपणन तक जाती है। उद्यमी को प्रत्येक स्तर पर महत्वपूर्ण निर्णय लेने पड़ते हैं, दिन–प्रतिदिन के सामान्य कार्य/कानूनी औपचारिकताएं पूरी करनी पड़ती है और सामूहिक गतिविधियों को संगठित करना पड़ता है। ऐसा प्रत्येक कदम सृजनात्मक कार्यवाही चाहता है। तथापि प्रत्येक स्तर को शीघ्रता से पूरा करने में सूचना एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भविष्य में गलतियों से बचने के लिये यह आवश्यक है कि एक उपक्रम शुरू करने से पहले ऐसे समस्त प्रकार के स्तरों का विस्तृत पुनरीक्षण कर लिया जाए।

औद्योगिक लाइसेन्स, नगर पालिका लाइसेन्स (यदि इकाई का क्षेत्र नगरपालिका क्षेत्र में आता हो) तथा अन्य आवश्यक औपचारिकताएं समय रहते पूरी कर लेनी चाहिए। उद्यमी की विशाल चिंता का क्षेत्र अपने प्रोजेक्ट को स्थापित करने और चलाने हेतु वित्त प्राप्त करने के लिए अपनाई जाने की प्रक्रिया होती है। वित्तीय सहायता में मुख्य रूप से दो भाग होते हैं– मीयादी वित्त तथा कार्यशील पूंजी वित्त। यह निगम या बैंकों से और केन्द्र व राज्य सरकार से प्राप्त होने वाले प्रोत्साहनों की धनराशि निवेश अनुदान राशि के रूप में प्रदान की जाती है।

टिप्पणी

5.3.1 लघु उद्योग इकाइयों की पंजीकरण प्रक्रिया

संयंत्र और मशीनरी में 60 लाख रुपए तक के निवेश वाले एक औद्योगिक उपक्रम को लघु उद्योग के रूप में परिभाषित किया गया है। यद्यपि, अनुषंगी उद्योगों के लिए यह सीमा 75 लाख रुपए है। निर्यात इकाइयों के मामले में यह सीमा 75 लाख रुपए है बशर्ते कि तीसरे वर्ष से उत्पादन का न्यूनतम 30 प्रतिशत निर्यात किया जाता हो। निवेश संबंधी ये सीमाएं तब भी लागू होंगी यदि संयंत्र और मशीनरी किराया–खरीद आधार पर हैं। उद्योग का पंजीकरण स्थायी और अस्थायी रूपों में होता है।

स्थायी पंजीकरण

स्थायी पंजीकरण प्रमाणपत्र जारी करने की तिथि से 5 वर्षों की अवधि के लिए वैध है। जैसे ही इकाई वाणिज्यिक उत्पादन प्रारंभ करती है, स्थायी प्रमाणपत्र की वैधता समाप्त हो जाती है।

स्थायी पंजीकरण प्राप्ति के लिए संलग्न किए जाने वाले दस्तावेज

1. स्वामियों/साझेदारों/निदेशकों, जो भी मामला हो, के पासपोर्ट आकार के तीन फोटोग्राफ।
2. साझेदारी इकाई की स्थिति में साझेदारी विलेख की छायाप्रति। साझेदारी को साझेदारी अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत होना आवश्यक नहीं है।
3. प्राइवेट लिमिटेड कंपनी के मामले में, निगमीकरण प्रमाणपत्र के साथ संगम–ज्ञापन और संगम–अनुच्छेद की प्रति। आवेदन पत्र पर हस्ताक्षर करने और साक्षात्कार के लिए उपस्थित होने के लिए कंपनी के एक निदेशक को प्राधिकृत करने वाले कंपनी के संकल्प की प्रति।
4. कानूनी कब्जे का साक्ष्य अर्थात् किराए की रसीद, स्वामित्व के साक्ष्य के साथ भूस्वामी का अनापत्ति प्रमाणपत्र, आवेदक को कनेक्शन धारक द्वारा अधिकृत पावर लोड।
5. स्थायी प्रमाणपत्र अनुमोदित औद्योगिक क्षेत्रों में इस विशिष्ट शर्त के साथ दिया जाएगा कि इकाई वाणिज्यिक उत्पादन प्रारंभ करने से पूर्व डीपीसीसी से अनुमति प्राप्त करेगी।

अस्थायी पंजीकरण के बाद मिलने वाली सुविधाएं

1. कारखाना भवन के निर्माण के लिए सामग्री।
2. इकाई की स्थापना के लिए शेड निर्माण हेतु अनुमति के लिए निगम/स्थानीय निकायों को आवेदनपत्र देना।
3. नगर निगम लाइसेंस और विद्युत कनेक्शन के लिए आवेदन देना।
4. राज्य वित्त निगम/राष्ट्रीयकृत बैंकों आदि को वित्तीय सहायता के लिए आवेदन देना।
5. किराया–खरीद आधार पर मशीनरी के प्रापण के लिए राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम/राज्य औद्योगिक विकास निगम/अन्य संस्थानों को आवेदन देना।
6. कच्चे माल/कलपुर्जों और पूंजीगत वस्तुओं के आयात के लिए आवेदन देना।

टिप्पणी

स्थायी पंजीकरण

स्थायी पंजीकरण उन इकाइयों को प्रदान किया जाता है जो मास्टर प्लान के अनुसार अनुकूल क्षेत्रों में अस्तित्व में आई हैं। इसके लिए 30 किलोवॉट (अथवा 40 एचपी) की औद्योगिक विद्युत सीमा है। कुछ उद्योगों में सभी मशीनें एक साथ संचालित नहीं होती हैं। ऐसे मामलों में यदि उद्योग तीन गुना तक विद्युत लोड के विचलन का औचित्य देता है तो सीमा की अनुमति दे दी जाती है।

स्थायी पंजीकरण के लिए आवेदन करने वाली इकाइयों को निर्धारित आवेदनपत्र के साथ निम्नलिखित दस्तावेज प्रस्तुत करने होते हैं–

1. परिसर के स्वामित्व का साक्ष्य अर्थात् आवंटन पत्र/कब्जा पत्र/पट्टा विलेख/संपत्ति कर रसीद/नगर निगम लाइसेंस। यदि इकाई के पास स्वयं अपने नाम पर अथवा अपने स्वामी के नाम पर अथवा साझेदारों/निदेशकों में से किसी के नाम पर, जो भी मामला हो, नगर निगम लाइसेंस है तो वैध कब्जे के किसी और साक्ष्य की आवश्यकता नहीं है।

   यदि परिसर की व्यवस्था किराया आधार पर की गई है तो इकाई को वैध कब्जे का साक्ष्य अर्थात् भूस्वामी के स्वामित्व के साक्ष्य के साथ भूस्वामी से किराया रसीद और/अथवा अनापत्ति प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए जीपीए के साथ किराया रसीद/किराया करार को भी स्वीकार किया जाता है बशर्ते कि जीपीए की नियुक्ति स्वामी/पट्टाधारक द्वारा एक पंजीकृत विलेख के माध्यम से की गई हो। उद्योग विभाग/राज्य औद्योगिक विकास निगम से संबंधित परिसरों के मामले में, आवेदक उद्योग विभाग/राज्य औद्योगिक विकास निगम से अनापत्ति प्रमाणपत्र प्रस्तुत करेगा।
2. आवेदन किए गए प्रत्येक उत्पाद के बिक्री बिल की एक छायाप्रति।
3. प्रत्येक कच्चे माल के खरीद बिल की एक छायाप्रति।
4. स्थापित की गई मशीनरी के खरीद बिल।
5. साझेदारी इकाई के मामले में साझेदारी विलेख की प्रति (इसका पंजीकृत होना आवश्यक नहीं है)।
6. प्राइवेट लिमिटेड कंपनी के मामले में, स्थायी लघु उद्योग पंजीकरण देने हेतु आवेदन पत्र पर हस्ताक्षर करने और साक्षात्कार के लिए उपस्थित होने के लिए कंपनी के एक निदेशक को प्राधिकृत करने वाले कंपनी के संकल्प की प्रति के साथ निगमीकरण के प्रमाणपत्र सहित संगम–ज्ञापन और संगम–अनुच्छेद की प्रति (निदेशकों में कोई परिवर्तन होने की स्थिति में, संकल्प की प्रति और प्रपत्र संख्या 32 में सूचना)।
7. प्रदूषित इकाई के मामले में राज्य प्रदूषण नियंत्रण समिति से वैध स्वीकृति पत्र की छायाप्रति।
8. औद्योगिक विकास और विनियमन अधिनियम, 1951 के अंतर्गत लाइसेंस की आवश्यकता वाले उत्पाद के मामले में भारत सरकार से औद्योगिक लाइसेंस की प्रति।

टिप्पणी

9. एचईए (क्यूसी) आदेश, 1981 और क्यू.सी. आदेश 1993 के अंतर्गत कवर किए गए बिजली के घरेलू उपकरणों के संबंध में बीआईएस/गुणवत्ता नियंत्रण प्रमाणपत्र।
10. निर्धारित स्वरूप के अनुसार इकाई की स्थिति, स्थापित मशीनरी, विद्युत आवश्यकताओं आदि बताते हुए 3 रुपए का नोटेरियल स्टाम्प चिपकाकर 2 रुपए के गैर–न्यायिक स्टाम्प पेपर पर नोटेरी पब्लिक द्वारा विधिवत् सत्यापित एक शपथ–पत्र।

उपरोक्त सभी दस्तावेज आवेदक द्वारा स्वयं सत्यापित होने चाहिए।

5.3.2 पंजीकरण में आने वाली समस्याएं

पंजीकरण की प्रक्रिया में बहुत सारी औपचरिकताएं होती हैं कि उद्यमी उलझ कर रह जाता हे उपर्युक्त वर्णित नियमों के बाद भी पंजीकरण कि प्रक्रिया सरल नहीं होती।

अगर आपने अपने कारोबार के लिए जरूरी सभी रजिस्ट्रेशन और लाइसेंस ले लिए हैं, आपको लगता है कि कोई नोटिस या चालान जबरन थोपा गया है तो उसी विभाग में ऐसे सेल हैं, जहां आप अपील या ऑब्जेक्शन दायर कर सकते हैं।

एक नवीन इकाई की स्थापना के लिये निम्नलिखित वैधानिक आवश्यकताओं का पालन किया जाना आवश्यक है–

1. **प्रदूषण नियंत्रण मण्डल में निकासी** : संपूर्ण विश्व में प्रदूषण समस्या एक विकट रूप धारण कर चुकी है। यह प्रदूषण विभिन्न प्रकार का होता है, जैसे–वायु, जल, भूमि, मानव, रासायनिक व रेडियोधर्मी प्रदूषण आदि।

   प्रदूषण की रोकथाम के लिए प्रत्येक उद्यमी को नवीन उद्यम की स्थापना करने से पूर्व केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण मण्डल से प्रदूषण निकासी प्रमाण–पत्र लेना अनिवार्य है। यहां (1) प्रथम प्रमाण–पत्र वायु अधिनियम, 1981। (2) दूसरा प्रमाण–पत्र जल (प्रदूषण रोकथाम एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974, दोनों प्रमाण–पत्र यह प्रमाणित करते हैं कि प्रस्तावित उद्यम अथवा उद्योग वायु प्रदूषण तथा जल प्रदूषण से सर्वथा मुक्त है।
2. **कारखाना अधिनियम के अंतर्गत पंजीयन** : यदि उद्यमी निर्माण प्रक्रिया प्रारंभ करना चाहता है तो कारखाने में शक्ति का प्रयोग करते हुए 10 या इससे अधिक तथा बिना शक्ति का प्रयोग किये हुए 20 या इससे अधिक श्रमिकों की नियुक्ति की दशा में उद्यमी को कारखाना अधिनियम 1948 के अंतर्गत उद्यम का पंजीयन कराना होगा।
3. **आयात लाइसेन्स** : यदि उद्यमी नवीन औद्योगिक इकाई में आयतित कच्चा–माल एवं अन्य सामग्री का उपभोग करना चाहता है तो उसे आयात–निर्यात नियंत्रक से आयात करने का प्रमाण–पत्र प्राप्त करना होगा।
4. **आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 के अंतर्गत प्रमाण–पत्र** : यदि उद्यमी द्वारा स्थापित नवीन औद्योगिक इकाई आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करना चाहती है, तो उसे आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 के अंतर्गत प्रमाण–पत्र प्राप्त करना होगा।

टिप्पणी

5. **परिभोगी द्वारा सूचना** : यदि उद्यमी कारखाने की स्थापना करने का निर्णय लेता है तो उसे कारखाना अधिनियम के अंतर्गत लाइसेन्स प्राप्त करने के पश्चात् उसे किसी भवन को कारखाने के रूप में प्रयोग करने अथवा अधिकार में लेने के कम से कम 15 दिन पूर्व निर्धारित प्रपत्र पर निम्न बातों की सूचना मुख्य कारखाना निरीक्षक को देना अनिवार्य है–
   (i) कारखाने का नाम और उसकी स्थिति;
   (ii) परभोगी का नाम और पता;
   (iii) भूगृहादि या (जिसमें उसका अहाता भी शामिल है) के स्वामी का नाम और पता;
   (iv) वह पता जिस पर कारखाने से सम्बन्धित पत्र–व्यवहार किया जा सके;
   (v) निर्माण प्रक्रिया की प्रकृति जोकि– (i) इस अधिनियम के प्रारंभ होने की तिथि पर विद्यमान कारखानों की अवस्था में पिछले 12 महीनों की अवधि में की गई है (ब) अन्य समस्त कारखानों की अवस्था में आगामी 12 महीनों की अवधि में कारखाने में चलाई जाने वाली हैं;
   (vi) उपभोग की जाने वाली शक्ति की प्रकृति एवं मात्रा;
   (vii) कारखाने के प्रबंधक का नाम;
   (viii) कारखाने में नियुक्त किये जाने वाले श्रमिकों की संभावित संख्या;
   (ix) ऐसे अन्य बातें जो निर्धारित की जायें;
   (x) कारखाने में स्थापित अथवा स्थापित की जाने वाली कुछ शक्ति का योग भी सूचना में देना होगा।
6. **आयकर सत्ता के अंतर्गत पंजीयन** : उपरोक्त औपचारिकताएं पूरी करने के पश्चात् उद्यमी को आयकर सत्ता के अंतर्गत औद्योगिक इकाई का पंजीयन कराना होगा।
7. **बिक्री कर सत्ता के अंतर्गत पंजीयन** : तत्पश्चात् उद्यमी को राज्य सरकार के बिक्री कर विभाग तथा यदि आवश्यक हो तो केन्द्रीय सरकार के बिक्री कर विभाग में भी उद्यम का पंजीयन कराना तथा प्रमाण–पत्र लेना होगा।
8. **ट्रेड मार्क अधिनियम के अंतर्गत पंजीयन** : यदि नया स्थापित उद्यम निर्मित उत्पाद का उत्पादन करता है तो उसे अपने निर्मित उत्पाद का ट्रेड मार्क अधिनियम के अंतर्गत पंजीयन करा लेना चाहिए। ट्रेड मार्क का पंजीयन कराने से दूसरा निर्माता उसकी नकल नहीं कर पाता है। इसके अतिरिक्त जब ट्रेडमार्क पंजीकृत उत्पाद बाजार में ख्याति अर्जित कर लेती है तो उसकी बिक्री में तेजी से वृद्धि होती है। ट्रेड मार्क दूसरे निर्माता के पंजीकृत ट्रेड मार्क से मिलता–जुलता नहीं होना चाहिए।
9. **विविध अधिनियम** : एक नवीन व्यावसायिक/औद्योगिक इकाई की स्थापना हेतु उपरोक्त अधिनियमों के अतिरिक्त अन्य ऐसे कई अधिनियम हैं जिनके अंतर्गत आवश्यकतानुसार पंजीयन कराना आवश्यक होता है। उदाहरण के लिए, (i) पेटेण्ट अधिनियम, (ii) कॉपीराइट अधिनियम; बांट एवं माप अधिनियम,

(iii) मजदूरी भुगतान अधिनियम; (iv) न्यूनतम मजदूरी भुगतान अधिनियम (v) सेवा कर अधिनियम; (vi) फूड एण्ड ड्रग्स नियंत्रण अधिनियम आदि।

टिप्पणी

5.3.3 समाधान

नए व्यवसाय के पंजीकरण में आने वाली समस्याओं को दूर करने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जाने की आवश्यकता है।

- **तैयार आवश्यक दस्तावेज रखना** : उद्यमियों को स्थायी पंजीकरण के लिए आवश्यक सभी दस्तावेजों को तैयार रखना चाहिए (जैसे कि पासपोर्ट आकार की फोटो सरकार द्वारा जारी किए गए प्रोपराइटर, पार्टनर, डायरेक्टर और मेमोरेंडम और एसोसिएशन ऑफ एसोसिएशन की फोटो प्रतियां) और स्थायी पंजीकरण (जैसे किराए पर) मकान मालिक से रसीद या अनापत्ति प्रमाण पत्र, हाउस टैक्स रसीद की फोटोकॉपी, नगरपालिका लाइसेंस की फोटोकॉपी और प्रदूषण अधिकारियों से अनापत्ति प्रमाण पत्र की फोटो प्रति)।
- **पंजीकरण के लिए विशेषज्ञों को किराए पर लेना** : अधिकांश नए उद्यमियों को व्यवसाय पंजीकरण और प्रसंस्करण में कोई विचार या अनुभव नहीं है। उन्हें इस क्षेत्र में अनुभव और विशेषज्ञता रखने वाले किसी व्यक्ति को नियुक्त करना चाहिए। बेशक, इससे उनके पैसे खर्च होंगे, लेकिन कम से कम इससे उनका कीमती समय बचेगा। वे एक चार्टर्ड एकाउंटेंट या कॉर्पोरेट वकील को कार्यों को आउटसोर्स करने के लिए रख सकते हैं, जैसे कि लेखांकन और कर नियमों का अनुपालन।
- **वित्तीय तैयारी करना** : जब कोई उद्यमी अपने व्यवसाय को पंजीकृत करने की योजना बना रहा होता है, तो वह अपने व्यवसाय को पंजीकृत करने में आने वाले सभी खर्चों को कवर करने के लिए वित्तीय रूप से खुद को तैयार करने के लिए एक बुद्धिमान कदम होगा।
- **जल्दी शुरू करना** : नए उद्यमियों को अपना व्यवसाय शुरू करने की बजाय एक सप्ताह या एक महीने पहले अपना पंजीकरण शुरू करना चाहिए, ताकि वे अपना ऑपरेशन शुरू कर सकें। उन्हें यह ध्यान में रखना चाहिए कि व्यवसाय पंजीकरण की लंबी प्रक्रियाओं से अलग, उनकी आधिकारिक रसीदों या चालान की छपाई में भी समय लगेगा

रजिस्ट्रेशन प्रक्रिया का सरलीकरण

आज सरकार ने छोटे उद्योगों को रजिस्ट्रेशन करने के लिए काफी सरल कर दिया है। इस से ऑनलाइन कोई भी व्यवसाइ UAM (उद्योग आधार मेमोरेंडम पोर्टल) के माध्यम से अपने व्यवसाय को रजिस्टर कर सकते हैं। एमएसएमई सूक्ष्म, छोटे और मध्यम इन तीनों श्रेणियों के उद्योगों में से किसी भी इंटरप्राइज के अंतर्गत आता है।

- सूक्ष्म उद्योग सबसे छोटी संस्था है। इस विनिर्माण व्यापार के अंतर्गत संयंत्र और मशीनरी में कम से कम 25 लाख तक का निवेश कर सकते हैं और सेवा व्यापार में अधिक से अधिक 10 लाख रुपये तक का ही निवेश कर सकते हैं।

टिप्पणी

- लघु उद्योग के अंतर्गत छोटे विनिर्माण उद्योग के लिए संयत्र और मशीनरी में 25 लाख से 5 करोड़ तक का निवेश कर सकते है, और सेवा उद्यमों में निवेश की सीमा 10 लाख से 2 करोड़ रुपये तक की है।
- मध्यम उद्योग के लिए संयत्र और मशीनरी में 5 करोड़ से 10 करोड़ रुपये तक का निवेश कर सकते हैं और सेवा उद्यमों के लिए इसकी सीमा 2 करोड़ से 5 करोड़ तक की है।

उद्योग आधार पंजीकरण

उद्योग आधार (MSME License) सूक्ष्म, लघु और मध्यम व्यापार (Micro, Small and Medium Enterprises) के लिए सरकार द्वारा लाई गई रजिस्ट्रेशन प्रक्रिया है। इसके तहत कोई भी अपना बिजनेस रजिस्टर करवा सकता है ताकि व्यवसाय की अधिकारिक पहचान या मान्यता प्राप्त हो सके। कंपनी या पार्टनरशिप फर्म की तरह एकल व्यवसाय या प्रॉपरायटरशिप बिजनेस (Proprietorship Business) के लिए सामान्य रूप से कोई अधिकारिक रजिस्ट्रेशन नहीं होता इसलिए छोटे प्रॉपरायटरशिप व्यवसायों को लोन लेने व अन्य सरकारी योजनाओं के लिए आवेदन करने में परेशानी होती हैं। लेकिन अब छोटे और मध्यम वर्ग के व्यवसायी अपने बिजनेस का उद्योग आधार रजिस्ट्रेशन करके बिजनेस लोन और सरकार द्वारा MSME Sector की विभिन्न प्रकार की योजनाओं में आसानी से आवेदन कर सकते हैं।

उद्योग आधार के आने के बाद Business Registration की Process बहुत ही आसान हो गई है, जिसमे आप–

- **Online Process**– बिना किसी परेशानी के आप Online ही अपने Business के लिए MSME Registration ले सकते हैं।
- **Aadhar Number**– इसमें बहुत ही कम डाक्यूमेंट्स की जरुरत होती है और आप एक आधार कार्ड नंबर से ही एक से ज्यादा बिजनेस के लिए रजिस्ट्रेशन ले सकते हैं।
- **12 Digit Unique Number**– Registration के बाद आपको एक 12 अंकों का यूनिक नंबर मिलता है। यह एक सरकारी मान्यता प्रमाण पत्र होता है जो आपके व्यापार को सफल बनाने में आपकी मदद करता है।
- **Right Legal Entity**– यह आपको कानूनी तौर पर अपना Business शुरू करने की आजादी देता है।
- **Easy Verification**– रजिस्ट्रेशन हो जाने के बाद इसका Verification करना बहुत ही आसान होता है, आप केवल आधार नंबर और UAM Number से इसे Verify कर सकते हैं।

उद्योग आधार के फायदे

- एक व्यक्ति एक आधार संख्या पर एक से अधिक उद्योंगों का पंजीकरण कर सकता है।
- Udyog Aadhar Registration Online के अंतर्गत छोटे, लघु एवं ग्रामीण उद्योग शुरू करने के लिए आसानी से लोन प्रदान किया जाता है।

टिप्पणी

- उद्योंगों का पंजीकरण और लोन प्राप्त करने में आपको समय की भी बचत होती है।
- Udyog Aadhar Registration Online के लिए ऑनलाइन फॉर्म भी भर सकते हैं।
- छोटे व्यवसाइयों को व्यवसाय शुरू करने के लिए भारत सरकार समर्थन देती है।
- भारत सरकार द्वारा ऐसे व्यवसाइयों को सब्सिडी भी प्रदान की जाती है।
- पूंजी की कमी के कारण छोटे व्यवसाइयों को कई समस्याओं का सामना करना होता है। इसलिए ऐसे छोटे व्यवसाइयों को आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए सरकार Udyog Aadhar Registration Online का संचालन करती है। जिसके अंतर्गत ऐसे छोटे व्यवसाइयों को लोन प्रदान किया जाता है और उन्हें अपना व्यवसाय को आगे बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

एमएसएमई में उद्योग का पंजीकरण

MSME Registration करवाने के बाद आप कई सारी सरकारी योजनाओ से लाभ प्राप्त करने के योग्य हो जाते है, जिसमें आपको – मुद्रा योजना लोन, सरकारी सब्सिडी, MSME Support, क्रेडिट गारंटी योजना आदि जैसी योजनाओं से फायदा हो सकता है।

उद्योग आधार से जुड़े व्यवसाय को सफल बनाने के लिए सरकार द्वारा सहायता भी प्रदान की जाती है, जिसमें– औद्योगिक विस्तार, गोदाम निर्माण, प्रशिक्षण, निर्यात के लिए मार्केटिंग, उद्योगों के निर्माण, पूंजी और तकनीकी जैसी कई प्रकार की सहायता प्रदान की जाती है।

MSME Register Business को बैंक से लोन प्राप्त करने में आसानी होती है। इसके आलावा उन्हें कई Govt Scheme के तहत आसान और बिना गारंटी (Colleteral Free Loan) के कम ब्याज दरों पर लोन मिल जाता है।

इसमें Excise Scheme के तहत आपको छूट मिलती है और Direct Tax में भी फायदा मिलता है।

UAM में Register व्यापारी को अपने प्रोडक्ट्स की विदेशों में प्रदर्शन करने के लिए वित्तीय सहायता प्राप्त होती है।

स्टांप शुल्क और पंजीकरण शुल्क में भी आपको छूट दी जाती है और इसके साथ ही Patent Registration पर आपको 50% छूट मिलती है।

एमएसएमई में पंजीकरण का तरीका

एमएसएमई में पंजीकरण आप ऑफ लाइन और ऑनलाइन दोनों ही माध्यम से कर सकते हैं।

ऑफ लाइन पंजीकरण

सबसे पहले जिस विभाग के लिए आप उद्योग शुरू कर रहे हैं, उसके साथ एक आवेदन पत्र में जो आपकी बुनियादी सूचना है उसे भरें, उसके बाद संबंधित दस्तावेज के साथ एमएसएमई ऑफिस में पंजीकृत करा लें।

टिप्पणी

- आवेदन और दस्तावेज को जमा करने से पहले किसी विशेषज्ञ से सारे दस्तावेज को प्रमाणित करा ले, उसके बाद आवेदन को जमा कर दे, आप आवेदन को जिस भी जिले में अपना व्यवसाय शुरू कर रहे है वहां के जिला उद्योग केंद्र में जाकर जमा कर सकते हैं।
- इसके बाद विभाग के द्वारा, आपके आवेदन को आपके दस्तावेज के साथ एमएसएमई रजिस्ट्रार के पास फाइल किया जायेगा, फिर विशेषज्ञ उसका सत्यापन करेंगे. सत्यापन के बाद आवेदन स्वीकृत हो जाने के बाद आपको एमएसएमई प्रमाण पत्र जारी कर दिया जायेगा और आपको कोरियर और इमेल के माध्यम से सूचित कर दिया जायेगा।

ऑनलाइन पंजीकरण

ऑनलाइन पंजीकरण के लिए भारत सरकार द्वारा जारी किये गए पोर्टल या लिंक http%//udyogaadhaar-gov-in/UA/UAM_Registration-aspx पर जाकर दिए गए निर्देश के अनुसार आधार संख्या, मालिक का नाम इत्यादि को भरने के बाद आवेदन जमा कर दें।

- उसके बाद आपके पंजीकृत नम्बर या इमेल पर एक ओटीपी अर्थात यूनिक नम्बर आएगा, जिसे आपको आवेदन में डालना होगा और नीचे दिए गए कैप्चा को आवेदन में डालकर इसे जमा कर दें।
- जब आप एमएसएमई उद्योग शुरू करते हैं तब आपको एक अंतिम पंजीकरण के लिए आवेदन करना होता है, जिसके बाद आपको अंतिम एमएसएमई प्रमाणपत्र दिया जाता है. उत्पादन शुरू होने के बाद आप स्थायी प्रमाणपत्र के लिए आवेदन कर सकते हैं।

इस प्रकार पंजीकरण में आने वाली समस्याओं से आप बच सकते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

3. "व्यवसाय चातुर्य का खेल है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति नहीं खेल सकता"– यह कथन किसका है?

   (क) मैक्स वेबर (ख) शुम्पीटर

   (ग) इमरसन (घ) आर.एन. कार्टर

4. शक्ति का प्रयोग किये बिना कितने श्रमिकों की नियुक्त की दशा में उद्यमी को कारखाना अधिनियम 1948 के अंतर्गत उद्यम का पंजीकरण कराना होगा?

   (क) 10 या इससे अधिक (ख) 20 या इससे अधिक

   (ग) 25 या इससे अधिक (घ) 30 या इससे अधिक

5.4 प्रशासकीय समस्याएं एवं समाधान

उद्यमियों को सफलता के लिये कई अवरोधों एवं चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, विषेश रूप से वित्त तक पहुंच के संबंध में। उद्यमियों द्वारा सामना की जाने वाली कुछ

टिप्पणी

आम चुनौतियों में सफलता का गलत आकलन और लक्ष्य से भटक जाना आदि प्रमुख हैं। इनके अलावा प्रशासनिक स्तर पर जिन चुनौतियों से निपटना होता है, उनमें नकारात्मक मानसिकता, संगठन की संसाधहीनता, कार्यकुशलता, कर्मचारी प्रेरणा, सहायता का अभाव आदि आते हैं। निजी क्षेत्र वैश्विक अर्थव्यवस्था में 10 में से 9 नौकरियों का सृजन करता है। नई व्यावसायिक प्रविष्टियों के लिए आकर्षक निवेश माहौल और अनुकूल व्यावसायिक वातावरण का निर्माण तथा देश के सतत आर्थिक विकास और गरीबी में कमी के लिए निजी क्षेत्र की वृद्धि सर्वोपरि है। इसलिए, उद्यमशीलता के विकास को बढ़ावा देना और नवीन एवं अधिक उत्पादक कंपनियों के विकास के लिए वातावरण तैयार करना देश के विकास लक्ष्यों की प्रमुख प्राथमिकताओं में से एक बन जाना चाहिए। ईसीए क्षेत्र और विशेष रूप से यूरोपीय संघ के सदस्य देशों के समान भारत की सरकार निजी क्षेत्र के साथ संयुक्त रूप से उद्यमशीलता के महत्व को बढ़ा कर सामान्य व्यापार वातावरण में सुधार कर सकती है, बाजारों तक पहुंच बढ़ा सकती है और सूचना और कौशल विकास का समर्थन कर सकती है। वित्त तक पहुंच को आसान बनाने और नवाचार को प्रोत्साहित करने के लिए विशेष उपकरणों और संस्थानों के निर्माण, फर्म–स्तरीय अनुसंधान और विकास, व्यावसायीकरण में वृद्धि, ज्ञान और तकनीकी के प्लवन प्रभाव को मजबूत करने आदि की आवश्यकता है।

भारत में नये उद्यमियों के सामने प्रशासकीय स्तर पर कुछ महत्वपूर्ण चुनौतियां इस प्रकार हैं :

1. दृष्टिकोण और व्यावसायिक विचार का विकास करना
2. स्टार्टअप के लिए पूंजी जुटाना
3. एक व्यावसायिक समूह का गठन
4. व्यवसाय के लिये उचित स्थान ढूंढना
5. अच्छे कर्मचारी की खोज
6. अच्छे ग्राहक ढूंढना
7. प्रतियोगिता से निपटना
8. अदृश्य व्यापार चुनौतियां और उन पर व्यय
9. औद्योगिक बदलावों के साथ अनुकूलता बनाना
10. व्यापार से बाहर निकलना
11. ओवरस्टीमेटिंग
12. लक्ष्य पर केंद्रित रहना
13. जुनून और उद्देश्य।

छोटे पैमाने के उद्योग देश के आर्थिक विकास में महती भूमिका निर्वहन करते हैं किन्तु इनमें से कुछ उद्योग कई कारणों से जर्जर अवस्था से गुजर रहे हैं जिनमें से कुछ कारण निम्नांकित हैं–

- **कार्यशील पूंजी की अपर्याप्तता**– वित्तीय संस्थानों द्वारा कार्यशील पूंजी की अनुस्वीकृति में विलम्ब इस अपर्याप्तता का मुख्य कारण देखा गया है क्योंकि टर्म

लोन की अनुस्वीकृति एवं कार्यशील पूंजी आवश्यकता के मध्य समयान्तराल आ जाने के कारण व्यवसाय के दैनिक कार्यकलापों के सम्पादन में औद्योगिक इकाइयों को कठिनता आ जाती है।

टिप्पणी

- **क्रेडिट की अनुपलब्धता**– लघु पैमाने के उद्योगों का क्षेत्र क्रेडिट की कमी से गम्भीर रूप में जूझता रहा है। ऋणप्राप्ति में देरी से कार्य रोकना पड़ सकता है अथवा उत्पादन में घाटा उठाना पड़ता है। कम उत्पादन से विक्रय में कमी आती है एवं वित्तीय घाटा झेलना पड़ता है।
- **ख़राब व पुरानी पड़ चुकी प्रौद्योगिकी**– कुछ औद्योगिक इकाइयों द्वारा ऐसी प्रौद्योगिकियों का प्रयोग किया जाता है जो वर्तमान आवश्यकताओं की दृष्टि से गुज़रे ज़माने की हो चली हैं जिस कारण उत्पादन की मात्रा व गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है। इससे उत्पादनात्मक घाटा होने एवं उत्पादों की मांग घटने की आशंकाएं रहती हैं।
- **कच्चे माल की अनुपलब्धता**– कुछ इकाइयों का ऐसे कच्चे माल की आवश्यकता हो सकती है जिसकी उपलब्धता सीमित रहती है। कभी–कभी इकाई द्वारा आवश्यक कच्चा माल बहुत सीमित मात्रा में ही उपलब्ध हो पाने से उत्पादन व विक्रय कम रह सकता है। कई बार ऐसा भी हो सकता है कि कच्चा माल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध तो हो परन्तु इकाई में उसे क्रय करने के लिये अत्यधिक धनराशि लगानी पड़ती हो; इससे भी वित्तीय हानि हो सकती है।
- **विपणन समस्याएं**– ऐसा भी देखा गया है कि इकाइयां इस दिशा में नहीं सोचतीं कि उत्पादों के लिये मांग उत्पन्न कैसे की जाए। विपणन–जानकारियों के अभाव से भी उत्पादों की मांग कम रह सकती है। इसी प्रकार लघु पैमाने के उद्योग द्वारा उत्पादित उत्पादों की मांग इसलिए भी कम हो सकती है क्योंकि प्रतिस्पर्द्धा अधिक है अथवा क्रेताओं की परिवर्तनशील रुचियों के अनुरूप ये स्वयं को नहीं ढाल रहे हैं।
- **अनियमित विद्युत आपूर्ति**– बिजली की कमी से उद्योग प्रभावित होते हैं। उत्पादों के उत्पादन में विलम्ब हो जाता है एवं वित्तीय घाटे होते रहते हैं।
- **श्रमसम्बन्धी समस्याएं**– सम्भव है कि नियोक्ता एवं कर्मचारियों के मध्य सम्बन्ध सहृदय न हो। हड़ताल, तालाबंदी व छंटनी जैसी श्रम–समस्याएं बनी रहने से भी उद्योग दुर्बल अवस्था में पड़े रहते हैं।
- **निर्बल प्रबन्धन**– उद्यमी अच्छा नियोजक, संगठक व प्रबन्धक होना चाहिए। यदि औद्योगिक इकाई के प्रमोटर्स में प्रबन्धात्मक कौशल न हुए तो कई समस्याएं पनप सकती हैं।
- **शोध एवं अनुसंधान की अपर्याप्तता**– उद्योगों को यदि वर्तमान प्रतिस्पर्द्धियों के साथ बाज़ार में टिके रहना है तो अनुसंधान एवं विकास में धन आवंटित करना ही होगा, अन्यथा अस्तित्व बचाए रखना भी कठिन हो जाएगा।
- **संसाधनों का डायवर्ज़न**– नियोक्ता द्वारा यदि व्यापार के लिये प्राप्त निधियों का प्रयोग व्यक्तिगत प्रयोजन से कर लिया जाता हो तो निधियों के इस

टिप्पणी

डायवर्ज़न से औद्योगिक घाटा उठाना पड़ेगा। व्यक्तिगत प्रयोजन में लगायी धनराशि वापस न आयी तो ऋण चुकाने एवं ऋणदाताओं में साख ख़राब होने से वित्तीय संकट अपना ग्रास बना सकता है।

- **वैश्वीकरण**– आशंका रहती है कि छोटे पैमाने की औद्योगिक इकाइयां बड़े पैमाने के उद्योगों एवं विदेशी स्पर्द्धियों से सरलता से स्पर्द्धा नहीं कर पाएंगी। उदारीकरण व वैश्वीकरण के कारण बढ़ती स्पर्द्धा से जूझने में असमर्थ रहने की स्थिति में उद्योग को जारी रखना कठिन है।
- **साझेदारों में विवाद**– इकाई के संचालन में भागीदार साझेदारों अथवा परिजनों के मध्य विवाद उपजने के प्रकरण में कामकाज बन्द करना पड़ सकता है।
- **अतिमहत्वाकांक्षी परियोजनाएं**– परियोजना यदि गूढ़ रूप में सम्भाव्य अथवा व्यवहार्य न हुई तो यह अपने आप में एक समस्या होती है।

प्रशासकीय समस्याओं से निपटने के सुधारात्मक उपाय

औद्योगिक उपक्रमों में प्रशासकीय समस्याओं से उबरने में निम्नांकित सुधारात्मक उपाय सहायक हो सकते हैं–

- **आरम्भिक अवस्था में दुर्बलता की पहचानः** छोटे पैमाने के उद्योगों में दुर्बलता कोई आकस्मिक घटना के रूप में साधारणतया नहीं होती। उद्योग की स्थिति का बिगड़ना 5 से 7 वर्ष की अवधि में क्रमिक रूप से हो रहा होता है। इसीलिए दुर्बलता की पहचान प्रारम्भिक अवस्था में कर लें व हल ढूंढ लें तो जर्जर स्थिति में जाने से बचाव सम्भव है।
- **वित्तीय सहायताः** ऋणप्रदाता अभिकरणों को अपनी लम्बी प्रक्रिया को घटाते एवं छोटे पैमाने के उद्योगों की ओर क्रेटिड बढ़ाते हुए नियमों को शिथिल करने की आवश्यकता है। छोटे पैमाने के उद्योगों को वित्तीय जर्जरता से उबारना है तो उन्हें अविलम्ब क्रेडिट सुलभ कराना होगा। क्रेडिटसम्बन्धी समस्याओं को दूर करने के लिये निम्नांकित पहलें की जा सकती हैं–
  - कार्यशील–पूंजी की सीमा बढ़ाना;
  - छोटे पैमाने के उद्योगों को क्रेडिट उपलब्ध कराने में विशेषज्ञीय बैंक–शाखाओं के बैंक–प्रबन्धकों की शक्तियां बढ़ाना;
  - डिस्काउंटिंग बिल्स के लिये क्रियाविधि को सुदृढ़ करना;
  - ब्याज की दर घटाना।

  उपरोक्त उपायों से क्रेडिट का प्रवाह सुधर सकता है एवं जर्जरावस्था पर पहुंचने से रोका जा सकता है।
- **अधोसंरचनात्मक उन्नयनः** इंडस्ट्रियल एस्टेट्स स्थापित करते हुए अधोसंरचनात्मक सुविधाएं ठीक की जा सकती हैं। सड़कमार्ग, जलमार्ग सुधारते, साझे परीक्षण केन्द्र विकसित करते व दूरसंचार प्रणालियां स्थापित करते हुए अधोसंरचनागत समस्याएं सुलझायी जा सकती हैं।

टिप्पणी

- **प्रौद्योगिकीगत नवीकरणः** उन्नत प्रौद्योगिकी अपनाने के लिये वित्तीय संस्थानों द्वारा निधि प्रदान की जा सकती है। इसी प्रकार किसी प्रकार का प्रशिक्षण भी नवीनतम प्रौद्योगिकी के प्रयोग की दिशा में उपलब्ध कराया जा सकता है ताकि प्रौद्योगिकीगत समस्याओं से उबरा जा सके। प्रौद्योगिक अद्यतनीकरण से नवीन प्रौद्योगिकियों की ओर बढ़ा जा सकता है।
- **विपणन सहायताः** उद्यमियों द्वारा उत्पादित उत्पादों के विपणन में इन्हें विपणन सहायता सुलभ करायी जा सकती है। शासन उत्पादों के लिये बाज़ार में प्रवेश की दिशा में सहायता कर सकता है। लघु पैमाने के उद्योग के उद्यमियों द्वारा उत्पादित उत्पादों के विपणन में शासकीय एवं अशासकीय संगठन आगे आ सकते हैं। उत्पादों का विपणन ठीक से न कर पाने की समस्या उद्यमियों व संवर्द्धन अभिकरणों के समन्वित प्रयासों से भी दूर की जा सकती है।
- **शासकीय हस्तक्षेपः** जर्जर अवस्था में पहुंचने से रोकने के लिये शासन को हस्तक्षेप करना चाहिए। वित्तीय स्टेटमेण्ट्स की समयबद्ध समीक्षाओं से जर्जरावस्था को आरम्भ में ही पहचान लेने में सहायता हो सकती है।
- **प्रशिक्षणः** ऐसा सुचारु परिवेश बनाया जाना चाहिए जहां उद्यमी शिक्षित हो व उसे उपयुक्त ज्ञान हो ताकि वह अपने व्यापारिक क्षेत्र में प्रभावी आन्तरिक व बाह्य कारकों से निपटने का कौशल जान ले तथा बड़े पैमाने के उद्योगों एवं बहुराष्ट्रीय इकाइयों के सामने टिक सके।
- **पुनर्वासः** जर्जर अवस्था में पहुंचने की आशंका वाली इकाइयों को पुनर्वास की दृष्टि से देखा जाए। अभी तक तो पुनर्वास को ऐसी औद्योगिक इकाइयों के ही लिये समाधान के रूप में देखा जाता है जो पहले से जर्जर हो चुकी हैं अथवा ढहने की कगार पर हैं।
- Sick Industrial Companies Act (SICA):1985 के प्रावधानों के तहत भारत शासन ने जनवरी–1987 में 'औद्योगिक व वित्तीय पुनर्निर्माण'(Board for Industrial and Financial Reconstruction:BIFR) की स्थापना की थी ताकि जर्जर औद्योगिक कम्पनियों के सन्दर्भ में एवं पुनर्वास योजनाओं के तीव्र प्रवर्तन के लिये बचावमूलक, उन्नतिकारक, सुधारात्मक व अन्य उपाय निर्धारित किये जा सकें।

SICA का प्रमुख प्रयोजन इकाई जर्जरता को निर्धारित करना एवं सम्भावित रूप से व्यवहार्य इकाइयों के पुनरुत्थान अथवा अव्यवहार्य इकाइयों को बन्द करने में शीघ्रता करना है (यहां इकाई का आशय जर्जर औद्योगिक कम्पनी से है)। ऐसा प्रत्याशित था कि जर्जर इकाइयों में पुनरुत्थान, निष्क्रिय निवेशों से जर्जर इकाइयां उत्पादक हो जाएंगी तथा अव्यवहार्य इकाइयों में अटके निवेशों को अन्यत्र उत्पादक प्रयोग के लिये विमुक्त कर दिया जाये।

BIFR द्वारा किये जाने वाले उपाय–

– वैधानिक;
– वित्तीय पुनर्निर्माण;
– प्रबन्धात्मक।

टिप्पणी

पुनर्वास कार्यक्रम

कई जर्जर सूक्ष्म, लघु व मध्यम उद्योगों का विचार करते हुए MSM Policy में भारत में ऐसे उद्योगों के पुनर्वास के लिये अलग पैकेज लाया गया।

इस नीति में जर्जर उद्योगों के लिये पुनर्वास–निधि की व्यवस्था प्रस्तावित है जिसे उद्योग आयुक्त एवं उद्योग व वाणिज्य निदेशक द्वारा प्रबन्धित किया जाएगा। राज्य–स्तरीय पुनर्वास समिति (State-Level Rehabilitation Committee:SLRC) के अनुमोदन के आधार पर समिति द्वारा निधियां उपलब्ध करायी जाएंगी।

पुनर्वास–निधि इत्यादि का प्रयोग उस कारण की लागत के 75 प्रतिशत् भाग की पूर्ति के लिये किया जाएगा जिससे उद्योग अव्यवहार्य हो चला था एवं जर्जर MSM उद्योगों को 15 लाख रुपयों तक के पुनर्वास/ब्रिज लोन्स पर दो वर्षों के लिये 4 प्रतिशत् के ब्याज–अनुदान की अनुस्वीकृति भी की जाएगी।

पुनर्वास उपायों से यह सुनिश्चित होगा कि तालाबन्दी वाली अधिकांश इकाइयां यथाशीघ्र खुलने में सक्षम हो जाएंगी एवं मृत इकाइयां शासन द्वारा उन्हें प्रदान की जा रही सुविधाओं को पाने की ओर प्रेरित होंगी।

पुनर्वास कार्यक्रम में जर्जर अवस्था के स्वरूप के आधार पर निम्नांकित को लागू किया जाएगा–

(क) प्रबन्धन में परिवर्तन;

(ख) उपयुक्त प्रबन्धनात्मक सूचना–तन्त्र का विकास;

(ग) क्रेडिटर्स के साथ बकाया–भुगतान में प्रावस्थावार सुलहः सम्भाव्यता–अध्ययन के अनुरूप अपेक्षित नगदी उत्पत्ति को ध्यान में रखते हुए।

(घ) पुनर्वित्तपूर्ति के लिये आवश्यक अतिरिक्त निधियों के स्रोतों का निर्धारण;

(ङ) संयंत्र व यंत्रोपकरणों का आधुनिकीकरण अथवा वर्तमान कार्यक्रम का विस्तार अथवा निर्माण किये जो रहे उत्पादों का वैविध्यीकरण;

(च) राज्य–स्तरीय निगम, वित्तीय संस्थानों एवं केन्द्र शासन द्वारा कोई रियायत, राहत अथवा सहायता।

अपनी प्रगति जांचिए

5. 'सिक इंडस्ट्रियल कंपनीज एक्ट' (SICA) को कब लागू किया गया?

   (क) 1981 (ख) 1984

   (ग) 1985 (घ) 1988

6. राज्य–स्तरीय पुनर्वास समिति द्वारा जर्जर MSM उद्योगों को अधिकतम कितनी राशि ऋण स्वरूप दी जा सकती है?

   (क) 10 लाख (ख) 15 लाख

   (ग) 20 लाख (घ) 25 लाख

5.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

टिप्पणी

1. (क)
2. (ग)
3. (ग)
4. (ख)
5. (ग)
6. (ख)

5.6 सारांश

हर वर्ष असफल रहने वाले अनेकानेक उद्यमियों में से, लगभग आधे उद्यमी धन या फिर कार्यशील पूंजी के अभाव को अपनी असफलता का कारण बताते हैं। अधिकांश उदाहरणों में, किसी व्यवसाय के स्वामी को यह पता होता है कि दैनिक आधार पर वेतन भुगतान के लिये धन, नियत और विविध प्रकार के ऊपरी व्ययों, जैसे किराया एवं व्यावहारिक व्यय के भुगतान और बाहरी व्यापारियों को समय पर भुगतान, समेत कंपनियों को चालू रखने के लिये कितने धन की जरूरत होती है। किंतु, असफल कंपनियों के स्वामी इस बात पर वांछित ध्यान नहीं देते कि उत्पादों अथवा सेवाओं की बिक्री से कितने राजस्व का सृजन हुआ। इसके फलस्वरूप धन में कमी आती है और कोई छोटा–मोटा व्यवसाय शीघ्र ही बंद हो जाता है।

वित्त पोषण की सामान्य बाधाओं से किसी छोटी कंपनी की रक्षा के लिये, कंपनी के स्वामियों को सबसे पहले कंपनी के कार्य संचालन हेतु एक समुचित बजट तैयार करना और आरंभिक (स्टार्टअप) अथवा विस्तार चरण में अपनी तिजोरी से कुछ पूंजी उपलब्ध कराने को तत्पर रहना चाहिए। कुछ समय पश्चात, जब वित्तीय सहायता देनी ही हो, तो उसके पहले विभिन्न बिक्री केंद्रों से शोध व सहायता के विकल्प सुनिश्चित कराने चाहिए। जब धन जुटाने का समय आये, तो कंपनी के स्वामियों के पास विभिन्न प्रकार के स्रोत होने चाहिए जिनसे वे पूंजी की मांग कर सकें।

कार्यशील पूंजी सुनिश्चित हो, तो छोटी कंपनी के स्वामियों को भविष्य में व्यवसाय को आगे बढ़ाने का अवसर मिलता है। यदि कोई कंपनी आगे बढ़ना चाहे या फिर ग्राहकों की मांगों को पूरा करने का प्रयास कर रही हो, तो वह अक्सर तेजी से और बड़े पैमाने पर माल का उत्पादन करने अथवा सेवाएं देने के लिये आवश्यक अतिरिक्त परिसंपत्तियों का क्रय करती है। कार्यशील पूंजी के अभाव में कोई कंपनी अपने विस्तार के लिये जरूरी वस्तुओं का क्रय नहीं कर पाती। यदि किसी कंपनी के विकास में समस्याएं निरंतर आती रहें, तो उसके ग्राहक उससे टूट कर उसके प्रतिद्वंद्वियों के पास जा सकते हैं।

प्रतिदिन अनेक नवीन इकाइयों की स्थापना की जाती है किंतु स्थापित की जाने वाली सभी इकाइयां सफल नहीं हो पाती हैं। वास्तविकता यह है कि उनमें से कई

टिप्पणी

इकाइयों को असफलता का सामना भी करना पड़ता है और उनकी स्थापना के लिए सभी वैधानिक औपचारिकताओं को विधिवत पूरा नहीं किया गया होता है। वास्तविकता यह है कि आधुनिक व्यवसाय विभिन्न वैधानिक जटिलताओं से भरा हुआ है, जिसकी स्थापना करने से पूर्व बहुत ही सोच–विचार करने के पश्चात् ही निर्णय लिया जाना चाहिए।

किसी भी नवीन व्यावसायिक इकाई की स्थापना के लिए सबसे पहले व्यवसाय की किस्म अथवा प्रकार, फिर आकार और बाद में स्वामित्व के प्रारूप का निर्धारण करना होता है। इसके पश्चात् एक नवीन इकाई की स्थापना के लिए उद्यमी को विभिन्न वैधानिक आवश्यकताओं का पालन करना पड़ता है। भारत सरकार ने 24 जुलाई, 1991 को घोषित नवीन औद्योगिक नीति की घोषणा में नवीन इकाई के लिये अनेक वैधानिक आवश्यकताओं को समाप्त अथवा कम कर दिया है।

किसी भी नवीन इकाई की स्थापना के लिए सबसे पहले वैधानिक आवश्यकता केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार से लाइसेन्स लेना या प्राप्त किया जाना आवश्यक है। 24 जुलाई, 1991 को घोषित नवीन औद्योगिक नीति एवं उसके पश्चात् किये गये संशोधनों के अनुसार नवीन लाइसेन्स नीति के अंतर्गत कई महत्वपूर्ण निर्णय लिये गये हैं।

5.7 मुख्य शब्दावली

- **गाथा** : कहानी।
- **अनुग्रह** : आभार, कृपा।
- **बहिष्करण** : तिरस्कार, अवहेलना।
- **चातुर्य** : चतुराई।

5.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. कार्यशील पूंजी के अभाव से उद्यमी को किन–किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है?
2. पूंजीगत समस्याओं का समाधान किस प्रकार किया जा सकता है?
3. किसी उद्यम का पंजीकरण क्यों कराना पड़ता है और इसके क्या लाभ हैं?
4. उद्यम से संबंधित मुख्य प्रशासकीय समस्याएं कौन–सी हैं?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. उद्यमिता की पूंजी विषयक समस्याओं एवं उनके समाधानों का परिचय दीजिये।
2. उद्यमिता की पंजीकरण संबंधी आवश्यकताओं का उल्लेख करते हुए उनके समाधान बताइये।

3. उद्यमिता की प्रशासन संबंधी मुख्य समस्याओं का उल्लेख करते हुए उनके समाधान के विकल्प सुझाइये।

5.9 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

जी.एस. सुधा, *उद्यमिता की अवधारणा*, रमेश बुक डिपो, 1995
एम.एल. झिंगन, *आर्थिक विकास में उद्यम वृत्ति*, कोणर्क पब्लिशर्स प्रा. लि. 1972
एस.सी. सक्सेना, *व्यवसाय प्रशासन एवं प्रबंध*, साहित्य भवन, आगरा, 2002
एस.के. गुप्ता, *उत्पादन की विधियां*, विशाल प्रकाशन मन्दिर, मेरठ, 1996
पाण्डेय एवं सिंह, *उत्पादन प्रबंध*, एपसाइलन पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., कानपुर, 1995
अंजनि कुमार मालवीय, *मानव संसाधन प्रबंध*, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2009
डॉ. आर.एस. कुलश्रेष्ठ, *औद्योगिक अर्थशास्त्र*, साहित्य भवन, आगरा, 1992